प्रसाद का काव्य

प्रसाद का काव्य

डॉ. प्रेमशंकर



राधाकृष्ण

ISBN 81 7119-133-9

प्रसाद का काव्य (आलोचना)

डॉ. प्रेमशंकर

पहला (राधाकृष्ण) संस्करण : 1965

प्रकाशक

राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
2/38 अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110 002

आवरण : बी. सरकार

लेज़र कम्पोज़र

कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110 032

मुद्रक

हिंदुस्तान ऑफ़सेट, दिल्ली-110 032

PRASAD KA KAVYA (Criticism) by Dr. Premshankar

गुरुवर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
को—
सशक्त लेखनी के साथ
जिनके पास
एक उदार हृदय
भी था।

दो शब्द

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा निरीक्षित तथा हिन्दी के गण्यमान्य विद्वानो द्वारा अनुमोदित इस सुन्दर गवेषणात्मक प्रबन्ध के लिए किसी अतिरिक्त प्रमाणपत्र की आवश्यकता नही है। फिर भी डा प्रेमशकर का स्नेहानुरोध है कि मै इसके आमुख रूप मे दो शब्द लिखूँ।

जयशकर प्रसाद वर्तमान हिन्दी साहित्य के युगपुरुष है। यो तो उनके भक्तो और साहित्यानुयायियो का अभाव नही है, परन्तु उनके गौरव के अनुकूल व्याख्यान विवेचन अभी कम ही हुआ है। मुझे सन्तोष है कि डॉ प्रेमशकर ने अत्यन्त अध्यवसाय तथा मर्मज्ञता के साथ प्रसाद काव्य का अवगाहन किया है। इनकी आलोचक दृष्टि बडी पैनी है और उसके पीछे सतत्र रस ग्रहण की प्रेरणा भी है, इसीलिए वे उसके मर्म का उद्घाटन विदग्धतापूर्वक कर सके है।

अनुसन्धान के हिन्दी मे प्राय दो स्वरूप उपलब्ध होते है–तथ्यपरक और तत्वपरक। इसमे सन्देह नही कि तथ्य शोध अनुसन्धान का प्रथम सोपान ही है, किन्तु उसको इसी रूप मे ग्रहण भी करना चाहिए वह सोपान ही है, लक्ष्य नही है। प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक ने साहित्यिक अनुसन्धान के इस महत्त्वपूर्ण सत्य को कभी अपनी दृष्टि से ओझल नही होने दिया, और प्रसाद के व्याख्याता की इससे बडी सिद्धि क्या हो सकती है!

मै अपनी शुभकामनाओ सहित 'प्रसाद का काव्य' हिन्दी के सहृदय विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ।

नगेन्द्र

दिल्ली विश्वविद्यालय

निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक पी एच डी के प्रबन्ध रूप मे लिखी गयी थी। इच्छा होते हुए भी, कई कारणो से मै उसमे अधिक परिवर्तन नही कर सका हूँ और प्रबन्ध लगभग मूल रूप मे ही पाठको के समक्ष जा रहा है। इसे लिखते समय मुख्यतया अनुसन्धान का एक जिज्ञासु विद्यार्थी रहा हूँ इसलिए चाहूँगा कि पुस्तक को कवि प्रसाद के विषय मे 'अन्तिम शब्द' समझने की भूल न की जाय।

पुस्तक मे प्रसाद के क्रमिक विकास का निर्देश मैने किया है। 'चित्राधार' से 'कामायनी' तक वे क्रमश उत्तरोत्तर आगे बढते गये है। पुस्तक मे मैंने आलोचना की किसी विशेष प्रणाली को नही अपनाया है, यद्यपि एडवर्ड थाम्पसन की पुस्तक 'रवीन्द्रनाथ टेगोर' मुझे अच्छी लगी है, किन्तु मैने स्वतन्त्र रीति से प्रसाद के कवि को किंचित् निकट से देखने का प्रयास किया है। पुस्तक मे मै व्याख्याकार अधिक रहा हूँ ताकि कविताओ के भाव प्रकाश मे आए और कवि के विषय मे प्रचलित बहुत सी भ्रान्तियां दूर हो सके। इसी कारण भाषा कही कही भावात्मक हो गयी है। आशा है भविष्य मे उसका परिष्कार कर लूगा। प्रसाद के व्यक्तित्व को मैने विश्वकाव्य की पृष्ठभूमि मे रख कर देखने का प्रयत्न किया है। इसका तात्पर्य यह नही है कि वे महाकवि वाल्मीकि कालिदास होमर अथवा शेक्सपियर के समकक्ष है किन्तु इतना अवश्य है कि प्रसाद जी मे विकास की पर्याप्त रेखाएँ और सम्भावनाए थीं, और यदि वे कुछ समय तक हमारे बीच और रहते तो सम्भवत महानतम कवियो के समीप आ जाते। पुस्तक मे यथास्थान दर्शन, मनोविज्ञान आदि की चर्चा है। सम्भव है मै अपनी महत्त्वाकाक्षा मे इस दिशा मे आवश्यकता से आगे बढ गया होऊँ, इसके लिए क्षमा चाहूँगा।

यह एक नवयुवक का प्रथम प्रयास है। इस अवस्था मे किसी तटस्थ और निष्पक्ष दृष्टिकोण की माग करना ज्यादती होगी। एक नये लेखक की कमजोरियाँ इस पुस्तक मे मिलेगी। मै अपनी सीमाओ को जानता हूँ, इसलिए जो सज्जन पुस्तक के विषय मे सुझाव देगे मै उनका स्वागत करूँगा। आशा है कि आगामी सस्करण मे अधिक न्याय कर सकूगा।

पुस्तक गुरुजन के पथ प्रदर्शन, विद्वानो के सहयोग और मित्रो के स्नेह का

परिणाम है। उन्ही के सहारे मैं जीवन में आगे बढ़ सका हूँ। नाम कहाँ तक गिनाऊँ, मैं उन सबका हृदय से आभारी हूँ।

भूलों के लिए क्षमा माँगता हुआ, यह पुस्तक आपके सामने रख रहा हूँ।

लखनऊ क्रिश्चिन कालेज, **प्रेमशंकर**

पंचम संशोधित संस्करण

इस पुस्तक का सौभाग्य कि नये संस्करण मे आ रही है। मै अपने उदार पाठको का आभारी हूँ। पुस्तक को बिल्कुल नया रूप दिया गया है।

विश्वविद्यालय, **प्रेमशंकर**
सागर
स्वतन्त्रता दिवस,

अनुक्रम

पीठिका और परिवेश

प्रसाद-साहित्य की पीठिका

कवि यदि अपनी समृद्ध परम्परा से प्रभावित हो सकता है, तो साथ ही देश-काल की परिस्थितियाँ पीठिका का कार्य करती है। काव्य मे उनका स्वरूप किसी न किसी प्रकार आभासित होता रहता है और कभी-कभी तो कवियो की कृतियाँ युग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। कालिदास की रचनाओ मे भारत के सामन्त युग का वैभव दिखाई देता है और यहाँ जीवन के संघर्षो से मुक्त कलाकार सौन्दर्य-शृंगार के वातावरण मे विचरण करता है। वैभवशाली नगर, सुन्दर नारियाँ, सुकुमार प्रसाधन उसमे मिलते है। संघर्ष अथवा सक्रान्ति काल के कवि के स्वर मे विद्रोह की भावना होती है। इस प्रकार सामाजिक स्थिति तथा साहित्यिक परम्परा दोनो काव्य की पृष्ठभूमि का कार्य करती है। अतीत से प्रेरणा लेता हुआ कवि युग के अनुरूप नवनिर्माण मे सलग्न होता है। यदि परम्परावादी कवि मे अनुसरण की भावना अधिक रहती है, तो स्वच्छन्दतावादी कवि विद्रोही अधिक होता है, किन्तु दोनो पर युग की छाया रहती है। 'इस प्रकार कला क्रमश सृजनात्मक स्वीकृति और विद्रोह के दो विरोधी मार्गो पर चलती है।'[1]

प्रसाद के पूर्व भारतीय काव्य की दीर्घ परम्परा है। आधुनिक काव्य के अतिरिक्त संस्कृत मे वाल्मीकि, कालिदास, जयदेव के आदर्श थे। हिन्दी मे विद्यापति, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि का कृतित्व सम्मुख था। प्रसाद की मूल प्रवृत्तियाँ एक स्वच्छन्दतावादी रचनाकार तथा चिन्तनशील कवि के सयोग से निर्मित हैं। काव्य और दर्शन का सयोजन उनमे दिखाई देता है। यद्यपि उन्होने काव्य की किसी परिपाटी विशेष का अनुसरण नही किया, किन्तु उन पर काव्य की उस परम्परा की छाया अवश्य है जो रस को आत्मा मानकर चलती है। वास्तव मे उन्होने आरम्भ मे महाकवियो से प्रेरणा ग्रहण की और अन्त मे उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व सम्मुख आया।

उन्होंने अपने युग और देश की चेतना को भी काव्य के माध्यम से प्रकाशित करने का प्रयत्न किया। प्रसाद का प्रवेश एक विद्रोही कलाकार के रूप में नहीं हुआ और उन्होंने प्रचलित परम्परा के प्रति कोई आन्दोलन नहीं चलाया। उनका मूल स्वर यदि राष्ट्रीय परिवेश से अनुप्राणित था, तो साथ ही उन्हें महान् कवियों से भी शक्ति मिली। परम्परा और प्रगति को साथ लेकर चलनेवाले प्रसाद के काव्य की पृष्ठभूमि, उसे प्रभावित करती है।

प्रसाद का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में हुआ था और बीसवीं शताब्दी के अर्द्धभाग के पूर्व वह समाप्त हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय विद्रोह के समाप्त होते ही देश में अपेक्षाकृत अधिक शान्त वातावरण की चर्चा इतिहासकारों ने की है।[2] रानी विक्टोरिया के घोषणापत्र में भारतीयों को समानता और धार्मिक स्वतन्त्रता का वचन दिया गया। देश की जनता को कुछ सान्त्वना मिली और उसने एक नये सिरे से सोचना आरम्भ किया। इसी समय पश्चिम की विचारधाराएँ देश में प्रवेश कर रही थीं। रूसो, वाल्टायर और मिल के राजनीतिक मत विचार-विनिमय का विषय बन रहे थे। पाश्चात्य भाषा साहित्य के सम्पर्क में आने के कारण अनेक नवीन विचारधाराएँ देश को प्राप्त हो रही थीं। मध्यवर्ग शिक्षा की ओर अधिक अग्रसर होने लगा था।

19वीं शती का अन्तिम चरण और भारतेन्दु युग

शिक्षित वर्ग का विश्वास था कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए देश में सामाजिक सुधार आवश्यक है। राजा राममोहन राय ने बहुत पूर्व ब्रह्मसमाज की नींव डाली थी, अब केशवचन्द्र सेन ने उसका नेतृत्व किया। उन्हीं के प्रयास से 1873 ई. में विवाह एक्ट पास हुआ। ब्रह्मसमाज सुधार करने में प्रयत्नशील था। वह वेदान्त धर्म को स्वीकार करता था, किन्तु सब प्रकार की मूर्तिपूजा के विरुद्ध था। दया अथवा परोपकार भाव से सबके साथ परस्पर व्यवहार करना वह उचित मानता था। बंगाल में ब्रह्मसमाज की ही भाँति पूना मे रानाडे ने प्रार्थना-समाज की स्थापना की। उनका कार्यक्रम अधिक क्रान्तिकारी था और वे प्राचीन रूढ़ियों में आमूल परिवर्तन चाहते थे। इसी के प्रतिक्रियास्वरूप आर्यसमाज का उदय हुआ और वेदो को उच्च स्थान दिया गया। वह प्रत्येक वैदिक वस्तु को महान मानकर सामाजिक सुधार का पक्षपाती था। अपने अतीत से उसने पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की और उसका लक्ष्य सांस्कृतिक चेतना ही अधिक रहा। लाला लाजपत राय आदि के नेतृत्व से उसे बल प्राप्त हुआ। उत्तर भारत के आर्यसमाज की भाँति दक्षिण में थियासाफी का आविर्भाव हुआ। बनारस में एनीबेसेन्ट ने उसके लिए प्रयत्न किया। इस आन्दोलन में राष्ट्रीयता के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना मौजूद थी। इन सभी सामाजिक आन्दोलनों के अतिरिक्त बंगाल में रामकृष्ण परमहंस 'लोक-संग्रह' तथा समाजसेवा का प्रचार कर रहे थे। इस प्रकार 1857 के

पश्चात् भारत में अनेक सामाजिक सुधार के आन्दोलन उठ खडे हुए, जिन्होंने देश में नयी जागृति और चेतना को प्रसारित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

देश में राष्ट्रीयता की भावना बहुत पूर्व ही कार्य कर रही थी। मराठा आदि कई शक्तियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा लिया था। सन् सत्तावन का विद्रोह भारतीय राष्ट्रीय भावना का एक विस्फोट था। सामाजिक सुधार के आन्दोलनो के मूल में देश-प्रेम की भावना कार्य कर रही थी। राष्ट्रीय भावना तथा राजनीतिक आन्दोलन का नियमित कार्यक्रम 1885 ई. में काग्रेस के जन्म से आरम्भ होता है। आरम्भ मे कांग्रेस की रूपरेखा इतनी उदार थी कि उसे तत्कालीन वायसराय तथा अन्य अंग्रेजो का भी सहयोग प्राप्त था।[3] तिलक के आगमन के साथ काग्रेस मे एक नवीन विचारधारा का प्रवेश हुआ और उसमे दो वर्ग हो गए–एक वर्ग क्रान्तिकारी आन्दोलन का पक्षपाती था और दूसरा वैधानिक उपायो से स्वराज्य चाहता था। तिलक ने पूना मे अपने पत्र 'केसरी' द्वारा क्रान्तिकारी विचारधाराओं का प्रचार-प्रसार आरम्भ किया। उन्होने यहाँ तक कहा, कि "अपने को कुएँ के मेढक की भाँति बन्दी न बना दो। प्रत्येक बन्धन तोड़कर श्रीमद्भगवद्गीता का अनुसरण करो।" तिलक का समर्थन विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपत राय ने किया। तिलक राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रो मे कार्य करते दिखाई देते है। उधर काग्रेस मे ही सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि व्यक्ति वैधानिक रीति मे स्वराज्य-प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे थे, दादाभाई नौरोजी भी सपूर्ण क्रान्ति के समर्थक न थे। देश में राजनीतिक आन्दोलनो के कारण जनता मे एक जागृति अवश्य आ गयी थी, किन्तु अभी तक उसकी रूपरेखा सुस्थिर न थी।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तक भारत मे चेतना की एक लहर-सी दौड चुकी थी। सामाजिक, सास्कृतिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रो मे व्यक्ति कार्य कर रहे थे, और उनके मूल में राष्ट्रीयता की प्रबल भावना थी, साथ ही वे देश के सामाजिक स्तर को भी ऊँचा उठाना चाहते थे। इतिहास की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित होने लगा था और वे अतीत से भी प्रेरणा प्राप्त करना चाहते थे। विश्व में प्रचलित नवीन विचारधाराओ से भी उन्होने कुछ-न-कुछ ग्रहण ही किया। इस प्रकार राष्ट्रीय भावना का स्वरूप धीरे-धीरे बन रहा था और देश की बिखरी हुई शक्तियाँ संगठित की जा रही थी। उन्नीसवी शताब्दी ने उस सुदृढ़ पृष्ठभूमि का कार्य किया जिस पर आगे चलकर बीसवी शताब्दी के शक्तिशाली भारत का निर्माण हुआ, जो राजनीति, समाज, साहित्य प्रत्येक दृष्टि से गतिशील रहा।

उन्नीसवीं शताब्दी के इस आन्दोलित वातावरण मे हिन्दी-साहित्य की नवीन परम्परा का विकास हुआ। भारतेन्दु ने अपने युग का प्रतिनिधित्व किया। देश की अनेक रूढ़ियों और कुरीतियों के सुधार का उन्होंने प्रयास किया। इस सामाजिक कार्य के लिए प्रायः उन्हें नाटकों का अवलम्ब ग्रहण करना पड़ा, किन्तु कविता में भी उन्होंने

इन भावनाओं को स्थान दिया। साहित्य के क्षेत्र में एक सर्वथा नयी चेतना का आरम्भ भारतेन्दु-युग से हो जाता है। भारतेन्दु ने कहा था :

आवहु, मिलिकै, रोवहु सब भारत भाई
हा, हा, भारत-दुर्दशा न देखी जाई।

भारतेन्दु-युग में प्राचीन-नवीन का सम्मिलन, देश-प्रेम, समाज-सेवा आदि भावनाएँ प्राप्त होती हैं। यद्यपि सामाजिक दृष्टि के कारण गद्य का अवलम्ब अधिक ग्रहण किया गया, किन्तु काव्य में भी सुधारवादी भावनाएँ प्रतिपादित की गयीं। काव्य के भाव, भाषा, शैली सभी मे भारतेन्दु ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया। वे उस समय की प्रचलित विचारधारा से प्रभावित थे। अंग्रेजों को स्वीकार करते हुए भी वे कहते हैं : "पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी।" अनेक सामाजिक कुरीतियों पर उन्होने व्यंग्य किये; वे एक सच्चे राष्ट्रप्रेमी थे। आचार्य शुक्ल के शब्दो में "नवीन धारा के बीच भारतेन्दु की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति का था। नीलदेवी, भारत-दुर्दशा आदि नाटकों के भीतर आयी हुई कविताओं में देश-दशा की जो मार्मिक व्यंजना है, वह तो है ही, बहुत-सी स्वतन्त्र कविताएँ भी उन्होने लिखी जिनमें कही देश की अतीत-गौरव-गाथा का गर्व, कहीं वर्तमान अधोगति की क्षोभभरी वेदना, कहीं भविष्य की भावना से जगी हुई चिन्ता इत्यादि अनेक पुनीत भावों का संचार पाया जाता है।"[4] सामाजिक रचनाओं के अतिरिक्त उनकी प्रेम और शृंगार की रचनाएं अनुभूति की तीव्रता में पर्याप्त सरस हैं। इस प्रकार भारतेन्दु के बहुमुखी व्यक्तित्व ने आगे की परम्परा को प्रभावित किया। उनके साथ में प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण प्रेमघन, जगमोहन सिंह आदि ने कार्य किया। इनकी रचनाएँ अनेक विषयों को लेकर चलती थी। वे देश की दशा पर दुख प्रकट करते थे, समाज की कुरीतियों के सुधार की चर्चा उन्होंने की और अनेक सामान्य विषयों पर भी वे लिखते थे। प्रेमघनजी ने प्रयाग का सनातन धर्म सम्मेलन, प्रतापनारायण जी ने गौरक्षा आदि पर कविताएँ लिखीं। भारतेन्दु-युग ने विभिन्न दिशाओं मे कार्य किया और आधुनिक हिन्दी-काव्य की राष्ट्रीय परम्परा को जन्म दिया। जीवन और काव्य एक-दूसरे के अधिक निकट आए तथा रीति-काव्य की घोर शृंगारिकता से काव्य को मुक्ति मिली। इसने हिन्दी काव्य की नयी पृष्ठभूमि का कार्य किया। भारतेन्दु के बहुमुखी व्यक्तित्व ने स्वयं प्रसाद को प्रभावित किया और उन्होंने उनसे प्रेरणा ली।

बीसवीं शती का उदय और द्विवेदी-युग

प्रसाद का वास्तविक कृतित्व बीसवीं शताब्दी में आरम्भ होता है। राजनीतिक क्षेत्र में इस समय गोखले और गांधी का प्रवेश हुआ। गांधी ने देश का नेतृत्व सँभाला

और महामना मालवीय, मोतीलाल नेहरू आदि अनेक विचारशील नेता भी साथ थे। गाधी ने अपने महान् व्यक्तित्व से सत्य, अहिंसा का प्रचार किया। उसी समय 1909 ई. मे मार्ले मिन्टो सुधार आये और बाद मे 1919 का एक्ट। इस प्रकार भारतीयो को कुछ अधिकार मिलने लगे। काग्रेस भारतीय राष्ट्रीय भावना का प्रतिनिधित्व कर रही थी। अग्रेजो ने हिन्दू-मुसलमानो मे पारस्परिक वैमनस्य फैलाने का प्रयत्न किया, किन्तु गाधी अपनी सम्पूर्ण शक्ति से देश का नेतृत्व कर रहे थे और वे जनता मे लोकप्रिय थे। सामाजिक सुधार का कार्य आर्यसमाज, थिआसाफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन आदि के द्वारा हो रहा था। स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो मे भारत का मस्तक ऊँचा किया था। इस समय देश मे शिक्षा का प्रसार हुआ, कई स्थानो पर स्कूल और विश्वविद्यालय खुलने लगे और भारतीय विश्व की विचारधाराओं से परिचय प्राप्त करने लगे।

साहित्य के क्षेत्र मे रवीन्द्र का आगमन एक नयी दिशा का सूचक था। जवाहरलाल नेहरू ने गाधी और रवीन्द्र के व्यक्तित्व की तुलना करते हुए उन्हे इस युग की सर्वश्रेष्ठ विभूतियॉं कहा है।' रवीन्द्र भारतीय सभ्यता-संस्कृति के प्रतीक थे, तो गाधी भारतीय जनता के। हिन्दी-साहित्य की विचारधारा का प्रतिनिधित्व 'सरस्वती' करती है। बीसवी शताब्दी के आरम्भ की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ इसके माध्यम से व्यक्त हुई। दूसरे हिन्दी साहित्य सम्मेलन मे 'हिन्दी की वर्तमान अवस्था' के विषय मे कहा गया था, 'हिन्दी के जिस नय पौधे मे आज से तीस-पैंतीस वर्ष पहले कोमल कोमल पत्ते दिखाई दिये थे वे अब इस समय, अनेक पल्लव पुजो से आच्छादित है।' द्विवेदी युग का काव्य प्रयोगशील अवस्था मे दिखाई देता है, जो अपने निर्माण मे सलग्न था। अनेक विचारधाराएँ उस पर अपना प्रभाव डाल रही थी और वह हिन्दी की परम्परा का सृजन कर रहा था। इसी के कुछ समय बाद छायावाद-युग का आरम्भ हो जाता है, जिसका प्रतिनिधित्व 'इन्दु' ने किया। प्रसाद-काव्य पर वर्तमान दशा का प्रभाव पड़ा और उनके कृतित्व मे युग की प्रवृत्तियॉं प्राप्त होती है। मूलतः वे भावनावान सास्कृतिक कलाकार है, जो विचारो को भी प्रतिपादित करते चलते है।

बीसवी शताब्दी का भारत एक विकासशील देश रहा है। स्वय विश्व के नवीन इतिहास का निर्माण हो रहा था। प्रगतिशील सामाजिक विचारधाराएँ नवनिर्माण मे लगी हुई थी। मार्क्स के पश्चात् लेनिन ने क्रान्ति को नया जीवन प्रदान किया था। वह गरीबो को भूमि, अन्न-वस्त्र तथा शान्ति के लिए समस्त राष्ट्र को एक सूत्र मे बॉधना चाहता था। राजनीतिक विचार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पदार्पण करने लगे और साहित्य ने भी इसमे सहयोग दिया। इसी के साथ अन्तर्राष्ट्रीयता और मानवता की भावनाओ मे विकास हुआ। पारस्परिक सघर्षो के दुष्परिणामो को देखकर अनेक विचारको ने शान्ति का सन्देश दिया। सन् 1918 ई. मे विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका

था। इस प्रकार चारों ओर विश्व मे एक नवीन जागृति आ रही थी और शासन-सत्ता धीरे-धीरे जनता के हाथ में पहुंच रही थी। यह राष्ट्रीय भावना इस युग मे आकर पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक हो गयी। ऐसे भी व्यक्तियो का उदय हुआ जो सार्वभौमिक स्तर पर विचार करने लगे। 'अन्तर्राष्ट्रीयता देशो की समाजवादिता का ही एक स्वरूप है'।[6] धर्म की रूढ़िवादिता पर आक्रमण हो रहे थे और उसकी एक नवीन व्याख्या की जाने लगी थी। पश्चिमी सभ्यता अपनी बौद्धिकता को लेकर समस्याओ का समाधान करने मे लग गयी, इस प्रकार जीवन के क्षेत्र मे नवीन प्रयोग हो रहे थे।

साहित्य, कला, विज्ञान की दृष्टि से भी बीसवीं शताब्दी का आरम्भ पर्याप्त प्रगति कर चुका था। विज्ञान के क्षेत्र में अनेक नवीन आविष्कार हो रहे थे, जो सभ्यता को और भी आगे बढ़ा सके। उपयोगितावाद, आदर्शवाद को जीवन के निकट लाकर प्रस्तुत करने का प्रयत्न होने लगा। केवल विज्ञान के द्वारा ही सुख-शान्ति न होते देखकर ही विचारको ने मानववाद का अवलम्ब ग्रहण किया। मिल आदि विचारक पूर्व ही इसकी नीव डाल चुके थे। विचारको ने दर्शन को एक व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया था। राजनीतिक क्षेत्र की स्थिति स्थायी नही थी, किन्तु चिन्तको ने अपनी विचारधारा को विश्व कल्याण मे नियोजित किया। ये आधुनिक सभ्यता की मुख्य प्रवृत्तियाँ थी। 'यूरोप की इस नयी सभ्यता का प्रभाव उसके समाज और साहित्य पर पूर्ण रूप से पड रहा था'।[7] अब तक जिन परम्पराओ के आधार पर कार्य हो रहा था, उनमे स्थिति के अनुकूल परिवर्तन हुए। साहित्य ने एक बार देश और काल के बन्धन फिर तोडे। कविता के क्षेत्र मे नवीन प्रयोग हुए, यद्यपि गद्य में अधिक कार्य हुआ।

बीसवी शताब्दी मे जातीय भावना का स्थान राष्ट्रीयता ने ग्रहण किया। भारत की कल्पना माँ के रूप मे दृढ़ हुई। राष्ट्रीय प्रेरणा के लिए कवि अपने प्राचीन आदर्शो को पुनः सम्मुख लाने का प्रयास करने लगे। उन्हे यदि वीरता की प्रेरणा इतिहास-पुरुषो से मिलती, तो जीवन के सर्वागीण विकास के लिए राम और कृष्ण का आदर्श आकृष्ट करता। इसी पृथ्वी पर अपनी समस्याओ का समाधान करने की इच्छा से उसने ईश्वर को भी दश मे बुला लिया; देवत्व का मानवीकरण हो गया। बढती हुई देश प्रेम की भावना में समस्त कवि समाज ने अपनी अपनी शक्ति के अनुसार योग दिया। इस भावना का विकास होता गया और कवि ने देश की सीमाओ से आगे बढ़कर विश्व की ओर झाँका। राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में द्विवेदी-युग के काव्य ने अतीत गौरव, राष्ट्रीय भावना, मानवता भाव को ग्रहण किया। इन सभी भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए भारतेन्दु-युग ने गद्य का भी अवलम्ब लिया था। द्विवेदी-युग ने इतिवृत्तात्मक पद्य मे उन्ही तथ्यों को प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त साहित्यिक क्षेत्र मे इस युग ने भारतेन्दु की क्रान्ति को आगे बढ़ाया। गद्य और पद्य के क्षेत्र

अलग अलग हो गये। शिक्षा राजनीति का क्षेत्र गद्य को मिला तथा कविता में आदर्श पर जोर दिया गया। कवियों ने लोकरुचि का काव्यात्मक संस्करण प्रस्तुत किया। द्विवेदी-युग में कालिदास आदि की रचनाओं का अनुवाद हुआ और द्विवेदीजी ने स्वयं संस्कृतवृत्तों में 'कुमारसम्भव' प्रस्तुत किया। ज्यों ज्यों जनता में राजनीतिक और सामाजिक जागृति होती जाती थी, विषय भी बढ़ते जा रहे थे। इस प्रकार द्विवेदी-युग में एक ऐसे साहित्य का निर्माण होने लगा था, जो राष्ट्रीय होते हुए भी शाश्वत मनोभावनाओं की ओर अग्रसर था। भाषा की दृष्टि से काव्य को परिमार्जन प्राप्त हो रहा था और उसमें अब शैथिल्य कम रह गया था। नवीन छन्दों का प्रयोग होने लगा था तथा गुप्तजी के हरिगीतिका को पर्याप्त ख्याति मिली। नवीन शैलियों में काव्य बनने लगा। उधर पश्चिम का प्रकाश भारत में आ रहा था। कजामियाँ के अनुसार विक्टोरिया युग में भी स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्तियाँ थी।[8] द्विवेदी युग में स्वच्छन्दता का साधारण आभास मिलने लगा था और गुप्तजी ने भी गीत सृष्टि की। द्विवेदी युग के कवि जनता के बीच रहकर अपने काव्य का निर्माण कर सके और सच्चे जातीय कवि के समान ये युग में भी प्रभावित हुए।

द्विवेदीयुगीन साहित्य में गद्य के अतिरिक्त कविता का भी पर्याप्त विकास हुआ। खड़ीबोली का एक आन्दोलन सा उठ खड़ा हुआ। श्रीधर पाठक ने 1943 वि. में 'एकान्तवासी योगी' प्रकाशित की। बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री ने तो 'खड़ीबोली आन्दोलन' नामक पुस्तक ही छपवा दी। इस प्रकार कविता में भी खड़ीबोली का समावेश हुआ। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भक्तिकाल और रीतिकालीन परम्परा के स्थान पर संस्कृत साहित्य को महत्त्व दिया। 'सरस्वती' पत्रिका ने हिन्दी-विकास को गति दी। द्विवेदीजी भाषा का परिष्कार कर रहे थे। 'गद्य और पद्य का पदविन्यास एक ही होना चाहिए', इस सिद्धान्त का प्रतिपादन उन्होंने किया। द्विवेदी युग का काव्य निर्माण आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी की साधना का परिणाम है। उन्हीं की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त का विकास हुआ। गुप्तजी का काव्य क्षेत्र साधारण भारतीय जीवन का प्रतिरूप बनकर आया। 'साकेत' में कवि ने कृषक, श्रमजीवी, युद्ध प्रथा, सत्याग्रह, विश्वबन्धुत्व आदि अनेक विषयों पर विचार किया है। नारी भावना के महत्त्व को ऊँचा उठाने के लिए काव्य की उपेक्षिता उर्मिला को उन्होंने प्रधान पद प्रदान किया। इसके अतिरिक्त वे प्राचीनता के पुजारी होते हुए भी नवीनता के समर्थक है। 'भारत भारती' का संदेश 'जग जाय तेरी नोक से, सोये हुए हो भाव जो' राष्ट्रीयता का स्वरूप प्रस्तुत करता है। प्रबन्ध और मुक्तक परम्परा के अतिरिक्त उन्होंने गीतों की भी रचना की। गुप्तजी राष्ट्रीय प्रतिनिधि कवि के रूप में साहित्य में आये। हरिऔधजी ने प्राचीन आदर्शों और आख्यानों के सहारे काव्य-रचना की। उनके 'प्रियप्रवास' की राधा लोकहितैषिणी और मर्यादामयी नारी है। कृष्ण सक्रिय

लोक नेता हैं और यशोदा स्वयं भारत माता की प्रतीक-सी हैं। राधा-कृष्ण के चित्रण में उनका देवत्व पीछे छूट जाता है। राधा-सेवा करने में तत्पर हो जाती हैं और कृष्ण मंगल करने की दृष्टि से राजनीतिज्ञ हो जाते हैं। "इस काव्य-ग्रन्थ में विश्वप्रेम, लोक सेवा, बौद्धिक व्याख्या, उन्नयन, नेतृत्व, संघटन, लोकरक्षा, त्याग, कर्तव्य की महत्ता, देवत्व का त्याग आदि कई नवीन तत्व सामने आते हैं।" यहाँ राधा कृष्ण और राम-सीता-लक्ष्मण रूप में भारतीयों के लिए आदर्श नेता का अंकन किया गया।

मैथिलीशरण गुप्त और हरिऔध का काव्य-क्षेत्र विस्तृत था। गुप्तजी ने राम, मानव, कृषक, नारी सभी के चित्र प्रस्तुत किये। हरिऔध ने यदि एक ओर 'प्रियप्रवास' काव्य की रचना की, तो दूसरी ओर चुभते और चोखे चौपदों द्वारा नीति की बातें कही। कबीर की साखियों का अधिक साहित्यिक संस्करण सम्मुख आया। इन दोनों के अतिरिक्त अन्य भी कवि देश और जाति का स्वर अलाप रहे थे। पं. रामचरित उपाध्याय ने 'राष्ट्र-भारती', 'भारत-भक्ति' आदि काव्य-ग्रन्थों के द्वारा अपनी राष्ट्रीय भावना का प्रकाशन किया। लोचनप्रसाद पाण्डेय ने सरल भाषा में मानव और प्रकृति के तादात्म्य पर प्रकाश डाला। इन सभी पर द्विवेदीजी का प्रभाव किसी-न-किसी रूप में देखा जा सकता है।

खड़ीबोली की द्विवेदी-परम्परा के अतिरिक्त एक दूसरी काव्यधारा भी चली जा रही थी। कुछ कवि तो अब भी ब्रजभाषा को माध्यम बनाये हुए थे और उनमें प्रायः कुछ व्यक्तिगत विशेषताएँ मिल जाती हैं। ब्रजभाषा के कवि शृंगार, भक्ति और वीरता की प्राचीन परिपाटी पर कार्य कर रहे थे। खड़ीबोली के कवि द्विवेदी-परम्परा से अपना पृथक् अस्तित्व रखते हुए नवीनता की ओर उन्मुख थे। राय देवीप्रसाद पूर्ण ने ब्रजभाषा की काव्य परम्परा का निर्वाह किया पर उनमें देशभक्ति की भावना है। 'वसंत-वियोग' में उन्होंने भारतभूमि का चित्रण एक विस्तृत उद्यान के रूप में किया। नाथूराम 'शंकर' शर्मा की समस्यापूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं। आर्यसमाज से सम्बन्ध रखने के कारण देश के सामाजिक पतन पर उन्होंने क्षोभ प्रकट किया। इन्हीं के साथ सनेहीजी ने भी देश-भक्तिपूर्ण रचनाएँ की। सत्यनारायण कविरत्न ने एक बार पुनः सूर के माधुर्य की याद दिला दी। इन कवियों ने यद्यपि ब्रजभाषा में रचना की, किन्तु खड़ीबोली के विकास के कारण कभी-कभी उसका भी अवलम्ब लिया। शृंगार-भावना के साथ वे देश-समाज को भी साथ लेकर चलते थे। खड़ीबोली का स्वतंत्र आभास श्रीधर पाठक में पूर्व ही मिल चुका था। उन्होंने काव्य में स्वच्छन्दता का आभास दिया था, उसी का स्वर श्री रामनरेश त्रिपाठी में दिखाई दिया : 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' खंडकाव्यों में

नयी चेतना और स्वच्छन्दतावाद

अंग्रेजी-साहित्य मे स्वच्छन्दतावादी कवियो ने गीतिकाव्य का एक नवीन द्वार खोला था। अनुभूति का सत्य और तीव्रता को कविता का प्राण मानकर अल्प आयु म ही विदा ले लेनेवाले कीट्स, शेली और बायरन का स्वर अपनी उद्दाम भावना के लिए प्रसिद्ध है। प्रेम और सौन्दर्य मे जीवन को बाँधनेवाले इन कवियों की वाणी में यौवन-आवेग के साथ ही विद्रोह-भाव भी झलक रहा है। जीवन और कविता दोनो में समान रूप से विद्रोह करनेवाले ये कवि पूर्ण स्वच्छन्दतावादी थे। आगे आनेवाली गीतकाव्य परम्परा उनकी स्वर लहरी से प्रभावित है। विक्टोरिया-युग के कवियो ने एक बार पुन. विस्तृत क्षत्र पर कार्य करने का प्रयत्न किया। उसम भावना क साथ आदर्शवादिता, सामाजिक प्रतिक्रिया उपस्थित है। स्वच्छन्दतावाद के प्रेम सौन्दर्य और यौवन की एक धूमिल रेखा भी काव्य में दिखाई देती है, किन्तु तन्मयता, प्रवाह और विद्रोह पीछे छूट जाते ह। टेनिसन के काव्य मे उसकी आत्मा और उसकी भावना प्रतिबिम्बित होती है। 'स्वच्छन्दतावाद का उत्तराधिकारी होने के नाते उसने प्राचीनता की प्रमुख विशेषताओं के द्वारा उसे सुधार के साथ प्रस्तुत किया।'[9] राबर्ट ब्राउनिग कविता म अपने चिन्तन को लेकर आया। उसकी पत्नी ने भी उसी के स्वर में स्वर मिलाकर गायन आरम्भ किया। परिस्थितियो क कारण ब्राउनिग के काव्य म एक गतिशीलता भी दिखाई देती है और उसमे एक पौरुष झलकता है। विक्टोरिया युग क स्विनबर्न, रोजेटी, फिट्जरल्ड मैथ्यू आर्नाल्ड आदि कवियो में अपनी व्यक्तिगत विशेषताए है। स्वच्छन्दतावादी युग की भांति यद्यपि इन कलाकारो मे एक ही भावधारा नही मिलती किन्तु उनम किसी न किसी रूप मे स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव है। विक्टोरिया युग की इस प्रमुख धारा क अतिरिक्त कतिपय अन्य कवि भी मिलते है। मरीडिथ हार्डी लुई स्टीवन्सन, रुडियर्ड किपलिंग आदि न भी कविता की इस धारा के अन्तर्गत रचना की। यदि स्वच्छन्दतावाद ने काव्य-परम्परा को विद्रोह सिखाया तो विक्टोरिया काल न प्राचीन और नवीन का मिलन प्रस्तुत किया। इसी के साथ काव्य में रहस्य भावना को अवसर मिला। इस दृष्टि स अंग्रेजी काव्य की यह परम्परा महत्त्वपूर्ण है कि उसम समन्वय-दृष्टि मिलती है और उसमे अनेक रूप है। इसी क प्रभावस्वरूप यथार्थवाद का युग आया। विक्टोरिया-युग की बौद्धिक प्रवृत्तियों ने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ होते ही काव्य मे यथार्थवाद को प्रमुखता प्रदान की। परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियों ने काव्य को एक नवीन स्वरूप ग्रहण करने के लिए विवश किया।

19वी शती क अन्त मे साहित्य और समाज के निकट आने से कविता के स्थान पर गद्य को पुनः प्रमुखता मिलने लगी थी। इस समय दो प्रकार के लेखक इस नवीन परम्परा में कार्य कर रहे थे। एक तो वे, जो यथार्थवादी दृष्टिकोण रखते थे

और दूसरे वे जिनमें कुछ स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ थीं और जो आदर्श की ओर अधिक झुके हुए थे। कविता के क्षेत्र में अधिक समय तक कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व नहीं दिखाई देता। शेली, कीट्स और बायरन की स्वच्छन्दतावादी परम्परा पर चलने के लिए कवि को सामाजिक स्थिति का सहयोग प्राप्त न था। इस कारण उसने रहस्य भावना के आधार पर एक विशद् चित्रण खड़ा करने का प्रयास किया और यहाँ मानव की मूल वृत्तियों को अपनाया गया। फ्रांसिस थाम्पसन ने इसके लिए प्रकृति का भी अवलम्ब ग्रहण किया। 'सूर्यास्त', 'स्वर्ग का अहेरी' आदि उसकी इसी प्रकार की कविताएँ हैं। उसने एक स्वर्गिक प्रेम की प्राचीन कल्पना कर ली। आधुनिक युग का श्रेष्ठ कवि डब्लू० बी० यीट्स माना जाता है। उसने स्पष्ट कह दिया था कि 'मैं कविता के साम्राज्य में शान्ति के स्वर को पूर्ण शक्ति से ऊँचा रखूँगा। बिना शान्ति के आनन्द असम्भव है। युद्ध जीवन के बदले मृत्यु ही तो देता है।' उसने रहस्यमय सौन्दर्य की उपासना की। उसकी कविता में एक ओर यदि अपने देश आयरलैण्ड के लिए अपार प्रेम है तो दूसरी ओर मानवता के लिए शान्ति की कामना। इसी के साथ वह और भी ऊपर उठने का प्रयास कर रहा था। 'गीतांजलि' की भूमिका में उसने लिखा कि 'उसमें एक ऐसी परम्परा है जहाँ काव्य और धर्म एकाकार हो जाते हैं। शताब्दियों तक बौद्धिक, नैसर्गिक कल्पना और भावना उसमें प्रवेश कर अन्त में प्रतिभाशाली व्यक्ति के द्वारा असंख्य विचारों में प्रस्फुटित हो उठती है।' इस प्रकार अंग्रेजी काव्य की नवीनतम प्रवृत्तियों में दार्शनीकरण, चिन्तनपरकता के लक्षण दिखाई देते हैं और इस दृष्टि से वह स्वच्छन्दतावाद को उच्च भूमि पर ले जाने में प्रयत्नशील है।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के साथ ही भारत में नवीन चेतना की शक्तियाँ प्रसार पा रही थीं। राजनीतिक क्षेत्र में बंगाल के विभाजन से एक नवीन चेतना आ रही थी। यह राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रस्तावना का समय था। महात्मा गांधी ने देश का नेतृत्व अपने हाथों में ले लिया था। उन्होंने असहयोग आन्दोलन के द्वारा जनता को एक नवीन शक्ति दी थी। सन् 1911 ई० में सम्राट् जार्ज पंचम के आगमन से जनता में जो राजभक्ति की भावना आई थी, राष्ट्रीयता ने उसे शीघ्र समाप्त कर दिया। 1912 ई० में ही लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका गया। इसी के साथ देश में विप्लव की अग्नि सुलग उठी थी। हरदयाल, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि क्रान्तिकारी सशस्त्र क्रान्ति के लिए प्रयत्नशील थे। एक ओर गांधी के सत्य, अहिंसा, असहयोग, सत्याग्रह देश को शक्ति प्रदान कर रहे थे तो दूसरी ओर क्रान्तिकारियों का यह साहसी दल जीवन देकर भी स्वतन्त्रता पा लेने में प्रयत्नशील था। एक महान् व्यक्तित्व ने समस्त देश को अपने पीछे कर लिया। नेहरू के शब्दों में, 'गांधीजी ने भारत की कोटि-कोटि जनता ने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया।' राष्ट्रीय आन्दोलन के दीर्घकाल में गांधी ने सत्य, शान्ति और आध्यात्मिकता से लक्ष्यप्राप्ति का प्रयास किया। साथ ही

उन्होने जातीय भेद-भाव को समाप्त करने की चेष्टा की। 'अब दोनो जातियों के नेता बस इसी एकता की रट लगाये हुए थे। यह भ्रातृभाव का एक अद्भुत दृश्य था।"[10] राजनीतिक दृष्टि से यह गांधी युग था। इसी सत्य अहिंसा के द्वारा वे विश्वबन्धुत्व तक जा सके। अन्तर्राष्ट्रीय दशा ने भी भारतीय आन्दोलन का साथ दिया। यूरोप के नवमानवतावाद ने उसे प्रभावित किया। सामाजिक क्षेत्र मे गांधी का पूर्ण प्रभाव पड रहा था और रचना पर भी उनके व्यक्तित्व की छाया देखी जा सकती है।

इस राजनीतिक और सामाजिक उत्तेजना मे साहित्य की गतिविधि भी बदल रही थी। बगाल मे बकिम अपने क्रान्ति गीत गा रहे थे और रवीन्द्र भी प्रकाश मे आ गये थे। उनमे एक साथ भारतीय परम्परा, सस्कृति, राष्ट्रीयता और मानवीयता का सगम था। उनके गीतो मे स्वच्छन्दतावाद की गीतात्मकता, कवि की तन्मयता, भारतीय दर्शन, मानवीयता, रहस्य भावना आदि एक साथ समाविष्ट हो गये थे। 'गीताजलि' पर नोबल पुरस्कार मिलते ही जनता ने एक स्वर से उनका गान किया था। स्वय 1918 ई मे इन्दौर मे गांधीजी को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रधान बनाकर साहित्यिकों ने साहित्य का एक विस्तृत रगमच पर लाकर खडा किया था। हिन्दी कविता के क्षेत्र मे द्विवेदी युग के व्यक्ति कार्य कर रहे थे। इस सघर्ष की भावना से ऊपर उठा हुआ प्रकृति के नैसर्गिक स्वरूप मे सम्पन्न अंग्रेजी कवियो का स्वच्छन्दतावाद एक नवीन प्रेरणा दे रहा था। कवि भारतीय दर्शन और अतीत की ओर जा रहे थे। इसमे आर्यसमाज तथा स्वामी रामकृष्ण प्रेरणा दे रहे थे। भारतीय अद्वैतवाद तथा पाश्चात्य मानवतावाद के द्वारा कवि शाश्वत भावना को काव्य का आधार बनाने मे प्रयत्नशील था। एक ओर भारतीय दर्शन को नवीन प्रकाश मे देखने का प्रयास चल रहा था, तो दूसरी ओर नई चिन्तन प्रणालियो पर भी विचार हुआ। स्वच्छन्दतावाद रवीन्द्र मे स्थान पा चुका था। मार्क्स की समानवादी प्रवृत्तियाँ भी सक्रिय थी और सामाजिक चेतना की चर्चा की जाने लगी थी। कोमल भावनाओ के समावेश के साथ नारी के प्रति एक आदर भावना चल निकली थी। इस प्रकार साहित्य को एक नवीन व्यापक क्षेत्र प्राप्त हो रहा था। रवीन्द्र के रूप मे भारत को एक महान् व्यक्तित्व प्राप्त हुआ था। भारतीय दर्शन के विस्तृत अध्ययन से उन्होने अपने काव्य को शक्ति प्रदान की। वैष्णव कवियो से उन्हे तन्मयता मिली। कालिदास ने सौन्दर्य और प्रेम की प्रेरणा दी। इस प्रकार कवि ने भारतीय परम्परा के आधार पर अपने सार्वभौमिक काव्य की रचना की।

जयशंकर प्रसाद का प्रवेश

ऐसी थी साहित्य और समाज की स्थिति, जब प्रसाद ने प्रवेश किया। कविता, नाटक, उपन्यास और कहानी सभी क्षेत्रो मे अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से कार्य करनेवाले

इस महान् रचनाकार ने अपने समय की सास्कृतिक चेतना का नया सस्करण साहित्य मे प्रस्तुत किया है। उनके साहित्य मे वे अनुभूतियॉ मिलती है जिनका सम्बन्ध परम्परा और पूर्वपीठिका से भी है। द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के विरोध मे जो छायावाद उठा था, उसका विकास कवि प्रसाद मे स्पष्ट है। भावना की दृष्टि से कवि मे अनुभूति की सच्चाई है, भावो की गहनता। उसका काव्य एक ऐसे आधार पर निर्मित है, जहॉ कवि एक स्वतन्त्र पक्षी की भॉति गा सकता है। कवि का राष्ट्रीय प्रेम अतीत के प्रति अनुराग और सास्कृतिक राग के रूप मे प्रस्फुटित हुआ है। आदिपुरुष मनु, बुद्ध, प्रणय आदि उनके काव्य के विषय है। किन्तु इस कथानक के अतिरिक्त प्रसाद ने उस सास्कृतिक परम्परा से प्रेरणा ग्रहण की, जिस पर भारतीय साहित्य आधारित है। अभिनवगुप्त के सौन्दर्यवाद की व्याख्या करते हुए उन्होने रहस्यवाद को पूर्णतया भारतीय प्रमाणित किया। छायावाद के विषय मे उनका मत एक एसे धरातल पर है जिसे व्यर्थ की वस्तु कहकर टालना सम्भव नही। 'हमारी जन्मभूमि थी यही कही स हम आये थे नही' क द्वारा एक बार पुन आर्यजाति क गौरवपूर्ण सगीत को प्रस्तुत किया। इस भावना का पूर्ण विकास कवि के नाटको म हुआ। भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग को लकर कवि न अपनी कल्पना क द्वारा उसम नया जीवन भरा।

कालिदास, रवीन्द्र की परम्परा म प्रसाद ने एक नवीन चरण रक्खा। भारतीय दर्शन का अध्ययन करनवाल इस कलाकार न 'कामायनी' म उसका काव्यात्मक सस्करण प्रस्तुत किया। उपनिषदो का अद्वैतवाद, बोद्धो की करुणा, शैवदर्शन की प्रत्यभिज्ञा एक साथ उनके काव्य मे प्रस्फुटित हो उठे। 'ऑसू' के विरह वर्णन मे एक आर यदि स्वच्छन्दतावादी कवियो की-सी आत्मकथा है तो दूसरी ओर सूफियो के तन्मय प्रम की भी अभिव्यजना। 'झरना' के गीतो मे यदि मानव और प्रकृति की भावनाओ का सम्मिलन है तो 'लहर' म अपूर्व तन्मयता। भावना क क्षत्र में प्रम और यौवन क गायक कवि प्रसाद न सुन्दर शब्दो म मानवीय भावनाओ के साथ ही सास्कृतिक चेतना को अकित किया। 'कामायनी' म एक साथ युग और हिन्दी की आधुनिक परम्परा साकार हो उठी है। गाधी युग की इस कृति म कवि ने श्रद्धा स तकली भी कतवा दी है। राजनीति क क्षेत्र म सारस्वत प्रदेश का समस्त नियमन दिखाया गया है। प्राचीनतम कथानक पर लिखा गया यह काव्य मानवता के नवीनतम रूप को प्रस्तुत करता ह और भविष्य के लिए मगलमय सदेश दता है। एक ओर यदि सारस्वत प्रदश का सकतात्मक राजनीतिक चित्रण है, तो दूसरी ओर मानव क अन्तरतम म उठनेवाली सूक्ष्मतम अनुभूतियो का अकन। राष्ट्रीय रगमच पर कवि प्रसाद न एक शाश्वत सत्य को अकित किया है। काव्य के सीमित क्षेत्र मे, एक साथ इतनी भावनाओ का समाहार कवि की महानता का परिचायक है। भाषा के क्षेत्र मे प्रसाद न उस लालित्य और माधुर्य प्रदान किया। इलियट की क्लासिक की परिभाषा के अनुसार खड़ीबोली का सर्वोत्तम स्वरूप उनमे मिलता है। प्राचीन-अर्वाचीन,

आदर्श-यथार्थ, श्रय-प्रेय का समन्वय कवि ने अपने काव्य म प्रस्तुत किया। इस प्रकार प्रमाद के काव्य म परम्परा ओर सस्कृति निहित है ओर उनक भाव, भाषा, शैली मे मौलिकता है।

प्रमाद अपनी व्यक्तिगत विशेषताओ के होते हुए भी छायावाद-युग के कवि है। छायावाद हिन्दी साहित्य मे एक विद्रोह के रूप मे सम्मुख आया था। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता का स्थान कोमलकान्त पदावली और सूक्ष्म अकन का मिला। खडीबोली का सुन्दरतम स्वरूप इस काल मे प्रस्तुत हुआ। 'पल्लव' के पन्त के शब्दो मे 'उसने तुतलाना छोड दिया, वह अब पिय को प्रिय कहने लगी।' कोरी बौद्धिकता के स्थान पर दर्शन अपने सरस रूप मे प्रस्तुत हुआ। अभी तक देवत्व मे मानवीय भावनाओ को भरने का प्रयास किया जाता था। छायावादी कलाकार ने मानव को उसकी मानवीयता म ईश्वर से महान् माना। जातीयता और राष्ट्रीयता के बन्धनो म द्विवेदी युग का काव्य अभी तक शाश्वत चेतना का खुली अभिव्यक्ति न दे सका था। अब कवि न दार्शनिक भूमि पर खडे होकर चिरन्तन सत्य का अकन आरम्भ किया। इसक अतिरिक्त प्रकृति जीवन मानव का साहित्य क साथ तादात्म्य स्थापित करने का यह एक सफल प्रयत्न था। एक बार हिन्दी म भी कालिदास, शेक्सपियर, गटे की परम्परा विकसित हुई। निराला के क्रान्तिकारी रूप ने छन्दबन्ध की कारा तोडी। पन्त के आरम्भिक काव्य ने प्रकृति और मानव को एक हा व्यापक रगमच पर लाकर मिला दिया। इस प्रकार प्रसाद, निराला, पन्त नवीन स्वर के कवि हैं। इनम एक व्यापक मानवीय भावना, शाश्वत चतना के साथ ही समाज, देश और काल का स्वर है। आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध दर्शन के कारण इतना बढ गया कि काव्य म रहस्यवाद का प्रवेश होने लगा। महादेवी के गीतो मे उसका सुन्दर प्रतिपादन हुआ। प्रतीकों का आश्रय भी इन कवियो को ग्रहण करना पडा। इस समय प्रेम का जो स्वर आरम्भ हुआ, वह लौकिक स्वरूप मे लेकर मानवता और ब्रह्म तक चला गया। व्यक्तिवाद का स्वरूप काव्य मे आकर प्रस्फुटित हुआ और रचना तथा राजनीति के क्षेत्र अलग दिखाई दिये। स्वय प्रमाद ने उपन्यासो म सामयिक विषयो पर विचार किया और काव्य को सूक्ष्म चित्रण के लिए रक्खा गया।

कवि प्रमाद न परम्परा का अनुकरण न करते हुए भी उसमे योगदान दिया। उन्होने स्वय प्राचीन का एक नवीन सस्करण प्रस्तुत किया। 'कामायनी' विश्व काव्य म एक नया चरण है। 'आँसू' विरह काव्यो मे 'मेघदूत' के समीप रक्खा जा सकता है। दीर्घ काव्य-परम्परा के होते हुए भी जिस समय कवि ने पदार्पण किया, उसके सम्मुख एक विचित्र समस्या थी। उसने महान् कलाकारो की भाँति अपने नवीन पथ का निर्माण किया। प्रमाद प्राचीन परिपाटी और स्वच्छन्दतावाद के सगम रूप मे हिन्दी म प्रतिष्ठित हे। युग के कवि रूप मे उन्होने आसपास बिखरी हुई सामग्री का उपयोग किया। छायावाद की विभूति उनके काव्य मे प्रस्फुटित हुई है। हिन्दी की चली आती

हुई काव्य-परम्परा को उन्होंने आगे बढ़ाया है। आचार्य वाजपेयी के शब्दो मे "उतनी क्षमता का कोई दूसरा कलाकार हिन्दी-साहित्य के इस युग मे दिखाई नही देता। इस प्रकार वे युग के प्रवर्तक ही नही, उसकी सर्वश्रेष्ठ विभूति भी सिद्ध होते है।"

यह ध्यान रखना होगा कि प्रसादजी के साहित्य की परम्परा मूलतः भारतीय है। उन्होंने उपनिषद् दर्शन मे अपने रहस्यवाद की प्रेरणा ली थी। इसके अतिरिक्त धीरे-धीरे उनके काव्य मे परिष्कार होता गया है। भारत की गतिशील सामाजिक परिस्थितिया ने उन्हे प्रभावित किया। 'प्रेम-पथिक' का सीमित क्षेत्र 'कामायनी' तक आते आते सार्वभौमिक रूप ग्रहण करता है। प्रसाद के यौवनकाल की राष्ट्रीयता अन्तिम समय तक प्रखर रूप धारण कर चुकी थी। भारतीय नेताओ के सम्मुख स्वतन्त्रता ही एकमात्र लक्ष्य नही रह गया था, वे ससार मे भारत को एक उन्नत राष्ट्र के रूप मे देखने को इच्छुक थे। वे राष्ट्रीय के स्थान पर सार्वभौमिक दृष्टिकोण से विचार करने लगे थे। गाधी के सत्य, अहिसा एक जीवन-दर्शन के रूप मे स्वीकार किये जा चुके थे। साहित्यिक क्षेत्र मे भी 'कला कला के लिए' और 'कला जीवन के लिए' का सघर्ष कम हो चुका था। इस प्रकार समय की गतिविधि के साथ कवि की रचनाओ मे भी विकास होता गया और उनके विकासमान व्यक्तित्व को सहज ही देखा, पहचाना जा सकता है।

संदर्भ

1 डॉ. [illegible] कामायनी, पृ 8
2 पी. ई. रावर्ट्स : हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया, पृ 387
3 पी. सीतारमैया : द हिस्ट्री आफ द कांग्रेस, प्रथम खण्ड, पृ 25
4 रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 512
5 जवाहरलाल नेहरू : डिस्कवरी आफ इंडिया, पृ 405
6 एच. जी. वेल्स : ए शार्ट हिस्ट्री आफ द वर्ल्ड, पृ 281
7 अर्नेस्ट हैकल : द रिडिल आफ द यूनिवर्स, पृ 2
8 कजामियाँ : ए हिस्ट्री आफ इंगलिश लिटरेचर, पृ 1161
9 वही, पृ 1163
10 पी. सीतारमैया : कांग्रेस का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ 131

प्रमाद का व्यक्तित्व

भारतीय दर्शन ऋषि और कवि में निकट साम्य स्थापित करता है। ऋग्वेद के अनुसार वह दिव्य रूपों का निर्माता है। ग्रीक शब्द 'पायइटेम' में उत्पन्न 'पायट' शब्द का अर्थ है—शिल्पी, संगीतमय विचारों का निर्माता। कवि-कर्म जीवन की एक महान साधना है और कारलायल का कथन है कि "दार्शनिक इस रहस्य का उद्घाटनकर्ता होता है कि हम क्या करें, कवि हमें बताता है कि हम किससे प्रेम करें।" कवि अपनी कृतियों से आदर्श प्रस्तुत करता है। वह संसार में जो कुछ अनुभव करता है, उसकी उस पर एक प्रतिक्रिया होती है और उसे वह भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है। इस प्रकार वह विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति है। आवहयात के अनुसार 'शायर वही है जिसमें असर पैदा करनेवाली सिफत खुदादाद हो, जिसमें जो कैफियत वह आप उठाता है, वही कैफियत सुननेवालों के दिल पर छा जाय और असर कर जाय।' वेदों से लेकर आधुनिक युग की परिभाषा तक में कवि को असाधारण कृतिकार के रूप में स्वीकार किया गया है। अनुभूति उसकी शक्ति है जिसके अभाव में वह एक चरण भी नहीं चल सकता। इसी कारण वर्ड्सवर्थ ने काव्य को भावनारूप में ही स्वीकार करता है।

कवि जीवन का व्याख्याकार है जो संसार से प्रेरणा ग्रहण करता है। आन्तरिक-बाह्य दोनों पक्षों पर उसका ध्यान रहता है और वह उन्हें साथ लेकर चलता है। आन्तरिक अनुभूति में कवि की व्यक्तिगत भावना का अधिक सम्बन्ध होता है। पर दूसरों की भावनाओं को वह अपने निकट ले आता है। प्रकृति के अन्तस्तल में जाकर उसके मौन स्वरूप से चेतना ग्रहण करने की शक्ति कवि को सहज सुलभ होती है। उसका क्षेत्र व्यापक होता है और वह असूर्यम्पश्या तक पहुँचता है क्योंकि उसकी कल्पना तीव्र होती है। बाह्य पक्ष से समाज तथा [illegible] का अधिक सम्बन्ध रहता है, किन्तु अन्तर्मुखी होते हुए भी कवि समाज की अवहेलना नहीं कर पाता। देश काल का स्वर उसके रचना-जगत में स्थान पाता है। वह अपने युग का प्रतिबिम्ब होता है। वास्तव में अन्तर् और बाह्य पक्ष का सर्वांग, सम्पूर्ण भावात्मक प्रकाशन ही सुन्दर काव्य की परिभाषा कही जा सकती है। कवि का जीवन उसकी कृतियों में परोक्ष

रूप से झाँकता है। जो कार्य साधारण व्यक्ति व्याख्या से करता है, उसे वह संकेत-मात्र से करना चाहता है। वह जिस ससार से अनुप्राणित होता है, उसकी व्याख्या भी अपने आदर्शो के अनुसार करता है। प्राचीन युग का ऋषि कवि तथा आज का स्वच्छन्दतावादी कलाकार, दोनो ही अनुभूति और कल्पना से अपनी कृति का निर्माण करते हैं। विश्व के महान् कवियो के काव्य मे उनके समय और जीवन की छाया भी परोक्ष रूप से प्राप्त होती है।

काव्य के पूर्ण आस्वादन के लिए कवि की सामाजिक तथा व्यक्तिगत स्थिति से परिचित होना आवश्यक है। किस परिस्थिति मे, किन मनोदशाओं से विवश होकर कवि का प्रकृत सगीत प्रवाहित हुआ होगा, यह ज्ञात हो जाने पर काव्य की आत्मा तक पहुँचा जा सकता है। करुणा से द्रवित वाल्मीकि के 'मा निषाद ...' की अन्तरात्मा तक जाने के लिए क्रौचवध की कथा जाननी होगी। ससार के विशिष्ट कवियों की जीवनानुभूति उनके काव्य मे मुखरित हुई। गेटे के जीवन का सम्पूर्ण सघर्ष फाउस्ट का चरित्र बनकर आया।[1] होलब्रुक जैकसन ने अपनी पुस्तक 'पाठक तथा आलोचक' में कहा है कि 'आलोचक अथवा पाठक किसी कृति का पूर्ण आनन्द तभी ले सकते हैं जब उस कवि की अनुभूति अथवा काव्य में उसकी छाया का आभास प्राप्त हो सके।' प्रसाद के युग के साथ उनके जीवन और व्यक्तित्व का अध्ययन कृतित्व को समझने में हमारी सहायता करता है।

पारिवारिक परिवेश

कवि प्रसाद के पितामह शिवरतन साहु काशी के प्रतिष्ठित नागरिक थे। वे तम्बाकू के नामी व्यापारी थे और एक विशेष प्रकार की सुरती बनाने के कारण 'सुघनीसाहु' के नाम से विख्यात हुए। धन धान्य से परिवार भरा पूरा रहता था। कोई भी धार्मिक अथवा विद्वान् काशी में आता तो साहुजी उसका बडा स्वागत करते। काशी की जनता उनकी दानशीलता से लाभान्वित हो रही थी। उनके यहाँ प्रायः कवियो, गायको, कलाकारों की गोष्ठी होती रहती। वे इतने अधिक उदार थे कि मार्ग में बैठे हुए भिखारी को अपने वस्त्र उतारकर दे देना साधारण सी बात थी। लोग उन्हें 'महादेव' कहकर प्रणाम करते थे। कवि के पिता देवीप्रसाद साहु ने पितामह का-सा हृदय पाया था।

ऐसे वैभवपूर्ण और सम्पन्न वातावरण मे प्रसाद का जन्म माघ शुक्ल दशमी, 1946 वि. (1889 ई.) को हुआ। उस समय व्यापार अपने चरमोत्कर्ष पर था, किसी प्रकार की कोई कमी न थी। तीसरे वर्ष में केदारेश्वर के मन्दिर में प्रसाद का सर्वप्रथम क्षौर संस्कार हुआ। उनके माता-पिता तथा समस्त परिवार ने पुत्र के लिए इष्टदेव शकर से प्रार्थना की थी। वैद्यनाथधाम के झारखण्ड से लेकर उज्जयिनी के महाकाल तक के ज्योतिर्लिंगो की आराधना के फलस्वरूप पुत्ररत्न का जन्म हुआ था। इस

दैवी कृपा का स्मरण रखने के लिए शैशव मे उन्हे 'झारखण्डी' कहकर पुकारा जाता था। कुछ समय अनन्तर वे वैद्यनाथधाम ले जाये गये, जहाँ इनका नामकरण सस्कार हुआ। कवि के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना पर प्रकाश डालते हुए उनके मित्र डा. राजेन्द्र नारायण शर्मा लिखते है, "अन्नप्राशन सस्कार के बाद उसी पूजा विधि मे पुस्तक, बही, मसिपात्र, लेखनी, तथा बच्चे के मन को लुभानेवाली बहुत सी सप्तरगी वस्तुओ तथा खेलने के योग्य लाल-पीली पदार्थावलियो के बीच शिशु प्रसाद का अपने मन की चीज चुन लेने के लिए छोड दिया गया। लोगो के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब सब कुछ छोड प्रसादजी ने केवल लेखनी उठा ली और उसी मे खेलना वरण किया।"[2] शिव के प्रसादस्वरूप इस महान् कवि का जन्म हुआ था। जीवन के प्रथम चरण मे ही अपने पाणि-पल्लवो मे लेखनी उठा लेना उसके आगामी विकास का परिचायक है। आज उसकी सार्थकता मे किसे सन्देह हो सकता है। पॉच वर्ष की अवस्था मे सस्कार सम्पन्न कराने के लिए प्रसाद को जौनपुर तथा विन्ध्याचल ले जाया गया। वहाँ की प्रकृति के उन्मुक्त सौन्दर्य न कवि की शैशवकालीन स्मृतियो पर अपनी छाया डाली। सुन्दर पर्वत श्रेणियाँ, बहते हुए निर्झर, प्रकृति का नव-नव रूप, सभी ने उनके हृदय म कुतूहल और जिज्ञासा भर दी। 'अहरौरा के आसपास की पहाडियो मे, उनकी सन्धि मे सवेग भागती हुई जल की छोटी छोटी धाराओ ने, उनके कल-कल, छल छल सगीत ने हृदय मे शीतल अनुभूति की उन्मेष क्रीडा को जन्म दिया।' 'चित्राधार' की रचनाओ मे पकृति का स्वरूप अकित है और 'झरना' के सजीव चित्र की प्रेरणा कवि को शैशव काल मे प्राप्त हुई। प्रकृति का प्रथम दर्शन आगे चलकर मानवीय भावनाओ के तादात्म्य से एक स्वस्थ जीवन दर्शन मे परिवर्तित हुआ, जहाँ प्रकृति और मानव मे अधिक अन्तर नही रह जाता। पाँचवे वर्ष मे कवि ने दो छोटी छोटी यात्राएँ की, जिनका सम्बन्ध उनके सस्कारो से है। जोनपुर मे शीतला का एक सिद्धपीठ है, वहाँ वे ले जाये गये। उसी के साथ वे विन्ध्याचल भी गये, जिसका सौन्दर्य भुलाया न जा सका।

नौ वर्ष की अवस्था मे प्रसाद ने एक लम्बी यात्रा की और चित्रकूट, नैमिषारण्य, मथुरा, ओकारेश्वर, धाराक्षेत्र, उज्जैन तक का पर्यटन किया। इस अवसर पर परिवार के अधिकाश व्यक्ति भी साथ थे। चित्रकूट की पार्वतीय शोभा, नैमिषारण्य का निर्जन वन, मथुरा की कालिन्दी तथा अन्य क्षेत्रो के मनोरम दृश्यो पर वे रीझ उठे होंगे। इसी समय उन्होने 'कलाधर' उपनाम से अपनी सर्वप्रथम कविता रचकर अपने गुरु 'रसमयसिद्ध' को दिखायी थी :

> हारे सुरेस रमेस धनेस, गनेसहुँ सेस न पावत पारे
> पारे है कोटिक पातकी पुज, 'कलाधर' ताहि छिनो बिच तारे
> तारेन की गिनती सम नाहि सुवेते तरे प्रभु पापी विचारे
> चारे चले न विरचहि के, जो दयालु ह्वै संकर नेक निहारे

कवि के विशाल भवन के सम्मुख एक शिवालय है जिसे उनके पूर्वजो ने बनवाया था, जो शैव थे। अनेक अवसरो पर मन्दिर मे उत्सव हुआ करते थे और बालक प्रसाद भी भक्तो की भगवद्भक्ति देखते रहते थे। वातावरण को मुखरित करनेवाली घटे की ध्वनि उनके लिए उस समय जिज्ञासा, कुतूहल का विषय रही होगी। मन्दिर के पास ही एक शैवध्वजजी भी साक्षात् शिव का रूप बनाकर रहते थे। प्रसाद ने एक स्थान पर लिखा है "युवक यह जानकर कि राजकीय शिवालय मे प्राभातिक पूजन हो रहा है, उसी ओर चला। शिवालय के सुविस्तृत प्रांगण मे मनोहर मन्दिर मध्यवर्ती मूर्ति को प्रणाम कर युवक भी आनन्द से अपनी वीणा वजाकर गाने लगा।"

हे शिव धन्य तुम्हारी माया
जेहि बस भूलि भ्रमत है सब ही, सुर अरु असुर निकाया।

—चित्राधार : 'बभ्रुवाहन', पृ 29

जीवन के आरम्भ मे शिव की भक्ति करनेवाला कवि आगे चलकर शैव दर्शन मे प्रभावित हुआ।

आरम्भ म ही प्रसाद की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। पिता ने घर पर संस्कृत, हिन्दी, अग्रेजी, फारसी आदि भाषाओ के पढ़ाने की व्यवस्था कर दी। कवि की प्रारम्भिक शिक्षा प्राचीन परिपाटी के अनुसार हुई। घर पर उन्हे कई अध्यापक पढ़ाने आया करते थे। स्वर्गीय मोहिनीलालजी 'रसमयसिद्ध' उनके प्रधान गुरु थे। प्रसादजी बाद मे स्थानीय क्वीन्स कालेज जाने लगे। उनके मित्र श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा का कथन है कि, "आठ-नौ वर्ष की अवस्था मे ही उन्होने अमरकोश तथा लघुकौमुदी कठस्थ कर ली थी।"[3] निश्चय ही यह कवि की असाधारण बुद्धि का परिचायक है। आठ वर्ष की अवस्था मे गेटे ने लेटिन मे एक निबन्ध लिखकर लोगो को आश्चर्यचकित कर दिया था। मिल्टन ने भी दस पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक काफी अध्ययन कर लिया था। यूनानी और लैटिन लेखको की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की जाती है, जिसे उसने युवावस्था के पूर्व पढ डाला था।[4] प्रसाद का अध्ययन महाकवियो की भाँति स्वतन्त्र गीति से आरम्भ हुआ।

प्रसाद लगभग बारह वर्ष के थे कि 1901 ई. मे उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। घर का समस्त भार बडे भाई शम्भुरतन पर आ पडा। वे स्वतन्त्र इच्छा के निर्भीक व्यक्ति थे। हृष्ट-पुष्ट शरीर के साथ ही उन्हे पहलवानी का शौक था। सायकाल अपनी टमटम पर घूमने निकलते; यदि कोई दौड लगाता तो उसे पछाड देते। उनका ध्यान व्यवसाय की ओर अधिक न था। धीरे-धीरे उसे हानि पहुँचने लगी और पूर्वजो की थाती को सँभालना कठिन हो गया। शम्भुरतनजी अन्य व्यक्तियो पर अधिक विश्वास रखते थे और उन्हे अन्त म धोखा हुआ। प्रसाद के पिता देवीप्रसाद की मृत्यु

क पश्चात् गृहकलह आरम्भ हो गया। कुछ समय तक प्रसाद की माता ने इसे रोका, पर वह उग्र रूप धारण करता गया। शम्भुरतनजी ने अपनी उदारता से उसे कम करने का प्रयत्न किया, किन्तु वह बढता ही गया। अन्त में प्रसाद के चाचा और बडे भाई मे मुकदमेबाजी हुई जो लगभग तीन चार वर्षो तक चलती रही। यद्यपि शम्भुरतनजी की विजय हुई पर समस्त सम्पत्ति का बँटवारा हो गया। इस बीच ध्यान न देने के कारण सारा पैतृक व्यवसाय चौपट हो गया। इस अवसर पर प्रसादजी ने अपने एक मित्र से बताया था कि जब कभी घर मे कोई काम काज होता था तो दूकान का टाट उलट दिया जाता था और उसके नीचे बिखरी हुई पूँजी मात्र से वह कार्य सम्पन्न हो जाता था। जिस घर में रजतपात्रो मे भोजन किया जाता था, उसी म शम्भुरतनजी ने एक नवीन गृहस्थी का निर्माण किया।

दूकान क साथ ही लाखो का ऋण-भार शम्भुरतनजी पर आ पडा। एक-एक करके सम्पत्ति विक्रय की जाने लगी। बनारस की भारी इमारत भी बेच देनी पडी। प्रसाद इस पतन को देख रहे थ, मानो मनु स्वय इस आकस्मिक परिवर्तन से डोल उठा हो। कवि ने स्वर्ग के विगत वैभव का जो चित्र प्रस्तुत किया हे लगता है, वह उसकी अनुभूति पर निर्भर है। प्लेटो भी कवि को प्रेरणामय प्राणी मानता है। इन्ही झझावातो के बीच प्रसाद की कालेज शिक्षा छूट गई और वे आठवी कक्षा तक ही पढ सके। विश्व के अधिकाश कलाकारो के साथ यही हुआ है। रवीन्द्र, कालिदास, होमर, दान्ते शेक्सपियर जीवन की पाठशाला म पढते थे। उन्होने ससार की महान् पुस्तक का अध्ययन किया था। प्रसादजी को प्राय नारियल बाजारवाली दूकान पर बेठना पडता पर घर मे अब भी शिक्षा का क्रम चल रहा था। अपने गुरु रससयसिद्ध से उन्हे वेद, उपनिषद्, पुराण, भारतीय दर्शन का अध्ययन करने की प्ररणा मिली। प्रसाद का साहित्य इस विस्तृत अध्ययन स अनुप्राणित है।

बनारस चौक स दालमडी म जो गली दायी ओर मुडती है, उसी मे लगभग दस हाथ पर नारियल बाजार मे गुयनीसाहु की दूकान थी। यही प्रसाद को बैठना पडता। शम्भुरतनजी शरीर की ओर विशेष ध्यान देते थे। स्वय प्रसादजी भी खूब कसरत करते थे। वे उन इने गिने साहित्यकारो म थे, जिन्हे एक स्वस्थ शरीर मे एक स्वस्थ मस्तिष्क प्राप्त हुआ था। इसी समय की एक स्मरणीय घटना है। एक स्थान पर शम्भुरतनजी के लिए मारण जाप हो रहा था और वही पर एक दरजी रहता था, जिसका नाम भी यही था। अपने नाम का मारणजाप सुनकर उसे बडा क्रोध आया। वह उन लोगो को मारने दौडा और इस प्रकार जाप भग हो गया। सयोगवश वह दरजी शम्भुरतनजी के कपडे भी सिलता था। उसने जाकर अपने स्वामी को सब समाचार सुनाया। प्रसादजी ने उस अवसर पर कहा था, "सभी कुछ भाग्य के अनुसार होता है।"

अब प्रसादजी का परिवार एक वैभवशाली परिवार न रह गया था। ऋण मे

बहुत कुछ समाप्त हो गया था। किसी प्रकार शम्भुरतनजी बिखरे हुए व्यापार को सुधारने का प्रयास कर रहे थे। इसी समय प्रसादजी की माता का देहान्त हो गया। प्रसाद ने जीवनपर्यन्त माता का स्नेह भाभी को दिया। भाभी पर्याप्त समय तक जीवित थीं। कोई इस महान् कलाकार के विषय में कुछ जानने का प्रयास करता, तो उनकी आँखों मे ऑसू छलक आते और वे केवल यही कहती कि, 'मेरे लिए तो वह केवल शकर था···।' सघर्षों के बीच भी प्रसादजी का अध्ययन चल रहा था। इसी बीच उन्होंने ब्रजभाषा में सवैया, घनाक्षरी आदि लिखना आरम्भ कर दिया था। वे प्रायः दूकान पर बैठे हिसाब-किताब की बही पर लिखा करते थे। एक दिन शम्भुरतनजी को ज्ञात हुआ कि प्रसाद कविता लिखते है। उन्होंने कहा, "हमे अपना व्यापार सँभालना है, शकर। बाप-दादो के डीह को बचाना है। देखो, इस अवसर पर कविता आदि करना अच्छा नही लगता···।" पर कलाकार का नैसर्गिक स्रोत रोका नही जा सकता। शम्भुरतनजी ने हिन्दी-कवियों की दुर्दशा देखी थी। जब कभी कविता के कारण प्रसाद को मीठी झिडकी दिया करते, तो भाभी कवि की रक्षा करती। शम्भुरतनजी चाहते थे, पूर्वजो के विगत वैभव को लौटा लाना किन्तु कठोर परिश्रम करके भी वे अपना स्वप्न पूरा न कर सके। उनका शरीर जर्जर हो गया था और माता की मृत्यु के लगभग दो वर्षो पश्चात् उनका भी निधन हो गया।

प्रसाद की अवस्था इस समय सत्रह वर्ष की थी, उन्हे जीवन का अधिक अनुभव न था। वे अपनी भावुकता का आनन्द ही ले रहे थे कि उन पर यह वज्रपात हुआ। इस प्रकार केवल पॉच-छः वर्षो के भीतर ही प्रसाद ने तीन अवसान देखे—पिता, माता और भाई। वे अकेले ही रह गये, निस्सहाय। ऐसे सघर्ष क्षणो मे भारतीय दर्शन ने प्रसादजी को बडा सहारा दिया। सम्भवतः कामायनी का 'शक्तिशाली हो विजयी बनो' उनके मस्तिष्क मे उसी समय गूँजा होगा। उनके चारों ओर विषमताएँ खेल रही थी। लोग उन्हे अल्पावस्था का जानकर ठगना चाहते थे, पर उनके हाथो मे यश था। उन्हे स्वय अपना विवाह भी करना पडा। इसके अनन्तर उनके दो और विवाह हुए। वास्तव मे प्रथम पत्नी के निधन के पश्चात् वे स्वय विवाह नही करना चाहते थे, किन्तु भाभी के अनुरोध को वे टाल न सके और इसी कारण उन्होंने तीसरी बार विवाह किया। इस प्रकार कवि ने अपने छोटे-से जीवन म कितनी बार स्नेह-प्रतिमाओं को खंडित होते देखा था। नियति के निर्मम विधान से वे जीवन-भर जूझते रहे। जीवन की कठोरताओं ने उन्हें नियति मे विश्वास रखने के लिए विवश कर दिया था। इस अवसर पर प्रसादजी मे भक्ति का स्रोत भी उमड़ा था और वे शिवालय में पूजन करते थे। उन्होने स्वय लिखा है, "निराशा में, अशान्ति मे, दुख में, उस अपूर्व सुन्दर चन्द्र की भक्ति-रूपी किरणे तुम्हे शान्ति प्रदान करेगी। और यदि तुम्हें कोई कष्ट हो, तो उस अशरण-शरण-चरण मे लोटकर रोओ, वे अश्रु तुम्हे सुधा के समान सुखद होंगे और तुम्हारे सब सन्ताप को हर लेंगे" (चित्राधार, 'भक्ति' लेख, पृ. 137)।

सत्रह वर्ष की आयु म एक बडे परिवार का उत्तरदायित्व भावुक प्रसाद पर आ पडा। वे अपने पूर्वजो के गौरव को एक बार पुनः स्थापित करना चाहते थे। प्रसादजी ने स्वय व्यवसाय देखना आरम्भ किया और बाहर से जब कभी कोई व्यापारी आता, तो व उससे बातचीत करते। इत्र आदि बनते समय वे जाकर उसका पाग देखा करते और इसमे तो कन्नौज के व्यापारियो को भी मात दते थे। अपने पैतृक व्यापार को सँभालने का उन्होंने प्रत्यक्ष प्रयास किया पर गृह कलह के पश्चात् व्यापार की दशा जर्जर हो गयी थी। सुघनीसाह का काशी मे अब भी वही नाम था किन्तु व्यवसाय की दृष्टि से निस्सन्देह व पीछे थ। प्रसादजी ने आजीवन अपने विगत वैभव को पाने का प्रयास किया और अन्त मे सभी कुछ नियति के हाथों सौप दिया। ऋण को वे कुम्भीपाक की नरक कल्पना की भाँति मानते थे, जो मनुष्य की समस्त चेतना को निचोड लेता है। लगभग 1930 31 मे वे ऋणमुक्त हो सके थे।

बडे भाई की मृत्यु क पश्चात् उन्होंने अपने जीवन मे अनेक परिवर्तन कर दिये थे। किसी प्रकार का कोई व्यसन उन्हे नही था। प्रातःकाल उठकर वे गगा की ओर भ्रमण के लिए निकल जाते थ। यदि इतना समय न होता तो वे बेनियाबाग तक ही चल जाते। वहाँ से लौटकर व्यायाम करने के अनन्तर व नियमित रूप से लिखने बैठते। स्नान पूजन के पश्चात दूकान जाते। उसी के सामने प्रसादजी ने एक खाली बरामदा भाडा के बैठने के लिए ले लिया था। नित्यप्रति सन्ध्या समय यही बैठक होती थी और अच्छा खासा दरबार जमा रहता था। दूकान स लौटकर वे रात को देर तक लिखा करते थ।

अपनी प्रथम रचना उन्होंने नौ वर्ष की अवस्था मे की थी जिसमे उनका उपनाम 'कलाधर' है। चली आती हुई रीति कालीन परिपाटी का गहरा प्रभाव था जो बाद मे समाप्त हो गया। बड़े भाई के समय म लुक छिपकर होनेवाली कविताधारा अब अपनी स्वच्छन्द धारा में फूट पडी थी। लगभग 20 वर्ष तक की सभी गद्य-पद्य रचनाएँ 'चित्राधार' म सग्रहीत है।

आरम्भिक प्रेरणा

कवि जीवन के आरम्भ मे जिन व्यक्तियो से उन्होने विशेष प्रेरणा ली उनमे एक उनके पडोसी मुशी कालिन्दीप्रसाद और दूसरे [illegible] निवासी श्री रमानन्द थे। मुशी कालिन्दीप्रसाद उर्दू फारसी के अच्छे विद्वान थे। प्रसाद ने इन विषयों के अध्ययन मे उनसे सहायता ली थी। मशीजी प्रायः उन्हे शेर सुनाया करते थे। उनकी कई पंक्तियाँ तो प्रसादजी को अत्यधिक प्रिय थी :

थमते थमते थमेंगे आँसू
रोना है, कुछ हँसी नही है —मीर

हमने देखी है किसी शोख की मस्ती भरी आँख।
मिलती जुलती है झलकते हुए पैमाने से।।
* * *
मुहब्बत मे नही है फर्क जीने और मरने का।
उसी को देखकर जीते है, जिस काफिर पे दम निकले।।

—ग़ालिब

इसी प्रकार उमर खैयाम, रूमी, हाफिज, जौक, सौदा, गालिब आदि के सुन्दर अशार मुशीजी से प्रसाद को सुनने को मिलते थे। सूफी-दर्शन की ओर अभिरुचि उत्पन्न कराने का श्रेय भी उन्ही का है। रामानन्दजी कवि के अनन्य मित्र थे और अपना 'उर्दूशतक' उन्होने प्रसादजी के कहने से प्रकाशित कराया था। वह भारतजीवन प्रेस मे 1923 ई. मे मुद्रित हुआ था। उसमे सौ कवित्त सवैया थे जिनमे भावो की तन्मयता देखी जा सकती है। ध्यान देने पर प्रसाद के काव्य मे 'उर्दूशतक' के भावों की छाया प्राप्त हो जाती है। तुलना के लिए उर्दूशतक और प्रसाद की पंक्तियाँ है :

उर्दूशतक : बुलबुल के गाने की न जाने सैयाद कदर
आशिक ही जाने, क्या जल्लाद उसे जाने है।
* * *
आँसू : बेसुध जो अपने सुख मे
जिनकी है सुप्त व्यथाएँ
अवकाश भला है किनको
सुनने को करुण कथाएँ
* * *
उर्दूशतक : लाख समझाव कोई, आँखो मे चुभी है जाकी
ताकी कही सूरत उतारे से उतरती है।
* * *
आँसू : अब छुटता नही छुटाए
रँग गया हृदय है ऐसा
* * *
उर्दूशतक : हाथ किसी के न होते हबीब है।
* * *
लहर : पागल रे वह मिलता है कब !

प्रसादजी की कविता का आरम्भ ब्रजभाषा से हुआ। उनकी प्रथम रचना 'भारतेन्दु' पत्र मे जुलाई 1906 ई. मे प्रकाशित हुई। उस समय ब्रजभाषा का प्रचार था, साथ ही खड़ीबोली भी धीरे-धीरे आ रही थी :

सावन आय वियोगिन को तन
आली अनग लगे अति तावन।
तावन हाय लगी अबला
तडपे जब बिज्जु छटा छवि छावन।।
छावन कैसे कहूँ मै विदेस
लगे जुगनू हिय आग लगावन।
गावन लागे मयूर 'कलाधर'
झाँपि कै मेघ लगे बरसावन।।

ब्रजभाषा की रीतिकालीन शैली का प्रभाव इन रचनाओ मे दिखाई पड़ता है। हिन्दी मे प्रसाद का आगमन एक नयी दिशा का सूचक है। इन्दु कला 2, किरण 1, श्रावण शुक्ल 2, 1967 वि. मे उन्होने अपने लेख 'कवि और कविता' के अन्त मे लिखा : "शृगार रस की मधुरता पान करते करते आपकी मनोवृत्तियाँ शिथिल तथा अकुला गयी है। इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी, अपने को भुला देनेवाली कविताओं की आवश्यकता है। अस्तु, धीरे धीरे जातीय सगीतमयी, वृत्तिस्फुरणकारिणी, आलस्य का भग करनेवाली, आनन्द बरसानेवाली, धीर, गम्भीर, पदविक्षेपकारिणी, शान्तिमय कविता की ओर हम लोगो को अग्रसर होना चाहिए। अब दूर नही है, सरस्वती अपनी मलिनता को त्याग रही है और नवल रूप धारण करके प्राभातिक उषा को लजावेगी। एक बार वीणाधारिणी अपनी वीणा को पचम स्वर मे फिर ललकारेगी। भारत की भारती फिर भी भारत ही की होगी।"

प्रसादजी का उस समय बड़ा विरोध हुआ। लाला भगवानदीन ने 'उर्वशी' चम्पू की कटु आलोचना 'लक्ष्मी' मे प्रकाशित की। उन्होने लिखा "साहुजी साहित्य प्रेमी जान पडते है, परन्तु हमे खेद से कहना पडता है कि इस चम्पू की रचना मे उन्हे सफलता नही प्राप्त हुई। कोई कोई सस्कृत कविता का अनुवादमात्र है। हम साहुजी को सलाह देते है कि ऐसे ग्रन्थो के प्रकाशन मे व्यर्थ व्यय न किया करे।' इसी प्रकार 'प्रेमराज्य' के विषय मे उन्होने लिखा, "काव्य बिलकुल नीरस और अनेक दोषो से पूर्ण है। एक भी छन्द यतिभग दोष से रहित नही है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी आरम्भ मे छायावाद का विरोध किया और उसे 'अभिव्यजना की एक शैली मात्र' कहकर टाल देने का प्रयास किया। छायावाद केवल बँधे हुए क्षेत्र के भीतर चलनेवाला काव्य माना गया। उसमे अनुभूति की सचाई तक मानने के लिए कोई तैयार न था। प्रसादजी ने इस विरोध मे भी अपना मानसिक सन्तुलन नही खोया और वे बराबर सृजनरत रहे। आचार्य वाजपेयी ने इस विरोधी स्थिति के विषय मे लिखा है : "एक महाशय ने कह दिया कि प्रसादजी तो बाबा आदम के जमाने के चरित्रो को अपने नाटको मे रखते है, गडे मुर्दे उखाड़ते है, तो दूसरे महाशय नयी भाषा मे कहने लगे, प्रसादजी तो 'एस्केपिस्ट' है, जीवन

से भागते है। एक तीसरे महाशय रहस्यवाद के नाम से ही इतना घबडा उठे कि प्रसादजी का सारा रहस्यवाद उन्हे रूढिवाद जँचने लगा। एक चौथे महाशय कुछ इधर-उधर की टोह लगाकर कहने लगे, प्रसादजी के साहित्य मे मध्यकालीन विलास और खुमारी ही उन्हे मिलती है। बस समालोचनाओ का ताँता इसी तरह बँध गया और लोग मनमानी हाँकने लगे।"[5]

प्रसादजी ने सभी आरोपो का उत्तर अपने गतिमान साहित्य से दिया और अनेक प्रकार के आक्षेप उनसे टकराकर लौट गये। वे निरन्तर सर्जन करते रहे और एक दिन साहित्य के महारथियो को उन्हे स्वीकारना पडा। लाला भगवानदीन की कटु आलोचना के उत्तर मे उन्होने 'चम्पू' पर एक लेख लिखा था जो 'इन्दु' कला 2, किरण 1, श्रावण शुक्ल 2, सवत मे प्रकाशित हुआ था। इसमे प्रसादजी ने साहित्यदर्पण के 'दृश्य श्रव्यत्व भेदेन पुनः काव्य द्विधामतम्' से लेकर, नरहरि चम्पूकार, साहित्याचार्य अम्बिकादत्तजी, अग्निपुराण आदि अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये। इस प्रकार उन्होने स्वय अपने साहित्य की मान्यताएँ आलोचको के सम्मुख रक्खी। जब लाला भगवानदीन की आलोचना का उत्तर 'इन्दु' के सम्पादक, प्रसादजी के भाजे अम्बिकाप्रसाद गुप्त ने कला 1, किरण 6, पौष सवत मे 'समालोचना की समालोचना' के द्वारा दिया और कुछ तीखे शब्द भी कहे, तो प्रसादजी ने उन्हे मना किया। हिन्दी के लगभग छः चम्पू की तालिका भी उन्होने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-रूप मे प्रस्तुत की। प्रसादजी ने साहित्य के विषय मे लेख लिखकर अपने विचारो का प्रतिपादन किया। वास्तव मे वे साहित्यिक दलबन्दी से दूर रहकर कार्य करना चाहते थे। उस समय उनके विरोध को देखकर कई मित्रो ने उनसे कहा कि आप आज्ञा दे तो लिखूँ, तो उन्होने हसकर कहा, "समय स्वय सब प्रकट कर देगा।" और वास्तव मे यही हुआ भी। 'कामायनी' कवि के निधन के पश्चात् पुरस्कृत हुई थी।

प्रसाद के साथ निराला और पन्त ने भी काव्य के क्षेत्र मे पदार्पण किया, और उनके स्वर मे द्विवेदी-युग की सीधी सादी परिपाटी के प्रति विद्रोह की भावना थी। जीवन की बढती हुई विषमताओ और जटिलताओ के बीच वे अपनी कल्पना का स्थान देना चाहते थे। श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, रत्नाकर आदि द्विवेदी-युग के कवि भी समय की गति के साथ नही चल पा रहे थे। श्रीधरजी ने गोल्डस्मिथ के हरमिट और ट्रेवलर का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया था। गुप्तजी का काव्य वैष्णव धर्म, जातीयता और राष्ट्रीयता से प्रभावित था। हरिऔधजी मे करुणा की मात्रा अधिक थी। रत्नाकरजी अलकार-प्रेमी थे। इस प्रकार खडीबोली के इस युग ने यद्यपि रीतिकाल का विरोध अवश्य किया था, किन्तु अब भी वह समय से पीछे था। यह भी स्वीकार करना होगा कि छायावाद को जो सफलता प्राप्त हुई, उसकी पृष्ठभूमि द्विवेदी-युग मे ही आरम्भ हो चुकी थी। वास्तव मे छायावाद ने उस युग

की वस्तुओं को ग्रहण कर लिया, किन्तु इतने से ही सन्तुष्ट न रह सका, उसका चरण और आगे बढ़ा।

महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मई 1927 ई. में 'सरस्वती' में एक लेख लिखकर पंत की 'वीणा' की आलोचना 'कविकिंकर' नाम से की। पंत ने उसका उत्तर देते हुए द्विवेदीजी का उद्धरण प्रस्तुत किया: "व्यास, कालिदास के होते हुए तथा सूर, तुलसी के अमर काव्यों के रहते हुए भी ये कवि यशलिप्सु, कविन्वहता छायावाद के छोकड़, कमल यमल, अरविन्द-मलिंद आदि अनोखे अनोखे उपनामों की लांगूल लगा, कामा-फुलस्टापों से जर्जरित, प्रश्न, आश्चर्य-चिह्नों के तीरों से ममाहत कभी गज-गज की लम्बी, कभी दो ही अंगुल की, उठी-मढ़ी, ऊँची नीची, यतिहीन, छन्दहीन शब्द अर्थ तुकशून्य काली सतरों की चोटियों की टोलियाँ तथा अस्पृश्य काव्य के महागिरिगुह्य धरोहर बना, ताड़पत्र, भोजपत्र को छोड़ बहुमूल्य कागज पर मनोहर छाप में, अनोखे अनोखे चित्रों की सजधज तथा उनके के साथ छपवाकर जो 'चिरस्मरतेन गागरम्' की चेष्टा कर रहे हैं, यह सरासर इनकी हिमाकत, धृष्टता, अहम्मन्यता तथा 'हम चुनी दीगरे नेस्त' के सिवा और क्या हो सकता है।" 'पल्लव' की भूमिका में पंतजी ने अपने काव्य का व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। यह वह समय था जब कि निराला की कविताएँ 'सरस्वती' से वापिस आ जाती थीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि इस नवीन क्रान्ति का स्वागत नहीं कर रहे थे। आचार्य शुक्लजी ने छायावाद का विरोध किया और अपने 'काव्य में रहस्यवाद' में उसे विलायती हवाओं की तरह बंगला में आया हुआ बताया।[6] उन्होंने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी इन कवियों को वह महत्त्व नहीं दिया, जिसके वे अधिकारी थे।

इस विरोध के कारण प्रसाद को अपने काव्य की व्याख्या स्वयं करनी पड़ी। छायावाद का विवेचन करते हुए प्रसाद ने एक निबन्ध भी लिखे और काव्य को 'आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति' बताया। रहस्यवाद को उन्होंने पूर्णतया भारतीय सिद्ध किया। छायावाद के विषय में कहा, 'ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचारवक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं।' इतना ही नहीं, उन्होंने स्पष्ट किया कि आधुनिक छायावाद केवल पश्चिम अथवा बँगला का अनुकरण मात्र नहीं है। इस प्रकार एक महान् रचनाकार की भाँति प्रसाद ने परिस्थिति का सामना किया और समय के साथ उनका यश बढ़ता गया।

प्रसाद का साहित्यिक जीवन 'इन्दु' पत्रिका से अधिक प्रकाश में आया। यह मासिक पत्रिका थी और प्रसाद की योजना के अनुसार उसका समस्त कार्य होता था। इसके सम्पादक और प्रकाशक उनके भांजे अम्बिकाप्रसाद गुप्त थे। इसकी पहली सख्या, कला 1, किरण 1, शुक्ल श्रावण सवत्   (1909 ई.) मे प्रकाशित हुई।

प्रथम सख्या मे ही नवीन दिशा की सूचना थी। प्रस्तावना के अनुसार…"साहित्य का कोई लक्ष्य विशेष नही होता है और उसके लिए कोई विधि का निबन्धन नही है, क्योकि साहित्य स्वतन्त्र प्रकृति, सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है, वह किसी की परतन्त्रता को सहन नही कर सकता, ससार मे जो कुछ सत्य और सुन्दर है, वही साहित्य का विषय है। साहित्य केवल सत्य और सौन्दर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और सौन्दर्य को पूर्ण रूप से विकसित करता है, आनन्दमय हृदय के अनुशीलन में और स्वतन्त्र आलोचना में उसकी सत्ता देखी जाती है।" इस प्रकार इन्दु के विकास के ही साथ कवि रचना-पथ पर अग्रसर होता चला गया।

सामाजिक वातावरण

प्रसादजी का जीवन साधक का-सा था और सभा आदि मे जाना उन्हे अधिक प्रिय न था। वास्तव मे वे सकोचशील व्यक्ति थे, प्रायः घर अथवा दूकान पर ही अपने मित्रो के साथ बैठकर बातचीत किया करते थे। नियमित रूप से साहित्यिक व्यक्ति उनके पास आते और फिर रात देर तक कार्यक्रम चलता रहता। प्रसाद दूसरो को प्रायः उत्साहित करते रहते। वे मित्रो के साथ कभी-कभी नौका-विहार के लिए चले जाते और सारनाथ भी घूम आते। लोग एक दूसरे म हास परिहास किया करते पर प्रसादजी मुसकराकर रह जाते थे और बातचीत मे वे खुलकर कम भाग लेते थे। भाँग-बूटी छनती थी, किन्तु वे प्रायः उसका सेवन नही करते थे। अधिक आग्रह करने पर हृदय की ओर सकेत करते हुए कहते, "सारी मस्ती इसमे भरी हुई है, अधिक लेना व्यर्थ है।"[7] उनमे शिष्टता-शालीनता थी और वे सयत स्वभाव के व्यक्ति थे। उनके मित्रो का कथन है कि प्रायः मुखर नही होते थे। 'लहर' की पक्तियो मे उनकी आन्तरिक अभिव्यक्ति है : 'क्या यह अच्छा नही कि औरो की सुनता मै मौन रहूँ'।

प्रसाद की मौलिकता तो इसी मे झलकती है कि उन्होने अपनी जो पुस्तके काशी नागरी प्रचारिणी सभा को दी, उनमे 'श्रीमती का ना. प्र म को सादर समर्पित' लिखा हुआ है। वे इसी प्रचारिणी मे बैठकर अध्ययन करते थे। वे ऐसे वीतरागी की भाँति थे, जो जीवन मे रहकर भी उससे दूर रहता है। समृद्धिशाली वातावरण मे रहते हुए भी उन्होने जीवन को खुली आँखो मे देखने-पढने का प्रयास किया। उनका साहित्य इसी अनुभव पर आधारित है। जीवन और उनके साहित्य मे इतनी निकटता है कि उन्हे एक-दूसरे से अलगाकर नही देखा जा सकता। इसी कारण दाण्ड्यायन ऋषि, देवसेना देवी, विजया, छलना, काशी का गुडा जैसे कई प्रकार के पात्र उनके साहित्य मे मिल जाते हैं। गेटे से जब युद्ध के गीत लिखने के लिए कहा गया, तो उसने उत्तर दिया था, "मै उस वस्तु का वर्णन करने में असमर्थ हूँ जिसका अनुभव मैंने नही किया।" प्रसाद प्रत्येक वस्तु को ध्यान से देखते-सुनते थे। उनके यहाँ आरम्भ से ही भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्ति आया-जाया करते थे। बाल्यकाल मे

वे ब्रजभाषा के कवियों की रचनाएँ ध्यान से सुनते थे। धर्म और दर्शन के विषय में होनेवाले वाद विवाद के समय भी वे प्रस्तुत रहते। इस साहित्यिक और कलात्मक वातावरण के अतिरिक्त अन्य प्रकार के व्यक्तियों से भी उनका सम्पर्क यहीं हुआ। दूर-दूर से व्यवसायी आकर उनके घर पर ठहरते। इनमे नेपाल की तराई के व्यक्ति, कन्नौज के इत्रवाले तथा भारत के विभिन्न प्रान्तो के व्यापारी होते थे। मकान के सामने ही एक छोटा सा घर था। उसी में ये सब आगन्तुक ठहराए जाते थे। प्रसादजी जब बड़े हुए तब वे विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त करने को सदा प्रयत्नशील रहते। अपनी प्रसिद्ध 'ममता' कहानी की प्रेरणा उन्होंने सारनाथ के भग्नावशेषों से प्राप्त की थी। 'आँधी' का रामेश्वर उनका एक मित्र था। उनकी संवेदना ने वास्तविकता से अपने पात्र प्राप्त किये हैं। काव्य की प्रेरणा उनके आन्तरिक जीवन से अधिक सम्बन्ध रखती है। अन्तर्मुखी होने के कारण वह उनकी जीवनानुभूति पर अवलम्बित है। नाटक, कहानी और उपन्यास में भी उनका अनुभव झलक जाता है। इसी अनुभूति के कारण उनके ऐतिहासिक पात्र भी निर्जीव और जड़ नही प्रतीत होते। उनमें एक सरलता है जो पाठक को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। प्रसाद का गुंडा हमारी सहानुभूति प्राप्त कर लेता है। प्रायः स्थिति और वस्तु का विश्लेषण करने के पश्चात् वे उसके आधार तक जाते थे। इसी कारण उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी केवल अध्ययनाश्रित न होकर, जीवन के अधिक निकट है। रिचर्ड्स के अनुसार महाकवि प्रत्यक्ष-परोक्ष दोनों ही ज्ञान से रचना करते हैं।

अपने राजनीतिक जीवन में प्रसाद देशभक्त थे। उन्होंने स्वयं राजनीति में सक्रिय भाग नहीं लिया, किन्तु अपने विचारों में वे देशप्रेमी थे और गाधीजी के व्यक्तित्व ने उन्हें अधिक प्रभावित किया था। वे सांस्कृतिक उत्थान के भी पक्षपाती थे और अपने ऐतिहासिक नाटकों के द्वारा उन्होंने इसी सांस्कृतिक ऐतिहासिक पुनरुत्थान का प्रयास किया। भारतीय संस्कृति के प्रति मोह रखते हुए भी वे रूढ़िवादी नहीं थे। जीवन मे दीर्घ समय तक वे खादी पहनते रहे। जाति-पाँति, छुआछूत, पाखंड आदि से वे दूर थे। एक बार जब उनकी जाति के व्यक्तियों ने उन्हें सभापति बना दिया, तब उन्होंने उसे ऊपरी मन से स्वीकार कर लिया और बाद में तार दे दिया कि न आ सकूँगा। काशी में अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर उन्होंने गाधीजी के दर्शन किए थे। शक्ति के उपासक होते हुए भी वे अहिंसा के पुजारी थे और बौद्धदर्शन की ओर उनका अधिक झुकाव था। उनकी धारणा थी कि करुणा ही मानव का कल्याण कर सकती है और उनके साहित्य मे दया-ममता का स्वर है। इसके अतिरिक्त जीवन की सामयिक समस्याओं के विषय मे वे महान् रचनाकार की भाँति जागरूक रहते थे। 'तितली' और 'कंकाल' में इन समस्याओ पर विचार किया गया है। नारी-उद्धार, अछूत-समस्या, रूढ़िवादिता, धर्म आदि पर उन्होंने विचार किया। प्रायः साथियो से वे कहा करते थे कि हमारा सामाजिक संगठन शिथिल होता

जा रहा है। वे उसका पुनरुत्थान चाहते थे।

प्रसादजी काव्य के सामाजिक दायित्व को जानते थे। उन्होंने अप्रैल 1912 ई 'इन्दु' कला 3 किरण 5 (पृ 402) में लिखा था, "जब तक समाज के उपकार के लिए कवि की लेखनी ने कुछ कार्य न किया हो, तब तक केवल उसकी उपमा और शब्द वैचित्र्य तथा अलंकारों पर भूलकर हम उसे एक ऐसे कवि के आसन पर नहीं बिठा सकते, जिसने कि अपनी लेखनी से समाज की प्रत्येक क्रान्तियों को स्पन्दित करके उनमें जीवन डालने का उद्योग किया है।"

प्रसाद के प्रेम प्रसंग को लेकर समीक्षकों में पर्याप्त विवाद हो चुका है और कुछ लोग तो विचित्र धारणाएँ बना लेते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आँसू के वियोग वर्णन के मूल में कोई लौकिक आलम्बन है। उसकी अनुभूति इतनी प्रत्यक्ष है कि उसमें कवि की वैयक्तिक भावना का परिचय मिल जाता है। उनके साहित्य में बिखरी हुई प्रेम और अतृप्ति की भावना इसका प्रमाण है कि उनकी जीवनानुभूति में कोई ऐसा प्रसंग अवश्य था। किन्तु प्रसाद के काव्य में इस भावना का उदात्तीकरण भी होता गया है और अन्त में यह वैयक्तिक धारणा उच्चतर मानसिक और दार्शनिक भूमि पर रखी जा सकी है। उनके परवर्ती काव्य के दर्शन से पता चलता है कि सौन्दर्य और प्रेम के विषय में उनकी बड़ी उदात्त भावना थी। कामायनी में उन्होंने लिखा है

> उज्ज्वल वरदान चेतना का
> सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं
> जिसमें अनन्त अभिलाषा के
> सपने सब जगते रहते हैं।

सौन्दर्य को उज्ज्वल वरदान और चेतना से विभूषित करके उन्होंने आदर्श रूप दिया है। उनके प्रेमराज्य में समस्त सृष्टि नवीन ज्योति से आलोकित हो उठती है। वे उदात्त सौन्दर्य और प्रेम के कवि हैं विलास और शृंगार के नहीं। उनकी प्रेम भावना में ऐसा [illegible] तन्मय हुआ जो मानवता के आदिपुरुष मनु का भी पथ प्रदर्शन कर सका। प्रसाद की भावना प्रेम और करुणा के बिना आगे नहीं बढ़ती। साहित्य का विश्लेषण करने पर प्रतीत होगा कि उन्होंने अपनी कल्पना के द्वारा पात्रों में एक हृदय रखने का प्रयास किया है। चाणक्य जैसे कूटनीतिज्ञ ने भी कभी सुवासिनी से प्रेम किया था। वह कहता है मेरे उस सरल हृदय में उत्कट इच्छा थी कि कोई भी सुन्दर मन मेरा साथी हो। प्रत्येक नवीन परिचय में उत्सुकता थी और उसके लिए मन में सर्वस्व लुटा देने की सन्नद्धता थी। प्रेम की जो परिभाषाएँ कवि ने की हैं उनमें वासना की गन्ध कम है। वे इस विषय में इतने सतर्क थे कि 'कामायनी' के वासना वर्णन को सूक्ष्म मानसिक अनुभावों के द्वारा प्रस्तुत किया, ताकि वह उच्छृंखल

न हो जाय। 'ध्रुवस्वामिनी' में कोमा कहती है, "सबके जीवन में एक बार प्रेम की दीपावली जलती है। जली होगी अवश्य। तुम्हारे भी जीवन में आलोक का महोत्सव आया होगा, जिसमें हृदय हृदय को पहचानने का प्रयत्न करता है, उदार बनता है और सर्वस्व दान करने का उत्साह रखता है।'

प्रसाद की महत्त्वपूर्ण देन, उनकी नारी-भावना है। नारी उनके लिए केवल शारीरिक आकर्षण और सौन्दर्य की वस्तु नहीं है। नारी-जीवन के तीन रूपों का उन्होंने पत्नी रूप में जाना था किन्तु 'आँसू' के विरह वर्णन को देखकर यह अनुमान भी उचित है कि कवि के जीवन में कोई अवश्य आया होगा। जीवन काल में ही उनके अनेक साथियों ने इस विषय में उनसे प्रश्न किये थे और वे सदा इसे सुनकर हँस पड़ा करते थे, बात को टाल जाते थे। प्रसाद जैसे गम्भीर व्यक्ति के मुख से उनकी आन्तरिक कहानी को सुन लेना सहज न था। प्रसाद नीरव प्रेम के उपासक थे, तभी उन्होंने लिखा है

कमल कोश में भरे मकरन्द सा
[illegible] अमन्द सा
निज सुगन्ध लिए वह आप ही
रहते मोद भरे चुपचाप ही।

—चित्राधार : पृ 105

इसी प्रकार की नीरव प्रेम पीड़ा कवि के साहित्य में दिखायी देती है। नारी भावना में कवि ने अपनी कोमल भावनाओं का प्रकाशन किया है। महाकवि गेटे के जीवन में भी नारी ने एक महान् प्रेरणा का कार्य किया था। किन्तु उस कवि में इतना आत्म-विश्वास था कि वह किसी भी भावना को छिपा नहीं सकता था। अपने जीवन में उसने अधिक बार प्यार किया था। 'वर्थर' लिखने के बाद उसने कहा था यही कहा था "जीवन मनुष्य को प्यार और मृत्यु का आदर करती चलो।"[4]

प्रसाद ने नारी को सदा आदर और सम्मान की दृष्टि से देखा। परमपुरुष की शक्तिरूपा ही उनकी नारी थी। वे नारी पुरुष के मधुर सम्बन्ध को सृष्टि का सर्वोत्तम लक्ष्य मानते हैं। उनका नैसर्गिक मिलन जीवन की पूर्णता का प्रतीक है। इस भावना का उन्होंने जीवन में भी निर्वाह करने का प्रयत्न किया। "वे स्वयं श्रद्धा के साथ स्त्रियों का विशेष आदर करते थे, और उनका यह आदर केवल काल्पनिक या शब्दाडम्बर में नहीं, वरन् उनके नित्यप्रति के व्यवहार में प्रकट होता था।" प्रसादजी ने जिस स्मृति को सँजोने का प्रयास किया, उसे कोई नहीं जान सका, यही उस सम्बन्ध की विशेषता है। वे साक्षात् शंकर थे, जो पीड़ा को विष की भाँति पी लेना जानते थे। "आत्म-गोपन की दुर्लभ कलात्मक क्षमता रखनेवाला यह विलक्षण कलाकार

आत्म-गोपन की कला में भी पूर्ण पटु है।"[9] 'कामना' नाटक के सन्तोष के शब्दों में मानो स्वयं कवि बोल उठा हो : "जिस पिच्छल भूमि पर स्खलन विवेक बनकर खड़ा होता है, जहाँ प्राण अपनी अतृप्त अभिलाषा का आनन्द-निकेतन देखकर पूर्ण वेग से धमनियों में दौड़ने लगता है, जहाँ चिन्ता विस्मृत होकर विश्राम करने लगती है, वहीं रमणी का तुम्हारा रूप देखा था और यह नहीं कह सकता कि मैं झुक नहीं गया।"

प्रसाद ने अपने जीवन में उत्थान-पतन देखे थे। वैभव और विनाश एक साथ उनके जीवन में आये थे। रजत-पात्रों में भोजन करनेवाले प्रसाद को कई वर्षों तक ऋणीरूप में रहना पड़ा। उनके आन्तरिक जीवन में भी यही स्थिति थी। माता का दुलार उनसे यौवन के आरम्भ के पूर्व ही विदा ले चुका था। माँ के चले जाने के पश्चात् जीवनपर्यन्त उन्होंने अपनी भाभी को वही आदर-भाव दिया। कवि के साहित्य पर दृष्टिपात करने से इतना अनुमान अवश्य होता है कि उसे जीवन में भरपूर स्नेह मिला था। किन्तु उसका आकस्मिक परिवर्तन कवि के जीवन की एक टीस और वेदना बनकर रह गया। इसकी अभिव्यक्ति 'आँसू' में प्रमुख रूप से हुई है। किन्तु यह भावना सर्वत्र झाँकती रहती है।

उनकी प्रणय-कथा का थोड़ा-बहुत आभास 'आत्मकथा' द्वारा प्राप्त होता है। जनवरी-फरवरी 1932 ई. में हंस का 'आत्मकथांक' प्रकाशित हुआ था। इसके मुखपृष्ठ पर 'आत्मकथा' शीर्षक से प्रसाद की जो कविता प्रकाशित हुई, प्रेम-भावना को जानने के लिए उसका विश्लेषण उपादेय होगा :

मधुप गुनगुनाकर कह जाता कौन कहानी यह अपनी
मुरझाकर गिर रही पत्तियाँ देखो कितनी आज घनी।
इस गम्भीर अनन्त नीलिमा में असंख्य जीवन इतिहास
यह लो, करते ही रहते हैं अपना व्यंग्य मलिन उपहास।
तब भी कहते हो कह डालूँ दुर्बलता अपनी बीती
तुम सुनकर सुख पाओगे, देखोगे यह गागर रीती।
किन्तु कहीं ऐसा न हो कि तुम ही खाली करनेवाले
अपने को समझो, मेरा रस ले अपनी भरनेवाले।
यह विडम्बना! अरी सरलते! तेरी हँसी उड़ाऊँ मैं
भूलें अपनी, या प्रवंचना औरों की दिखलाऊँ मैं।
उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की
अरे खिलखिलाकर हँसते होनेवाली उन बातों की।
मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया
आलिंगन में आते-आते मुसक्याकर जो भाग गया।

जिसके अरुण कपालो की मतवाली सुन्दर छाया म
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया म।
उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक को पन्था की
सीवन का उधेडकर देखोगे क्यो मेरी कन्था की।
छोटे म जीवन की कैसे बडी कथाएँ आज कहूँ
क्या यह अच्छा नही कि औरो की सुनता मे मौन रहूँ।
सुनकर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आत्मकथा
अभी समय भी नही—थकी सोयी है मेरी मौन व्यथा।

आरम्भ मे ही कवि अपनी कथा का स्मृति चित्र प्रस्तुत करता है। जीवन बढता चला जा रहा है। समय के वृक्ष से पल्लव झर जा रहे है। किन्तु अब भी कवि उस क्षण को भूल नही सका। इसी स्थान पर कवि कहता है कि ससार के विस्तृत रगमच पर केवल उसका ही तो जीवन नही है। अनेक प्राणी अपनी आन्तरिक कहानिया लिए हुए चले जा रहे है। इस स्थिति मे जब कि ससार की गति धूमिल स्मृतिया का उपहास करती है वह उन्हे दुहराना नही चाहता। अतीत के अचल म रुक जाना वह उचित नही समझता। वह कहता है तुम तब भी क्या चाहते हो कि मे अपनी पिछली पराजय और भूल कह डालूँ ? और यदि अतीत के उन पृष्ठो को खोल भी दूँ तो मेरे पास है ही क्या उसने न मेरे साथ कैसा छल कपट किया, अथवा मेरी कौन सी भूल थी, यही न। कवि को बरबस वे सुन्दर दिन याद आते है जब शुभ्र चन्द्रिका म वह किसी अपरिचित के साथ जीवन का आनन्द ले रहा था। वह तरल हसी को नही भूल पाता। किन्तु मिलन का यह पर्व वह अधिक समय तक न मना सका। कवि अपने प्रेम का अन्त ह, जान तो कोई भी कारण नही प्रस्तुत करना चाहता। वह कहता है, 'मिलन एक स्वप्न मात्र था, अधिक समय तक मै सुख का आनन्द न ले सका। वह केवल एक क्षण के लिए ही आया था, अनजाने म आकर अनायास ही चला गया।' कवि उस अपरिचित के रूप का एक रेखाचित्र प्रस्तुत करता ह। उसके सुन्दर कपोलो की लाली उषा की अरुणिमा की भाँति थी। कवि मिलन का वर्णन अधिक नही कर पाता। उज्ज्वल गाथा वह कैसे गा सकता है ? आज वह जीवन पथ पर बढा चला जा रहा है। केवल स्मृतिया ही उसका पाथेय है जिनके सहारे वह आगे जायगा। वह अनुरोध करता है, मै अकिचन हूँ, मेरी अतीत कथा न सुनो। जीवन दो पल का ह, किन्तु उस कथा का इतिहास विस्तृत। मै स्वय मौन रहकर ससार को सुनाना चाहता हूँ। आज जीवन के झझावातो मे मैने अपनी पीडा को सुला दिया है, उसे सोने ही दो।

इससे आभासित होता है कि कवि के जीवन मे कोई न-कोई अवश्य आया था। प्रेम की इस स्मृति को उसने सँजाने का प्रयास किया। यद्यपि इस आत्मकथा से स्पष्ट नही होता कि प्रेम के अन्त का क्या कारण है, किन्तु अन्य रचनाओ

म इसका आभास प्राप्त होता। है। 'आसू' मे छलना आदि शब्दो का प्रयोग प्रिय का परिचय देता है। झरना और लहर की अधिकाश कविताओ म कथा की स्मृतियाँ मिलती है। बौद्धिकता के विकास के साथ ही यह वेदनानुभूति एक स्वस्थ जीवन दर्शन म विकसित हो गयी। 'आँसू' क प्रथम और द्वितीय सस्करण म भी अन्तर है। प्रसाद मूलत प्रम के कवि है। एक बार उन्होन आँसू की एक प्रति पर लिखा था

ओ मरे प्रेम बता द
तू स्त्री है या कि पुरुष है
दोनो ही पूछ रहे है
कोमल है या कि परुष है।

प्रसाद का मित्रो म बडा स्नेह रहता था किन्तु कह धोखा भी हुआ। उन्होने लिखा है मित्र मान लेने पर मनुष्य उससे शिबि के समान आत्मत्याग बोधिसत्व के सदृश सर्वस्व समर्पण की जो आशा करता है और उसकी शक्ति की सीमा को जो प्राय अतिक्रमित करता है, ऐसी स्थिति म अपने को डालना मुझे पसन्द नही। यद्यपि जीवन का हिसाब किताब उस काल्पनिक गणित के आधार पर रखने का मेरा अभ्यास नही है जिसके द्वारा मनुष्य सबके ऊपर अपना पावना ही निकाल लिया करता है।'' इस भाँति प्रसाद देना जानते थे लेना नही। अपने मित्रो के लिए व सब कुछ त्याग सकते थे। रायकृष्णदासजी ने 'हिस' के ससमरणो म लिखा है कि प्रसादजी ने अनेक गद्यगीत केवल इसी कारण नष्ट कर दिये थे कि उनके मित्र की साहित्यिक प्रगति म बाधा न पड़े।

काशी का जीवन और समग्र व्यक्तित्व

प्रसादजी काशी के सास्कृतिक वातावरण म पले थे। गगा म नौका तथा तीर्थो पर उन्होने कई बार अपना कठ खोला था। बनारस के कजली और फाग उन्ह विशेष प्रिय थे। स्वय सगीत प्रेमी होने के कारण उनकी धारणा थी कि जनता के कठ स निकले हुए इन नैसर्गिक गीतो म अनुभूति की तीव्रता रहती है। करुणा और शृगार से भरी कजलियाँ और सहरनो के लोकगीतो को कवि ने अनेक बार सुना था। काशी स वे इतना सन्तुष्ट थे कि प्राय बाहर नही जाते थे। अन्तिम समय मे जब जलवायु परिवर्तन के लिए उपचारको ने बाहर जाने को कहा, तो वे बोले, 'जीवन भर बाबा विश्वनाथ की छाया म रहा अब कहाँ जाऊँ।' 'गुडा' कहानी मे काशी का वातावरण सजग है। एक बार पुत्र रत्नशकर के अनुरोध पर वे लखनऊ प्रदर्शनी देखने गये थे जो सम्भवत उनकी अन्तिम यात्रा थी। इसके पूर्व 1931 ई मे वे सपरिवार पुरी आदि गये थे। समुद्र का दर्शन करते ही उनके कवि हृदय ने कहा 'हे सागर सगम

अरुण नील ('जागरण' 22 फरवरी, 1932 ई)

बनारसी रंग में रंग होना प्रसाद की सबसे बड़ी विशेषता थी उनकी मस्ती। वे उन व्यक्तियों में थे जो जीवन की प्रत्येक बूंद का पान स्वयं करते और कराते हैं, तथा रिक्त हो जाने पर भी ठहाका मारकर हंस पड़ते हैं। वे सौन्दर्य के उपासक थे और आनन्द के पुजारी। उसी आनन्द भावना ने उन्हें जीवन के प्रति एक मंगलमय दृष्टिकोण प्रदान किया था। उनका साहित्य इसी आनन्द का प्रतीक है। उनका शराबी पात्र मधुआ कहता है "आज बहार की एक घड़ी एक लम्बे दुखपूर्ण जीवन से अच्छी है। उसकी खुमारी में रूखे दिन काटे लिये जा सकते हैं।" वे खोज थे और चिरन्तन आनन्द की खोज में लगे रहे। आन्तरिक जीवन में प्रसाद एक अध्ययनशील चिन्तनशील और गम्भीर व्यक्ति थे। सामाजिक जीवन में वे त्यागी, सहृदय और सरल थे। उनके जीवनवृत्त में श्री जनार्दन प्रसाद झा द्विज ने संस्मरण प्रस्तुत करते हुए लिखा था 'किसी बात का उन्हें अभिमान नहीं। विद्या, बुद्धि, धन, वैभव, रूप, यश, कला, कौशल सब कुछ पाकर भी मानो वे उन सबसे भाग भाग फिरते हैं। उनका प्रत्येक व्यवहार उनके निःस्वार्थ एवं निःस्पृह प्रेम का द्योतक है। वे अपने से कभी कुछ नहीं लेना चाहते अपनी ओर से ही बराबर कुछ न कुछ देते रहना चाहते हैं। सच्चे प्रेम की यह ज्योति अपार या प्रत्येक दिशा में सदैव छिटकी रहती है। इनमें केवल परिवार प्रेम अथवा मित्र प्रेम ही नहीं अपितु देश, समाज, साहित्य, संस्कृति और धर्म के प्रति भी अगाध अनुराग भरा हुआ है। अपनी प्राचीन सभ्यता के तो ये भक्त हैं। यही भक्ति इनके रहन सहन और स्वभाव की सादगी के रूप में हमारे सामने आती है किन्तु यह सादगी मर्यादा और स्वाभाविकता का कभी साथ नहीं छोड़ती।"

प्रसादजी ने कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास लिखे। विधाओं में कार्य किया। जीवन के अन्तिम समय में उन्हें पर्याप्त यश प्राप्त हो चुका था। साहित्य में उनका स्थान बन चुका था पर अत्याधिक परिश्रम के कारण उनका शरीर भी शिथिल हो चला था। लखनऊ प्रदर्शनी से लौटने के बाद ही वे अस्वस्थ हो गये। लोगों ने उन्हें बहुतेरा समझाया कि आप जलवायु परिवर्तन के लिए बाहर चले जाइए, पर वे न माने। वे नियतिवादी थे और परिस्थितियों ने उन्हें इस अदृश्य शक्ति पर विश्वास करने के लिए विवश कर दिया था। दिन पर दिन रोग बढ़ता ही गया उन्हें यक्ष्मा हो गया था और हिन्दी का यशस्वी रत्नाकर 15 नवम्बर 1937 ई को प्रातःकाल इस संसार से उठ गया और छोड़ गया अपने कृतित्व और कृतियों का सौरभ, जो युगों तक मानवता को आनन्द देता रहेगा। प्रसादजी राष्ट्रीय होते हुए भी अपनी सांस्कृतिक धारणाओं में अन्तर्राष्ट्रीय हैं। उनका साहित्य मानवता की व्यापक और उदात्त भूमि पर खड़ा है। प्रसाद ने हीगल के अनुसार अपने जीवन को ही काव्य बना दिया।

प्रेमचन्दजी ने उनके नाटकों को देखकर आक्षेप लगाया था कि ये गड़े मुर्दे

उखाडते है, किन्तु 'कंकाल' के निकलने पर उन्होंने उसकी प्रशंसा की। साथ ही प्रसादजी से क्षमा माँगते हुए कहा था कि यदि मेरी कटु आलोचना से आप हिन्दी को ऐसी महान् कृतियाँ दे दिया करें, तो मैं सौ बार आलोचना करूँगा। अपने युग के ये दोनो महान् रचनाकार प्रातःकाल बेनियाबाग मे मिलते थे। 'गीतिका' का प्रथम संस्करण लगभग 1936 में निकला था। प्रसादजी ने उसकी भूमिका मे लिखा, "निरालाजी हिन्दी-कविता की नवीन धारा के कवि है और साथ ही भारती-मन्दिर के गायक भी है। उनमे केवल पिक की पंचम पुकार ही नही, कनेरी की सी एक ही मीठी तान नही, अपितु उनकी गीतिका मे सब स्वरो का समावेश है ।"

कविता के क्षेत्र मे वे किसी कवि विशेष से प्रभावित नही हुए। "संस्कृत मे कालिदास के काव्य से उन्हे प्रेम था और वे प्रायः उसका अध्ययन करते रहते थे। इसके अतिरिक्त पंडितराज के भामिनीविलास से उन्हे विशेष प्रेम था, जिसका छन्द 'अये जलधिनन्दिनी' वे प्रायः मित्रो को सुनाया करते थे।"[12] हिन्दी मे वे भारतेन्दु की भावात्मक प्रणाली की प्रशंसा करते थे। रीतिकाल के कवियो में भी उन्हे घनानन्द, देव आदि की भावपूर्ण रचनाओ में रुचि थी। 'बदरा बरसे, ऋतु मे घिरि कै, नित ही अँखियाँ उघरी बरसे' उनके मित्रों ने कई बार उनके मुख से सुना था। उर्दू कविता में शमा और परवाना के प्रसंग को वे अनेक प्रकार से कहते थे। जिस समय प्रसाद साहित्य में कार्य कर रहे थे, रवीन्द्र की पर्याप्त ख्याति थी। एक बार वे काशी आये हुए थे। प्रसादजी उनसे मिलने अर्दली बाजार के टैगोर-निवास मे गये। लगभग दो घंटे तक बातचीत होती रही। उसी समय गुरुदेव ने बताया था कि हिन्दी मे वे कबीर आदि से अधिक प्रभावित है और उन्होंने स्वीकार किया था कि उन्हे वैष्णव कवियों से प्रेरणा मिली है। प्रसादजी ने हिन्दी की प्रगति के विषय में कहा था कि आज हिन्दी का कवि परम्परा का स्वीकारता है किन्तु उसमें नूतनता है।

आज 'प्रसाद मन्दिर' पर नागरी प्रचारिणी सभा का प्रस्तर लगा हुआ है, जिसमे उन्हे 'हिन्दी की नवीन शैली का प्रवर्तक' कहा गया है। प्रसाद कवि और व्यक्ति दोनों रूपों में महान् है, इसे जान लेने पर उनकी रचनाओ के साथ न्याय किया जा सकता है। 1940 ई० में निरालाजी ने आदरणीय प्रसादजी के प्रति लिखा था :

> किया मूक को मुखर, लिया कुछ, दिया अधिकतर
> पिया गरल पर किया, जाति साहित्य को अमर।

प्रसादजी की रचनाओं में उनकी चेतना निहित है। प्रेमचन्दजी ने कहा है, "लेखक के पास होना ही क्या है, जिसे वह अलग-अलग बाँट दे। लेखक के पास तो उसकी तपस्या ही होती है, वही सबको वह दे सकता है। उससे सब लोग लाभ भी उठाते है। लेखक तो अपनी तपस्या का कुछ भी अंश अपने लिए नही रख छोड़ता। और लोग जो तपस्या करते है, वह तो अपने लिए। लेखक जो तपस्या करता है,

उससे जनता का कल्याण होता है। वह अपने लिए कुछ भी नहीं करता।"[15] प्रसादजी के जीवन की विशेषता यह थी कि उनके भाव और अभिव्यक्ति म बहुत अन्तराल नही है। स्वच्छन्दतावादी कवि न यथार्थ भूमि पर खडे होकर जिस सार्वभौमिक साहित्य का निर्माण अपनी कुशल तूलिका से किया है वह आनेवाली मानवता को प्रेरणा देता रहेगा। इस महाकवि न किसी परम्परा विशेष का अनुमोदन नहीं किया और उसका व्यक्तित्व ऐसा है कि उसका अनुकरण भी सम्भव नही।

सदर्भ

1 गवर्गमन गरे प 320
2 सुमित्रा जुलाई 1951 प्रसा, का व्यक्तित्व लेख
3 सगम 18 फरवरी 1951 प 41
4 जो सन लाइ म आ । ग्रा गा गपटूग भाग 1 प 6
5 नन्ददुलार वाजपेयी जयशकर प्रसाद पृ 14
6 रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि भाग 2 पृ 145 155
7 सगम (प्रसाद स्मृति अक) 18 फरवरी 1951 प 42
8 एमिल लुडविग गरे प 82
9 जागरण 31 अक्टूबर 1932
10 आँसू पृ 6
11 जागरण 31 अक्टूबर 1932
12 नईधारा फरवरी 1951
13 शिवरानी प्रेमचन्द घर म पृ 340

'इन्दु' की प्रगति

प्रसाद का साहित्य एक क्रमिक विकास के रूप में सम्मुख आता है। वह निरन्तर भावना तथा कला के क्षेत्र में गतिमान होता है। 'चित्राधार' का कवि अन्त में 'कामायनी' के प्रौढ़ रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित होता है। 'इन्दु' की फाइलों में प्रसाद के व्यक्तित्व विकास का इतिहास निहित है और इस दृष्टि से इन पत्र पत्रिकाओं का अध्ययन आवश्यक है। प्रसाद के कुछ पूर्व ही गुप्तजी, हरिऔधजी, श्रीधर पाठक आदि कवि आचार्य द्विवेदी की छाया में कार्य कर रहे थे। 'सरस्वती' पत्रिका इस धारा का प्रतिनिधित्व करती है। 'इन्दु' के साथ छायावाद युग का आरम्भ होता है।

प्रसाद के जीवनवृत्त से ज्ञात होता है कि नौ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने एक सवैया ब्रजभाषा में लिखकर अपने गुरु 'रसमयसिद्ध' को दिखाया था। यद्यपि उस समय खड़ीबोली को साहित्य की भाषा बनाने का प्रयत्न हो रहा था किन्तु अभी तक वह अपनी निर्माणावस्था में ही थी। गद्य के क्षेत्र में तो खड़ीबोली का स्वीकार किया जा चुका था किन्तु काव्य का माध्यम प्रायः ब्रजभाषा बनी हुई थी। द्विवेदीजी के प्रयास से उसमें व्याकरण आदि की दृष्टि से सुधार हुआ था किन्तु लालित्य और सरसता का अभाव था। उसके रूखेपन के कारण शृंगार रस के कवित्त और सवैयों में अब भी ब्रजभाषा चल रही थी। इसके अतिरिक्त काव्य गोष्ठियों में समस्यापूर्तियों का प्रचलन था। स्वयं प्रसादजी के यहाँ संस्कृत, हिन्दी, फारसी के कवि अपनी रचनाएँ सुनाते थे। वास्तव में कवि के जीवन की यही प्रथम प्रेरणा थी। इस प्रकार काव्य की दृष्टि से अधिक परिवर्तन इस समय भी न हुआ था। हरिऔधजी, गुप्तजी आदि ने अभी यही कार्य आरम्भ किया था। ऐसी स्थिति में प्रसादजी ने ब्रजभाषा में 'कलाधर' उपनाम से कविता आरम्भ की। कवि ऐसे वैभवपूर्ण और समृद्धिशाली वातावरण में उत्पन्न हुआ था कि अल्प आयु में ही जीवन की विषमता, देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान सम्भव नहीं था। इस कारण आरम्भिक काव्य में घर के वातावरण की छाया है। परिवार में होनेवाली शिव की भक्ति से भी कवि अनुप्राणित हुआ और यहाँ भक्ति भावना को स्थान मिला। साथ ही परम्परा से चली आती शृंगारिकता भी मिलती है। किन्तु यहीं हमें कवि की प्रतिभा

के सकेत भी प्राप्त होते है।

प्रसाद की कविता लुक-छिपकर आरम्भ हुई। वे दूकान पर बैठे-बैठे हिसाब के बहीखातों पर लिखते थे। सरस्वती और लक्ष्मी का मिलन प्रसाद के जीवन की विशेषता है। जब कभी बडे भाई हिसाब के साथ कविता की पंक्तियाँ देख लेते, तो मुस्कराते, कहते, 'लडका है, ठीक हो जायगा।' अपने गुरु 'रसमयसिद्ध' के कहने मे प्रसाद ने एक-दो बार कवि-समाज के बीच अपनी कविता सुनाई थी। वे आशुकवि भी थे। एक बार उनके घर पर ब्रजभाषा के कुछ कवि बैठे थे और एक समस्या पर विचार हो रहा था। प्रसादजी ने वही बैठे बैठे समस्यापूर्ति की और एक सवेया लिखकर इस प्रकार सुनाया :

भई ढीठ फिरै चल चचल ह्वै, यह रीति 'प्रसाद' चलाई नई।
नई देखि मनोहरता कतहूं, थिरता इनमे नहि पाई गई।
गई लाज स्वरूप सुधा छवि वै न तबो इनको कुटिलाई गई।
गई खोजत आर ही टोर तुम्हे अँखिया अब तो हरजाई भई।।

उस समय प्राय: कविता के प्रकाशन का सहज साधन इस प्रकार की गोष्ठियाँ थी। हिन्दी समाचार-पत्रो की दशा शोचनीय थी। उनके शैशव-मरण के कारण प्राय: व्यक्ति पत्र निकालने का साहस न करते थे। धीरे-धीरे स्थिति मे परिवर्तन आया। प्रथम बार प्रसाद की कविता, 'भारतेन्दु' (जुलाई 1906 ई.) मे प्रकाशित हुई :

सावन आए वियोगिन को तन,
आली अनग लगे अति तावन।
तावन हीय लगी अबला
तडपै जब बिज्जु छटा छबि छावन।।
छावन कैसे कहूँ मै विदेस
लगे जुगुनू हिय आग लगावन।
गावन लागे मयूर 'कलाधर'
झूँपि के मेघ लगे बरसावन।।

आरम्भ

प्रसादजी के कवि-जीवन का वास्तविक आरम्भ 1909 ई. से होता है। उन्होंने इसी समय एक मासिक पत्र के प्रकाशन की व्यवस्था की। इसके सम्पादकत्व का भार उन्होंने अपने भाजे अम्बिकाप्रसाद गुप्त को सौपा। इसका प्रथम अक कला 1, किरण 1, श्रावण शुक्ल द्वितीया सवत् 1966 को प्रकाशित हुआ। इसका लक्ष्य कवि प्रसाद ने अपनी कविता में इस प्रकार व्यक्त किया :

रञ्जन चित्त चकोरन को, हलसावन भावनपूरो अनिन्दु है
मोहन काव्य के प्रेमिन के हित साँच सुधारस को बलिबिन्दु है
ज्ञान प्रकाश प्रसार हिए बिच, एसो जो मृगअंकन तमबिन्दु है
काव्य महोदधि ते प्रकट्यो रस रीति कला युत पूरन इन्दु है।

इस प्रकार प्रसाद ने काव्य में रस, रीति और कला के समन्वय को महत्त्व दिया। इस कविता में ब्रजभाषा के शब्दों को नवीनता दी गयी है। ज्ञान, प्रकाश आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। साथ ही अभिव्यंजना में एक मौलिकता है। काव्य को भारतीय परम्परा के अनुसार ग्रहण किया गया जिसके अन्तर्गत समस्त साहित्य आ जाता है। प्रसादजी ने व्यापक अर्थ में काव्य का प्रयोग किया है। 'इसी कारण काव्य के महासागर से यह इन्दु निकल रहा है जिसमें रस रीति और कला है। प्रस्तावना में कहा गया साहित्य स्वतन्त्र प्रकृति सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है। वह किसी की परतन्त्रता का सहन नहीं कर सकता। संसार में जो कुछ सत्य और सुन्दर है वही साहित्य का विषय है। साहित्य केवल सत्य और सौन्दर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और सौन्दर्य को पूर्ण रूप से चित्रित करता है आनन्दमय हृदय के अनुशीलन में और साहित्य आलोचना में उसकी सत्ता देखी जाती है।

इसी अंक में प्रसाद ने शारदाष्टक कविता, तथा प्रकृति सौन्दर्य लक्ष्य लिखे। शारदा अथवा सरस्वती वन्दना की परम्परा प्राचीन काल से चली आती है। संस्कृत के प्राय सभी कवियों की कविता में सरस्वती की वन्दना आरम्भ में ही की गयी है। कालिदास में कहीं कहीं शिव की उपासना भी है जैसे मालविकाग्निमित्र में अपने भक्तों को मनवांछित फल देने का अक्षय भण्डार पास होते हुए भी जो केवल मृगछाला ही पहनते हैं, अर्द्धभाग में अपनी प्रियतमा को स्थान पर भी संसार के भोगों में जिनका मन विरक्त है अपने आठ रूपों से संसार का पालन पोषण करके भी जिनमें अभिमान दूर है ऐसे संसार के स्वामी शंकरजी पाप की ओर भागने वाली हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त कर दें। रघुवंश, अभिज्ञानशाकुन्तल विक्रमोर्वशी आदि के आरम्भ में भी शिव वन्दना है। भक्त कवियों ने अपने आराध्य का प्रणाम किया। इन्हीं कवियों में सूर ने बन्दों चरन कमल हरिराई के रूप में अपनी श्रद्धा व्यक्त की। तुलसी ने काव्य को राम का प्रसाद मानकर अनेक देवों की वन्दना की। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन अथवा अन्य शृंगारी कवि भी शारदा अथवा सरस्वती का वन्दन करते हैं। केशव ने अपनी चमत्कारी शैली में बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय ऐसी मति उदित उदार कौन की भई' के द्वारा सरस्वती पूजा की। कविगण सरस्वती से आशीर्वाद लेते थे क्योंकि कविता उन्हीं का वरदान है। प्रसाद की इस शारदाष्टक कविता में इसी परम्परा का पालन है। शैव परिवार के होने के कारण वे शिव भक्त थे। नौ वर्ष की अवस्था में उन्होंने जो प्रथम रचना की थी उसमें शंकर की स्तुति है। 'इन्दु' की प्रथम किरण में शारदा से वन्दना करते हुए

कवि सम्भवतः पत्रिका के दीर्घ जीवन का कामना करता है। लगभग बत्तीस पंक्तियों की इस ब्रजभाषा कविता में शारदा को अनेक गुणों से विभूषित किया गया है। कवि ने भक्ति-भावना से प्रेरित होकर वन्दना की है और अपना 'कलाधर' उपनाम दिया है। इसके पश्चात् कवि सरस्वती के रूप-गुण का वर्णन करता है। शारदा रस की मूर्ति है। एक हाथ में शुभ्र कमंडल है, दूसरे में विद्यारस का पात्र। वीणा भी बज रही है। इन्द्रधनुष पर विद्युत् की भाँति शारदा विराजमान है. अन्त में कवि कहता है :

ब्रह्मलोकवासिनि, जय कविकुल कंठनिवासिनि
नन्दनबीच विहारिणि, जय मराल वर वाहिनि
ईशभक्त सुखदायिनि, ध्यावत नित प्रति नारद
विद्यामृत वरषाकारिणि, वन्दे जय शारद।

इस प्रकार हिन्दी की रीतिकालीन चमत्कारी परम्परा पीछे छूट गयी है। केशव से तो पितु के चार मुख, पूत के पाँच मुख और नाती के षट्मुखों से वर्णित किये जाने पर भी वानी जगरानी की उदारता बनी रहती है। प्रसाद की स्तुति कालिदास की परम्परा के अधिक समीप है। कवि भक्ति-भावना में वरदान माँगता है। इसके अतिरिक्त इसी किरण एक के 'प्रकृति-सौन्दर्य' लेख में कवि ने उसे 'ईश्वरीय रचना का एक अद्भुत समूह' माना है। लेखक के अनुसार वह अद्भुत रस की जन्मदातृ है। प्रकृति के पल-पल परिवर्तित स्वरूप में उसका सौन्दर्य निहित है। ग्रीष्म, पावस, शरद, शिशिर, हेमन्त, वसन्त सभी में प्रकृति की सुषमा है। अन्त में कवि प्रकृति को देवि मानकर उसकी अपार रूप-राशि पर आश्चर्यचकित होता है और उससे एक तादात्म्य स्थापित करता है : 'यह सब क्या है, हे देवि, यह सब तुम्हारी ही आश्चर्यजनक लीला है, इससे तुम्हारे अनन्त वर्ण रंजित मनोहर रूप को देखकर कौन आश्चर्यचकित नहीं हो जाता।' (चित्राधार : पृ. 125)।

आगे चलकर इस प्रकृति भावना का विकास हुआ। प्रसाद के काव्य में प्रकृति एक पृष्ठभूमि बनकर आयी है और उसका मानवीय भावनाओं के साथ तादात्म्य स्थापित होता है। प्रकृति का स्वतन्त्र वर्णन प्रसाद के काव्य में कम मिलता है और उसके व्यापक रंगमंच पर उनके पात्रों की भावनाएँ क्रीड़ा करती हैं। अरुण से कोकिल पूछ लेता है : 'छिः, कुमारी के सोए हुए सौन्दर्य पर दृष्टिपात करनेवाले धृष्ट, तुम कौन ?' प्रसाद के प्रतीक-विधान में भी प्रकृति के नाना रूपों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रद्धा मेघ-वन बीच गुलाबी रंग का बिजली का फूल है। काव्य-विकास के साथ-साथ कवि की प्रकृति चेतन और सजीव होती है। साहित्य में विश्व सुन्दरी प्रकृति में चेतनता का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद सौन्दर्य के शरीर एवं शम्भो का अनुकरण मात्र

है। वर्तमान हिन्दी मे इम अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी अभिव्यजना होने लगी है, वह साहित्य मे रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमे अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अह का इदम् से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।[1] कवि ने शैशव काल मे प्रकृति के जिस मनोरम रूप को देखा था, वह उसके काव्य मे बोल रहा है। इस प्रकार प्रकृति भावना का उत्तरोत्तर विकास होता गया।

दूसरी किरण मे प्रसाद का 'प्रेमपथिक' प्रकाशित हुआ। यह एक आख्यायिका-कविता है। कथा के आरम्भ मे पथिक अपने नगर को छोडकर चल पडता है। पी कहॉ की ध्वनि सुनते ही उसकी वेदना जाग्रत हो जाती है। वह बढता चला जाता है। सरोवर के निकट जल पीकर फिर चल पडता है। निर्जन प्रदेश मे बिखरी हुई प्रकृति की उस अनुपम सौन्दर्य-राशि को देखकर आनन्दित हो उठता है। पथिक को आभास होता है कि आज भी प्रकृति मे वही स्निग्धता है, उतना ही सौन्दर्य। कोई व्यक्ति नेपथ्य से पथिक को प्रेम-पथ की विषमता वता देता है। प्रेम का नवीन सन्देश पाकर उसे एक नयी चेतना मिलती है। तभी स्वय प्रेम विहँसकर कहता है कि प्रेम का सिन्धु विस्तृत है। अन्त मे कवि कहता है :

भाग दुर्बल दीन तन, अरु नैन से जलधार।
वही आशा छॉह रट, पुनि हाय बारहि बार।।

ब्रजभाषा की इस कविता में कवि ने प्रेम की परिभाषा प्रस्तुत की और उसे सार्वभौमिक स्तर पर लाकर प्रस्तुत किया। इस प्रकार शृगारिक पक्ष के दूर हो जाने से उसमे एक निर्माल्य आ गया है। प्रसाद का यही प्रेम दर्शन अन्त में आनन्दवाद मे परिणत होता है। प्रेम को जीवन की अमूल्य निधि माननेवाले इस कवि के काव्य-विकास मे 'प्रेमपथिक' का विशेष महत्त्व है। आगे चलकर माघ शुक्ल5, 1970 वि को स्वय कवि ने इसका परिवर्तित, परिवर्द्धित, तुकान्तविहीन हिन्दी रूप प्रस्तुत किया। वास्तव मे इसकी रचना 1962 वि में ही कवि ने कर ली थी।

तीसरी किरण (आश्विन शुक्ल स. 1966) मे शारदीय शोभा, प्रभात, रजनी, कमलिनी, भ्रमर, मानस कविताएँ प्रकाशित हुई। शारदीय शोभा के अन्तर्गत प्रभात का वर्णन किया गया है। मधुर समीर विलास कर रहा है। विहंग कलरव मे तन्मय है। दिवाकर अपने करो को पसारता जा रहा है। भ्रमरो का दल सरोरुह देखने में व्यस्त है। समस्त शस्यश्यामला जलकणो से पूरित है। इसी शारदीय शोभा के अन्तर्गत कवि ने रजनी का चित्रण किया है। सुसन्ध्या के आगमन से रजनी और भी सुन्दर प्रतीत हो रही है। प्रभात का सा विहगम-कलरव, दिवाकर की किरणे, अरविन्द-विकास, ओसकण अब नही दिखाई देते, फिर भी रजनी सुन्दर है। कमलिनी और भ्रमर पर केवल चार-चार पक्तियॉ है। परिवेष्टित, प्रकाश, स्वर, मधुपावलि आदि

शब्द खडीबोली के है। इसके अतिरिक्त कवित्त, सवैया का भी इसमे अनुसरण नही किया गया। इसी तीसरी किरण मे (पृ. 42) 'मानस' कविता है। मानस को कवि ने मानसरोवर की भाँति विमल और विशाल माना है। उसमे चिन्ता, हर्ष, विषाद, क्रोध, निर्वेद, लोभ, मोह, आनन्द आदि के भेद निवास करते है। मनुष्य इसी के पुलिन पर बैठकर अनोखी तरगो की मनमानी तान सुनता है। इसमे आशा के रत्न और मुक्ता भरे हुए है। कल्पना का भी स्रोत यही मन है, दुख मे इसे व्यथा होती है। उसमे अत्यन्त सूक्ष्म भावनाओ का विकास है। इस प्रकार कवि मानव-अन्तरतम के रहस्य छूने का प्रयत्न कर रहा है। इसकी अभिव्यजना शैली मे नवीनता है। कवि मे प्रगति दिखाई देती है। अन्त मे वह मानस को सम्बोधित करते हुए कहता है :

> तव तरग की सीमा यहि विधि नाहि,
> खेलत जा महँ चित मराल सुख चाहि।
>
> –चित्राधार : पृ 143

चौथी किरण (कार्तिक शुक्ल 2, सवत 1966) मे 'प्रेमराज्य' का एक खण्ड प्रकाशित हुआ जो 1909 ई मे पुस्तकाकार आया। सम्पादक ने लिखा था 'प्रबन्ध बडा होने के कारण तथा आप सज्जनो की सेवा मे उपहार देने हेतु उक्त बाबू साहब ने स्वय पुस्तकाकार पृथक प्रकाशित करा दिया है। अतएव अब आगामी बार से 'इन्दु' मे प्रेमराज्य प्रकाशित न होगा।' 'प्रेमराज्य' की कथा दो भागो मे विभाजित है। पूर्वार्द्ध के आरम्भ मे टालीकाट की युद्धभूमि का दृश्य है। सूर्यकेतु महाराज की सेना यवनो से युद्ध के लिए प्रस्तुत है। सिंहद्वार पर नरेश सेना का निरीक्षण कर रहे है। तभी पाँच वर्ष का छोटा सा बालक आ गया और नरेश ने पुत्र का मुख चूम लिया। वे बोले कि मै तुम्हे देखकर प्रिया का वियोग भूल जाता हूँ। वीरकर्म कर रहा हूँ, समझ नही पाता कि तुझे किसके हाथ सौप दूँ। तभी एक भील ने आकर राजा से उस बालक को माँग लिया और राजा ने राजकुँवर उसे दे दिया। युद्ध फिर आरम्भ हो गया। महाराज ने शक्ति का प्रदर्शन किया पर अन्त म वे मारे गये। कवि इसके पश्चात् भारतभूमि की महानता का वर्णन करता है। इक्ष्वाकु, दुष्यन्त आदि महान् यशस्वी राजाओ ने यही जन्म लिया। वह अनेक शूरवीरो की चर्चा करता है। ··"सेनापति रणक्षेत्र मे भाग आया था। उसने घर लौटकर देखा कि उसकी पत्नी नही है। उसने अपनी बालिका ललिता को चूम लिया। तभी उसे अपनी पत्नी का पत्र मिला कि तुम्हारे रहते महाराज स्वर्ग कैसे चले गये ? सेनापति को पश्चात्ताप हुआ; वह उत्तर की ओर चल पडा।'

यह भील जाति के जीवन की कथा है। उत्तरार्द्ध मे एक बाला अपने सहज सौन्दर्य से वन को उल्लसित कर रही है। वह प्रसूनो की माला गूँथ रही है। इतने मे एक युवक आकर उसके दृग मीच लेता है। बाला कह उठती है–'चन्द्रकेतु'। दोनो

प्रकृति की उस विशाल सुन्दर गोद में आनन्द मनाने लगते हैं। तभी भील बालक आकर कहते हैं--हम चन्द्रकेतु और ललिता को राजा-रानी बनाकर सभी सहचर प्रजा, अमात्य, सैन्य सेनानी होंगे। शिला के सिंहासन पर, वे मणि का हार और कुसुम तथा कलियों के मुकुट से सजाकर उन्हें बिठाते हैं। सभी बालक प्रसन्न हो उठते हैं। वे पथिकों को निर्भय लूटने को कहते है, पर चन्द्रकेतु कहता है :

अहो लखो यह विश्वेश्वर की सृष्टि अनूपम
शिवस्वरूप तिन माँहि, विराजत लखि सबही सम।

वह संसार को शिव का अव्यक्त स्वरूप मानकर प्रत्येक प्राणी को प्रेम करने का सन्देश देता है। शिव प्रेम का ही स्वरूप है। बालक उसे दादा कहकर आज्ञा स्वीकार करते हैं। तभी एक तपस्वी आकर चन्द्रकेतु और ललिता को वरदान देता है कि वे दोनों प्रेमराज्य के स्वामी बने रहें। बालकों के पिता वृद्ध भील भी उनकी अभ्यर्थना करते हैं। अन्त में :

वह किशोर नव चन्द्रकेतु ललिताहु किशोरी
तनमय निरखत परस्पर इकटक अद्भुत जोरी।
लखें नयन या प्रेमराज्य अति ह्वै आनन्दित
चमकि उठ्यो नव चारु चन्द्र तारागण वन्दित।

—चित्राधार : पृ. 69

पाँचवीं किरण (मार्गशीर्ष शुक्ल 2, संवत् 1966, पृ. 77) में 'कल्पना सुख' कविता प्रकाशित हुई जिसमें उसे सुखदान और मनुष्य जीवनप्रान कहा गया है। प्रत्यक्ष, भावी, भूत सभी को रंगने की शक्ति इसमें है। विश्व कल्पना की छाया में विश्राम करता है। वह व्याकुल नर का मीत है। शैशव के मनोहर चित्रों को अंकित करने की शक्ति उसमें है। आशा और स्फूर्ति का संचार इसी के द्वारा होता है। मनुष्य को यही आकर सुख मिलता है। अन्त में कवि कल्पना को विकसित रूप में देखता है :

कहूँ प्रेममय संसार। नव प्रेमिका को प्यार।
कल्पित सुखाया चित्र। बहु रचहु तुम जगमित्र।

—चित्राधार : पृ. 141

इस प्रकार कवि कल्पना की व्यापकता का अंकन करता है। इसी अवसर पर कवि की स्वतन्त्रता का आभास मिल जाता है। अन्तिम पंक्तियों में चित्र और मित्र का प्रयोग साम्य के आधार पर किया गया है। यही प्रवृत्ति क्रमश: विकसित होकर प्रसादजी को छन्दों की स्वतन्त्रता प्रदान करती है। छायावाद-युग में कल्पना कवि की आराध्यदेवी थी। भक्ति की परम्परा पीछे छूट चुकी थी। प्रसाद के आगामी चरण

का आभास इस स्थान पर मिल जाता है। छायावादी कवियों ने कल्पना को सराहा है

> कल्पना के कानन की रानी -निराला
> कल्पना न य शिशु नादान -पन्त

इन्दु किरण (पौष संवत् 1966, पृ 85) में वनवासिनी बाला प्रकाशित हुई जो एक लम्बी कविता है। आरम्भ में कण्व महर्षि का तपोवन सुशोभित है। रसाल, कदम्ब, नारंगी, अशोक आदि के वृक्ष लगे हुए हैं। मालती, चम्पक, नवमल्लिका के सुन्दर कुसुम सुगंधित हो रहे हैं। पवन सौरभ का सन्देश वहन कर रहा है। प्रियम्वदा और अनसूया मालिनी के तीर बैठी हुई हैं। दोनों के मुख पर पवित्र भाव है। वे पुष्प मनोहर वनस्थली सुन्दर प्रतीत होती है। तभी प्रियम्वदा कहती है कि सामने की कुसुमकलिका ... में ... भरकर मुरझाई जा रही है। इनमें सब कुछ मकरन्द, पराग, सुन्दर रूप, सरस सभी कुछ है, किन्तु शुष्क परिमल पर मधुकर ... नहीं ... अनसूया अपनी सखी ... अन्य सुननेवाला ... कौन देखने आयेगा। ... शकुन्तला ... प्रियम्वदा ... शकुन्तला ... वनबाला ... तभी कण्व ... अग्निहोत्रशाला में चला जाता है। वे दोनों भी ... जाती है। गौतम ऋषि को प्रणाम ... शाप से मुक्त हो गये हैं, शीघ्र ही आयेंगे। तभी शकुन्तला, दुष्यन्त और उनके पुत्र भरत आश्रम में पहुँचते हैं

> शकुन्तला, दुष्यन्त, बीच में भरत सुहावन
> धर्म शान्ति आनन्द मनहुँ सोहहिं छवि आवत।

सखियाँ आकुल होकर गले मिली। उस शुद्ध तपोवन में करुणा और प्रेम का प्रवाह उमड़ आया। श्रद्धा भक्ति और सरलता एक ही स्थान पर एकत्र हो गये। प्रियम्वदा भरत को गोद में लेकर बारम्बार उसका मुख चूम लेती थी। अनसूया शकुन्तला के साथ थी। वे सरलस्वभावा वनवासी वनिताएँ अनेक प्रश्न करती जा

रही थी। प्रियम्वदा ने दुष्यन्त को उपालम्भ दिया। शकुन्तला दोनो को समझाने लगती है। इसी अवसर पर कवि प्रसाद नारी के प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं। शकुन्तला कहती है :

अब यह मेरी एक विनय धरि ध्यान सुनै तू
इनके विगत चरित्रन को नहि नेक गुनै तू।
जामे फिर नहि बिछुरै, सब यह ही मति ठानो
सदा हमारे संग चलो अति ही सुख मानो।

यज्ञ अग्नि प्रज्वलित हो उठी थी। सभी ने उसे प्रणाम किया। अन्त मे शकुन्तला ने अपने पिता महर्षि कण्व से दोनो सखियो, प्रियम्वदा और अनसूया को माँग लिया। कण्व ने आशीर्वाद दिया, सभी चल दिये। इस प्रकार 'वनवासिनी बाला' मे प्रसाद ने कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् का सक्षिप्त हिन्दी सस्करण प्रस्तुत किया। वनबालाओ के सौन्दर्य वर्णन मे कवि की मौलिकता झलक रही है। भाषा मे परिमार्जन हो रहा है। महानाटक का एक खंड कवि ने कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया। इसस यह स्पष्ट है कि प्रसादजी इस समय तक कालिदास का गहरा अध्ययन कर चुके थे।

'इन्दु' को पर्याप्त ख्याति हो चली थी और उसने अपना एक स्थान बना लिया था। उसके प्रत्येक अंक पर लिखा हुआ आदेश वाक्य 'रस, रीति कलायुत' इसके उद्देश्य को स्पष्ट करता है। कवि ने स्वय उसकी प्रथम किरण की प्रस्तावना मे साहित्य का मानदंड स्थापित किया था। आरम्भ मे प्रकाशन सामग्री की कठिनाई होने से प्रसादजी स्वय अपनी अनेक रचनाएँ दे दिया करते थे, पर 'इन्दु' की नीव जमने से यह कठिनाई न रही। आठवीं किरण (फाल्गुन शुक्ल स 1966) होलिकांक थी। इसमे प्रसाद ने भक्ति (पृ 122) शीर्षक लेख दिया था। कवि ने श्रद्धा के जिस महान् स्वरूप का विकास 'कामायनी' मे प्रस्तुत किया उसका आभास इस लेख द्वारा मिल जाता है। श्रद्धा-भक्ति म समन्वय स्थापित करते हुए प्रसादजी उन दोनो मे अधिक अन्तर नहीं मानते। सस्कृत के 'श्रद्धाभक्ति ज्ञानयोगादवेहि' से कवि के ज्ञान का परिचय मिलता है। वह अध्ययन की ओर अग्रसर दिखाई देता है। अन्त मे महर्षि उपमन्यु और परमेश्वर का कथानक भी उसने प्रस्तुत किया है। कवि जीवन के अल्पकाल म ही उत्थान पतन देख चुका था, विपत्ति के निर्मम प्रहार उसने झेले थ। ऐसी अवस्था म कुलगत शैव होने के कारण भक्ति मे आस्था हो जाना स्वाभाविक है। प्रसादजी कहते है "उस चरण के सौरभ मे तुम्हारी मानसिक निर्बलता दूर हो जायगी, तुम्हारा घ्राण अपूर्व सुगन्ध से आमोदित हो जायगा। तुम्हारे पास चिन्ता, निराशा कभी फटकने न पावेगी।" ('चित्राधार', पृ 138)। इस प्रकार जीवन के निराशापूर्ण क्षणो म भक्ति भावना ने कवि को साहस दिया। इसी होलिकांक मे प्रसाद की 'रसाल मजरी' कविता (पृ 129) प्रकाशित हुई। फाल्गुन के अवसर पर आम्रमजरी दिखाई देने लगती

है। वृक्ष मधुभार से झुक-झुक जाते हैं; पवन मंजरी का सौरभ बिखेरने लगता है। कवि का विचार है कि ऋतुनायक की कृपा से ही रसाल मंजरी को नवल रूप प्राप्त हुआ है। इसमें भीना मकरन्द है। सम्भवतः किसी मधुकर ने मकरन्द नही लिया। कवि मलयानिल से धीरे-धीरे आने के लिए कहता है। कोकिल से वह विनय करता है कि तनिक दूर हटकर बैठो। तुम्हारा पंचम राग सुनते ही मंजरी हिल उठेगी। तुम्हारे नेत्रो की लाली वह सहन नहीं कर सकती। वह मधुकर को समझाता है कि तुम्हारी मधुपान की क्रिया अच्छी नहीं है। अन्त मे कहता है :

चंचलता तजि देहु अजू अपनी विचारि कै
मजु मंजरी पाइ भार दीजे सम्हारि कै।
—चित्राधार : पृ. 147

इस प्रकार कविता मे कवि कोकिल, मलयानिल, मधुकर आदि से तादात्म्य स्थापित करता है। जड़ में चेतनता का आरोप उसने पूर्व ही आरम्भ कर दिया था। इस स्थल पर वह वार्तालाप करने लगता है और यह संकेत दे जाता है कि 'चंचलता छोड दो।'

नवी किरण से 'इन्दु' ने नये वर्ष मे प्रवेश किया। इसमें कवि की 'ब्रह्मर्षि' कथा प्रकाशित हुई जिसका आधार पौराणिक है। इसमे विश्वामित्र की महानता का बखान है। इसी कथा का अन्य स्वरूप प्रसाद ने 'करुणालय' में लिया है, जिसमें शुनःशेफ का वर्णन है। पौराणिक आधार पर लिखी इस कथा में कवि की प्रांजल भाषा के दर्शन होते है। 'ब्रह्मर्षि' कवि की प्रथम कथा है।

दसवी किरण (वैशाख शुक्ल 2, . पृ. 161) मे 'अयोध्योद्धार' नामक एक अन्य लम्बी कविता प्रकाशित हुई। आरम्भ म कुशावती नगरी का वर्णन है। सुन्दर प्रकृति चारो ओर फैली हुई है। विशाल भवनो मे रत्नजटित शृंगार है। राज्यप्रासाद म कुश राजकुमार शयन कर रहे है। प्रातःकाल कोई कामिनी कहती है : हरिश्चन्द्र, दिलीप, रघुवंश के तुम वंशज हो। कवि वाल्मीकि ने उस कीर्ति का यशोगान किया है। राम के सुराज्य का ही जग म नाम रहेगा। अन्त में कहती है :

तुम स्वाइ रहे कुशवती, अरु सोये रघुवश की ध्वजा
उठि जागहु सुप्रभात है, जेहि जागे सुख सोवती प्रजा।

कुश उसके दुख-कष्ट का कारण पूछते है। वह कहती है कि अवध नगरी आज पराधीन है, उसका वैभव समाप्त हो गया। उसका भाग्य ही बदल चुका है, आप उद्धार कीजिए। कुश ने वचन दिया कि वे कल ही अवध को उबारेंगे। दूसरे दिन कुश ने कुमुद को युद्ध मे परास्त किया और इस प्रकार अयोध्या का उद्धार हुआ।

अन्त मे कुश-कुमुदिनी का परिणय हो जाता है। अयोध्योद्धार मे 'रघुवश' के एक कथा-खण्ड का वर्णन मिलता है। इसी के साथ राम सम्बन्धी संस्कृत ग्रन्थो का उल्लेख है, जो कवि के अध्ययन का परिचायक है। उसने यह स्वीकार किया है कि इसमे कालिदास की परम्परा का पालन है। 'रघुवश' के सोलहवे सर्ग के आरम्भ मे कहा गया है कि लव आदि सात रघुवश वीरो ने सबसे बड़े भाई कुश को प्रमुख बना दिया क्योकि भ्रातृप्रेम उनके कुल का धर्म रहा है। इस कविता मे कवि की रचना-शक्ति का आभास मिलता है कि वह प्रबन्धकाव्य तक जा सकता है। इसमे उसकी कल्पना, नवीन योजना प्रस्फुटित हुई है। उसने संस्कृत के प्रियम्वदा, सुन्दरी तथा मालिनी आदि छन्दो का प्रयोग किया है। इसमे राष्ट्रीय भावना का भी आभास मिलता है। युवती की अयोध्या की हीन दशा का वर्णन तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति के निकट है। इस प्रकार सम्भव है इस कथा से कवि का सांकेतिक अर्थ भी रहा हो।

इसी अवसर मे सम्राट् सप्तम एड्वर्ड के निधन पर सम्पादक ने हार्दिक शोक प्रकट किया। इसी समय प्रसाद ने 'शोकोच्छ्वास' नामक एक छोटी सी कविता पुस्तक भी प्रकाशित की थी। उसमे स्वर्गीय सम्राट् सप्तम एडवर्ड का चित्र प्रस्तुत किया गया था। उसके दो भाग थे। प्रथम भाग 'अश्रु प्रवाह' का [illegible] पंक्तियाँ थी जिसमे नरपालक सप्तम एडवर्ड के निधन का कवि अनुमान कर लेता है। सम्राट् को शील सागर कहा गया है। अन्त मे कवि उनकी आत्मा की शान्ति के लिए कामना करता है।

ग्यारहवी किरण (ज्येष्ठ संवत, पृ 181) मे प्रसाद जी ने 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' शीर्षक लेख मे काव्य की विवेचना की। 'भारत' शीर्षक कविता मे प्रथम बार उनकी राष्ट्रीय भावना स्पष्ट रूप मे सम्मुख आती है। कवि को दुःख है कि उनका सुन्दर भारत आज नष्ट हो गया है। वह भारत भाग्य [illegible] हिमगिरि [illegible] होने की अनुनय करता है। अन्तिम पंक्तियाँ है

> बहुत दिवस दुख महँ बीते दे सुख [illegible]
> उदय होहु हिमगिरि पर भारत भाग्य दिनेश।

एडवर्ड सप्तम के निधन पर लिखा गया दूसरा राग 'समाधि-सुमन' है। इसमे चालीस पंक्तियाँ है। कवि धरा को कोमल हो जाने के लिए कहता है क्योकि उसी मे सम्राट् सो रहे है। 'शोकोच्छ्वास' और 'समाधि सुमन' को बाद मे कवि ने एक पुस्तिका रूप मे प्रकाशित करवाया। इस प्रकार कवि ने सम्राट् के निधन पर शोक प्रकट किया, साथ ही भारत की दुर्दशा से क्षुब्ध होकर राष्ट्रीय उद्बोधन का गीत गाया। यही दशा राजनीतिक क्षेत्र मे थी। देश-विदेश के पर्यटन से नेताओ को नया प्रकाश मिला था। भारतेन्दु ने भी इस ऋण का स्वीकार किया, पर साथ ही उन्हे दुख था कि 'पै धन बिदेस चलि जात यहै अति ख्वारी।' भारतीय नेताओ मे अंग्रेजी

के प्रति कृतज्ञता की भावना थी, किन्तु साथ ही विद्रोह भी। कुछ समय तक एक कशमकश चलती रही पर अन्त में गांधी की अहिंसा विजयी हुई। वे हिंसा के पक्ष में नहीं थे और वैधानिक उपायों से स्वतन्त्रता चाहते थे। सन् 1912 में लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका गया। इस पर बाँकीपुर में कांग्रेस ने सभापति के भाषण के बाद, बरखास्त होने के रिवाज को तोड़कर इस घटना पर दुख प्रकट किया। साथ ही प्रेस ऐक्ट का कई सालों तक कांग्रेस ने विरोध किया। 1914 में इसी आशय का एक प्रस्ताव पास किया गया : 'हिन्दुस्तान के लोगों ने जिस राजभक्ति का परिचय दिया है, उसे देखते हुए यह कांग्रेस सरकार से प्रार्थना करती है कि वह इस राजभक्ति को और गहरी व स्थिर बनावे…।'[2] प्रसाद की इन दो कविताओं में राजभक्ति और राष्ट्रीयता का समन्वय है।

बारहवीं किरण में 'स्मृति' शीर्षक कविता है। उद्धव ब्रज से लौट आये और कृष्ण को वृन्दावन की कथा सुनाने लगे। वे कहते हैं : वृन्दावन में सघन कुंज और सुन्दर प्रसून विकसित हैं। मधुकरगण मदहोश होकर नृत्य करते हैं। अनेक प्रकार के सुन्दर वृक्ष वहाँ शोभायमान हैं। किन्तु ब्रज की बालाएँ अत्यन्त दुखी हैं। वे तुम्हे खोजते खोजते व्याकुल हो उठती हैं। कृष्ण उस कथा को सुनकर द्रवीभूत हो गये; बोले, यह गाथा सुनकर आज भी मन विह्वल हो जाता है। मुझे उसी सुखकारी वृन्दावन तथा गोपिकाओं के सहवास का स्मरण हो आता है। हम वन-वन मे गलबाहीं देकर विहार करते थे। मेरी ही चितवन में वे सम्पूर्ण संसार भूल जाती थीं। इच्छा है कि एक बार पुनः यमुना के तीर, तमाल के कुंजों मे, ब्रजबालाओ के अंक में विहार करूँ; 'ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं' जैसी स्थिति :

> तरु छाया में वंशीवट में, वृन्दावन में,
> एक बार विहरौं फिर ऊधो वा मधुवन में।

भ्रमरगीत के विख्यात कथानक का एक अंश इस कविता मे लिया गया है। कवि अन्त में कृष्ण को प्रेम विभोर अवस्था में चित्रित करता है। वे वृन्दावन के उस अतीत को एक बार पुनः पा लेने के लिए विकल हो जाते हैं।

इसी किरण में (208 पृ.) 'रसाल' कविता है जिसे कवि तरुवरराज कहता है। रसाल कानन में मंजरी की मधुर गन्ध भरी रहती है, मधु लोभी मधुकर गुंजार करते हैं। ग्रीष्म के निदाघ में श्रमित पथिक को सुशीतल छाया मिलती है। हरित सघन रूप को निरखते ही पथिक के हृदय में सुख बरस जाता है। नवलदल देखते ही उसका तन पुलकित हो उठता है। इस वर्ष 'सरोज' (1910 ई.) के प्रथम अंक के लिए कवि ने लिखा था :

> अरुण अभ्युदय से हो मुदित मन, प्रशान्त सरसी में खिल रहा है
> प्रथम पत्र का प्रसार करके, सरोज अलिगण से मिल रहा है।

कला 2, किरण 1, श्रावण शुक्ल 2, सवत् 1967 से 'इन्दु' पत्रिका अपने द्वितीय वर्ष मे प्रवेश करती है। सम्भवतः इस एक वर्ष के जीवन को कवि ईश कृपा मानता है। वह प्रार्थना करता है और महेश्वर शकर के अनेक रूप प्रस्तुत करता है। मस्तक पर विशाल जटाएँ है, मानो शरद् के घन; नागचर्म परिधान है, कण्ठ मे नागहार। कवि कहता है : 'हे अनाथनाथ, कामदेव का दमन करनेवाले, तुम्हे मै प्रणाम करता हूँ। वेद के अनुसार तुम अनादि, अनन्त पुरुष हो। नाथ, तुम्हारा अन्त ही नही मिलता। सुनता हूँ, आपका निवास श्मशान मे भी है।' ··· इस प्रकार कवि शकर के सभी रूपो का वर्णन करता है। अन्त मे पुनः शिव शब्द का माहात्म्य बताता है : हे देव, दीन केवल तुम तक ही आ सकता है, तुम्हारा औढर नाम है न। मै आज तक इधर-उधर भटकता रहा, कभी शान्ति न पा सका।···

चन्द्रभाल सुचन्द्र नैन, त्रिनैन गिरीश, गिरीश
रक्ष रक्ष कृपाल पाहि, दयाब्धि हे जगदीश !

इस प्रार्थना से कवि की आन्तरिक भावनाओ का परिचय प्राप्त होता है। इस वीच वह ससार के अनेक कष्टो मे उलझ गया था और भगवान शकर से निवारण की प्रार्थना करता है। कवि का यह आत्मसमर्पण परिस्थितिजन्य हे। यही भक्ति क्रमश दर्शन मे परिवर्तित होती है। इसी किरण मे (पृ 4) 'सन्ध्यातारा' कविता प्रकाशित हुई। कवि अन्य प्राकृतिक अवयवो की भाँति इसे भी सम्बोधित करके कहता है . 'तारा, तुम सुन्दर वर्ण होकर गगन मे झलक रहे हो, तुम्हारा रूप अत्यन्त सुन्दर है। अनुपम सन्ध्या सुकुमारी आशा के समान एक तारा ग्रहण करती हे। प्राची की तरुणी प्रभात मिलन की आशा स एकटक देख रही है। नीलघन चिकुर भार मे कामिनी दबी जा रही है। भयभीत नाविक को यह दीप पथ दिखा रहा है।'

इसके अतिरिक्त इसी किरण मे (पृ 12) 'पचायत' शीर्षक कथा और चम्पू लेख (पृ 15) भी हे। पचायत के आरम्भ मे मन्दाकिनी के तट पर रमणीक भवन मे स्कन्द और गणेश टहल रहे है; तभी नारदजी आ जाते है। विवाद बढ़ते देख वे कहते है कि पचायत निर्णय करेगी। नारद ने जाकर शकर से पूरी बात कह दी। शकर ने कहा कि अपने पिता को निर्णायक बनाओ। ब्रह्मा ने नारद को कलहकारी बताया और सभी को शकर के सम्मुख एकत्र होने का कहा। पचायत जम गयी थी· ब्रह्मा ने कहा कि ससार की परिक्रमा पूर्व ही कर लेनेवाला व्यक्ति महान् होगा। स्कन्द मयूर पर चल पडे। गणेश ने केवल माता-पिता की परिक्रमा की। ब्रह्मा ने निर्णय किया, उन्होने विश्वरूप जगज्जनक, जननी ही की परिक्रमा कर ली, सो भी तुम्हारे पहले ही।

'चम्पू' लेख का भी कारण है। प्रसाद के चम्पू की तीव्र आलोचना लाला भगवानदीन ने की थी। कवि ने इसी कारण यह विद्वत्तापूर्ण लेख प्रस्तुत किया।

अग्निपुराण, साहित्यदर्पण आदि मे चम्पू का वर्णन मिलता है। यह एक गद्य-पद्यमय रचना है जिसके 28 भेद माने गये है। अग्निपुराण के 'मिश्रं वपुरिति ख्यातं' के अनुसार वह एक मिश्रकाव्य है। प्रसाद गद्य-पद्यात्मक काव्य को चम्पू कहते हैं जैसे संस्कृत मे रामायण-चम्पू, भारत-चम्पू आदि। उन्होंने हिन्दी के 6 चम्पू भी गिनाए है।

इसी किरण में (पृ. 18) प्रसाद का 'कवि और कविता' लेख प्रकाशित हुआ। कवि इन दिनों भारतीय साहित्य के अध्ययन में लगा हुआ था। इसी कारण अब तक की रचनाओं में पौराणिक, प्राचीन कथाओं के रूपान्तर मिलते हैं, अथवा परम्परागत विषयों का प्रतिपादन। वन-मिलन, अयोध्या का उद्धार आदि मे कवि ने कालिदास से प्रेरणा ली। शारदीय शोभा, रसाल मंजरी, सन्ध्यातारा, प्रार्थना आदि प्राचीन विषय है। अभी कवि को नवीन कथावस्तु अधिक नही प्राप्त हो रही थी, किन्तु इन प्राचीन विषयो के प्रतिपादन मे प्रसाद की मौलिकता लक्षित होती हैं। नवीन उपमा, सुन्दर भाषा कवि की प्रतिभा का परिचय देते हैं। 'कवि और कविता' में प्रसाद ने अपने नये दृष्टिकोण को और भी स्पष्ट किया। वे कहते है : 'कवियो को लोगो ने सृष्टिकर्ता माना है···। वह संसार के साँचे मे नहीं ढलता किन्तु ससार को अपने साँचे मे ढालना चाहता है। मनुष्य के हृदय के लिए वह बडी सुन्दर सृष्टि रचता है, जिसमे प्रवेश करने से कविता-पाठक एक प्रकार वाह्यज्ञानशून्य होकर नित्य वसन्तमय कनक-कमल-मकरन्दपूर कानन में आनन्दमय समय व्यतीत करता है।' प्रसाद कवि की सृष्टि को विलक्षण चमत्कारिणी बताते हैं। इसी से सच्चा कवि अमर जीवन-लाभ करता है। वह कल्पना-प्रधान होता है। वह सौन्दर्य का आलोचक भी है। इस अवसर पर प्रसाद ने तुलसी के 'गिरा अनयन, नयन बिनु बानी' का उदाहरण दिया है। कवि का एक अन्य गुण वे प्रकृति-ज्ञान मानते है। प्रकृति से कवि का तादात्म्य हो जाता है। वाल्मीकि ने रामायण की रचना कुसुमित वन में की थी। कविता मे अपार शक्ति होती है; वह भाव परिवर्तन करा सकती है। सच्ची कविता से अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है।

कविता की एक रूपरेखा देने के पश्चात् प्रसाद उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार करते हैं। कविता प्रायः सब भाषाओ में पद्यमय देखी जाती है।[3] वेद छन्दमय हैं। इस पद्यमय रचना का कारण कवि उसके संक्षिप्त रूप, प्रभावमयता और चिरस्थायित्व को बताता है। चित्रकारी, संगीत आदि में कविता-जैसी शक्ति नही होती। उत्तररामचरित, शाकुन्तलम्, रामचरितमानस आदि से उदाहरण देकर प्रसाद कविता की अनुभूति पर विचार करते है। इसी स्थल पर उन्होंने कविता के दो भाग किए : कथामूलक, भावमूलक। कथामूलक काव्य में प्रायः ऐतिहासिक-पौराणिक आधार होता है। समयानुकूल अथवा आवश्यकतानुसार भाव का समावेश दिखाई पड़ता है। भावमूलक कविता में भाव की प्रधानता रहती है, जैसे वेणीसंहार नाटक। हिन्दी में उन्होंने श्रीधर पाठक के 'ऊजड़ ग्राम' को इसी भावमूलक विभाग के अन्तर्गत

रक्खा है। 'प्रेमपथिक' की कथा स्वयं 'एकान्तवासी योगी' के अधिक समीप है, जो गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' का अनुवाद है। प्रसाद नायिका-भेद से भरी शृंगार रस की कविता का विरोध करते हैं। शृंगार रस के विषय में लिखते हुए वे कहते हैं कि 'हिन्दी मे वैष्णव कवियों की प्रधानता है और उन्ही को कविता ब्रजभाषा की मूल है। सूर, केशव, तुलसी, तोषनिधि आदि वैष्णव कवि हैं। केवल नायिकाओ में शृगार रस को सीमित कर देने मे उसका सौन्दर्य नष्ट हो गया। वास्तव में कालिदास के शृंगार-वर्णन की व्यापकता उसे एक महान् काव्य बना देती है। ऋषिकन्या शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के हृदय मे जो आसक्ति उत्पन्न हुई उसे भी समाज बन्धन मे ले आने के लिए कविकुलगुरु कालिदास कैसा अच्छा लिखते है :

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्य्यमस्यामभिलाषि मे मनः
सताहि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।

प्रसादजी जयदेव के 'गीतगोविन्द' मे एक उदाहरण प्रस्तुत करते है। वे कहते है कि 'हिन्दी मे वसन्तकानन की मधुर शोभा है, पर गम्भीर तरगमय अनन्त महासागर की कल्लोलमालाएं दृष्टिगोचर नही होती है।··· अब आपको भावमयी उत्तेजनामयी अपने को भुला देनेवाली कविताओ की आवश्यकता है।' प्रसाद के काव्य विकास की दृष्टि से यह लेख महत्त्वपूर्ण है। प्रसादजी ने कवि के तीन गुण माने हैं—कल्पनाशक्ति, सौन्दर्य की आलोचना और प्रकृतिज्ञान। कवि ने शृंगार-रस का एक नवीन, उदात्त सस्करण प्रस्तुत किया। उनके आदर्श कालिदास हैं। इसमें सन्देह नही कि कवि ने जिस महान् उद्देश्य की घोषणा इस लेख मे की है, उसी के निर्वाह मे वह प्रयत्नशील रहा। इसी के पश्चात् (पृ. 24) 'वर्षा मे नदी कूल' कविता है। इसमे कवि ने त्रिपदी छन्द का प्रयोग किया। आरम्भ मे सुन्दर मेघो का वर्णन है। मलयानिल चला जा रहा है। कादम्बिनि सुन्दर रूप सँवारकर आ गयी है। नदी मे हिलोरे उठ रही है। उसकी धारा कल-कल करती हुई बही जा रही है। कवि उस सुन्दरता पर मुग्ध हो उठता है।

दूसरी किरण (भाद्रपद शुक्ल 2, सवत 1967) मे मुखपृष्ठ पर 'पावस' कविता मिलती है। पावस का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि सुन्दर कदम्ब पर चढ़ी हुई मालती की शोभा देखता है। शस्य-श्यामला पर सुमन बिखरे हैं। वसुन्धरा नव तृण-गुल्मों से शोभायमान है। यह हरितवितान वर्षा का आसन-सा प्रतीत हो रहा है। गिरिशृगों पर शिखी मेघों के साथ सुशोभित है। कोकिल की कुहू कुहू सुन्दर वाणी को भी लज्जित कर देती है। नदी कूलों मे दबी चली जा रही है। सुरभित पवन सभी को मदमत्त कर देता है, मानो मनोहर कामिनी शीतल कर से हृदय का स्पर्श कर रही हो।

अब तक 'कलाधर' 'प्रसाद' हो चुके थे। इस कविता मे कालिदास की भाँति

ऋतुवर्णन का प्रयास दिखाई देता है। यद्यपि ऋतुसंहार के वर्णन में मनोरम कल्पना-योजना है, किन्तु प्रसाद के इस पावस में भी एक चित्र प्रस्तुत हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस किरण में इन्द्रधनुष, चित्र, नीरद तीन अन्य कविताएँ हैं। 'इन्द्रधनुष' मे कवि उसके सप्तवर्ण का चित्र उभारता है जिसमें कई उपमाएँ हैं। सम्भवतः भानु के सप्तअश्व की यह वल्गा है अथवा मेघ-वाहन का धनुष। 'चित्र' कविता में एक आशा-भरे जीवन-दर्शन की नियोजना है। आशा की नदी का कूल नहीं मिलता। कुसुम स्वच्छन्द पवन के बिना नहीं खिलता। कमलाकर में चतुर अलि भूल जाता है। अन्त में कवि का सन्देश है :

मन को अथाह गम्भीर समुद्र बनाओ
चंचल तरग को चित से वेग हटाओ।

'नीरद' (पृ. 160) में कवि उसका एक चित्र खींचता है। इसमे कृषकजन को हर्षित करने की शक्ति है। प्रकृति प्रसन्न हो उठती है। चातक भी नाच उठे है। वास्तव मे नीरद जीवनदाता है। इस प्रकार प्रकृति की इन चार कविताओं में कवि धीरे-धीरे एक व्यापक रगमच पर आता प्रतीत होता है। खडीबोली का प्रयास आरम्भ हो गया है। इसी मे 'ग्राम' कहानी प्रकाशित हुई, जिसमें अंग्रेजी शब्द भी आये हैं।

तीसरी किरण (आश्विन शुक्ल 2, सवत् 1967) में दो कविताएँ हैं : 'विभो' और 'अष्टमूर्ति'। 'विभो' मे कवि ने ईश्वर से प्रार्थना की है : यद्यपि वह पातकी है, फिर भी दास। वह ज्ञान के प्रकाश की भिक्षा माँगता है। यहाँ पर प्रसाद की भक्ति भावना अधिक व्यापक हुई है। 'अष्टमूर्ति' में कवि प्रभो को धरा, कीलाल, वैश्वानर, आकाश, समीर, दिनेश, चन्द्र आदि रूपो मे देखता है। उसने उनके सर्वव्यापी रूप को जान लिया है और प्रार्थना करता है :

दुखी जनो के दुख को निवारि के
सुखी करे धर्म महा प्रचारि के।

—चित्राधार, पृ 139

इस प्रकार कवि की भक्ति भावना मे विकास दिखाई देता है। इसी में 'चन्दा' कहानी भी प्रकाशित हुई।

चौथी किरण (कार्तिक शुक्ल 2, संवत् 1967) मे मुखपृष्ठ पर 'शारदीय महापूजन' कविता है जिसमें शारदा की वन्दना की गयी है। उन्हें विश्वधारिणी, विश्वपालिनी, विश्वेशि आदि गुणों से अलंकृत किया गया है। दूसरी कविता 'विनय' है, कवि ईश्वर को वरदायक रूप में स्वीकार करता है। इन दोनों भक्ति-कविताओं के पश्चात् प्रसाद का 'कविता रसास्वाद' लेख है। पूर्व लेख 'कवि और कविता' में वे अपने नवीन दृष्टिकोण का प्रतिपादन कर चुके थे। लेख के आरम्भ में प्रसादजी

भारत को देखकर सम्राट् के आगमन की कल्पना करता है। वह शासन की बडाई भी करता है। 'दरबार' मे श्रीयुत पचम जार्ज और श्रीमती रानी मेरी को सिहासनारूढ दिखाया गया है। घर-घर मे आनन्द छाया है। कवि राजेश्वर से प्रार्थना करता है कि भारत को भी ध्यान मे रखिएगा : 'भारत को भी सुखी बना दो, रहे न आरत।' इसे प्रसादजी ने पुस्तकाकार भी प्रकाशित कराया था। इसके पश्चात् (पृ. 206) 'नववसन्त' कविता है। इसमे पूर्णिमा का वर्णन आरम्भ मे है। यमुना के जल मे इन्दु प्रतिविम्बित हो रहा है। निकट ही कुसुमकानन तथा शुभ्र प्रासाद है। मनोहर कुज मे एक सुन्दरी बैठी है। धृष्ट मारुत उसके अचल को उडा देता है। कामिनी अन्यमनस्क होकर टहलने लगी, तभी एक युवक आ गया ·

दृश्य सुन्दर हो गये, मन मे अपूर्व विकास था
आन्तरिक औ' बाह्य सबमे नव वसन्त विलास था।

इस लघु प्रेमकथा मे कवि ने मिलन का मधुर चित्र प्रस्तुत किया है। इसी के अनन्तर 'वसन्त-विनोद' शीर्षक से ब्रजभाषा की लगभग दस कविताएँ हैं। 'वसन्त' मे कवि प्रश्न करता है कि तूने कौन-सा मन्त्र पढ दिया ? पतझर ने रोष से जिन द्रुमो को पल्लवविहीन कर दिया था, उनमे तूने सुमन लगा दिये। 'चन्द्र' मे कवि ने चकोरी की ओर देखने की अनुनय विनय की है। 'कोकिल' मे कवि यह जानने हेतु उत्सुक है कि वह किसकी धुन लगाये है, किसे चाहता है। 'चातक' मे कवि प्रेमी के परिणाम पूछता है। सब सुधि बिसारि के घन की ओर देखनेवाले चातक को कौन-सा सुख मिल जाता है ? सिरिस सुमन कानन मे पुण्य मे पूर्ण प्रेम का पुज है। अपनी समस्त सुकुमारता को लेकर वह भ्रमर का विनोद करता है। तरुवर पथिको को छाया देता है। वह उदार तपसी है, फिर भी स्वार्थ मे मूढ नर उसे काट डालते है। इन कवित्तो मे प्रकृति के विभिन्न अवयवो का सौन्दर्य प्रश्न के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। 'आवाहन' और 'सुनो' मे प्रिय से निवेदन किया जा रहा है कि : 'बेगि प्रानप्यारे नेक कठ सो लगाओ तो।' इस प्रकार ब्रजभाषा के इन कवित्तो मे भाषा, छन्द परम्परागत होने पर भी कवि की व्यजना मे किचित मौलिकता है।

चौथी किरण (मार्च, 1912) ई मे सरोज, महाक्रीडा, करुणाकुज, सौन्दर्य आदि कविताएँ प्रकाशित हुई। 'सरोज' मे कवि ने प्रभात के सन्देश का वर्णन किया है। 'मनुष्य निर्लिप्त तथा कर्त्तव्य मे स्थिर हो', की ध्वनि प्रभाती से निकल रही है। 'महाक्रीडा' मे सुन्दर प्राची का वर्णन है। कल्पना कहती है कि यह महाशिशु-खेल है। इसके अनन्तर कवि चितचोर से वार्तालाप करता है। पुरुष-प्रकृति का यह खेल चिरन्तन है। इस कविता से कवि की रहस्यवादी प्रवृत्तियो का आभास मिलता है। 'करुणाकुज' मे कवि ने एक जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया है। प्रकृति के रूप मे सम्भवतः वह स्वय को सम्बोधित करके कह रहा है : पथिक, तुम्हारा अग शिथिल और क्लान्त

क्यो है ? किस मृग-मरीचिका मे भूले हो ? चारो ओर बिखरी हुई प्रकृति की विभूति तुम्हे नही दिखाई देती। त्रस्त पथिक, विश्वेश की करुणा पग-पग पर छायी है। अन्त मे :

भ्रान्त शान्त पथिको का जीवन मूल है
इसका ध्यान मिटा देना सब भूल है।
कुसुमित मधुमय जहाँ सुखद अलिपुज है
शान्त हेतु वह देखो करुणा-कुज है।

—कानन-कुसुम, पृ 12

सौन्दर्य पर यह एक स्वतन्त्र कविता है। इसमे कवि सौन्दर्य को व्यक्तिगत बन्धनो से निकालकर उसे एक व्यापक भूमि पर प्रस्तुत करता है। नील नीरद, चातक, चकोर, कलानिधि, कमल, भ्रमर सभी किसी आकर्षण मे बँधे हुए है। वास्तव मे प्रिय का दर्शन स्वय सौन्दर्य है। इसी व्यापक सौन्दर्य मे सत्य है। इस प्रकार कवि का क्षेत्र विस्तृत होता जाता है।

पाँचवी किरण (अप्रैल, 1912 ई) मे 'कोकिला', 'ग्रीष्म का मध्याह्न' कविताएँ हैं। कोकिल के इस रूप मे कवि ने एक नवीन दृष्टिकोण लिया है। वह कहता है कि हृदय, समय, कुज सभी कुछ नया है। कोकिल, नवीन रागकठ से, नए उत्साह मे गाओ, एक पल के लिए भी न रुको। मलयज पवन मे स्वर भर दो। ग्रीष्म-मध्याह्न मे कवि जलद का आह्वान करता है, जिससे मलिना, धूलिधूसर धरा को नवजीवन प्राप्त हो। इसी मे प्रसाद का एक अन्य लेख 'हिन्दी कविता का विकास' प्रकाशित हुआ। उन्होने लिखा कि 'जब तक समाज के उपकार के लिए कवि की लेखनी ने कुछ कार्य न किया हो, तब तक केवल उसकी उपमा और शब्द-वैचित्र्य तथा अलकारो पर भूलकर हम उसे एक ऐसे कवि के आसन पर नही बिठा सकते, जिसने कि अपनी लेखनी से समाज की प्रत्येक कृतियो को स्पन्दित करके उनमे जीवन डालने का उद्योग किया हो। महाकवि उसी का कहेगे जिसकी रचना ऐसी हो कि बडी होने पर भी स्थल विशेषो मे प्राकृतिक तथा मानवीय मनोगत भावो के सुन्दर-सुन्दर चित्र सुशृखला के साथ जिसमे सजाये गये हो।' इस प्रकार प्रसाद ने कविता और जीवन के बीच एक समन्वय स्थापित किया।

उसके पश्चात 10वी किरण (सितम्बर, 1912 ई) मे 'मर्मकथा' प्रकाशित हुई। इसमे प्रिय-प्रियतम के सम्बन्ध की परिभाषा है। प्रेमी को विश्वास है कि उसके चुप रहने से प्रियतम आ जायगा। वह कहता है कि हम-तुम जब एक हैं तो लोगो को बकने दो। ग्यारहवी किरण (अक्तूबर, 1912 ई.) मे ब्रजभाषा के चार कवित्त है। इसमे कवि के हृदय मे करुणानिधान के आने का वर्णन है। कवि पूछता है, तुमने आकर मेरे हृदय में निवास किया—जैसे कमला का कमल पर आसन। करुणानिधान,

तुम्हीं डुबा दो, तो मेरा क्या वश है। नाथ, तुम्हारे सहारे ही यह जीवन-नैया चला करेगी। बारहवीं किरण (नवम्बर, 1912 ई.) में 'हृदय-वेदना' है। कवि प्राणप्रिय से हृदय की विकल वेदना सुनने का अनुरोध करता है। वह कहता है, 'मैं यही मधुर पीड़ा पीकर मस्त हूँ। हृदय की वेदना से मधुर मूर्ति बन जाती है। तुम्हारी सदय-निर्दय ग्राँ मुझे प्रिय है।' कवि के इस वेदना-दर्शन मे अनुभूति की सच्चाई और ासका परिपाक 'आँसू' में हुआ। कवि कहता है :

इसे तुम्हारा एक सहारा, किया करो इससे क्रीड़ा
मैं तो तुमको भूल गया हूँ, पाकर प्रेममयी पीडा।

—कानन-कुसुम, पृ. 22

'इन्दु' अपने चौथे वर्ष मे प्रवेश कर रहा था। कला 4, खण्ड 1, किरण 1, जनवरी 1913 ई. में 'सत्यव्रत' और 'भरत' नामक दो लम्बी कथाएँ हैं। सत्यव्रत (पृष्ठ 70) मे प्रवासी राम, लक्ष्मण, सीता का वर्णन है। आरम्भ मे कवि राम की प्रशस्ति करता है। राम स्फटिक शिला पर वैदेही के साथ विराजमान थे, मानो निर्मल सर मे नील कमल, नलिनी। सीता प्रियतम के साथ वन मे भी सुखी थी। निर्वासित राम का कानन मे राज्य था। प्रकृति की समस्त क्रोड़ उनका आलिगन कर रही थी। राघव ने पूछा : कानन मे स्वर्गगा का कमल कैसे ? तभी जनकनली ने उत्तर दिया : नील मधुप को देखकर कज कली स्वय आ गयी। और वे यह भी बोलीं कि नारी के समस्त सुख पति के साथ ही रहते है। मधुर-मधुर आलाप करते वैदेही प्रिय-गोद में सो गयी। लक्ष्मण ने आकर बताया कि भूमिपति भरत ससैन्य आ रहे है। धीरे-धीरे प्रभात हो रहा था। अभी खगवृन्द नीड ही मे सो रहे थे, सर्वत्र स्तब्धता थी। कवि ने उषा के पूर्व का चित्र उपस्थित किया है। जानकी स्नान करके पर्णकुटीर मे लौट पड़ी। राम भी आ गये। सीता ने लक्ष्मण को वत्स कहकर पुकारा, किन्तु वे सघन वन में विलीन हो गये। कुछ देर बाद उनकी ध्वनि सुनाई दी : मुझे धनुष दे दीजिए। लक्ष्मण भरत को आता देख सामना करना चाहते थे, किन्तु राम ने मना कर दिया। अन्त में :

चरण स्पर्श के लिए भरत भुज ज्यों बढ़े
राम बाहु गल बीच पड़े, सुख से मढे।
अहा विमल स्वर्गीय भाव फिर आ गया
नीलकमल मकरन्दविन्दु से छा गया।

—कानन-कुसुम : 'चित्रकूट', पृ. 95

इस कविता की प्रेरणा सम्भवतः वाल्मीकि अथवा तुलसी हैं। किन्तु विषय-सामग्री तुलसी के अधिक निकट प्रतीत होती है।

आज राम सेवक जस लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ।।

*   *   *

सुनि रघुबर बानी विबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सों, प्रभु को कृपानिकेतु।।

—अयोध्याकांड

संस्कृत की कोमलकान्त पदावली का समावेश कवि के प्रौढ़ रूप का परिचायक है। अन्य कविता 'भरत' (पृ. 85) है। हिमगिरि के उत्तुग शृंग से कवि को भारत के गर्व का परिचय प्राप्त हो जाता है। प्रातः की रवि-रश्मियों से वह मणिमय हो उठता है। निकट ही ऋषिवर्य का रम्य विशाल आश्रम है। यहीं एक सुन्दर बालक सिंह के शिशु से खेल रहा है। इस वीर बालक के औद्धत्य को देखकर सिंहिनी क्रोध से गरजने लगी। वह रोष से तनकर बोला—क्रीड़ा में बाधा देगी तू, पीट दूँगा, चली जा, भाग जा। कवि इस निर्भीक बालक के विषय में कहता है कि यही भरत बालक है, जिसके नाम से इस वरभूमि को भारत की संज्ञा दी गयी। कश्यप के गुरुकुल में वह शिक्षा प्राप्त कर रहा है। दुर्दैववश बिछुड़ जानेवाली अपनी माता की गोद में मोद भरता है। अपने बलशाली भुजदंड से उसने भारत का प्रथम साम्राज्य स्थापित किया। वह दुष्यन्त का वीर बालक है। भारत का वह शिररत्न भरत है। कालिदास ने भरत का चित्रण किया है : 'वह सिंहिनी के स्तनों से आधा ही दूध पिये हुए उसके शिशु को खेलने के लिए बलपूर्वक घसीटे ले जा रहा है, और उसके केसर छिटक गये हैं।' इस अतुकान्त कविता की प्रेरणा कालिदास प्रतीत होते है। किन्तु इसमे देशप्रेम की भावना भी है।

दूसरी किरण (फरवरी, 1913 ई.) मे 'करुणालय' प्रकाशित हुआ। इसकी कथा का संकेत 'ब्रह्मर्षि' मे भी मिलता है। यह एक पौराणिक कथा है और इसमें अतुकान्त छन्द का प्रयोग किया गया है। यह दृश्य-काव्य गीतिनाट्य के ढग पर लिखा गया और इसमे हरिश्चन्द्र-सम्बन्धी कथा है। इस प्रकार क्रमशः कवि की प्रबन्धशक्ति के दर्शन हो रहे हैं। तीसरी किरण (मार्च, 1913 ई.) में ब्रजभाषा की एक कविता 'वसन्तोत्सव' है। 'रे वसन्त रस भीगे कौन मंत्र पढ़ि दीने तू। (चित्राधार, पृ. 181)। इसमें पूर्व कविता का प्रभाव प्रतीत होता है। चौथी किरण (अप्रैल, 1913 ई.) में 'करुण-क्रन्दन', 'भक्तियोग', 'निशीथ नदी' आदि कविताएँ है। 'करुण-क्रन्दन' में कवि जीवन के झंझटों से त्रस्त होकर ईश्वर से प्रार्थना करता है। दिन-रात होनेवाले मानसिक विप्लवों से वह मुक्ति चाहता है। 'भक्तियोग' लम्बी कविता है। कवि आरम्भ में दिननाथ के पीत कर का वर्णन करता है। उसे संसार में सब सुख के ही साथी दिखाई देते है, डूबते को कोई नहीं बचाता। प्रकृति के अनेक रूपक वह प्रस्तुत करता है। कवि ध्यान में था, सन्ध्या बोली : विश्व का आनन्द-मन्दिर इसी प्रकार न खो दे। तू सुख

छोडकर किसके कुहक जाल मे पडा है। तेरे भाल मे स्पष्ट सुख-लेख है। इतना ही नही, वह कहती है :

फिर भागते हो क्यो, न हटता यो कभी निर्भीक है
ससार तेरा कर रहा स्वागत, चलो, सब ठीक है।
—कानन-कुसुम, पृ. 28

भक्त आनन्द-विह्वल हो उठा। उसने प्रेममय सर्वेश को जान लिया। उसे समस्त ससार मित्र प्रतीत होने लगा। कवि सुख-दुख से ऊपर उठ जाता है : सब एक ही फिर हो गए।

'निशीथ नदी' मे कवि शीतल लहरो से चित्त की शान्ति चाहता है ताकि दुख-पिपासा समाप्त हो जाय। इस अवसर पर सम्भवतः कवि को जीवन मे अनेक कटु अनुभव हो रहे थे, उसके हृदय मे निराशा छा रही थी। इस विषम बेला मे वह प्रकृति के व्यापक सौन्दर्य को देखता है। उमे एक नवीन प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त होती है। समस्त ममार को वह आत्मवत् देखने लगता है। कवि का यह जीवन-दर्शन उसके काव्य का प्राण है। प्रकृति और मानव के सम्बन्ध की व्याख्या बढती जा रही है। भक्ति से आगे कवि का यह अन्य दार्शनिक चरण है, जिसमे वह मानवता को अपना आधार बना रहा है।

पाँचवी किरण (मई, 1913 ई) मे दलित कुमुदिनी, प्रथम प्रभात, भूल कविताएँ है। 'दलित कुमुदिनी' मे कवि ने कालचक्र की न्यारी गति की ओर सकेत किया। 'सुन्दर सरोवर' मे कुमुदिनी विकसित हो रही थी, चारो ओर उमका सौरभ बिखर रहा था। तभी किसी स्वार्थी मतवाले हाथी ने उस पददलित कर दिया, उसका सौन्दर्य जाता रहा (कानन-कुमुम, पृ 54)। 'प्रथम प्रभात' मे कवि की रहस्यवादी प्रवृत्तियो का आभास मिलता है। वह कहता है कि अन्तःकरण के नवीन मनोहर नीड मे मनोवृत्तियाँ खगकुल-सी मो रही थी। नील गगन-सा हृदय शान्त था, बाह्य आन्तरिक प्रकृति भी मो रही थी। अचानक किसी मलयानिल ने स्पर्श से गुदगुदा दिया। मधुर-मधुर स्वर्गीय गान गाने लगा। प्राण-पपीहा आनन्द मे बोल उठा। विश्व विमल आनन्द भवन प्रतीत हुआ। मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था (झरना, पृ. 5)। कवि रहस्योन्मुख भावना की ओर बढता प्रतीत हो रहा है। 'भूल' गजल शैली पर है जिसमे प्रेम की व्यजना है :

प्रसाद उनको न भूलो तुम, तुम्हारा जो कि प्रेमी है
न सज्जन छोडते उसको, जिसे स्वीकार करते है।

छठी किरण (जून, 1913 ई.) मे 'विनोद-बिन्दु' शीर्षक के अन्तर्गत 'चूक हमारी', 'प्रेमोपालम्भ', 'उत्तर' ब्रजभाषा मे प्रणय-सम्बन्धी कविताएँ है। कला चार का दूसरा

खण्ड जुलाई, 1913 से आरम्भ होता है। प्रथम किरण मे 'नमस्कार' खडीबोली और 'विदाई' ब्रजभाषा की कविताएँ हैं। 'विदाई' मे कवि अपनी शुभकामनाओ सहित विदा देता है (चित्राधार, पृ. 156)। 'नमस्कार' मे समस्त प्रकृति मे फैली हुई सत्ता को कवि प्रणाम करता है :

उम मन्दिर के नाथ को, निरुपम निरमय स्वस्थ को,
नमस्कार मेरा सदा, पूरे विश्व गृहस्थ को।

—कानन-कुसुम, पृ. 4

दूसरी किरण (अगस्त, 1913) मे 'श्रीकृष्ण जयन्ती' लम्बी कविता है। इस अतुकान्त कविना मे कवि ने किसी पौराणिक-एतिहासिक कथा का आधार नही ग्रहण किया। समस्त ससार को दुखी देखकर वह कृष्ण से प्रेरणा प्राप्त करता है। आरम्भ मे कवि जगत के आन्तरिक अन्धकार पर दुख प्रकट करता है। प्रकृति के कण कण मे एक सन्देश निहित है। वह द्विजकुल-चातक म ससार का ललकारने की अनुनय करता है। तब मानव जाति गोधन बनेगी। सब जीवो को परमानन्दमय कर्ममार्ग दिखाई दगा। यमुना से वह वेगपूर्वक बहने के लिए कहता है, जिसम सब कुछ हरा रहे। घन आकाश को घेर ले किन्तु अब नवल ज्योति नही छिप सकती। भवबन्धन के द्वार उन्मुक्त होगे। ससार दिव्य, अलौकिक हर्ष और आलोक प्राप्त करगा। तीसरी किरण (सितम्वर, 1913 ई) म 'देहु चरण मे प्रीति' शीर्षक से ब्रजभाषा की चार कविताएँ है। कवि का कथन है कि ईश्वर को करुणानिधान, पतितपावन जानकर ही व्यक्ति पाप करते है।

आगे चलकर कला पॉच खड एक, किरण एक (जनवरी, 1914) मे 'पतित पावन' कविना प्रकाशित हुई जिसमे ईश्वर की महान करुणा की ओर इगित किया गया। इसके अतिरिक्त 'रमणी हृदय', 'खोलो द्वार' आदि अन्य कविताएँ है। 'रमणी हृदय' मे सानेट के माध्यम से नारी-हृदय की रहस्यमयता प्रदर्शित की गयी है। 'खोलो द्वार' भी सानेट की भॉति है। कवि अपने प्रियतम से द्वार खोलने की अनुनय करता है जिससे उसका भी सुप्रभात होवे। इसी मे 'प्रायश्चित्त' नामक लघु नाटक भी है।

दूसरी किरण (फरवरी, 1914 ई) मे मुखपृष्ठ पर 'याचना' कविता प्रकाशित हुई। इसमे कवि प्रार्थना करता है कि ईश्वर, ऐसी शक्ति दो जिसमे जीवन के समस्त सघर्षो मे भी तुझे न भूल सकूँ। दूसरी कविता 'खजन' मे प्रकृति और मानवीय भावनाओ का तादात्म्य है। इसके अतिरिक्त 'विनोद-बिन्दु' शीर्षक से चार अन्य कविताएँ भी हैं। कवि के हृदय मे किसी अज्ञात का प्रवेश हो गया है। उसकी सुन्दर छटा मे मन उलझ गया। जीवनधन से कवि नवप्रकाश की याचना करता है, जिससे अमा भी राका बन जाय, सर्वत्र प्रेमपताका फहरे। चारो ओर विमल वसन्त का साम्राज्य

देखकर कवि प्रसन्न है। उसके प्राणो की कोकिला पचम स्वर मे कूकने लगी (झरना, पृष्ठ 79, 81, 82)। उसका हृदय बीती गाथाएँ नही सुनाना चाहता; कंठ गद्‌गद हो उठा है, वह कह नही सकता। इन कविताओ से आभासित है कि कवि का सक्रमण काल लगभग समाप्त हो रहा है··।

तीसरी किरण (मार्च, 1914) मे मुखपृष्ठ पर 'हॉ सारथे रथ रोक दो' कविता है। आराधना की साधिका-भूमि को देखकर कवि रुक जाना चाहता है। यही सर्वस्व की साधना हुई थी और वह स्मृति का समाधिस्थान है। इसके अतिरिक्त 'मकरन्दबिन्दु' शीर्षक से ब्रजभाषा की चार कविताएँ हैं। कवि स्वयम् को करुणानिधि के हाथो मे समर्पित कर देता है। चौथी किरण (अप्रैल, 1914) मे 'गगासागर', 'विरह', 'मोहन' कविताएँ है। 'गगासागर' का कवि अपने प्रिय को अगाध सागर मानता है। वह मन के मिलन को ही वास्तविक कहता है। 'विरह' मे प्रेम की नीद को स्मृति का जागरण कहा गया है। 'मोहन' मे कवि म्प्रेम-रस का प्याला पिला देने की अनुनय करता है। विश्व-भर मे फैले हुए सौन्दर्य की एक रस-बूँद वह भी मॉगता है। अन्त मे प्रार्थना करता है :

> आनन्द से पुलककर, हो रोम रोम भीने
> सगीत वह सुधामय अपना सुना दे मोहन।

—कानन-कुसुम, पृ. 78

पॉचवी किरण (मई, 1914 ई) की प्रथम कविता 'मिलन' है। कवि के प्राण गृहपति सदृश अपने प्राणाधार मे मिल रहे है। मन्दिर मे अमर आलोक है, कल्पना-वीणा बज रही है। इस प्रकार वह नवीन जीवन पा रहा है। इसके अतिरिक्त व्रजभाषा की चार कविताएं है। कवि का नेत्रो की सब बात निराली लगती है। मिलन की आशा मे वे फरकती रहती है। शेष सभी कविताएँ भक्ति की है। छठी किरण (जून, 1914) मे 'महाराणा का महत्त्व' काव्य प्रकाशित हुआ जिसमे ऐतिहासिक कथा ली गयी है। बेगम की शिविका चली जा रही है। प्रताप के पुत्र अमर सिह ने सभी को बन्दी कर लिया। अन्त मे प्रताप ने उन्हे सम्मान-सहित छोड दिया। इससे रहीम खॉ अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने अकबर से प्रार्थना की कि प्रताप सच्चा वीर है, उससे युद्ध न किया जाय। इस कविता मे कवि अपनी प्रौढता पर आ गया है। प्रकृति-वर्णन भी सुन्दर हुआ है। इस तुकविहीन काव्य मे कविता-कला दोनो दृष्टि से कवि को सफलता प्राप्त हुई है।

इसके पश्चात् कला 5, खण्ड 2, तीसरी किरण (सितम्बर, 1914 ई.) मे 'प्रियतम' कविता है। कवि जीवन-धन मे प्रश्न करता है कि क्या सर्वत्र तुम्हारा यही न्याय है। तुम मुझे करुणा दे सके, प्रेम नही। मे अन्तर मे स्मृति भरकर जीवन निःशेष कर दूँगा। कुछ मत दो, केवल अपना बना लो। इसके अतिरिक्त 'मकरन्दबिन्दु' शीर्षक

से पाँच कविताएँ हैं। कवि करुण व्यथा लेकर प्रेम को जीवित रखना चाहता है। अन्य तीन कविताएँ ब्रजभाषा की हैं जिनमें कवि भक्ति-भावना से प्रेरित होकर दीनबन्धु का स्मरण करता है।

चौथी किरण (अक्तूबर, 1914 ई.) में 'मेरी कचाई', 'तेरा प्रेम' कविताएँ हैं। 'मेरी कचाई' अतुकान्त कविता में कवि स्वयम् को दोषी कहता है। 'तेरा प्रेम' में कवि प्रेम-हलाहल को सुख से पीता है। पाँचवीं किरण (नवम्बर, 1914) में 'प्रेमपथ' शीर्षक से 'प्रेमपथिक' के खड़ीबोली रूप का कुछ अंश प्रकाशित हुआ। इसके पूर्व वह ब्रजभाषा में (इन्दु, कला 1, किरण 2, भाद्रपद शुक्ल 2, संवत् 1966) निकल चुका था। 'महाराणा का महत्त्व' की भाँति यह भी अतुकान्त है। आगे फिर छठी किरण (दिसम्बर, 1914) में 'चमेली' शीर्षक से इसका अन्य अंश भी प्रकाशित हुआ। 'प्रेमपथिक' का खड़ीबोली रूपान्तर माघ शुक्ल 5, संवत 1970 को प्रथम बार पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ।

'इन्दु' ने अपने छठे वर्ष में प्रवेश किया। कला 6, खण्ड 1, किरण 1, पौष शुक्ल (1971 वि., जनवरी 1915 ई.) मे 'तुम्हारा स्मरण' तथा 'हमारा हृदय' कविताएँ हैं। स्मरण मात्र से कवि की समस्त वेदना विस्मृत हो जाती है, उसे विश्वबोध होता है। वह विश्व-जनता में अपने अज्ञात को पा जाता है :

नये नये कौतुक दिखलाकर
जितना दूर किया चाहो
उतना ही यह दौड़ दौड़ कर
चंचल हृदय निकट होता।

—कानन कुसुम, पृ. ६०

'हमारा हृदय' की भावनाएँ 'मेरी कचाई' कविता के समीप हैं। इसी अंक में 'राज्यश्री' नाटक भी प्रकाशित हुआ। दूसरी किरण (फरवरी, 1915) में अर्चना, प्रत्याशा कविताएँ हैं। मन-मन्दिर में अपनी अर्चना की उपेक्षा से कवि को कष्ट होता है। वह प्रियतम की मनुहार करता है। 'प्रत्याशा' में वह कहता है :

चन्द-किरण हिम-विन्दु मधुर मकरन्द से
बनी सुधा, रख दी है हीरक पात्र में
मत छलकाओ इसे, प्रेम परिपूर्ण है।

—झरना, पृ. 38

तीसरी किरण (मार्च, 1915 ई.) के मुखपृष्ठ पर 'स्वभाव' चतुर्दशपदी है। इसमें प्रियतम इच्छा न होते हुए भी एक-दूसरे से परिचित हो गये (झरना, पृ. 26)। इस प्रकार प्रसाद अतुकान्त कविताओं के द्वारा स्वच्छन्दता की ओर बढ़ रहे हैं। चौथी

किरण (अप्रैल, 1915 ई.) के मुखपृष्ठ पर ही 'विनय' है। कवि भाव-विभोर होकर कहता है :

मिलो अब आ के आनँद कंद,
रहे तव पद में आठों याम।
बना लो हृदय बीच निज धाम
करो हमको प्रभु पूरन काम।।

—कानन-कुसुम, पृ. 48

आगे चलकर कला 6, खण्ड 2, किरण 1 (जुलाई, 1915 ई.) में प्रसादजी ने हिन्दी में तुकान्तहीन परम्परा के विषय में लिखा : 'हमने भिन्न तुकान्त कविता लिखने के लिए प्रायः 21 और 31 मात्राओं के छन्द व्यवहृत किये हैं। चतुर्दशपदी कविता तीन छन्दों में हमने लिखी है।' इस प्रकार कवि ने स्वयं काव्य का विश्लेषण किया। दूसरी किरण (अगस्त, 1915 ई.) में 'दर्शन' चतुर्दशपदी है। निर्मल जल पर सुधा भरी चन्द्रिका हँस रही थी; कवि की नौका द्विगुणित गति से चल पड़ी किन्तु वही किसी के मुख-छवि की घनी किरणे रजत-रज्जु-सी नौका से लिपट गयी, और : 'उस मोहन मुख का दर्शन होने लगा।'

बीच में किसी कारण 'इन्दु' पत्र एक वर्ष के लिए स्थगित हो गया पर प्रसादजी ने पुनः सितम्बर, 1916 ई. में उसका प्रकाशन आरम्भ करवाया। इसी समय कला 6, खण्ड 2, किरण 3, (सितम्बर, 1916 ई.) मे मुखपृष्ठ पर 'सुख-भरी नींद' चतुर्दशपदी प्रकाशित हुई। कवि ने कलिका की माला गूँथी थी कि प्रियतम के आने तक वह खिल जायेगी। स्वप्नभग होने पर कवि ने देखा तो चन्द्रालोक से रंजित कोमल बादल नभ में छा गये, उस पर बैठकर कोई पवन के सहारे चला गया। वह व्याकुल हो उठा, अंक मे भर लेने के लिए। किन्तु सुरभित सुमन से पुनः नींद आ गयी। चार-पाँच किरण एक साथ निकली (अक्तूबर, नवम्बर, 1916 ई)। मुखपृष्ठ पर ही 'मिल जाओ गले' कविता है। प्रिय को सर्वत्र प्रियतम का प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है और वे प्रकृति के कण-कण में व्याप्त हैं।

लगभग दस वर्ष तक 'इन्दु' किन्हीं कारणो से तिरोहित हो गया था। इस बीच प्रसाद की विशाख, कामना, अजातशत्रु, आँसू आदि रचनाएँ प्रकाश में आयीं। दस वर्ष लुप्त रहने के पश्चात् प्रसाद ने पुनः 'इन्दु' का प्रकाशन आरम्भ कराया और बराबर उसमे लिखते रहे। कला 8, किरण 1, (पौष संवत् 1983, जनवरी 1927 ई.) में मुखपृष्ठ पर 'अनुनय' कविता प्रकाशित हुई। कवि ने मानवता के लिए प्रार्थना की. 'सुधा-सीकर में नहला दो'। प्रसाद की भावना और अभिव्यक्ति में प्रौढ़ता आ रही थी। छायावाद की प्रवृत्तियाँ उनमें दिखाई देने लगी थीं। दूसरी किरण में 'तेरा रूप' प्रकाशित हुई। नयनों में, मन में किसी छलिया का अमल अनूप रूप भरा हुआ है।

जल, थल, मारुत, व्योम में वह सर्वत्र छाया है। खोजते-खोजते पागल प्रेम-विभोर हो जाना पड़ता है।[5] तीसरी किरण (मार्च, 1927) में 'गाने दो' कविता निकली। सब जीवन धूप-छाँह के खेल सदृश बीता जा रहा है। समय हमें भविष्य-रण मे लगाकर न जाने कहाँ छिप जाता है। लहर, हवा के झोंके, मेघ, बिजली सभी से जीवन का नाता है, इनके रोकने का साहस किसी मे नही। अन्त मे कवि कहता है :

वंशी को बस बज जाने दो
मीठी मीडों को आने दो
आँख बन्द करके गाने दो
जो कुछ हमको आता है।

—स्कन्दगुप्त, पृ 94

कुछ दिनो पश्चात् 'इन्दु' सदा के लिए अन्तर्धान हो गया। इन्दु के साथ ही प्रसाद की साहित्य साधना का विकास होता गया। आरम्भ मे भक्ति विभोर होकर प्रसाद ने ब्रजभाषा के कवित्त गाये थे। अध्ययन मे उन्होंने कुछ पौराणिक आख्याना पर कविताएँ लिखी। रीतिकालीन परम्परा के अनेक विषयो पर भी उन्होंने लिखा। धीरे-धीरे ब्रजभाषा छूट गयी। खड़ीबोली के साथ साथ कवि अपने भावो को सार्वभौमिकता प्रदान करने लगा। प्रेम भावना, जड मे चेतन का आरोप, रहस्योन्मुखता, करुणा आदि से प्रसाद ने अपने स्वतन्त्र जीवन-दर्शन का निर्माण किया। अतुकान्त कविता उन्होने आरम्भ कर ही दी थी। इस प्रकार 'इन्दु' का, कवि के काव्य-विकास मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'इन्दु' का इतिहास प्रसाद के काव्य और छायावाद से विशेष सम्बन्ध रखता है। आचार्य वाजपेयी के अनुसार इनका ही परिपाक आगे चलकर कामायनी मे होता है।[6]

जागरण और हंस

'इन्दु' के तिरोहित हो जाने के पश्चात् प्रसाद की रचनाएँ अन्य पत्रों में प्रकाशित होती रही। माघ, 1928 वि वसन्त पञ्चमी 11 फरवरी, 1932 ई. से 'जागरण' पाक्षिक का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसके सम्पादक शिवपूजन सहायजी थे। प्रथम अंक मे ही प्रसाद का 'ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे-धीरे' गीत प्रकाशित हुआ। इसकी रचना 19-12-31 को पुरी के समुद्र-तट पर हुई थी। इसमे कवि अपने नाविक से अनुनय करता है कि मुझे उस निर्जन मे ले चलो, जहाँ सागर-लहरी, अम्बर के कानो में कोलाहल की अवनी तजकर निश्छल प्रेम-कथा कह रही हो। इसी प्रकार कवि प्रशान्त, नीरव चित्रो का निर्माण करता है। इसमें उसका पलायनवाद नही है। वह जीवन के भौतिक धरातल से उठकर आदर्श लोक का निर्माण चाहता है। वह प्रकृति की शान्ति के सहारे रहस्य-भूमि पर जाना चाहता है। इसी में अन्य

कविता 'वरुणा की शान्त कछार' है। इसे कवि ने मूलगन्ध कुटी विहार के वार्षिकोत्सव के अवसर पर लिखा था। इससे आभास मिलता है कि वे बौद्ध-दर्शन से भी प्रभावित हो रहे थे। महात्मा बुद्ध को कवि ने स्वर्ग-वसुधा, मस्तिष्क-हृदय के समन्वयकर्ता रूप में देखा है। इसी अंक में प्रसादजी का गत देवोत्थान के अवसर पर लिखित प्रबोधिनी गद्यकाव्य प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने देशवासियों को जागरण का संदेश दिया है। इसी में 'तितली' उपन्यास क्रमशः धारावाहिक के रूप में निकलने लगा।

दूसरे अंक (22 फरवरी, 1932) में 'सागर-संगम' कविता है, जो पुरी में मकरसंक्रान्ति, 1988 विक्रमी को लिखी गयी थी। इस गीत में कवि ने सागर की अरुणिमा, नीनिमा से प्रेरणा ग्रहण की। अतलान्त महागम्भीर जलधि अपनी नियत अवधि तजकर लहरों के भीषण हासों में युग-युग की मधुर कामना के बन्धन ढीले कर देता है। अनन्त मिलन का भी कवि को आभास मिलता है। काव्य-कला की दृष्टि से कवि अपने सर्वश्रेष्ठ गीतो के निर्माण मे सलग्न है। चौथे अक, होलिकांक, (22 मार्च, 1932 ई.) मे 'ऑसू' के कतिपय छन्द प्रकाशित हुए। इनका शीर्षक 'ज्वाला' था। दसवे अंक मे (18 जून, 1932 ई.) प्रसाद का अन्य सुन्दर गीत 'मेरी आँखों की पुतली मे तू बनकर प्राण समा जा रे' प्रकाशित हुआ। कवि को इससे एक चेतना प्राप्त होगी जिससे कन-कन में स्पन्दन, मन में मलयानिल चन्दन, करुणा का नव अभिनन्दन हो। वही जीवनगीत कवि सुनना चाहता है :

खिंच जाय अधर पर वह रेखा
जिसमें अंकित हो मधु लेखा
जिसको यह विश्व करे देखा
वह स्मित का चित्र बना जा रे। —लहर, पृ. 28

इसके पश्चात् प्रेमचन्दजी ने 'जागरण' को साप्ताहिक रूप प्रदान किया। वे स्वय इसका सम्पादन करते थे। इसके अतिरिक्त 'हस' मासिक पत्र भी उन्ही की प्रेरणा से निकल रहा था। अप्रैल, 1930 के अंक में 'कोई खोजने' शीर्षक से 'कामायनी' के काम सर्ग का कुछ अश प्रकाशित हुआ। मई, 1930 मे 'मानवता का विकास' शीर्षक में श्रद्धा का कुछ भाग निकला। जनवरी, 1931 मे 'प्रलय की छाया' कविता प्रकाशित हुई। इसमें गुर्जर की रानी कमला के अन्तर में क्षण-क्षण में उठनेवाले भावों का चित्रण है। यौवन में उन्मत्त नारी अपने रूप से सुलतान को भस्म कर देना चाहती थी, किन्तु यही उसकी भारी दुर्बलता थी। उसकी वासना ने उसे छल लिया। मानसिक घात-प्रतिघात के चित्रण ने इस कविता को सौन्दर्य प्रदान किया है और इसे श्रेष्ठ दीर्घ प्रगीतो मे स्वीकारा जाता है। जनवरी-फरवरी, 1932 के 'आत्मकथांक' के मुखपृष्ठ पर प्रसादजी की कविता 'आत्मकथा' प्रकाशित हुई। इससे कवि के व्यक्तिगत

जीवन का आभास मिलता है। नवम्बर, 1936 मे 'ताडव' शीर्षक से 'दर्शन' सर्ग का कुछ भाग प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त 'हस' मे प्रसादजी के काव्य और कला सम्बन्धी निबन्ध भी इसी समय प्रकाशित हुए।

इस प्रकार इन्दु, जागरण, हस आदि मे प्रकाशित इन रचनाओ से प्रसादजी के काव्य-विकास का परिचय प्राप्त होता है। आरम्भिक परम्परागत, धार्मिक, भक्ति की कविता उनको आगे ले जाने के लिए थी। प्राचीन विषयो के प्रतिपादन मे भी नवीनता का आभास मिलता है। क्रमशः व्यक्तिवाद का विकास सार्वभौमिक स्तर पर होकर जड-चेतन मे अपनी भावना को आरोपित कर देता है। लम्बी पौराणिक-ऐतिहासिक कथा-कविताओ मे प्रसाद ने कथा का आधार लिया है। अध्ययन के द्वारा कवि को दर्शन का ज्ञान होता है। अनुभव के द्वारा वह एक नवीन जीवन-दर्शन का निर्माण करता है और यही प्रसाद का प्रौढ़तम चरण है। जातीयता, भक्ति, राष्ट्रीयता पीछे छूट जाते है, कवि आदर्श मानवीय रचना मे उन्मुख होता है। इस प्रकार एक महान् कलाकार की भाँति व अपनी भूमि मे बीज डालते है। इन पत्र पत्रिकाओं मे प्रसादजी की बहुमुखी प्रतिभा निहित है और उनमे कवि के क्रमिक विकास को देखा जा सकता है।

सन्दर्भ

1 काव्य और कला , पृ 39
2 पी सीतारमैया कांग्रेस का इतिहास भाग 1 पृ 67 68
3 एच एम चाडविक द ग्रोथ आफ लिटरेचर भाग 3 पृ 875
4 काव्य और कला पृ 74
5 स्कन्दगुप्त पृ 45
6 नन्ददुलारे वाजपेयी जयशंकर प्रसाद पृ 60

ब्रजभाषा की रचनाएँ

भारतेन्दु ने गद्य के क्षेत्र मे जितनी क्रान्ति की थी, उतनी पद्य मे नही। कृष्ण की प्रेमलीला कविता की विषय सामग्री थी। इसी के बीच कभी-कभी देश और समाज का स्वर भी सुनाई देने लगा था, किन्तु उनमे इतिवृत्तात्मकता के दर्शन होते थे। कवि का हृदय रसमयी कविताओ मे अधिक था, प्रकृति-चित्रण मे बँधी बँधाई परम्परागत उक्तियाँ देखने को मिलती थी। अलकारो के बीच रस का आविर्भाव तो होने लगा था, किन्तु अभी काव्य मे नैसर्गिक प्रवाह मथर था। भारतेन्दु के पश्चात् उनके सहयोगियो ने काव्य के लिए भी खडीबोली को माध्यम बनाने का प्रयत्न किया। श्रीधर पाठक के कई अनुवाद खडीबोली मे आ चुके थे। अन्त मे द्विवेदीजी न युग का नेतृत्व किया और उनकी छाया म मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियो ने कार्य आरम्भ किया। द्विवेदी युग के यौवन-काल मे ही छायावाद की इस महान् विभूति ने अपना प्रथम चरण रक्खा।

प्राचीन परिपाटी के वातावरण मे प्रसाद का पालन-पोषण हुआ था। आरम्भिक शिक्षा उन्हे मस्कृत विद्वानो द्वारा प्राप्त हुई थी। उस समय उनक घर पर प्राय ब्रजभाषा के कवियो का जमघट लगा रहता था। प्रसाद का आरम्भ ब्रजभाषा कविता से हुआ और उनका प्रथम सग्रह 'चित्राधार' है। इसके सर्वप्रथम सस्करण (1975 वि.) मे ब्रजभाषा और खडीबोली दोनो की कविताएँ थी। किन्तु द्वितीय सस्करण (सवत् 1985) मे केवल ब्रजभाषा की कविताएँ रक्खी गयी। बीस वर्ष तक की प्राय. समस्त रचनाएँ उसमे सगृहीत हैं। इनमे से अधिकाश 'इन्दु' तथा अन्य पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुकी थी। ब्रजभाषा मे नवीन भावनाओ की अभिव्यक्ति इन आरम्भिक कविताओ मे भी प्राप्त हो जाती है। माधुर्य भाव के अन्तर्गत भक्ति, प्रणय तथा प्रकृति-विषयक कविताएँ उन्होने आरम्भ मे लिखी। विषय की दृष्टि से उनमे अधिक मौलिकता भले

ही न मिले, किन्तु कवि के भावों में नवीनता है। परम्पराओं से प्रेरणा लेते हुए भी उन्होंने लक्षणग्रन्थों के आधार पर काव्य-रचना करना नहीं सीखा। उनमें हृदयपक्ष प्रधान है और धीरे-धीरे अध्ययन, अनुभव के द्वारा उसमें प्रौढ़ता आती गयी। भावों की सूक्ष्मता, शैली की गीतात्मकता तथा अभिव्यक्ति की नवीनता इन आरम्भिक रचनाओं में भी देखी जा सकती है। कवि ने ऐसा आधार ग्रहण किया है जिस पर वह अधिक समय तक खड़ा हो सकता है। उसका प्रेरणा-स्रोत सूखने नहीं पाता। जीवन के शैशवकाल में अमरकंटक, नैमिषारण्य आदि की यात्राओं में प्रकृति की जो छटा कवि ने देखी थी, उसकी छाया इनमें मिलेगी। धीरे-धीरे प्रकृति का यह स्वरूप विराट होता जाता है। वह अपनी जिज्ञासा से अनेक कल्पनाओं का सृजन करता है।

आख्यान-कविताओं की प्रेरणा प्रसाद ने महान् भारतीय कवि वाल्मीकि, कालिदास, तुलसी, सूर आदि से प्राप्त की। आख्यान-कविताओं की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। किसी कथा-खण्ड को लेकर कम-से-कम पात्रों के द्वारा लक्ष्य विशेष तक जाना इसका प्रमुख उद्देश्य होता है। कथा के मार्मिक दृश्यों के द्वारा कवि अपने विषय का प्रतिपादन करता है। संस्कृत काव्यों में महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि का विभाजन हो जाने से आख्यान-कविता पृथक् रूप में नहीं मिलती। अंग्रेजी साहित्य में इसकी पर्याप्त प्रतिष्ठा है। यद्यपि कथा के विकास का साधन गद्य ही बनाया गया, किन्तु कविता के द्वारा अनेक वर्णनात्मक रचनाएँ भी प्रस्तुत की गयीं। प्रसाद के पूर्व हिन्दी में आख्यान-कविता का आरम्भ हो चुका था। श्रीधर पाठक ऊजड़ ग्राम, एकान्तवासयोगी, श्रांतपथिक आदि गोल्डस्मिथ के अनुवाद कर चुके थे। चित्राधार में 'वनमिलन', 'प्रेमराज्य', 'अयोध्या का उद्धार' तीन आख्यान-कविताएँ हैं।

अयोध्या का उद्धार और रघुवंश

'अयोध्या का उद्धार' की प्रेरणा कालिदास के 'रघुवंश' का सोलहवाँ सर्ग है। आरम्भ में कवि कहता है कि लव आदि सात रघुवंश वीरों ने सबसे बड़े भाई कुश को अपना प्रमुख बनाया, क्योंकि उनके कुल का धर्म था 'भ्रातृ-प्रेम'।

> अथेतरे सप्त रघुप्रवीरा ज्येष्ठं पुरोजन्मतया गुणैश्च।
> चक्रुः कुशं रत्नविशेषभाजं सौभ्रात्रमेषां हि कुलानुसारि।। 16। 1

इसी के पश्चात् कालिदास का कथन है कि : 'एक दिवस अर्द्धरात्रि के समय, शयनकक्ष का दीप टिमटिमा रहा था, सभी व्यक्ति सो रहे थे। कुश को एक स्त्री दिखाई दी। उसे उन्होंने इसके पूर्व कभी न देखा था, किन्तु उसके वेश से आभासित हुआ कि पति परदेश में है। कुश के बार-बार प्रश्न करने पर, उसने अयोध्यापुरी की दीन

दशा का वर्णन किया। किसी दिन, भगवान राम के समय वह कुबेर की अलकापुरी से भी महान् थी, किन्तु आज उसमे उदासी छायी है (16 । 4)।' · · इस अवसर पर कालिदास ने सजीव काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। अन्त मे वह स्त्री हाथ जोडकर प्रार्थना करती है : 'आपके पिता राम ने राक्षसो का वध करने के लिए मनुष्य का शरीर स्वय धारण किया था, और उसे त्यागकर परमात्मा मे विलीन हो गये। अब आप इस नवीन राजधानी कुशावती को छोडकर कुलगत नगरी, उजडी अयोध्या चलिए (16 । 22)।' अयोध्या की नगरदेवी अन्तर्धान हो गयी। अपनी विशाल सेना के साथ राजा कुश ने अयोध्या की ओर प्रस्थान किया और उसे नवजीवन प्रदान किया। कुश उस सुन्दर नगरी मे रहने लगे। समस्त प्रजा सुखी हो गयी। एक दिन कुश रानियो सहित सरयू नदी मे जलविहार के लिए गये। जलक्रीडा के समय अगस्त्य ऋषि को, पिताजी द्वारा दिया गया जैत्र कुश से जल मे खो गया। अत्यधिक परिश्रम के पश्चात् भी वह न मिला। तभी किसी ने बताया कि इसमे कुमुद नाग निवास करता है। राजा कुश ने रोष मे धनुष की प्रत्यचा चढा ली, तभी नागराज कुमुद एक कन्या सहित आकर प्रस्तुत हो गया। उसने आभूषण देकर प्रार्थना की कि आप मेरी छोटी बहन कुमुद्वती को अपनी पत्नी रूप मे ग्रहण कर लीजिए।

महाराज रामचन्द्र के बाद कुश को कुशावती और लव को श्रावस्ती इत्यादि राज्य मिले और अयोध्या उजड गयी। यही बात प्राय राम सम्बन्धी अधिकाश सस्कृत ग्रन्थो मे देखने को मिलती है। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड मे लिखा है कि अयोध्या महाराज रामचन्द्र के बाद बहुत दिन तक उजडी पडी रही, फिर किसी ऋषभ नामक राजा ने उसे बसाया। भागवत इत्यादि ग्रन्थ तथा इतिहास मे मिलता है कि रामचन्द्र के बाद सुमित्र तक उनके वश मे राज रहा। अस्तु महाकवि कालिदास के सोलहवे सर्ग की कथा का अनुसरण करके कुश के द्वारा यह अयोध्योद्धार होना लिखा गया।[1] प्रसाद ने अपनी कविता की कथावस्तु 'रघुवश' से ग्रहण की है। कविता के आरम्भ मे वे कुशावती का वर्णन करते है

नवल तमाल कल कुज सा घने
सरित तीर अति रम्य है बने।
अरध रैनि महँ भीजि भावती
लसत चारु नगरी कुशावती। —चित्राधार, पृ 45

कुश राजकुमार नीद मे सुख-सेज पर सो रहे है। तभी उनके कान मे वीणा की-सी मन्द ध्वनि सुनाई दी। एक भामिनी पुखराज की पुतरी की भाँति खडी थी। कुश सुन रहे थे, "तुम हरिश्चन्द्र कुल के कुमार हो। दुख सहकर भी उन्होने सत्य का परित्याग नही किया। कुश, आप इसी रघुवश के कर्णधार हैं। जिस वश का चरित्र वाल्मीकि ने लिख दिया है, उसे आप क्यो भूल रहे है ?" तभी कुश ने उस नारी

के कष्ट का कारण पूछा। सुन्दरी मजु वाणी मे बोली, "आज इक्ष्वाकु आदि की विमल कीर्ति का प्रसार करनेवाली नगरी नागकुल के अधीन है।" और : 'रघु, दिलीप, अज आदि नृप दशरथ, राम उदार।' राजा कुश ने अयोध्या के उद्धार का वचन दिया। प्रात काल ही राजसभा मे समस्त राज्य दान कर दिया और सेनासहित अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। कुमुद अवध की सीमा पर दूत का सदेश पाकर सेना लेकर आ पहुँचा। दोनो दलो मे भयकर युद्ध हुआ। राजा कुश के घोर पराक्रम मे भयभीत होकर कुमुद अपने निवास मे छिप गया। अन्त मे परम सुन्दरी कुमुद्वती तथा अनेक रत्न-आभूषण लेकर कुमुद राजा कुश की सेवा मे प्रस्तुत हुआ; और उन दोनो का परिणय सम्पन्न हुआ।

कालिदास से अनुप्राणित होने पर भी प्रसाद की कथा मे कुछ अन्तर है। 'रघुवश' की नगरदेवी अयोध्या की परिवर्तित दीन दशा का वर्णन करके अन्तर्धान हो जाती है। प्रसाद की भामिनी कुश को सुन्दरी कुमुद्वती की सूचना भी देती है। 'रघुवश' मे राजा कुश ने अपने कुशल शिल्पियो के द्वारा अयोध्या नगरी का नवनिर्माण कराया। उसमे नागराज को जल का स्वामी दिखाया गया, जो जलविहार मे गिर जानेवाला कुश का जैत्र चुरा लेता है। अन्त मे वह कहता है कि मेरी बहन गेद खेल रही थी, उसी ने आभूषण पकड़ लिया। प्रसाद के 'अयोध्या का उद्धार' मे अवध की सीमा पर कुश और कुमुद की सेनाओ मे भीषण युद्ध होता है। नागवशी कुमुद निवासस्थान मे छिप जाता है। कुश के दूत से सदेश पाकर वह रमणी कुमुद्वती को लेकर प्रस्तुत होता है तथा परिणय का प्रस्ताव रखता है। अन्त मे कुश-कुमुद्वती का विवाह सम्पन्न होता है और अयोध्या मे सुख-शान्ति छा जाती है।

विषय प्रतिपादन की दृष्टि से कालिदास प्रसाद के इस आरम्भिक प्रयास से आगे है। कालिदास की विशद कल्पना, सूक्ष्म निरीक्षण, इस सर्ग मे मिलते है। अयोध्या की नगरदेवी के वर्णन मे कवि की कल्पना निहित है। वह कहती है, "स्वामी के न रहने से, अटारियो के कोठे नष्ट हो गये है। मेरी अयोध्या ऐसी उदास प्रतीत होती है, मानो सूर्यास्त की वह सन्ध्या, जिसमे वायु के वेग से घनखण्ड इधर-उधर छितरा गये हो। नगर की बावलियो का जल, क्रीडा करनेवाली सुन्दरियो के हाथ की थपकियो से मृदग के समान बज उठता था।··· आजकल अटारियो के झरोखो से रात्रि के समय दीपक की किरणे नही दिखाई देती और दिन मे भी सौन्दर्यमयी सुन्दरियाँ नही झाँकती···।" इसी प्रकार कुश की सेना के प्रस्थान का भी विशद वर्णन है। ग्रीष्म ऋतु का चित्र भी इसी कला-कौशल से प्रस्तुत किया गया है : "ग्रीष्म का गलता हुआ हिम ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो दक्षिण दिशा से सूर्य के लौट आने की प्रसन्नता मे उत्तर दिशा ने आनन्द के शीतल अश्रुओ की भाँति जल की शीतल धारा हिमगिरि से बहा दी हो।" इसी प्रकार जलक्रीडा के समय रानियो के सौन्दर्य का वर्णन, शृगार की चरम सीमा है : "नौका के चलने से लहरियाँ उठ रही हैं, जिससे सुन्दरियो की

ऑख का अंजन धुल गया है, और उसके स्थान पर मदपान की अरुणिमा छा गयी है।...'' प्रसाद मे विकासशील प्रवृत्तियाँ हैं पर उसमें उपमाएँ अधिक नहीं मिलतीं और कवि वर्णनात्मक हो गया है। कालिदास को प्रबन्ध के क्षेत्र में विशद वर्णन का अवसर था। प्रसाद आख्यान-काव्य के सीमित क्षेत्र में अधिक विस्तार से न लिख सकते थे। फिर भी कवि के इस आरम्भिक चरण में आगामी विकास के चिह्न देखे जा सकते हैं।

वन-मिलन और शाकुन्तल

'वन-मिलन' कथा-काव्य की प्रेरणा भी कालिदास है। प्रसाद को सस्कृत साहित्य के अध्ययन से सामग्री प्राप्त होती जा रही थी। कालिदास उनके प्रिय कवि थे जिन्हे वे शृंगार का आदर्श कवि मानते हैं।[2] 'वन-मिलन' की कथा 'अभिज्ञानशाकुन्तल' से अनुप्राणित है। शकुन्तला और दुष्यन्त के प्रणय-सम्बन्ध की स्थापना करके कालिदास ने कथानक को कण्व के वनाश्रम से हटाकर राजनगरी मे प्रस्तुत कर दिया है। शाङ्र्गरव शिष्य के साथ महर्षि कण्व ने शकुन्तला को विदा किया। शापवश दुष्यन्त अपनी प्रेमिका को नही पहचान पाते और शकुन्तला राजपुरोहित के यहॉ आश्रय पाती है। एक मछुआ के द्वारा राजा को अपने नाम की अँगूठी वापिस मिल जाती है, जो उन्होने शकुन्तला को दी थी। इसके अनन्तर दुष्यन्त की वियोग-व्यथा वर्णित है। एक दिन राजा को वन मे एक तेजस्वी बालक सिंह शिशु के साथ खेलता दिखाई देता है। दुष्यन्त उसके हाथ मे बँधी हुई रक्षा की अपराजिता जड़ी के गिर जाने पर भूमि से उठा लेते है, किन्तु वह महर्षि कश्यप के अनुसार सॉप नही हो जाती। यही वन मे दुष्यन्त और शकुन्तला का मिलन होता है। मारीच उस बालक के लिए भविष्यवाणी करते है कि आज का सर्वदमन, कल भरत होगा। वे गालव से कहते है, 'गालव, तुम अभी आकाश-मार्ग से चले जाओ। मेरी ओर से कण्व को यह शुभ समाचार देना कि शापमुक्त होकर दुष्यन्त ने सभी कुछ स्मरण कर शकुन्तला और उसके पुत्र को ग्रहण कर लिया है।'

प्रसाद के 'वन मिलन' की कथा देखने से स्पष्ट होता है कि 'शाकुन्तल' कथा की समाप्ति इस काव्य का आरम्भ है। कवि प्रसाद ने कालिदास के नाटक को आगे बढ़ाया है। 'वन-मिलन' के आरम्भ में कवि हिमालय की गरिमा का वर्णन करता है, जहाँ मालिनि नदी प्रवाहित हो रही है, तथा :

> तेहि कटि तट महँ कण्व महर्षि तपोवन सोहैं।
> सखा कटाक्षन ते हरिनी जहँ मुनि मन मोहैं।।
> सरस रसाल, कदम्ब, तमालन की सुचि पाँती।
> धव, अशोक, अरु देवदारु तरुगन बहु भाँती।।
>
> –चित्राधार, पृ. 55

कवि ने वन-श्री का सुन्दर वर्णन किया है। वहीं प्रियम्वदा और अनसूया अपनी सखी शकुन्तला को मन-ही-मन उपालम्भ देती है कि महलो मे जाते ही वह उन्हें भूल गयी। उसी समय कश्यप का शिष्य गालव ऋषिवर को शुभ समाचार सुनाता है कि दुष्यन्त शापमुक्त हो चुके है। और तभी दुष्यन्त, शकुन्तला, भरत आ पहुँचे। वन मे आनन्द बिखर गया। शकुन्तला लौटते समय अपनी सखी प्रियम्वदा, अनसूया को भी साथ ले जाती है।

प्रसाद ने यद्यपि कण्व, कश्यप, गालव, दुष्यन्त, शकुन्तला, भरत, प्रियम्वदा, अनसूया आदि पात्र 'शाकुन्तल' से प्राप्त किये है, किन्तु उनकी कथा मे भिन्नता है। कालिदास ने नाटक को अपनी कथा का माध्यम बनाया। प्रसाद ने छोटे-से कथा-काव्य मे उसका समावेश किया। प्रकृति के साथ वन-बालाओ का तादात्म्य कालिदास ने कराया है, किन्तु प्रसाद अधिक वर्णनात्मक है। गौतमी के साथ जाती हुई शकुन्तला, लताओ की ओट हो जानेवाले दुष्यन्त से कह जाती है : 'लतावलय सतापहारक, आमत्रये त्वा भूयोऽपि परिभोगाय' : 'हे सन्ताप हरनेवाले लतापुंज, मै पुन. विहार के लिए तुम्हे निमन्त्रण दे जाती हूँ।' दुष्यन्त के पास जाते समय, शकुन्तला के अंचल को हरिण पकड़ लेता है। वन का समस्त वैभव सजल नेत्रो से उस सौन्दर्य-राशि को विदा देता है। प्रकृति के व्यापक रगमच पर कालिदास का नाटक आधारित है। प्रसाद की प्रकृति भी शकुन्तला के वियोग मे दुखी है, किन्तु वह मानवीय भावनाओ से अधिक एकाकार नही होने पाती। उसमे रमणीयता है, तन्मयता नही; भाव है, भावावेश नही। बुद्धि आगे चली जाती है, हृदय पीछे छूट जाता है। तभी तो शकुन्तला, दुष्यन्त, भरत प्रसाद के लिए केवल धर्म, शान्ति, आनन्द अथवा श्रद्धा, भक्ति, सरलता के पुज है। किन्तु कालिदास की प्रकृति तो राजा की आज्ञा से वसन्त नही मनाती, मधुमास स्वय रुक जाता है। 'वन मिलन' के सीमित क्षेत्र मे किसी पात्र का विस्तृत चरित्र चित्रण अथवा विश्लेषण सम्भव नही। अनसूया और प्रियम्वदा कथा के अधिकाश भाग मे दिखाई देती है। वे शकुन्तला को अत्यधिक प्रेम करती है और उसके बिना दुखी है। उनके प्रेम मे हल्का-सा उपालम्भ भी झलक आता है। शकुन्तला से मिलने पर प्रियम्वदा बारम्बार भरत का मुख चूमने लगती है और उपालम्भ देते हुए दुष्यन्त से कुछ कह भी देती है। शकुन्तला अपनी सहेलियो को प्रेम करती है, अन्त मे उन्हे अपने साथ ले जाती है। वह भारतीय नारी के उच्चादर्श को लेकर अपनी सखियो से कहती है कि इनके विमल चरित्र के विषय मे कुछ न कहो। कालिदास का मृग शकुन्तला की विदा के समय उसका अंचल पकड लेता है, किन्तु प्रसाद का मृग शकुन्तला के चरणों का चुम्बन लेकर अपना भाव प्रकट करता है। कवि ने सस्कृत के प्रियम्वदा, सुन्दरी तथा मालिनी आदि छन्दो का प्रयोग किया है। कविता का माध्यम ब्रजभाषा होने पर भी उसमे आधुनिकता है। प्ररित, कर्णिकार, वीरुध आदि शब्द सस्कृत से लिये गये है। इस प्रकार कवि की नवीनता इसमे प्रतीत होती है।

प्रेमराज्य

तीसरी आख्यान-कविता 'प्रेमराज्य' है। इसका आधार ऐतिहासिक घटना है जिसके अनुसार सन् 1564 ई मे विजयनगर और अहमदाबाद के बीच टालीकोट का युद्ध हुआ था।[3] इम छोटे-से कथा-सूत्र को लेकर कवि ने काव्य का निर्माण किया। सम्पूर्ण काव्य-कथा दो भागो मे विभाजित है। आरम्भ मे टालीकोट युद्ध का वर्णन है। वही राजा सूर्य्यकेतु अपना पचवर्षीय बालक भील को दे देते है। सेनापति के विश्वासघात से वे युद्ध मे मारे जाते है। घर आने पर सेनापति को उसकी पत्नी नही मिलती और पति की कायरता से दुखी होकर वह भी चली जाती है। सेनापति साधु हो जाता है। उत्तरार्द्ध मे ललिता और राजकुमार चन्द्रकेतु का परिणय दिखाया गया है। इस प्रकार कवि ने इसमे शौर्य और प्रेम का समन्वय प्रस्तुत किया है।

कथानक की दृष्टि से 'प्रमराज्य' की प्रेरणा प्रसादजी को इतिहास से प्राप्त हुई पर उसमे किसी कथा-विशेष का अनुसरण कम है। वीर रस के परिपाक की दृष्टि मे कवि ने 'पूर्वार्द्ध' मे सूर्य्यकेतुमिह और यवनराज के युद्धभूमि मे मिलन को वीरकर्म तथा कायरता का दृश्य कहा है। राजा ने इम प्रकार धावा किया, जैमे गरुड पन्नग प्रवाल पर। इम अवसर पर कवि सूर्य्यकेतु की वीरगति से भारत-भूमि को सौभाग्यशालिनी कहता है, जहॉ महान् वीरो ने जन्म लिया :

> भये भीष्म, रणभीष्म, हरण अरिदर्प
> जामदग्नि ते रच्यो, ममर करिदर्प।
> जिनकी देव प्रतिज्ञा की सुख्याति
> गाइ गाइ नहि वाणी, अजहुँ अघाति। —चित्राधार, पृ 67

इस प्रकार कवि के इम उद्बोधन गीत मे राष्ट्रीयता की भावना निहित है। सूर्य्यकेतु महाराज का गौरवपूर्ण चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। सेनापति मातृभूमिद्रोही है, सभी उसका उपहास करते है। इम प्रकार कवि वीरता के आदर्श की स्थापना करता है, किन्तु कवल यही चरम मत्य नही है। वह कहता है कि वह तो केवल वसुन्धरा की रक्त-पिपासा है, जा न जाने कव शान्त हागी। उत्तरार्द्ध मे प्रकृति के सुन्दर रगमच पर कवि ने प्रणय-कथा की स्थापना की है। यहाँ एक सुन्दरी बाला का प्रवेश कराया गया है। उमके सौन्दर्य-वर्णन मे प्रसाद की नवीनता दिखाई दे जाती है। उसके अग-अग मे श्री भरी हुई है; पास ही मृगछौना, मराल, शिखी भी तो स्तब्ध-से खडे है :

> लखि मूरति शान्त सुरमरी हूँ को मन्द प्रवाह है
> कुजन मे छपिके सुमन, देखत सहित उछाह है।
> —चित्राधार, पृ 69

उसकी गति मराल की भाँति थी। पुरुष पात्र, प्रेमी चन्द्रकेतु का प्रवेश प्रसाद ने नाटकीय रीति से कराया है। चन्द्रकेतु बाला के दृग मीचकर पूछता है, "बोलो, हम कौन है ?" वह बोल उठी, "चन्द्रकेतु, दृग खोलो।" और दोनो हँस पडे, मानो शरदघन से मुक्ताविन्दु बरस उठे हो। इस प्रेम को कुसुमित करने के लिए कवि ने पुन. रजनी का सरस चित्र प्रस्तुत किया है। आकाश मे ताराओ की पक्ति निशा-रानी के कठ का हीरक-हार बन रही थी। विधु मडल सुधा की वर्षा कर रहा था। चन्द्रकेतु ललिता शिला पर युगल-सुधाकर की भाँति बैठे थे। ·· इस प्रकार सौन्दर्य-वर्णन मे कवि ने प्रकृति को स्थान दिया है और उसी मे सुन्दर प्रतीक लिये हैं।

प्रथम भाग मे कवि ने वीरता के आदर्श की स्थापना करते हुए यह स्पष्ट कह दि ग था कि युद्ध धरणी की रक्त-पिपामा है। इमका विकाम इम खण्ड मे कवि ने किया है। बालक कहन लगते है कि अब हम पथिका को निर्भय लूटेगे। तभी चन्द्रकेतु विश्वेश्वर की अनुपम सृष्टि की चर्चा करता है। यह विराट ससार शिव का ही अव्यक्त रूप है। सर्वत्र उसकी ज्योति का आभाम प्राप्त होता है। जब वह चन्द्र-सूर्य मृगनयनो से देखता है, तभी तममय जगत मे नर आँखो मे दरसन लगते हैं। वह प्रकृति की पराशक्ति है, उसका वाहन वृषभ है, धर्म का प्रतिनिधि। परस्पर प्रेम करो, विरोध कैसा ?

इस प्रकार सघर्ष से आरम्भ होनेवाला काव्य अन्त मे एक मानवीय सन्देश देकर समाप्त होता है। प्रसाद आरम्भ मे ही शैव थ। धीरे धीरे यह भक्ति जीवन-दर्शन मे परिवर्तित होती है। इसमे शिव का विराट स्वरूप अकित है। शैवदर्शन के आभासवाद के अनुसार भी महेश्वर समस्त सृष्टि के रचयिता है।[4] यह सृष्टि केवल उनके व्यक्तित्व का आभास मात्र है। महेश्वर की सत्ता माया, आत्मा और आणव स पृथक है। वह प्रेम की प्रतिमूर्ति है। दक्षिण तथा काश्मीर क अनेक शैव भक्तो ने शिव की इसी रूप मे उपासना की है। उनकी धारणा है कि वे मूर्ख है जो शिव और प्रेम मे अन्तर रखते है। यही नही, शिव क ताडव नृत्य भी भक्तो की रक्षा के लिए होता है। अभिज्ञानशाकुन्तल के आरम्भ मे कालिदास ने कहा है : 'शिव का दर्शन उस जल के रूप मे प्रत्यक्ष होता है, जिसे ब्रह्मा ने सर्वप्रथम निर्मित किया। वे उस अग्नि की भाँति है जो विधि द्वारा दी गयी हव्य सामग्री ग्रहण करती है। व यज्ञ करनेवाले होता है। वही सूर्य, चन्द्रमा है जो दिवस-रात्रि का समय निर्धारित करते है। उस आकाश के रूप मे है जिसका गुण शब्द है और जो ससार-भर मे रमा है। वे पृथ्वी की भाँति है, जो सब बीजो की जन्मदात्री है, और उस वायु की भाँति जो सब जीवों को जीवन देती है। जल, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी, वायु आदि अनेक रूपो मे सबको दिखाई देनेवाले भगवान सबका कल्याण करो !'

इस प्रकार प्रसाद एक उच्च भाव-भूमि पर जाते है। लौकिक धरातल पर

अलौकिक और आदर्श की स्थापना उनके साहित्य की विशेषता है। 'प्रेमराज्य' की प्रशसा करते हुए उस समय कहा गया था कि 'कविता मे मधुर शब्दो का समावेश हुआ है। छन्द शुद्ध बना है और कही-कही लालित्य भी है।'[5] इसके अतिरिक्त 'विहार बन्धु' आदि पत्रो मे प्रेमराज्य की आलोचनाएँ निकली, जिनमे कविता को सुन्दर कहा गया। उसी समय लाला भगवानदीन ने इसकी कटु आलोचना की थी कि 'काव्य बिल्कुल निरस और अनेक दोषो से पूर्ण है। एक भी छन्द यतिभग दोष से रहित नही है।'[6] प्रसाद ने स्वय इसका उत्तर दिया था—'छन्द की दृष्टि से इसमे रोला छन्द है। कविवर भिखारीदास के छन्दोर्णव पिगल मे उसका लक्ष्य केवल अनियमित रोला कहकर दिया गया है।'

प्रकृति-दृश्य

इन आख्यान-कविताओ के अतिरिक्त स्फुट रचनाएँ 'पराग' और 'मकरन्द विन्दु' शीर्षक के अन्तर्गत सगृहीत है। 'पराग' की अधिकाश रचनाएँ प्रकृतिविषयक है शारदीय शोभा, रसाल, प्रभातकुसुम, नीरद, शरदपूर्णिमा, इन्द्रधनुष आदि। प्रकृति-सम्बन्धी इन रचनाओ की प्रेरणा के दो प्रमुख कारण प्रतीत होते है। शैशव मे कवि ने उज्जैन, अहरोरा, अमरकटक आदि प्रकृति स्थलो मे भ्रमण किया था। वे सुन्दर चित्र उसके मन मस्तिष्क मे थे। इसके अतिरिक्त घर पर होनेवाली गोष्ठियाँ रीतिकाल की परम्परा से प्रभावित थी। शृगार रस की कविताएँ भारतेन्दु युग मे मिलती है। प्रकृति प्राय इन कवियो की रचनाओ मे उद्दीपन बनकर आती थी। कवि-गोष्ठियो के इन कवित्त सवैयो मे भी कवि को आरम्भिक प्रेरणा अवश्य मिली होगी। किन्तु प्रसाद की इन सर्वप्रथम कविताओ को देखने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतेन्दु ने शृगार, प्रकृति, देश आदि के विषय मे जो नवीन प्रयोग आरम्भ किया था, उसका विकास हो चला था। अलकार का स्थान अनुभूति को प्राप्त हो रहा था और शब्दाडम्बर से भी कविता मुक्त हो रही थी।

प्रसाद की प्रकृतिविषयक इन कविताओ की एक विशेषता उनके 'शीर्षक' है। अभी तक कविता सवैया-कवित्त मे बँधी हुई थी। कभी-कभी सूर के पदो की भी शैली दिखाई दे जाती थी। प्रसाद ने अपनी कविताओ को शीर्षक दिये है। गीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ आरम्भिक रचनाओ मे प्राप्त हो जाती है, जो उन्हे 'लहर' के सर्वोत्तम गीतो तक ले जा सकी। कविता के परम्परागत विषयो को कवि रसमय बनाने मे प्रयत्नशील है। धीरे-धीरे उसमे मधुर भावो का समावेश हो रहा है। इसके अतिरिक्त प्रसाद ब्रजभाषा की कविता को समस्यापूर्ति के वातावरण से बाहर लाए। उसमे नवीन उपमाएँ और नूतन शब्द-योजना भी है। एक शीर्षक के अन्तर्गत समस्त चित्र को प्रस्तुत करने का प्रयास इन कविताओं मे मिलता है। 'शारदीय शोभा' के अन्तर्गत प्रभात, रजनी और चन्द्र का वर्णन है। उपमा, उदाहरण प्रकृति और मानव के मध्य

एक प्रकार का व्यवधान भी प्रस्तुत करते है। केवल प्रकृति-वर्णन होने के कारण उसमे उपमा विधान अपेक्षाकृत कम है। प्रकृति की जडता मे चेतनना भरने तथा मानवीकरण की इच्छा से प्रसाद प्रायः उसे सम्बोधित करने लगते हैं। मलयानिल, रसाल आदि से कवि एक निजता स्थापित करने का प्रयत्न करता है। प्रसाद की प्रकृति केवल मानवीय भावनाओ का मनोरंजन नही करती, वह संसार की शोभा है। प्रकृति के गुणो का विश्लेषण करने के लिए उन्होने ऐसे शब्द चुने है, जो मानव पर भी आरोपित होते है। तरुवरराज की उदारता, विहग का यश गान, मेघो की छाया मे यह भाव निहित है। इसके अतिरिक्त प्रकृति से कवि को संकेत भी प्राप्त होते है। 'प्रभात कुसुम' गर्व मे डाली पर झूल रहा है किन्तु कुछ क्षण ही मे तो धूल-धूसरित हो जायगा।

इस प्रकार प्रसाद के प्रकृति वर्णन मे किंचित नवीनता है। इसके पूर्व अंग्रेजी की प्रकृति कविता की भी चर्चा हिन्दी मे होने लगी थी। पाठकजी ने अनुवाद किये थे और प्रयोगात्मकता तथा अन्तर्वृत्ति-निरूपण इस काव्य की प्रमुख विशेषताएं है। अंग्रेजी साहित्य मे प्रकृतिविषयक कविता को एक स्वतन्त्र स्थान प्राप्त है। स्पेन्सर, शेक्सपियर, मिल्टन आदि की पेस्टोरल कविता प्रकृति का आलम्बन लेकर हुई। अपने 'डेजर्टेड ग्राम' के आरम्भ मे गोल्डस्मिथ कहता है कि संसार मे बरबस ही मुसकरा पडने वाले ग्राम, तुम मुझे अत्यधिक प्रिय हो। 'श्रान्त पथिक' मे प्रकृति का वर्णन पृष्ठभूमि के रूप मे किया गया है। शेली, कीट्स आदि स्वच्छन्दतावादी कवियो ने प्रकृति मे व्यक्तिगत अनुभूति को आरोपित किया। अप्रस्तुत रूप विधान के द्वारा जीवन की अनुभूतियो का भी प्रकाशन इनमे मिलेगा। बायरन ने कहा था, "पथहीन वनो मे एक आनन्द है, निर्जन तट पर सुख है। यही समाज है, जहाँ कोई न हो। गम्भीर सागर के गर्जन मे भी संगीत है। मै मनुष्य को कम प्यार नही करता किन्तु प्रकृति को उससे भी अधिक।" (चाइल्डे हैरोल्ड)। प्रकृति के इस सौन्दर्य से स्वच्छन्दतावादी कवि ने अपनी आन्तरिक अनुभूति को समन्वित किया शेली ने पतीची से आते हुए पवन का रूप प्रदान किया था। उसके लिए वह वसन्त की श्वास था (ओड टु वेस्ट विन्ड)। इसी प्रकार उसने चन्द्रमा, रजनी, लवा आदि से बाते की थी। कीट्स 'नाइटिन्गेल' को 'अमर पछी' की संज्ञा दे देता है। उसे उसके संगीत मे युगो का आभास मिला था। वर्ड्स्वर्थ, कोलरिज मे प्रकृति मे परोक्ष सत्ता का आरोप होने लगता है और वे उसमे परम सत्ता को खोजना चाहते है। उनकी कविता मे दार्शनिक प्रवृत्तियो को भी स्थान मिला है। प्रकृति मानव को एक महान् संदेश दे जाती है। वर्ड्स्वर्थ प्रकृति का केवल उपासक नही रह गया, जो बारम्बार उसकी मनोहारिणी छटा मे स्वयं को उलझा देता था, वरन् उसने उसके अंतस्तल मे जाने का प्रयत्न किया। उसने गम्भीरतापूर्वक प्रकृति को जिज्ञासा और कुतूहल से देखा। उसके लिए प्रकृति एक मूक शिक्षक है। उसका कथन है : "आकाश इतना स्वच्छ था, पवन मे ऐसी निस्तब्धता

थी, दिन भी इमी प्रकार था कि जहाँ कही भी मैंने देखा, मुझे तुम्हारा प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। वह कभी कभी कॉप जाता था, किन्तु अलग न हो सका (नेचर एड पोयट)।" कोलरिज ने तो प्रकृति मे कृतिकार की सत्ता का अनुभव किया। इस प्रकार अग्रेजी के प्रकृति वर्णन की छाया उस समय के हिन्दी साहित्य पर पड रही थी।

सस्कृत के प्रकृति वर्णन मे कालिदास और माघ का स्थान सर्वोपरि है। कालिदास के कुमारसम्भव, मेघदूत, शाकुन्तल तथा भवभूति के उत्तररामचरित आदि के अनुवाद हिन्दी मे आ रहे थे। आरम्भ मे स्वयम् प्रमादजी कालिदास से प्रभावित हुए थे। वास्तव मे प्रकृति के व्यापक रगमच पर ही कालिदास का काव्य निर्मित है। प्रकृति को आलम्बन और उद्दीपन दोनो ही रूपो मे उन्होने ग्रहण किया है। शाकुन्तल की प्रकृति मचेतन हो उठी है, वह स्वयम् मुखर हो जाती है। कुमारसम्भव के आरम्भ मे हिमालय का वर्णन एक पृष्ठभूमि के रूप मे किया गया है, जिस पर समस्त काव्य की रचना कवि ने की है। प्रकृति के प्रत्येक रूप का वर्णन कवि ने कुशलता से प्रस्तुत किया है, उनका निरीक्षण सूक्ष्म है। वस्तु चित्रण के साथ साथ उपमाएँ भी है। 'ऋतुसहार' की प्रकृति एक उद्दीपन बन गयी है। कालिदास का पावस जूही की नव कलिकाओ, मालती, मौलसिरी के प्रसूना की माला गूँथ रहा है मानो प्रेमी प्रेमिका के लिए पुष्पमाल बना रहा हो (द्वितीय मर्ग, 25)। रामायण का प्रकृति वर्णन आलम्बन रूप मे है, किन्तु कालिदास की प्रकृति नवयौवना है। उसकी मश्लिष्ट याजना मे सौन्दर्य झाँका करता है। इस प्रकार कालिदास का विस्तृत ज्ञान तथा कल्पना प्रकृति और जीवन के अतिरमात्मक स्वरूप को प्रस्तुत करते है।[7] माघ मे प्रकृति क स्वतन्त्र चित्रण की अद्भुत क्षमता है।

हिन्दी म रीतिकाल क विरोध मे भारतेन्दु न अपनी रमात्मक अनुभूति प्रस्तुत की। उपमा, उत्प्रेक्षा आदि के होते हुए भी उनक वर्णन मे कृत्रिमता अधिक नही है। उमी क पश्चात् श्रीधर पाठक, रामचन्द्र शुक्ल हरिऔध आदि कवि अपनी उदार दृष्टि लकर आ रहे थे, किन्तु अब भी मनुष्य और प्रकृति एक दूसरे के पूरक न बन सके थे। प्रमाद न प्रकृति वर्णन मे मरसता ला दी और इमी के द्वारा उन्हाने शृगार का उदात्त स्वरूप प्रस्तुत किया। इमस वे अपनी भावनाओ का भी प्रवेश कराते है। व प्रकृति के कुछ रूपो को ही देख मके है। कभी शारदीय शाभा मे प्रभात, रजनी और चन्द्र उन्हे सुन्दर प्रतीत होते हैं, तो रसाल मजरी वमन्त का दान। वर्षा म नदी कूल की छवि मे धारा पुलकित हो उठती है। माली से जल पाते ही उद्यानलता लहलहा उठती है। यही नही कवि का प्रश्न है

भरि अक अहो तुम भेटति को
तरु के हिय दाह समेटनि को।
टक लाइ सबै दृग फूलन ते
मकरन्द भरे अँसुवा कन ते।

तुम देखति हौ केहि आस भरी
नहि बोलति हौ तरु पास खरी।
—चित्राधार, पृ 151

प्रसाद के प्रकृति-विषयो मे विविधता है। उसके प्रत्येक स्वरूप पर वे रीझ उठते है, किन्तु वे उसमे खो नही जाते। 'चित्राधार' मे उनका प्रेम शृगार मे अधिक है, वे प्रकृति से एकाकार नही हो पाते। तादात्म्य स्थापित करने के प्रयत्न का एक आभास मात्र मिलकर रह जाता है। प्रकृति के सौन्दर्य के विषय मे उनकी जिज्ञासा अधिक है। अग्रेजी कवि वर्ड्स्वर्थ की भॉति प्रसाद प्रकृति के अन्तस्तल मे तन्मय नही हो जाते। वे उसके सौन्दर्य को देखकर प्रश्न करते है। प्रकृति का देखते ही उनका कौतूहल जाग्रत हो जाता है, उनकी चेतना गतिमान हो जाती है। अपनी भावनाओ की सूक्ष्मता लेकर उन्होने प्रकृति का वर्णन किया। उनका हृदय अपनी जिज्ञासा को सँभालने मे उलझ जाता है और इस प्रकार प्रकृति से तन्मय नही हो पाता। इस जिज्ञासा के क्रमिक विकास ने कवि को एक नवीन जीवन-दर्शन की स्थापना करने मे सहायता दी, जहाँ प्रकृति मनुष्य के लिए चिरसहचरी बन जाती है। कालिदास की वर्णनशैली और वर्ड्स्वर्थ, कोलरिज की रहस्योन्मुख प्रवृत्तियाँ प्रसाद मे जिज्ञासा बनकर आयी है। यदि एक ओर सस्कृत के महान कवियो से प्रेरणा लेकर इन्होने विविध प्रकृति-रूपो पर दृष्टिपात किया, तो दूसरी ओर उसे जिज्ञासा से देखा। इस प्रवृत्ति के बीज 'चित्राधार' मे निहित है। इसमे भारतीय दार्शनिकता को भी आगे चलकर कवि ने समन्वित कर दिया और इसके लिए उन्हे प्रतीको का अवलम्ब ग्रहण करना पड़ा।

प्रेम और भक्ति

प्राकृतिक दृश्यो के अतिरिक्त कल्पनासुख, मानस, विदाई, नीरव प्रेम, विस्तृत प्रेम, विसर्जन आदि कविताएँ विषय की दृष्टि से नवीन हैं। इस प्रकार के विषय आगे चलकर छायावाद के प्रमुख अग बन गये है, किन्तु प्रसाद ने अपने प्रथम चरण मे ही इनका उपयोग किया। कल्पना की शक्ति को उन्होंने पूर्व ही पहचान लिया था। इसी प्रकार उनके प्रेम-दर्शन मे नवीन स्वर था। एक ओर शृगार मे उलझी दूसरी ओर खडीबोली की सुधारपरक कविता के लिए, प्रेम की यह परिभाषा सर्वथा नवीन थी। सुवासिनी ने एक विदेशी नारी को समझाया था, "प्रेम मे स्मृति का ही सुख है। एक टीस उठती है, वही तो प्रेम का प्राण है।"

'मकरन्द विन्दु' की कविताओ मे अपेक्षाकृत नवीनता कम है। सवैया, कवित्त और पद की शैली मे लिखी गयी इन कविताओ को प्रेम, प्रकृति और भक्ति मे विभाजित किया जा सकता है। प्रेमविषयक कविताओ मे उपालम्भ की भावना भी मिलती है। प्रेमी बारम्बार अपने प्राणप्यारे से अनुनय-विनय करता है कि 'मुझे नेक कठ से लगा

लो'। इस अवसर पर प्रकृति उद्दीपन बनकर आती है। प्रसाद ने प्रथम दर्शन मे प्रेम की उत्पत्ति स्वीकार की है

देखत ही ताहि पहिचानो सो परत कहो,
बरबस ही लागत प्रसाद वह प्यारा क्यो।

इतना ही नही उसने आकर हृदय मे उसी प्रकार आसन जमा लिया, जैसे कमला कमल पर, किन्तु उसे आभास नही मिला। शृगार वर्णन मे अमल चन्द, कुरग आदि के द्वारा रूप प्रस्तुत किया गया किन्तु वह सौन्दर्य नेत्रो की अपेक्षा हृदय मे समा जाता है। प्रेम एक सौरभ है, जिससे हृदय सुरभित हो उठता है। प्रेम प्रकृति को कवि एक समन्वित रूप मे प्रस्तुत कर रहा है, जो आगे चलकर उसके स्वतन्त्र काव्यदर्शन मे परिणत होता है। भारतेन्दु की भॉति प्रसाद की शृगार भावना परिष्कृत है, उसमे विकास के चिह्न मिलते है। प्रकृति के विषय मे कवि की जिज्ञासा है, कुतूहल। वसन्त कौन मन्त्र पढ देता है कि समस्त प्रकृति सरस हो उठती है। मलयानिल किसे पुकार रहा है? रसाल की शिराओ पर कोकिला कौन सा गीत गा रही है? कही कही पर परम्परा का आभास भी मिलता है जिसमे लोकगीतो का सा स्वर है 'जिया ना जगाव जरी जाय रही हारी'।

भक्ति की कविताओ का मूल प्रेरक वह धार्मिक वातावरण प्रतीत होता है जिसमे कवि प्रसाद का जीवन विकसित हुआ। इन कविताओ मे परम्परा कही कही अधिक स्पष्ट हो जाती है। कवि पूर्ण भक्त नही था पर उसमे श्रद्धा की भावना थी। यही कारण है कि भक्त कवियो की सी तन्मयता उसमे नही मिलती। सगुण भक्ति की प्रणाली के अनुसार प्रसाद ने भी अपने आराध्य को दीनबन्धु करुणासमुद्र सच्चिदानन्द नाथ आदि से सम्बोधन किया है। वह रसपूर्ण रूपवान सगुण है किन्तु उसका नामकरण कवि ने नही किया केवल गुणो से विभूषित कर दिया है। यह भक्ति भावना सासारिक सघर्षो से त्रस्त होने से कभी कभी प्रबल हो उठती है। विश्लेषण करने पर भक्ति भावना का कोई विशेष कारण नही प्रतीत होता। इससे स्पष्ट है कि कवि परम्परा से प्रभावित है। पुण्य पाप, परमार्थ स्वार्थ आदि की समस्याएँ इसमे प्रतिध्वनित होती है। इसी के साथ ही कवि सामयिक सदर्भो पर भी टिप्पणी करता है 'मन्दिर, मसजिद, गिरजा सबमे खोजत सब भरमायो'।

इन कविताओ मे कवि का हृदयपक्ष अधिक साथ नही देता। यही कारण है कि आगे चलकर भक्ति की अपेक्षा वह दर्शन की ओर अधिक उन्मुख हुआ। किसी विशेष उपास्य को उसने हृदयगम नही किया, किन्तु कालान्तर मे कुछ दर्शनो मे वह प्रभावित हुआ। उसे प्रकृति के प्रत्येक कण मे किसी अज्ञात शक्ति का आभास मिलने लगता है। भक्ति की अपेक्षा श्रद्धा और शक्ति तत्व का प्रसाद की कविता मे अधिक विकास हुआ।

चित्राधार का स्वरूप

चित्राधार की कविताओ पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि उनमें भावों की नवीनता अवश्य मिलती है, पर परम्परा के प्रभाव भी स्पष्ट है। अध्ययन के साथ कवि मे परिपक्वता आती गयी। द्विवेदी युग की सुधार दृष्टि और रीतिकालीन शृगारिकता के बीच नैसर्गिक सौन्दर्य की एक क्षीण रेखा इन कविताओ मे मिल जाती है। आख्यान कविताओं से प्रबन्ध शक्ति का आभास भी मिलता है। कवि की शैली यद्यपि शिथिल है किन्तु उसमे नये विकास के चिह्न है। इन कविताओ का इस दृष्टि से प्रयोगात्मक और ऐतिहासिक महत्त्व है। 'मानस' में जिस मानसिक विवेचना की ओर प्रसाद ने सकेत किया था, उसका विकास होता गया। कभी कवि प्रकृति मे रमता है, कभी ईश्वर को पुकारता है और कभी प्रेम म उलझता है। भाषा की दृष्टि मे अभी वह पूर्णतया परम्परा मुक्त नही हो सका। हॉ, अलकारो से अवश्य वह मुक्त है। किन्तु जहा कही वह उनके मोह म पडा भी है, वर्णन मे व्यवधान अधिक नही पडता। पयार त्रिपदी बंगला म तथा प्रियम्वदा, सुन्दरी, मालिनी आदि छन्द उन्होंने सस्कृत म ग्रहण किये। वश परम्परागत वातावरण मे पले हुए प्रसाद अभी जीवन को सुखी आशा म भलीभाति न देख सके थे, किन्तु उनम जिज्ञासा भाव था। यही कारण है कि आगे चलकर उनकी भावना एक सार्वभौमिक धरातल पर पहुँची। तत्कालीन ब्रजभाषा की कवितायो म तुलना करने पर प्रसाद की आरम्भिक रचनाओं मे एक नया सौन्दर्य दिखाई पडता। जिस शृगारी कविता का सृजना द्विवेदी युग में एक अपराध सा बन गया था, उसी की एक नयी मीमासा लेकर प्रसाद ने प्रवेश किया था।

प्रेमपथिक और एकान्तवासी योगी

नवयुवक प्रसाद की प्रेम कल्पना 'प्रेमपथिक' में आकर प्रस्फुटित हुई। कवि ने इसे लगभग सोलह सत्रह वर्ष की अवस्था म लिखा था। स्वय उन्होने उसके खडीबोली सस्करण (माघ शुक्ल 15, 1970 वि) म निवेदन किया कि, 'यह काव्य ब्रजभाषा मे आठ वर्ष पहले मैने लिखा था।' इसका कुछ भाग इन्दु, कला एक, किरण दो, भाद्रपद शुक्ल 2, 1966 वि म प्रकाशित हुआ था। यद्यपि दोनो ही सस्करणो मे कवि ने इसकी कथा के विषय मे कोई भूमिका नही प्रस्तुत की, किन्तु एक स्थान पर उसने ऐसी पुस्तक का सकेत किया, जिसकी कथा भी 'प्रेमपथिक' की भाँति है। इन्दु, कला दो, किरण एक, श्रावण स. 1967 मे प्रसादजी ने 'कवि और कविता' शीर्षक एक लम्बा लेख लिखा था। इसमें उन्होंने भावमयी कविता के दो विभाग किये, कथामूलक और भावमूलक। कथामूलक भावमयी कविता के अन्तर्गत उन्होने श्रीधर पाठक के 'ऊजड-ग्राम' को रक्खा। इतिहास से विदित है कि पाठकजी ने 'एकान्तवासी योगी' (सं. 1943 वि., जनवरी, 1886), 'ऊजड़-ग्राम' तथा 'श्रान्तपथिक' का पद्यिक अनुवाद क्रमश. गोल्डस्मिथ के हरमिट, डेजर्टेड विलेज और ट्रेवलर से किया। उन्होने

'एकान्तवास योगी' लावनी अथवा ख्याल के ढंग पर लिखी। 'श्रान्तपथिक' की रचना रोला छन्द में की। 'एकान्तवास योगी' के पंचम संस्करण से ज्ञात होता है कि इनकी लोकप्रियता अपने समय मे काफी थी। 'एकान्तवास योगी' और 'श्रान्तपथिक' खड़ी बोली में तथा 'ऊजड़-ग्राम' ब्रजभाषा में थे। एकान्तवासी योगी की कथा है :

आरंभ में पथिक कहता है, "मैं वन में इधर-उधर भटका करता हूँ, राह भूल गया हूँ, मुझे मार्ग बता दो।" तभी वन में रहनेवाले एक वैरागी ने कहा, "पुत्र, वहाँ मत जाना। भ्रम की अग्नि का कभी विश्वास न करना। सम्मुख जलनेवाला प्रकाश सत्य नहीं, मिथ्या है। यहीं निकट ही मेरा दरिद्र कुटीर है। चलो, आज रात वहीं विश्राम करो। मैं पर्वत की घाटियो में स्वच्छन्द विचरण करता रहता हूँ। मुझ पर परमेश्वर की दया है, मैं पशु-हिंसा नहीं करता। कन्दमूल, फल खाकर प्रसन्न रहता हूँ। सुजान बटोही, चिन्ता छोडकर मगन हो जा। जगत का व्यर्थ मोह छोड़कर तन-मन भगवान को अर्पित कर दे।" ये मृदुल वचन पथिक को ओस-बिन्दु की भाँति प्रतीत हुए। वह योगी के साथ चल दिया। बहुत दूर झाड़खण्ड मे उसकी पर्णशाला बनी हुई थी। योगी ने पथिक का हृदय से स्वागत किया। किन्तु इस समस्त परिचर्या से भी उसका शोक कम न हो सका। पथिक अब भी व्यथित और पीड़ित था :

गद्गद कंठ हृदय भर आया, ली उसाँस उसने भारी
नेत्रों से फिर अश्रुपात की एक साथ बँध गयी धारी।
बहे अनर्गल अश्रुधार यह ज्यो पावस का मेह
आर्द्र कपोल, चिबुक, वक्षस्थल, सजल हुई सब देह।

ज्ञानी वैरागी ने स्थिति का अनुभव कर लिया। वह स्वयं उसी व्यथा से पीड़ित था और ससार के समस्त दुख, सन्ताप सह चुका था। उसने अत्यन्त कोमल, मृदुल वाणी में पूछा कि, "परदेसी, तू क्यों दुखी है ? क्या घर का सुख तुझसे छूट गया है ? अपने लोगो से बिछुडकर तू उनकी सुधि में रो रहा है, अथवा मैत्री का बुरा परिणाम तुझे मिला है। क्या तेरे अपार दुख का कारण प्रेम तो नहीं है, जिसका निर्वाह संसार में कठिन है। धन के बल से प्राप्त होनेवाला सासारिक सुख पल-भर मे समाप्त हो जाता है। सांसारिक मैत्री भी केवल एक कथा है। अपनी स्वार्थसिद्धि के हेतु जगत् मित्र बन जाता है। तू प्रेम-पन्थ में पड़कर व्यर्थ स्वयं को कष्ट दे रहा है। इस कुटिल क्रूर पृथ्वी पर प्रेम का वास भला कहाँ सम्भव है ? आकाश के प्रसून की भाँति उसकी आशा व्यर्थ है।"

योगी ने आश्चर्यचकित होकर देखा, पथिक का रूप-लावण्य प्रकट हो गया था। वैरागी को विश्वास हो गया कि वह पथिक पुरुष नहीं, कोई सुन्दरी है। वह दुःखिनी नम्र होकर बोली, "साधुवर, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। मैं भाग्यहीन एक विरहिणी हूँ। मैंने इस पुनीत आश्रम को अपवित्र कर डाला। मेरी दशा शोचनीय है,

मुझ प्रेमव्यथित अबला पर दया कीजिए। केवल प्रेम-प्रेरणावश मैंने अपना गृह त्याग दिया और प्राणपति के लिए पुरुष-वेश धारण कर लिया। टाइन नदी के रम्य तट पर मेरे पिता की अतुल सम्पत्ति थी। वे अत्यन्त धर्मशील और उदार थे। बाल्यावस्था में ही माँ के स्वर्गवामी हो जाने से उन्होंने मुझे बड़े स्नेह से पाला था। एकमात्र बालिका होने के कारण मैं ही उस धन-वैभव की स्वामिनी थी। सुख-ही-सुख में मेरा शैशव व्यतीत हो गया, मैं यौवन के द्वार पर आ गयी। अनेक युवक मेरे पास आने लगे। उनमें से एक कुमार एडविन भी मेरा प्रेमी था। वह सभ्य, सौम्य, सुशील, सुजान तथा सभी मानवीय गुणों से अलंकृत था। विधि ने विश्व का समस्त सौन्दर्य ही उसमें संगृहीत कर दिया था। आज तक केवल उसकी मूर्ति के सहारे ही जी रही हूँ क्योंकि अब भी मुझे मिलने की आशा बनी हुई है। दिन-रात उसी की आराधना करती रहती हूँ, वही मेरा इष्टदेव, जीवन प्राण है। पर्वत-घाटियों में घूमते समय उसकी अमृतमयी वाणी से सुधारस बरसा करता था। उसका सौन्दर्य अपूर्व था :

उसके मन की सुघराई की उपमा उचित कहाँ पाऊँ
मुकुलित नवल कुसुम कलिका सम कहते फिर-फिर सकुचाऊँ।
यद्यपि ओस-बिन्दु अति उज्ज्वल, मुक्ता विमल अनूप
किन्तु एक परमाणु मात्र भी नहिं उसके अनुरूप।

किन्तु विधि का विधान कुछ और था। मैं अपने रूप के अहंकार मे चपल हो उठी और प्रेम परीक्षा करने के लिए उसकी अवहेलना करने लगी। प्रेम करते हुए भी उसकी उपेक्षा की। उसे मेरे शुष्क व्यवहार से अत्यधिक कष्ट हुआ; अन्त में वह निराश होकर चला गया। एडविन ने मुझसे प्रेम किया, मैं जीवन देकर उसका प्रतिदान करूँगी।' वह वैरागी स्वयं एडविन ही तो था। उसने युवती को हृदय से लगा लिया और बोला, "मेरी अजलैना, इतने दिन के बिछुड़ हम लोग पुनः मिल रहे हैं। ईश्वर को बारम्बार धन्यवाद है। अब मैं तुझे छोडकर कभी नहीं जाऊँगा। तू ही मेरा सर्वस्व है।"

गोल्डस्मिथ की मूल कविता मे प्रेम के उच्च आदर्श की स्थापना की गयी है। उसी के साथ प्रकृति का वर्णन भी होता रहता है। कजामियाँ का कथन है कि साहित्यिक नृत्यगीतों की यह प्रणाली उस समय पर्याप्त लोकप्रिय थी। इनमें नृत्य, प्रबन्धकाव्य तथा नाटक का एक साथ समन्वय होता था। आगे चलकर नृत्य गौण हो गया था।[8] संस्कृत मे भी ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग कविता मे कुछ कथाएँ लिखी गयीं।[9] शतक भी साहित्यिक नृत्यगीतों के निकट हैं। इस प्रकार की कथाएँ सभी साहित्यों में मिलती हैं। किसी लघु मर्म कथा के द्वारा भावाभिव्यक्ति करने से उसमें सरसता आ जाती है और सामान्य जनता भी उसका आनन्द ले सकती है।[10] अपने प्रारम्भिक रूप में वह ग्राम-गीतों के अधिक समीप थे किन्तु धीरे-धीरे उसे साहित्यिक वातावरण

मे ले आया गया। इस प्रकार इन साहित्यिक नृत्यगीतो का पर्याप्त प्रचलन रहा।

'एकान्तवास योगी' से अनुप्राणित 'प्रेम-पथिक' मे स्वच्छन्दता का विकास देखा जा सकता है। 'प्रेम-पथिक' के आरम्भ में ही कवि कहता है कि जाते समय पथिक ने ग्रामदेवता को प्रणाम किया। चलते-चलते भास्कर की किरणे प्रखर हो गयी, वह वट-वृक्ष की शीतल छाया मे विश्राम करने लगा। पपीहा की 'पी कहाँ' सुनकर उसे अपनी प्रिया का ध्यान हो आया। चलते-चलते वह मरुभूमि मे पहुँच गया और मन-ही-मन सोचने लगा कि इस निर्जन मे एक वृक्ष के अतिरिक्त कोई अन्य छाया नही है। तृण भी नही दिखाई देता। जो कुछ है, वह भी सूखता चला जा रहा है। इसी प्रकार विचार करते-करते पथिक व्याकुल हो उठा। तभी एक मनुष्य आकर बोला कि तुम तो अत्यन्त कोमल प्रकृति के प्रतीत होते हो। पथिक, यह वही उपवन कुज है, जिसमे अलिपुज भूलकर भी पग नही रखता। इस तरु म एक भी डाल कुसुमित नही है। चन्द्रमा वही है, किन्तु चकोर नही दिखाई देता। इस उपवन मे वायु भी कही नही रहती। इस मारुत के स्पर्श मात्र से कलिकाएं मुरझा जाती है, और :

> प्रेम ! चक्रवर्ती राजा के राज
> हाय ! दुहाई सुनी जात नहि काज।

पथिक, तुम्हे सुकुमार देखकर हम शिक्षा देते है कि इस पथ मे अनेक दुग्न हैं, तुम लौट जाओ। तभी पथिक बोला, "तुम कौन हो ? किस स्थान के वासी हो ? मेरे स्वामी, प्रेम के जाल मे पडे मुझको दया कर उबार लो।" उस अपरिचित ने पुन आरम्भ किया, "मैं स्वय प्रेम हू मेरे मित्र ! तुम अभय हो जाओ, मेरी कृपा तुम पर है। पथिक ने पागलो की भाँति हाय हाय करते हुए प्रेम का पल्ला लिया। वह आकुल होकर कहने लगा "तुमने इतने दिनो तक मुझे व्यर्थ ही हैरान किया। आज शिक्षा देने आये। तुम्ही प्रिया के दृगों मे समाये थे, और मेरे हृदय म बाण मार गये थे। पलकियो मे तुमने हलाहल भर दिया था। काली लम्बी लटो म तुम फास बन गये थे। अधरो म विद्युत की भाँति तुमने मदिर मुस्कान भर दी थी। कपालो के बीच झलकनेवाली अरुणिमा मे तुम्हारा ही प्रतिबिम्ब था। आज मुझे तुम्हारा छल बल ज्ञात हुआ। नल आदि तुम्हारे ही जाल म फॅस गये थे। शकुन्तला दमयन्ती राजकुमारी, सुवर, गन्धर्व, नर, किन्नर, यक्ष आदि सभी तुम्हारे तीर्थ मे स्नान कर चुके। उन्हे कभी तृप्ति नही मिली, पिपासा बुझ न सकी।"

पथिक की इन बातो पर प्रेम हँस पडा। वह बोला, 'अब तो तुम मेरे बन्धनो मे हो। हृदय म कुछ धीरज रखो, पीर सहन कर लो। आशा, निराशा, अश्रुधार, कम्पन सभी मन के भूषण है। यदि प्रिय की कामना है तो जलज की रीति सीखो। सदा स्माकुल होकर प्रीति का उपभोग करो। पथिक, धीर धरकर चलो, पथ दूर है। स्नेह मे चूर होकर आगे बढो।" पथिक को एक नवीन शक्ति मिली। वह कृतज्ञ होकर

बोला, "प्रेम, तुम्हारे समान अन्य कोई नही है। शका, दृढ़ता, हर्ष, शोक एक साथ तुममें एकाकार होते हैं। प्रेम का सिन्धु अथाह है, न उसकी कोई सीमाएँ हैं और न तट। उसमें सदा ऊँची तरंगे उठा करती हैं। सुख-दुख से मुक्ति पाने के लिए नौका पर चलना होगा। प्रेम का नाम न लेना, इसे भूल जाओ। दूसरो को शिक्षा देते हो, अपनी ही दशा देखो। अभी तक प्रेम-जाल मे पडे हो।" अन्त मे,

भये दुर्बल दीन तन अरु नैन ते जलधार
वही आशा छाँह रट, पुनि हाय बारहि बार।

'प्रेम पथिक' उस समय की ब्रजभाषा-कविता के लिए एक नवीन प्रयास था। कवित्त, सवैया और पदो मे बँधी हुई कविता के स्थान पर प्रसाद ने नया प्रयोग किया। शृगार के स्थान पर कवि ने इसमे प्रेम को साकारता प्रदान की है। वह पथिक से वार्तालाप करता है। आरम्भ मे वह मनुष्य के रूप मे पथिक के सम्मुख प्रस्तुत होता है, और अपने परिचय मे स्वय को 'प्रेम' कहता है। अपनी साकेतिक शैली मे प्रसाद ने प्रेम का जो उदात्त स्वरूप प्रस्तुत किया, वह सर्वथा नवीन है। प्रेम स्वय कहता है :

यह वह श्रमशाला है रहै जो गुन
मृन रहै पै कलरव नितप्रति दून।

इस प्रकार 'चित्राधार' के प्रेम से कवि ने आगे बढ़ने का प्रयत्न किया है। उसके कवित्त और सवैयों में प्रेमी का प्रेमिका के प्रति वही परम्परागत उपालम्भ और निवेदन अधिक मिलता है। प्रेमी बारम्बार प्रार्थना करता है कि हमे दर्शन दो। उस 'अनग की कलना' को वह आज भी नही भूल सका। ब्रजभाषा काव्य में प्रथम बार प्रसाद ने प्रेम की स्वतन्त्र सत्ता का वर्णन किया। इसी के साथ कवि का व्यक्तित्व भी अधिक प्रस्फुटित हो उठा है। अभी तक प्रसाद प्रकृति के रमणीय स्वरूप और ईश्वरीय गुणो पर मुग्ध थे। 'प्रेमपथिक' मे वे मानव के इतना निकट आ सके है कि उनके काव्य को मानवीय आधार प्राप्त हो गया। इसमे सन्देह नही कि अब भी प्रकृति के प्रति उनकी अभिरुचि है किन्तु अब वह मानवीय भावनाओ का आधार बन गयी है। प्रेम के गुणों का प्रतिपादन करने के लिए कवि ने उसका अवलम्ब ग्रहण किया है।

ब्रजभाषा के लिए 'प्रेम पथिक' सर्वथा नवीन प्रयोग था और इसके खड़ीबोली के रूपान्तर ने छायावाद के प्रथम चरण का कार्य किया। यह आख्यान-कविता के भावात्मक आदर्श को लेकर प्रस्तुत हुआ। इसके ब्रज सस्करण में ही प्रसाद ने छन्दो मे थोडी-सी स्वच्छन्दता लेना आरम्भ कर दी थी। चारु, उद्गार, सुविभार, धारि आदि मे तुक पूर्णतया नही मिलते। आगे चलकर खड़ीबोली का रूप तो अतुकान्त ही हो गया। प्रेम का अप्रस्तुत विधान आगे आनेवाली रहस्यात्मकता का सूचक है। उस समय के कवियो—भगवानदीन, सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाकर की तुलना में प्रसाद

अधिक स्वच्छन्द भूमि पर हैं। भगवानदीनजी पुरानी ढग की कविता लिखते थे। कविरत्नजी के 'भ्रमरदूत' मे नन्ददास का अनुकरण है। रत्नाकरजी की कविता मे यद्यपि नयी उक्तियाँ थी, किन्तु उसमे आलकारिकता अधिक है। इस प्रकार प्रसाद ब्रजभाषा के भी स्वतन्त्र कवि है और वे घनानन्द आदि के अधिक समीप हैं।

ब्रजभाषा-काव्य

प्रसाद की ब्रजभाषा रचनाएँ आगे न चल सकी किन्तु उनका एक ऐतिहासिक महत्त्व है। उस समय की ब्रजभाषा-काव्य-परम्परा पर एक दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि विषय की दृष्टि से भारतेन्दु ने उसमे सुधार किया था। शृगार और गीति के साथ ही देश-काल सम्बन्धी कविताएँ भी ब्रजभाषा के माध्यम मे होने लगी थी। एक ओर यदि वे अँगिया मे छिपे हुए चितचोर को रीतिकालीन कवियो की भाँति खोजते थे, तो दूसरी ओर उन्होने भारत की दुर्दशा पर भी दुख प्रकट किया। पर नवीन विषयो की ओर उन्मुख रहते हुए भी भाव की दृष्टि मे ब्रजभाषा परम्परा के आवरण को न उतार सकी थी। कवि-गोष्ठियो मे अब भी समस्यापूर्तियाँ चला करती थी। प्रसाद ने कल्पना-सुख, मानस, नीरव प्रेम आदि नवीन विषयो पर काव्य-रचना की और शृगार मे उन्होने पर्याप्त परिष्कार किया। प्रकृति को केवल उद्दीपन न बनाकर उन्होने उसके अनेक सुन्दर रूपो से रमणीयता प्राप्त की और उसे एक जिज्ञासा-भरी दृष्टि से देखा।

शैली की दृष्टि से उन्होने नवीन छन्दो का उपयोग किया। भक्ति की कविताओ मे वे सगुणोपासक कवियो की तन्मयता तक नही पहुँच पाते। भक्ति तो उनके लिए दर्शन तक जाने का एक आधार बनी, किन्तु अपने समय की भक्ति कविताओ मे उनकी भावना मे अधिक वैयक्तिक स्वर था। राधा कृष्ण की आड मे भक्ति के साथ शृगार का वर्णन करनेवाले कवियो का अनुसरण प्रसाद ने नही किया। उन्होने 'दीनबन्धु' रूप को ग्रहण किया। इस दृष्टि मे अपने ब्रजभाषा के आरम्भिक और अन्तिम काल मे भी उनका स्वर अधिक स्वतन्त्र था।

प्रसाद की इन आरम्भिक कृतियो मे उनका विकासशील स्वर झलक जाता है। कवि की कई रचनाओ मे अध्ययन का प्रभाव दिखाई देता है जिसने उसे प्रौढ़ता प्रदान की। आगे चलकर उसने अनुभव के द्वारा उसे एक जीवन-दर्शन के रूप मे प्रस्तुत किया। प्रसाद का ज्ञान काव्य मे अनुभूति-समन्वित होकर आया है। कालिदास से अनुप्राणित प्रसाद की आरम्भिक रचनाएँ शृगार की एक उदात्त कल्पना अकित करती हैं। 'प्रेम-पथिक' के प्रेम का आदर्श उनके साहित्य की आत्मा बनता है। कवि की प्रबन्धात्मकता लम्बी रचनाओ से विदित होती है। नाटको को अपनी विचारधारा का प्रमुख माध्यम बनाने के कारण उन्होने काव्य मे उसे अपेक्षाकृत कम स्थान दिया है। काव्य मे लिखी गयी कथाएँ महाकाव्य का एक लघु सस्करण होती हैं। आरम्भ से

ही कवि ने नवीन प्रयोग करने आरम्भ कर दिये थे और धीरे-धीरे उन्हीं का विकास होता गया, उनमें प्रौढ़ता आती गयी। भावना की दृष्टि से प्रसाद ने द्विवेदी-युग की शुष्कता को सरस बनाया। उन्होंने शृंगार का जो स्वस्थ रूप प्रस्तुत किया, उसकी रेखाएँ ब्रजभाषा की इन आरम्भिक रचनाओं में मिल जाती हैं। प्रेम की व्यापक परिभाषा तो कवि कर ही चुका था; आगे चलकर प्रकृति के जिस विशाल रंगमंच पर उसने साहित्य को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया, उसके चिह्न भी यहाँ प्राप्त हो जाते है। प्रकृति के सौन्दर्य पर रीझनेवाले कवि ने अन्त में मानव मे वही सौन्दर्य खोज निकाला। जिस प्रकार ब्रजभाषा के कवि प्रकृति का वर्णन मनुष्य-जगत का उद्दीपन बनाकर करते थे, उसी प्रकार कई बार प्रसाद ने भी किया है, किन्तु उनकी भावना आरम्भ से ही अधिक सूक्ष्म और उन शृंगारी कवियो की अपेक्षा अधिक परिष्कृत और जिज्ञासामय है। यह जिज्ञासा ही आगे उनके विकास मे सहायक हुई है। यदि 'चित्राधार' में ये जिज्ञासाएँ न होती, तो प्रसादजी प्रेमाख्यानक शृंगारी कवियो की श्रेणी से ऊपर उठकर उच्चतर रहस्य काव्य का सृजन न कर पाते।[11]

प्रसाद को यदि प्रकृति से दर्शन प्राप्त हुआ तो भक्ति-भावना ने उन्हें आदर्श प्रदान किया। इस दृष्टि से आरम्भ मे आनेवाली इन परम्परा-प्रभावित विचारधाराओ का भी कम से-कम एक ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य है। प्रकृति और सृष्टि को ब्रह्म की छाया मानकर चलनेवाले इस कवि ने इस विश्व को 'प्रियतममय' बना दिया। इदं-अहं का भेद यहीं समाप्त हो जाता है। आगे चलकर स्वच्छन्दतावादी होते हुए भी प्रसाद ने काव्य मे जिस आदर्श की स्थापना की, वह भारतीय विचारधारा का एक नवीन सस्करण है। प्रसाद की ब्रजभाषा मे भाव, शैली की दृष्टि से एक नवीनता भी है, जो आगामी चरण का सूचक है। इसके अतिरिक्त उनकी ब्रजभाषा सूर की पदावली से भिन्न है। ब्रज के आस पास बोली जानेवाली ब्रजभाषा में देशज शब्द अधिक हैं, किन्तु प्रसाद की भाषा मे सस्कृत के तत्सम शब्द भी मिल जाते हैं। काशी में रहकर कवि ने ब्रजभाषा का अध्ययन कवि गोष्ठी के वातावरण तथा पुस्तको के द्वारा ही किया था। विन्दु, हिमकन, अमरतरंगिनि, परिमल, प्रभंजन आदि अनेक शब्द आगामी चरण का सकेत देते है। गद्य के क्षेत्र में प्रांजल भाषा का प्रयोग उन्होंने आरम्भ कर दिया था। आगे चलकर भाषा की दृष्टि से प्रसाद को इतनी सफलता प्राप्त हुई कि उनके गद्य और पद्य की भाषा लगभग एक-सी हो गयी। थॉम्पसन का विचार है कि बीस वर्ष तक की कविता मे रवीन्द्र में भी पुनरावृत्ति तथा विराम के स्थल प्राप्त होते हैं। विषय भी इतने नवीन नही हैं, जितना कि नवयुवक कवि का अनुमान था। कुछ धूमिल चित्र भी हैं, निराशा से पूर्ण, जो प्रायः जीवन के आरम्भिक भाग में कवियों को कटु अनुभवो के द्वारा प्राप्त होते हैं।[12] रवीन्द्र की भाँति प्रसाद ने भी आरम्भिक प्रेरणा भारतीय साहित्य से प्राप्त की। प्रत्येक कवि महान् कृतियों से प्रभावित होता है। मिल्टन ने आरम्भिक अवस्था में लैटिन की सुन्दर कृतियों का

अध्ययन समाप्त कर लिया था। गेटे होमर की रचनाओ को सदा अपने साथ रखता था। दान्ते ने वर्जिल को अपना गुरु माना है। इस प्रकार आरम्भ में अध्ययन कवि को विषय सामग्री देता है। रवीन्द्र को वैष्णव काव्य से भावनामयता, कालिदास से प्रकृति, कबीर से रहस्यवाद की प्रेरणा मिली। प्रौढ़ता पाने पर कवि अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए नवीन सामग्री सँजोने लगते हैं। अनुभव के द्वारा वे इस ज्ञान को समन्वित कर कविता को स्थायित्व प्रदान करते हैं। प्रसाद ने आरम्भ में भारतीय साहित्य से प्रेरणा प्राप्त की, आगे चलकर स्वयं उनकी कविताओं मे वे गुण आ जाते है।

खड़ीबोली का प्रथम चरण

प्रसाद ने इन्दु-काल में ब्रजभाषा के साथ खड़ीबोली मे भी लिखना आरम्भ कर दिया था। बीस वर्ष की अवस्था के पश्चात् उन्होने खड़ीबोली का ही काव्य का माध्यम बना लिया। विकास की दृष्टि से 'चित्र' को उनकी सर्वप्रथम खड़ीबोली कविता मानना पडता है :

आशा तटनी का कूल नही मिलता है
स्वच्छन्द पवन बिन कुसुम नही खिलता है।
कमलाकर मे अति चतुर भृंग जाता है
फूले फूलों पर फिरता टकराता है।
मन को अथाह गम्भीर समुद्र बनाओ
चचल तरग को चित मे वेग हटाओ।
शैवाल तरगो मे ऊपर बहता है
मुक्ता समूह थिर जल भीतर रहता है।

—इन्दु, कला ?, किरण 2, 1967 वि पृ 57

स्फुट रचनाओ की दृष्टि मे 'कानन कुसुम' प्रसाद की खड़ीबोली कविताओ का प्रथम सग्रह है। उसमे 'सवत् 1966 से 1974 तक की कविताओ का सग्रह', लिखा है, किन्तु 'इन्दु' मे उनकी सर्वप्रथम खड़ीबोली की प्रकाशित रचना 'चित्र' ही है। इस समय आचार्य द्विवेदी खड़ीबोली का नेतृत्व कर रहे थे। ब्रजभाषा की घोर शृगारिकता के विरुद्ध जो आन्दोलन उस समय खडा हो गया था, वह साहित्य का एक अन्य सीमान्त था। यदि शृगारी कवि नायिका मे ही कविता को बाँध देते थे तो द्विवेदी-युग का कवि आदर्श तक जाने के लिए कृत्रिमता का सहारा ले रहा था। कवि प्रकृति को देखता था, उसका चित्रण करता था, किन्तु उससे तन्मय होकर, पाठक तक उसी चित्र को पहुँचा देने की शक्ति उसमे न थी। आदर्शवादिता और पौराणिक आख्यान द्वारा शृगार का परिष्कार नही हो रहा था, वरन् वह साहित्य से दूर होता जा रहा था। इस शुष्कता ने यदि गद्य के क्षेत्र मे प्रेमचन्द जैसे कथाकारो को शक्ति

दी, तो काव्य में गुप्तजी की परिश्रमसाध्य कृतियाँ आयीं। आदर्शवादिता की रक्षा मे कवि जीवन की कठोर वास्तविकता से दूर आ गया था। किसी सीमा तक बाह्य जीवन का चित्रण तो उसने किया, किन्तु मानव के अन्तस्तल में उठनेवाले विचार वह भूल गया। काव्य की उपेक्षिता का चित्रण करने के लिए साकेत, यशोधरा आदि काव्यो की रचना तो कर दी गयी, किन्तु उनका नारीत्व उसमे अपने वास्तविक रूप में हमें नहीं दिखाई देता। साकेत की उर्मिला का विलाप कभी-कभी कृत्रिम भी प्रतीत होने लगता है। हरिऔध की यशोदा शोक और करुणा में कृष्ण के समस्त गुणों का वर्णन कर जाती है, पर चित्रण की सूक्ष्मता उसमें कम है। द्विवेदीजी गद्य-पद्य का अन्तर समाप्त करना चाहते थे। वे उस समय की राजनीतिक और सामयिक परिस्थिति के अनुरूप साहित्यधारा को मोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु अपने इस प्रयास में वे कविता के चिरन्तन मूल्यो का भली-भाँति निर्वाह न कर सके। कवि किसी विशेष व्यक्तित्व-निरूपण के लिए ही कविता लिखना नहीं आरम्भ कर देता, वह कविता के द्वारा मानवीय भावों का प्रदर्शन भी करता है। जीवन संघर्षमय है, किन्तु द्विवेदी-युग का कवि शान्ति, सुधार का सन्देश दे रहा था। जयद्रथवध में युद्ध-द्वेष आदि के वाह्य सघर्ष दिखाई पडते है किन्तु आन्तरिक द्वन्द्व का पता नहीं चलता। प्रसाद ने इस शुष्कता के विरोध मे अपनी मधुर भावनाओं को प्रस्तुत किया। भावो के परिष्कार का प्रयास वे ब्रजभाषा काल से ही कर रहे थे, इन्हीं भावनाओं को उन्होंने खड़ीबोली का परिधान दिया।

उन्नीसवीं-बीसवी शती में भारत में सभ्यता-संस्कृति का एक समन्वय चल रहा था। योरप की नवीन विचारधाराएँ प्रवेश कर रही थीं। सांस्कृतिक नवजागरण के परिणामस्वरूप भारतीय अतीत पर पुनर्विचार शुरू हो गया था। रवीन्द्र में पूर्व-पश्चिम का सगम हो रहा था। प्राचीन के उपाख्यानो को लेकर उर्वशी आदि सुन्दर रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी थीं। संस्कृत पदावली की मधुरता को नवीनता प्रदान करने का प्रयत्न भी चल रहा था। भाषा के परिमार्जन के साथ ही उसके माधुर्य को जीवित रखने की समस्या सम्मुख थी। रवीन्द्र ने यदि वैष्णव कवियों से माधुर्य भाव की प्रेरणा प्राप्त की थी, तो कालिदास से उदात्त शृंगार। हिन्दी कविता के क्षेत्र में एक विचित्र असन्तोष का अनुभव सभी को हो रहा था, किन्तु शृंगार का नाम लेने का साहस किसी ने नहीं किया। उस प्रयास को देश के प्रतिकूल कहकर असामाजिकता की संज्ञा तक दे दी जाती थी। इस अवसर पर हिन्दी को बँगला से पर्याप्त प्रेरणा मिली। सौन्दर्यानुभूति के द्वारा प्रगीत मुक्तकों में रवीन्द्र ने रहस्यात्मकता को प्रस्तुत किया था और इन प्रतीकों के द्वारा उन्होंने परोक्ष सत्ता का भी चित्रण किया। प्रेम, सौन्दर्य, अध्यात्म एक साथ इन गीत-खण्डों में साकार हो उठे हैं। यही कार्य हिन्दी में निराला और जयशंकर प्रसाद के द्वारा सम्पन्न हुआ।

कवियों को प्रभाव और विकास की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा

सकता है। प्रथम कोटि के कवि अनेक प्रभावो का समीकरण कर एक नवीन रचना उपस्थित करते है। अन्य प्रकार के कवियो का स्वर आरम्भ स ही विद्रोही होता है। प्रसाद ने यद्यपि जीवन मे उत्थान पतन देखे थे, किन्तु वे शान्त प्रकृति के व्यक्ति थे। उनका जीवन गेटे अथवा निराला की भाँति विद्रोही नही था। यही कारण है कि अपनी आरम्भिक रचनाओ की प्रेरणा उन्होने परम्परा मे प्राप्त की। वे अग्रेजी के उन स्वच्छन्दतावादी कवियो की भाँति नही थे जिन्होने अपने प्रथम कम्पन मे ही क्रान्ति का परिचय दिया और अन्तिम समय तक एक आवेश के साथ गाते रहे। प्रसाद उस प्रभातकालीन सूर्य के समान थे, जो धीरे धीरे विकसित होकर ससार को प्रकाश प्रदान करता है। उनके प्रथम चरण म आगामी विकास का किचित आभास मिल जाता है प्रसाद प्रबन्धात्मकता की ओर भी प्रयत्नशील थे। एक व्यापक रगमच पर वे अपनी रचना प्रस्तुत करना चाहते थे। ब्रजभाषा मे व प्रेमराज्य, वनमिलन, अयोध्या का उद्धार, प्रेम पथिक आदि आख्यान कविताएँ लिख चुके थ।

करुणालय

खडीबोली मे उन्होन 'करुणालय' की रचना की। समस्त कथा छोटे छोटे पाँच अको मे विभाजित की गयी है। सम्भवत नाट्यशास्त्र के आदर्शो का पालन करने की दृष्टि से उन्होने लगभग पन्द्रह पृष्ठ के इस काव्य मे ग्यारह पात्र रख दिये है। किन्तु इसे सफल नाटक की सज्ञा नही दी जा सकती। नाटक का सा व्यापक सघर्ष और द्वन्द्व इसमे नही मिलता। इसे प्रसाद की अन्य रचनाओ की भाँति कथाकाव्य अथवा आख्यान कविता ही कहना अधिक उपयुक्त होगा जिसमे नाटकीय शैली का समावेश करा दिया गया है। कथानक को विकसित करने के लिए कुछ कुछ गीतिनाट्य की-सी शैली अपनाई गयी है। तुकान्तविहीन मात्रिक छन्द मे आवश्यकतानुसार विरामचिह्न भी दे दिये गये है। गण वृत्तो मे लिखने के पूर्व अमित्राक्षर कविता होने लगी थी किन्तु मात्रिक वृत्तो मे उसका प्रयोग, बिना चरणो के बन्धन म पडकर प्रसाद ने ही किया। सस्कृत का कलक अग्रेजी का ब्लैकवर्स तथा बगला के अमित्राक्षर की भाँति कवि ने अतुकान्त काव्य की रचना की। अधिक प्रतिबन्ध न होने के कारण भाषा मे एक प्रवाह सा आ जाता है। आगे चलकर कवियो की स्वच्छन्दता इस सीमा तक बढी कि उन्होने मात्राओ के बन्धन भी तोड डाले। करुणालय अपन तुकान्तविहीन मात्रिक छन्दो मे खडीबोली मे एक नवीन प्रयोग था।

करुणालय के प्रथम दृश्य मे महाराज हरिश्चन्द्र जलविहार करते हुए सहचरजनो सहित प्रवेश करते है। प्रकृति के सुन्दर स्वरूप को देखकर वे मुग्ध हो उठते है। सरिता के प्रान्त मे सान्ध्य नीलिमा फैल रही है। निर्मल सिधु धीरे-धीरे आकाश मे चढा चला जा रहा है। मलयानिल मे प्रकपित, जल की लहरो पर, शैवाल-जाल झूमते है, जल मे लहरे उठ-उठकर नौका को बुलाती है। तारागण भी नाव की मस्तानी

चाल को देख रहे है। विश्व मे प्रेममय शान्ति भरी हुई है। कवि कहता है : नौके, कर्णधार बनकर स्वय पवन तुम्हे लिये जा रहा है। धीरे धीरे चली चलो, तुम्हे जल्दी ही क्या है ? हरिश्चन्द्र का सेनापति ज्योतिष्मान महाराज का ध्यान तट-कानन की ओर आकर्षित कराता है जहाँ पर कभी कोई जनपद था। इक्ष्वाकु-कुल ने अपने भुजबल से दस्युओ का दमन कर दिया; अब वे आँख उठाकर आर्यो को नही देखते। हरिश्चन्द्र बोले, 'देवगण सदा आर्यो के अनुकूल है। विश्व की समस्त सुख-शान्ति का उत्तरदायित्व हम पर है।' तभी नौका स्तब्ध हो गयी, नेपथ्य से गर्जन होने लगा कि यह राजा मिथ्याभाषी और पाखण्डी है। इसने सुतबलि देना निश्चित किया था, किन्तु आज तक अपना प्रण पूर्ण नही किया। हरिश्चन्द्र ने कहना आरम्भ किया : 'हे देव. सन्तान की अत्यधिक ममता होती है। अब मै बलि देने मे देर नही करूँगा।'

द्वितीय दृश्य मे रोहित कानन मे घूमता हुआ सोच रहा है कि पिता परमगुरु होता है, उसका आदेश पालन करना हितकर धर्म है, किन्तु निरर्थक मरने की कडी आज्ञा है, कैसे पालन करूँ ? उसको हमारे प्राणो पर क्या अधिकार है ? वह सार्वजनिक सम्पत्ति तो नही है। शैशव मे ही बलि का क्रूर कर्म कर लेते तो अच्छा था। स्वच्छ नील नभ मे अरुण रविरश्मियाँ थिरक रही है। सम्मुख नव प्रभात का सुखद दृश्य है। अब मै परिवर्तनशीला प्रकृति को देखूँगा। देश-देश स्वाधीन होकर घूमूगा। चारो ओर ही मृगया का आहार है, सभी जीव सहचर है। जब तक चाप मेरा सहायक है, क्या कमी रहेगी ? तभी नेपथ्य से ध्वनि आयी : 'चलनेवाला आपदाओ और सारी बाधाओ को पीछे ही छोड देता है। चले चलो, तनिक भी घबराओ नही। बढ़ो बढ़ो, इस भूमि मे रुकना मत। पवन की तरह चलो। यदि बैठ जाओगे, तो कुटिल संसार मे तुम्हे एक पग भी स्थान नही मिलेगा। ग्रीष्म के पथिक, यहाँ मत ठहरो। चलो, बढ़ो, अभी रम्य भवन अत्यन्त दूर है।' रोहिताश्व को एक नवीन शक्ति मिली।

तृतीय दृश्य मे अजीगर्त अपनी पत्नी तारिणी से कहते है–'प्रिये, अब पास मे एक भी पशु नही रह गया। तीन-तीन पुत्रो के भोजन का क्या प्रबन्ध किया जाय ? यह अरण्य भी फलो से खाली हो गया है। कानन की हरियाली फल-फूल देकर सब भूख मिटा देती थी, अब धूप मे छाया भी नही मिलती। क्या करूँ प्रिये !' तभी रोहिताश्व आ गया, और उसने दुख का कारण पूछा। अजीगर्त ने कहना आरम्भ किया कि तुम तो राजकुमार-से प्रतीत होते हो। तुम्हारा यह स्वर्णखचित शिरस्त्राण ही वैभव को बता रहा है। आज भूख का दुख मुझ पर छा रहा है। विकल अकाल से, जीवन की केवल एक आकुल आशा से प्राण त्रस्त है। एक-एक दाने का आश्रय खोज रहा हूँ। क्या तुम मेरी कुछ सहायता करोगे ? रोहिताश्व ने सौ गायो के बदले एक पुत्र माँगा। अजीगर्त ने मध्यम पुत्र शुनःशेफ को दे दिया।

चतुर्थ दृश्य मे महाराजा हरिश्चन्द्र मिहामनासीन है। तभी शुनःशेफ को माथ लेकर रोहिताश्व ने प्रवेश किया और बोला कि अब मुझे क्षमा कर दीजिए, म पशु लेकर आ गया हूँ। यदि आप मेरी बलि दे देते तो राज्य मुझे किस प्रकार मिलता। बिना पुत्र के पिंडदान भी सम्भव नही।' तभी वशिष्ठ बोले–'राजन्, मैने मत्रकुछ सुन लिया। राजकुमार ने उचित ही किया। यदि पिता न इच्छा से इसे बलि के लिए दे दिया है, तो ठीक है। राजपुत्र के स्थान पर इसी की बलि दे दीजिए। देव तुरन्त प्रसन्न हो जायेगे और आप भी सत्य-सत्य होगे।' उन्होने शुनःशेफ से पूछ लिया और यज्ञ-कार्य ठीक करने की आज्ञा देकर चले गये।

पचम दृश्य में यज्ञमडप मे हरिश्चन्द्र, रोहित, वशिष्ठ, होता आदि बैठे है। शुनःशेफ यूप से बँधा हुआ है। शक्ति उसे वध करने के लिए बढ़ता है, पर सहसा रुक जाता है। वह शस्त्र फेककर कहता है कि, मुझसे यह घोर कर्म न होगा। तभी अजीगर्त ने प्रवेश किया और कहा कि मुझे एक सौ गाये और दे दीजिए, मै शीघ्र ही आपका कार्य कर दूँगा। वशिष्ठ ने स्वीकार कर लिया। अजीगर्त शस्त्र लेकर चला, शुनःशेफ ने कातर भरी दृष्टि से आकाश की ओर देखा :

हे हे करुणा के सिन्धु नियन्ता विश्व के
हे प्रतिपालक तृण, वीरुध के, सर्प के,
हाय प्रभो, क्या हम इस तेरी सृष्टि के
नही, दिखाता जो मुझ पर करुणा नही।

हे ज्योतिष्पथ-स्वामी, मै अनाथ, असहाय, सहायता के लिए पुकार रहा हूँ। तुम्हारी करुणा कहाँ चली गयी ? हे जगत्पिता, तुम तो हो, फिर भी हमे क्यो दुख हो रहा हे ? तभी विश्वामित्र ने अपने मधुच्छन्दा प्रभृति सो पुत्रो सहित प्रवेश किया। वे वशिष्ठ से बोले, 'महर्षि, यह क्या अन्धेर मचा रखा है ? इसमे कौन-सा धर्म है ? क्या तुम स्वय इस प्रकार अपने पुत्र की बलि दे सकते हो ?' और फिर आकाश की ओर देखकर कहन लगे : 'रे मनुष्य, तू कितना नीचे गिर गया है ? आज भय और प्रलोभन तुझसे कैसे आसुरी कर्म करवा रहे है। मूर्ख, धर्म की छाप लगाकर आसुरी माया मे फँस गया है।' वे पुनः वशिष्ठ से बोले : 'यदि तुम्हारे देव को मनुष्य के प्राणो की आवश्यकता है तो लो, मेरे सौ पुत्र बलिदान के लिए प्रस्तुत है।'

वशिष्ठ लज्जित हो गये। तभी एक नारी आकर बोली : 'हे देव, न्याय कर दीजिए। अरे ऋषि, तू नीच बधिक बन गया। विश्वामित्र, क्या तुम अपने ही पुत्र को नही पहचानते ?' विश्वामित्र ने सुव्रता को पहचान लिया। उन्होंने राजा से शुनःशेफ को मुक्त करवा लिया और सुव्रता से समस्त कथा भी जान ली। उन्हे अपने सौभाग्य से पत्नी और सुत मिल गये। विश्वामित्र बोले :

जगन्नियन्ता का यह सच्चा राज है
सबका ही वह पिता, न देता दुःख है
कभी किसी को। उसने देखा सत्य को

इस प्रकार 'करुणालय' की समाप्ति एक आदर्श स्थापना के साथ होती है। छोटी-सी पौराणिक घटना के द्वारा कवि का लक्ष्य करुणा का प्रतिपादन है। सब प्राणियों का आधार एक ही देव है, फिर पारस्परिक घृणा कैसी ? प्रसन्न तथा उदार होने के लिए उसी जगन्नियन्ता का अवलम्ब ग्रहण करना होगा। शुनःशेफ आपत्ति काल मे उसी करुणानिधि को पुकारता है। बलि से जगदीश प्रसन्न नहीं होता। वह तो आसुरी क्रिया है। उसे केवल करुणा से जीता जा सकता है। यही करुणा का सिद्धान्त आगे चलकर बौद्ध धर्म से प्रभावित हुआ और वह एक जीवनदर्शन के रूप में प्रतिपादित किया गया। इसके अतिरिक्त काव्य के आरम्भ में प्रकृति के व्यापक चित्रपट का दर्शन होता है। पवन का धीरे-धीरे प्रेम की मदिरा से विह्वल होकर चलना, जल की लहरों का नाव को बुलाना आदि आगामी चरण का आभास देते हैं कि मानव और प्रकृति एक-दूसरे के अधिक निकट आते जा रहे है। प्रकृति के साम्राज्य मे सर्वत्र प्रेममय शान्ति रहती है। इसी रंगमंच पर कवि करुणा की स्थापना करता है। हरिश्चन्द्र को प्रकृति एक सहचरी प्रतीत होती है। इतना ही नही, प्रकृति की गतिशीलता उन्हे एक नवीन सन्देश देती है। स्वय रोहिताश्व भी परिवर्तनशीला प्रकृति के सहारे आगे बढ़ना चाहता है। प्रकृति और मानव एक-दूसरे के निकट है। इस भावना मे उत्तरोत्तर विकास होता गया और उन्हे विश्व के प्रत्येक कम्प में एक तान दिखाई देने लगता है। देवसेना कहती है–'प्रत्येक परमाणु के मिलन मे एक मम है, प्रत्येक हरी-हरी पत्ती के हिलने मे एक लय है। पक्षियों को देखो, उनकी चह चह, कल कल, छल-छल, मे काकली मे, रागिनी है।'

सम्पूर्ण कथा को लौकिक धरातल पर रखने का प्रयास कवि ने किया है। अपने पौराणिक रूप मे वह कम विश्वसनीय थी। केवल नेपथ्य को छोड़कर प्रायः समस्त भाग स्वाभाविक प्रतीत होता है। ऋषि वशिष्ठ की भी दुर्बलताएँ है। वे राजकुमार की प्रसन्नता के लिए शुनःशेफ का बलिदान स्वीकार कर लेते है। विश्वामित्र से सुव्रता का प्रणय-सम्बन्ध हुआ था और अन्त में उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार पौराणिक पात्रों को मानवीय भावनाओं से अलकृत किया गया है। कवि अतीत के द्वारा वर्तमान का चित्रण करना चाहता है। अकाल की विभीषिका से अजीगर्त इतना त्रस्त है कि स्वयं अपना पुत्र तक सौ गायों के लिए देने को प्रस्तुत हो जाता है। अन्य सौ गायें मिलने पर वह अपने पुत्र का वध करने को भी तत्पर है। इसे केवल अजीगर्त की क्रूरता नही कहा जा सकता; यह परिस्थितियों की विवशता भी है। अन्त मे जब बालक ईश्वर से दया की भिक्षा माँगता है, उन्हें बारम्बार पुकारता है, तो उसे मानव के आगमन से ही मुक्ति मिलती है। भक्ति का स्थान ईश्वर की करुणा ने ले

लिया है। यज्ञ-कार्य का पूरा फल शुनःशेफ को मुक्त कर देने से मिल जाता है। ईश्वर को कवि ने विश्व के आधार-रूप में स्वीकार किया है। वह विश्व करुणा के द्वारा ही बन्धनों से मुक्ति पाकर प्रसन्न और उदार हो सकता है। इस प्रकार एक छोटी-सी पौराणिक कथा को प्रसाद ने मानवीयता प्रदान की है। एक जीवन-दर्शन का आभास भी 'करुणालय' से मिलता है। कवि आदर्श की स्थापना में सफल हुआ है जिसमें हिंसा का विरोध है। सम्भव है बौद्ध दर्शन के साथ गांधी की अहिंसा भावना भी इसकी प्रेरणा हो।

महाराणा का महत्त्व

'महाराणा का महत्त्व' एक ऐतिहासिक काव्य है। इन्दु, कला 5, खण्ड 1, किरण 6, जून 1914 में यह सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ था। इसमें कवि ने महाराणा की वीरता का चित्रण किया है। आरम्भ मे खानखाना की बेगम की दासी प्रश्न करती है : 'क्यों जी, वह दुर्ग कितनी दूर है ?' खानखाना का हरम महाराणा की विचरण-भूमि मे आ पहुँचा था। बेगम को प्यास लगी थी, सभी लोग रुक गये। तभी कुछ राजपूत आ गये। दोनों दलो मे युद्ध होने लगा, अन्त मे अमरसिंह की विजय हुई। राजपूत बन्दीगण को लेकर चले। पश्चिम दिशि मे दिनकर अस्त हो रहा था। अर्बुदनिधि की घनी शैलमाला शान्त हो रही थी, जैसे जीवन में कर्मयोगरत मानव को सदा शुभ शान्ति प्राप्त होती है। शैल शिखाओं पर एक पुरुष बैठा था। उसकी आँखो में जीवन मरण की समस्या भरी थी। उसके मुख पर करुणामिश्रित वीरभाव था तथा अनुपम महिमा-मंडित शोभा थी। वह आर्य जाति का तेज है, देशभक्त और जननी का सच्चा पुत्र। इस प्रताप का नाम भारतीय इतिहास मे स्वर्णाक्षरों में लिखा है। वे अपनी लीलाभूमि के सुगौरव कुंज मे बैठे-बटे वनशोभा देख रहे थे। तभी सालुम्ब्रापति कृष्णसिंह ने समाचार दिया कि स्त्री के साथ एक वृन्द बन्दी हुआ है। राजकुमार ने उन्हें यहाँ भेजा है। आर्यनाथ ने कहा कि क्षत्रिय कभी स्त्री को दुख नहीं देते : 'इस अबला के बल से होंगे सबल क्या ?' वीर कभी परम सत्य को नहीं छोड देते। इस धर्मभूमि मेवाड़ मे क्षुद्रकर्म कदापि न होना चाहिए। शीघ्र उसे उसके स्वामी के पास भेज दीजिए। सिंह क्षुधित होकर भी डर से दबी शृगाली वृन्द की मृगया नहीं करता। सैनिकों को मेरा सन्देश दीजिए कि आज से किसी अबलावृन्द को दुख न दिया जाए।' बेगम अपने स्वामी के पास भेज दी गयी।

नवाब ने बेगम से मज़ाक में कहा : 'प्रिये, तुम्हारे अनुपम सौन्दर्य से वशीभूत होकर वह कानन-केसरी गान्धार के इस दाख पर दाँत न लगा सका।' बेगम बोली—'जरा चुप रहिए। शत्रु ने आपकी नारी को छोड़ दिया। आप विशेष बातें न बनाइए।' नवाब तत्काल ही कहने लगे : 'जब से मैं सेनापति होकर यहाँ आया हूँ, वीर प्रताप सदा विजयी रहता है। मैं स्वाधीन जन्मभूमि के वीरपुत्र की रणक्रीड़ा देखता

रह गया। अभी तक मैंने क्रूर और निर्दय देखे थे, जो अपने स्वार्थ को ढोकर युद्ध करते थे। जन्मभूमि और प्रजा सुख के लिए भला इतना आत्मोत्सर्ग किसने किया ? दुग्ध फेन की शैया छोडकर सूखे पत्ते कौन चबाता है ? वीर प्रताप दावाग्नि-सा दहकता है। यदि युद्ध मे मुझे पराजय भी प्राप्त होती तो इतना क्षोभ न होता। अब मे सेनापति नही रहना चाहता।' बेगम ने कहा : 'मैं भी काश्मीर चलना चाहती हूँ। कुछ दिन की छुट्टी ले लीजिए। हो सके तो सम्राट् और राणा से शुभ सन्धि करा दीजिए।' नवाब ने कहा . 'महान् प्रताप वीर, दृढ और कुलमानी है। वह यवनो से सन्धि न करेगा। प्रताप मच्चा साधक, निज देश का सपूत और मुक्त पवन मे पला हुआ वीर है।'

एक दिन नवाब ने शाहशाह अकबर रो कहा कि मेरा स्वास्थ्य यहाँ की जलवायु मे ठीक नहीं हो रहा है। मै काश्मीर जाना चाहता हूँ। अकबर ने अस्वस्थता का कारण पूछा तो निर्भय वरदान पाकर वे बोले . 'जिस दिन आपने मेवाड-विजय के लिए मुझे मेनापति बनाया, मै बडा प्रमन्न था कि उस वीर को देखूँगा। वास्तव मे पर्वत की कन्दराएँ ही उमके महल है, जगल ही बाग हैं, घास, फल, फूल आहार है। मुकुमारी कन्या और बालक का ग्रास छिन जाने पर भी वह मुगलवाहिनी के सम्मुख भिड जाता है। एक दिन राजकुमार ने बेगम को बन्दी बना लिया। प्रताप ने उमे मादर मेरे पाम भेजकर मुझे बडा लज्जित किया। मै मनोवेदना से व्याकुल हूँ। राणा न कभी आपके राज्य पर आक्रमण नही किया। वह अपने छोटे राज्य मात्र से सन्तुष्ट है। ईश्वर की नीति से भी उम उन्नत हृदय को दुख देना उचित नही। मेरी इच्छा है कि दो महत्त्वमय हृदय एक हो जाएँ, जिसमे सुख्र-प्रेम का महान सौरभ सर्वत्र फैले। भारत के नर भी आपका यशागान करेग।' अकबर ने आज्ञा दी कि राणा से युद्ध बन्द कर दिया जाय।

इम प्रकार 'महाराणा का महत्त्व' मे देश-प्रेम की भावना निहित है। प्रताप भारतीय शोर्य और देशप्रेम के प्रतीक माने जाते है। इसी ऐतिहासिक कथाश को लेकर कवि ने उनका चरित्र-चित्रण किया है। प्रताप वीरता के आदर्श हैं, वे कर्मयोगरत मानव है। वे आर्यजाति का तेज हैं और वीर होने के माथ ही परम सत्य को नही छोडते। म्वय नवाब उम शौर्य और पराक्रम पर मुग्ध हो जाता है। कवि ने उनके मुख से प्रताप का यशोगान कराया है

मच्चा साधक है सपूत निज देश का,
मुक्त पवन मे पला हुआ वह वीर है।

ग्वानखाना रणक्षेत्र मे प्रताप को देखता रह जाता था। प्रसादजी अपने राष्ट्रगौरव के प्रति सचेत थ और उमी का प्रकाशन इसमे मिलता है। काव्य-विकास की दृष्टि से उनमे प्रौढता आ रही है। आरम्भ मे ही प्रकृति का सुन्दर चित्रण हुआ है :

विस्तृत तरु शाखाओं के ही बीच में
छोटी-सी सरिता थी, जल भी स्वच्छ था,
कल-कल ध्वनि भी निकल रही संगीत-सी
व्याकुल को आश्वासन-सा देती हुई।

प्रकृति की सुन्दर छटा के बीच महाराणा प्रताप को दिखाया गया है। यह प्रकृति-चित्रण किसी तादात्म्य भावना को लेकर नहीं किया गया; वह एक आधारशिला का कार्य करता है। शाही महल का चित्रण अन्यन्त कलात्मक ढंग से हुआ है। वाह्य रूप-रेखा से उसके मादक वातावरण का आभास मिल जाता है। मुगलों के वैभव की एक हल्की-सी झाँकी प्रस्तुत करने का प्रयास कवि ने किया है :

तारा हीरक हार पहनकर, चन्द्रमुख
दिखलाती, उतरी आती थी चाँदनी
शाही महलों के सुन्दर मीनार से
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेमिका
मन्थर गति से उतर रही हो सौध से।

इसी प्रकार जब नवाब ने प्रताप को सौन्दर्य से प्रभावित कहा था, तो केवल मधूक कपोलों की स्वच्छ ललाई देखकर सुराही काँप गयी थी, वारुणी छलक उठी थी। वीरता के साथ सौन्दर्य को भी कवि ने स्थान दिया है। उसकी कल्पना यद्यपि किसी विस्तृत रंगमंच पर कार्य नहीं कर रही है, किन्तु इस छोटे-से कथानक में भाषा का लालित्य, नाटकीय शैली, चरित्र-चित्रण की विशेषता दिखाई देती है। कथा का आरम्भ नाटकीय ढंग से किया गया है। समस्त कथा को चार खण्डों मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग मे राजकुमार अमरसिंह यवनो को बेगम के साथ बन्दी करते हैं। उसी के बाद प्रताप के सम्मुख उन्हें प्रस्तुत किया जाता है और वे उन्हें मुक्त कर देते हैं। इसके अनन्तर बेगम और खानखाना का वार्तालाप है। बेगम अकबर के पास जाने के लिए कहती है। अन्त मे खानखाना अकबर से समस्त वृत्तान्त कहते हैं और वे आज्ञा देते हैं कि प्रताप पर आक्रमण न हो। इस प्रकार कवि महाराणा प्रताप के महत्त्व की स्थापना करा देता है। उसका मुख्य उद्देश्य प्रताप की महानता का चित्रण है, और इस कार्य में उसे सफलता प्राप्त हुई है। बेगम आदि पात्रों के द्वारा उसने इस ऐतिहासिक कथानक में सजीवता भर दी है। इक्कीस मात्रा के अरिल्ल छन्द का प्रयोग इस अतुकान्त कथा-काव्य में किया गया है।

प्रेम-पथिक और प्रेम-दर्शन

प्रसाद का विकसित रूप 'प्रेम पथिक' में दिखाई देता है। इसकी रचना कवि ने संवत् 1962 के लगभग ब्रजभाषा में की थी। संवत् 1970 में उसी का 'परिवर्तित

परिवर्द्धित, तुकान्तविहीन हिन्दी रूप' उसने प्रस्तुत किया। वह अपने नये रूप मे अधिक प्रौढ रचना है। 'प्रेम-पथिक' का कथानक एक सार्वभौमिक दृष्टि पर आधारित है। "किसी के प्रेम मे योगी होना और प्रकृति के निर्जन क्षेत्र मे कुटी छाकर रहना एक ऐसी भावना है जो समान रूप से सब देशो के और श्रेणियो के स्त्री-पुरुषो के मर्म का स्पर्श स्वभावतः करती आ रही है।"[1] कवि प्रसाद ने सरस भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए इस प्रचलित कथानक का आश्रय लिया। इस दृष्टि से प्रेम-पथिक उनके कार्य की एक महत्त्वपूर्ण सीढी है। सम्पूर्ण कथा सक्षेप मे इस प्रकार है :

सन्ध्या की, हेमाभ तपन की, किरणे जिसको छूती है
रजित करती है देखो जिस नई चमेली को मुद से
कौन जानता है कि उसे तम मे जाकर छिपना होगा ?
या फिर कोमल विधुकर उसको मीठी नीद सुला देगा।

प्रकृति के सम्पूर्ण यौवन पर विचार करने के पश्चात् पथिक सोचता है कि लीलामय की अद्भुत लीला किसमे जानी जाती है ? भविष्य जीवन का धुँधला पट कौन उठा सकता है ? तभी वह सरिता के रम्य तटी मे एक सुन्दर कुटिया देखता है। वन की समस्त प्रकृति उसका शृगार कर रही थी। एक तापसी पट-दलिना छाया-सी वहाँ बैठी थी। उसने पथिक से रजनी-भर विश्राम करने का अनुरोध किया और कहा कि यदि आत्मकथा मुझे सुनाने योग्य हो, तो वचित न करना। सौम्य अतिथि को पाकर यह निशा सहज मे बीतेगी। हाँ प्रभात होते ही तुम अपने पथ पर लग जाओगे, और दुखिनी यही ज्यो-की-त्यो रह जावेगी। तापसी ने पथिक से वन वन भटकने का कारण पूछा। पथिक बोला 'छोटे में स्वच्छ नगर मे मेरी जन्मभूमि थी।' इसी के पश्चात पथिक अपनी जन्मभूमि का वर्णन विस्तार से करता है। 'कृषक समूह वहाँ सन्ध्या को ग्राम गीत मुख मे गाते थे। उस नगरी का नाम आनन्दनगर था। तटिनी के तट पर मै पिता के साथ एक सुन्दर घर मे रहता था। पास ही एक गृहस्थ सज्जन अपनी कन्या के साथ रहते थे। मेरे पिता की उनसे मैत्री थी। हम दोनो भी नित्य परस्पर खेला करते थे। नदी कूल, कुसुम कुज, उषा, सन्ध्या, खिली चाँदनी मे एक ही डाल मे लगे युगल कुसुम की भाँति हम फिरा करते थे। एक दिन अनायास ही मेरे पिता इस ससार से चल बसे।'

बालक-बालिका दोनो प्रणयाकुर की भाँति बढ रहे थे। सुख से ही ससार बना था। खेल खेलकर हृदय की कली खुल गयी; उसमे मधुर मकरन्द भर आया। नवजीवन को वसन्त की सुखमय सन्ध्या घेर रही थी। प्रणय का खेल चल रहा था। एक दिवस पुतली का फलदान हो गया और फिर विवाह। वह चली गयी और मैंने भी आनन्दनगर से विदा ली :

छोड दिया सुखधाम सकल आराम, प्रेमपथ पथिक हुआ
जगत प्रवास बना था मेरा, सभी नगर ही थे परदेश।

एक दिवस प्राची में अँधियारी बढ़ती जाती थी। मैं निर्मल सरिता के निकट बैठ गया। मुझे शैशव की समस्त सुखद स्मृतियाँ याद आ रही थीं। तभी चन्द्रबिम्ब से देवदूत-सा एक व्यक्ति निकलकर कहने लगा : पथिक, प्रेम की राह अनोखी है। यहाँ भूल-भूलकर चलना पडता है। इसमें ऊपर घनी छाँह है तो नीचे काँटे बिछे हुए हैं। प्रेमयज्ञ में सर्वस्व हवन करना पड़ेगा। प्रेम पवित्र पदार्थ है, आदि। इस प्रकार प्रेम का महान् सन्देश देकर धीरे-धीरे स्वरलहरी-सी वह मूर्ति लोप हो गयी। कथा सुनते-सुनते तापसी बोली कि क्या तुम्हें अब भी उस पुतली, चमेली का ध्यान है ? अन्त मे पथिक ने उसे पहचान लिया। पुतली ने भी समस्त करुण कथा कह डाली कि उस विवाह मे मुझे कभी एक क्षण स्नेह नहीं मिला। मेरे पति धन-मद में डूबे थे। अन्त में मुझे वैधव्य मिला। ठोकरों ने यहाँ लाकर पटका है। अब तो करुणानिधि से प्रार्थना किया करती हूँ कि दुखी-जनो को शान्ति दे। किशोर ने भी जीवन के कल्याण-मार्ग में प्रत्येक पद आगे रखने के लिए कहा। वह कहने लगा कि अपना प्रेम परिमित न कर दो। विश्वात्मा ही सुन्दरतम है। उस पर सर्वस्व न्योछावर करो :

चलो मिले सौन्दर्य प्रेमनिधि में, तब कहा चमेली ने
जहाँ अखण्ड शान्ति रहती है वहाँ सदा स्वच्छन्द रहें।
लगी बनाने सोने का ससार तपन की पीत विभा
स्थिर हो लगे देखने दोनो के दृग-तारा अरुणोदय।

'प्रेम-पथिक' मे कवि ने प्रेम-दर्शन की स्थापना की है। अब तक जिस जिज्ञासा-कुतूहल से वह प्रकृति के कण कण को निहारता था, वही भावना मानव पर आकर केन्द्रित हो गयी है। प्राकृतिक दृश्यो के उद्‌घाटन मे वह मानवीय मनोवृत्तियों का अंकन करता है। अब नक कवि का मानव प्रकृति के लिए था; अब प्रकृति मानव के लिए हो जाती है। कवि एक ऐसे मानवीय धरातल पर पहुँच गया है, जहाँ संसार उसे सौन्दर्य का सुधासागर प्रतीत होता है। विश्व स्वयं ईश्वर है। किसी व्यक्ति में अपनी अभिलाषाओं को केन्द्रित कर देने मे दुःख होता है। विश्व के अणु-अणु, कण-कण मे सौन्दर्य है। हम उस सौन्दर्य-सुधासागर की एक बूँद मात्र हैं। विश्वप्रेम के अन्तर्गत प्रकृति को भी रखना होगा :

आत्मसमर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर
प्रकृति मिला दो विश्वप्रेम में विश्व स्वयं ही ईश्वर है।

कवि प्रेम और सौन्दर्य के तात्विक सिद्धान्त पर पहुँचने के पूर्व प्रकृति, मानव

और जगत के सम्बन्ध की व्याख्या कर लेता है। इदं में अहं का समन्वय उसने स्थापित कर लिया है। आगे चलकर प्रसाद का यह चिन्तन जीवन के प्रश्नों का समाधान तलाशता है। प्रसाद ने जगत-जीवन के बीच में जो समन्वय स्थापित किया है, उसमें दार्शनिक चिन्तन के साथ उनकी आन्तरिक अनुभूति का संयोग है। उसका निर्माण किसी रहस्यवादी धरातल पर नहीं हुआ, वह जीवन की कठोर भूमि की वस्तु है। दर्शन का एक भावात्मक स्वरूप प्रसाद के काव्य में मिलता है। उन्होंने वन में पलायन के स्थान पर जीवन में साधना करने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। अपने प्रेम को व्यक्ति के स्थान पर समष्टि में बिखेरना होगा। सुख-दुख में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। दुखी व्यक्ति को सुख की आशा आनन्द देती है और बिना दुख के सुख का भी महत्त्व नहीं। प्रेम को किसी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। वह अपरिमेय है, असीम है। सौन्दर्य भी विश्वव्यापी है। सभी कुछ सुन्दर है–निर्झरिणी, शैल-मालाएँ, सारी प्रकृति और उससे भी अधिक सौन्दर्यमय है–मानव। उत्सर्ग के द्वारा ही जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त किया जा सकता है।

प्रेम-पथिक के प्रेम-दर्शन और जीवन-सिद्धान्त में प्रसाद का विकास निहित है। जीवन-दर्शन की दृष्टि से यह प्रसादजी की प्रथम प्रौढ़ रचना है। कवि का उपनिषद्, शैवग्रन्थों आदि का अध्ययन इसमें आभासित होता है। चिन्तन, मनन के पश्चात् उन्होंने अपने स्वतन्त्र दर्शन की स्थापना की। प्रेम-पथिक के पात्र जीवन के कटु अनुभवों के पश्चात् इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि प्रेम को विस्तार दो :

> किन्तु न परिमित करो प्रेम, सौहार्द, विश्वव्यापी. कर दो
> क्षणभंगुर सौन्दर्य देखकर रीझो मत, देखो, देखो
> उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में छाई है।

'प्रेम-पथिक' में आकर कवि मानव को पूर्णरूप से स्वीकार कर लेता है। मानव ही उसका ईश्वर है। कवि अपने जीवन के अनुभव से जिस निष्कर्ष पर पहुँचता है, उसी का विकास निरन्तर होता चला गया। प्रेम की परिभाषा में कवि का व्यक्तित्व आभासित हुआ है। प्रेमयज्ञ में स्वार्थ और कामना को हवन कर देना होगा। वह एक पवित्र पदार्थ है, जिसमें कपट की छाया भी नही रहती। उसका परिमित होना सम्भव नही। वह केवल व्यक्तिमात्र में नहीं रक्खा जा सकता। रूपजन्य प्रेम तो केवल मोह होता है। सच्चे प्रेम मे ऐन्द्रियता नही होती। प्रेम जगत का चालक है। इसके आकर्षण मे खिंचकर ही मिट्टी, जलपिंड आदि दिन-रात फेरा किया करते हैं। प्रेम का मार्ग कठिन है। हिन्दी में प्रेम की यह नवीन परिभाषा थी। यह लौकिक होते हुए भी उदात्त है। इस प्रेम मे आदर्शवादिता अधिक है, स्वच्छन्दता कम। यही कारण है कि प्रसाद का प्रेम अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी कवियों की भाँति आवेगमय नही हो पाता। शेली की प्रेम-भावना के अनुसार 'निर्झर सरिता तक दौड़े चले जा रहे हैं, सरिता सागर

में अपना अस्तित्व विलीन कर देना चाहती है। आकाश का पवन मधुर भावनाओं से एकाकार हो रहा है। संसार मे कुछ भी एकाकी नहीं, सभी वस्तुएँ किसी नैसर्गिक नियम से एक-दूसरे से आवद्ध हैं, फिर मैं तुमसे क्यों न मिलूँ ?'

प्रसाद का प्रेम अनेक दर्शनों से मिलकर एक उच्च भाव-भूमि पर पहुँचता है। वह बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक अधिक है। 'प्रेम-पथिक' का पथिक आरम्भ में इसी कारण दुखी रहता है, क्योंकि उसने प्रेम के व्यापक स्वरूप को नहीं ग्रहण किया था। विश्व को ही प्रियतम मान लेने पर समस्त संज्ञाएँ उड़ जाती है, केवल सत्य सत्व रह जाता है। उस समय वियोग भी संयोग प्रतीत होता है। स्वयं कवि के शब्दो में :

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।

प्रसाद की यह प्रेम-कल्पना अन्त में रहस्यमयता का सृजन भी करती है। कवि की धारणा के अनुसार प्रेम का व्यापक रूप काम है। यह काम प्रेम का प्राचीन वैदिक रूप है। प्रेम को 'लव' अथवा 'इश्क' का पर्याय मान लेने से काम शब्द की महत्ता कम हो गयी। शैवों का अद्वैतवाद, रहस्य सम्प्रदाय, वैष्णवो की माधुर्य-भावना, प्रेम रहस्य, कामकला की सौन्दर्योपासना आदि का उद्‌गम वेदों तथा उपनिषदों से है।[2] प्रसाद की प्रेम-कल्पना मे आदर्शवादिता अधिक है। आगे चलकर स्वच्छन्दता के कारण इसमें किंचित् परिवर्तन भी हुए, किन्तु उसकी आदर्श भूमिका बनी रही। 'प्रेम-पथिक' के कथानक की प्रेरणा सम्भव है गोल्डस्मिथ के एकान्तवासी योगी से ली गयी हो, किन्तु इसमें कवि का व्यक्तित्व प्रधान है। एकान्तवासी योगी का पुरुष योगी हो जाता है, किन्तु प्रसाद की नारी तापसी होती है। कोमल भावनाओं की नारी को तापसी रूप दे देने से कथा मे अधिक मार्मिकता आई है। इसके अतिरिक्त विषय-प्रतिपादन तथा दार्शनिक विवेचन की दृष्टि से प्रसाद अधिक दूर तक गये है। गोल्डस्मिथ की कथा का पर्यवसान एक मिलन में होता है, किन्तु प्रेम पथिक मानव को दार्शनिक तथ्य प्रदान करता है! इस छोटी-सी आख्यान-कविता के द्वारा प्रसादजी ने दर्शन का प्रतिपादन किया है। शैवदर्शन, उपनिषद्, सूफी भावना आदि के प्रभाव से प्रेम-पथिक के प्रेम में जो आदर्शवादिता आई है, उसमें प्रसाद के हृदय की अपेक्षा उनका बुद्धिपक्ष अधिक प्रबल है। उसमें प्रेम की मांसलता नहीं, उसकी सात्विकता है। प्रेम-पथिक हिन्दी-साहित्य के लिए एक महत्त्वपूर्व रचना है। रीतिकालीन शृंगारी भावना के कारण द्विवेदी-युग के कवि प्रेम-शृंगार का स्पर्श करने में घबड़ाते थे और वर्णन इतिवृत्तात्मक शैली से किया जाता था। प्रसाद ने प्रेम और शृंगार का आदर्शवादी स्वरूप प्रस्तुत किया। हिन्दी में यह शृंगार का नवनिर्भाण है। धीरे-धीरे कवि ने इस आदर्शवादिता के बाह्य कलेवर को भी छोड़ दिया। उसमें प्रेम की व्यक्तिगत अनुभूति

को स्वच्छन्द स्वरूप मिला और मानव जीवन के संघर्ष, घात-प्रतिघात का प्रवेश हुआ। समय को देखते हुए प्रसाद के लिए यह आवश्यक था कि प्रेम का एक उदात्त स्वरूप भी प्रस्तुत किया जाय।

कानन-कुसुम

'कानन-कुसुम' प्रसाद की खड़ीबोली की स्फुट कविताओं का प्रथम संग्रह है। इसमें लगभग संवत् 1966 से लेकर संवत् 1974 तक की कविताएँ सगृहीत हैं जो प्रायः 'इन्दु' में प्रकाशित हो चुकी हैं। विषय सामग्री की दृष्टि से कुछ कविताएँ अब भी परम्परा से अनुप्राणित हैं। प्रकृति के विषय नववसन्त, जलद, आवाहन, रजनीगन्धा, सरोज, कोकिल, खंजन आदि भी हैं। भावों और छन्दों का प्रवाह मन्द है और अलंकार के प्रयोग से शिथिलता भी आ गयी है। कहीं-कही प्रकृति-वर्णन परम्परागत हो रहा है। ग्रीष्म के मध्याह्न में जगतीतल पर पावक के कण फिरते हैं; हरे-हरे पत्ते वृक्षो से झर रहे हैं; प्रबल प्रभंजन उन्हें साथ उड़ाये लिये जा रहा है आदि। प्रकृति-वर्णन में कवि अधिक सजीवता नहीं भर सका पर कभी-कभी परम्परा से मुक्त भी होना चाहता है, किन्तु वह केवल बाह्य वर्णन तक सीमित है। कोकिल से वह कहता है :

गाओ नव उत्साह से, रुको न पल-भर के लिए
कोकिल मलयज पवन में भरने को स्वर के लिए

परम्परागत प्रकृति-वर्णन की कविताओं में भाव की दृष्टि से नवीनता कम दिखाई देती है और कही-कहीं भाषा भी त्रुटिपूर्ण है, जैसे 'भरने को स्वर के लिए' का अनगढ़ और चिन्त्य प्रयोग। भाषा का परिमार्जन और छन्दो का नवीन प्रयोग कवि के आगामी विकास में परिलक्षित हुआ है। स्थूल प्राकृतिक चित्रण में कवि का हृदय नही रमता, एक औपचारिकता-भर है जिसे द्विवेदी-युग की मूल प्रवृत्ति कहा जाता है। रीतिकालीन प्रकृति मानव-जीवन से इतनी दूर हो गयी थी कि केवल काव्य-सिद्धान्तों का पालन करने के लिए ही उसका वर्णन किया जाता था। प्रसाद जिस वातावरण में रह चुके थे उसमे नैसर्गिक प्रकृति का प्रवेश कम था। केवल जीवन के आरम्भ मे ही वे उसका वैभव देख सके थे। उसके बाद उन्हें अन्य समस्याओं मे उलझ जाना पड़ा। इस प्रकार उनके लिए प्रकृति के साथ तादात्म्य सरल कार्य न था। आगे चलकर उन्होने प्रकृति का उपयोग मानव भावनाओं के चित्रण के लिए किया। इन प्रकृति-विषयक कविताओं में कवि ने भाषा और छन्द की दृष्टि से कुछ नवीन प्रयास किये हैं। उनकी भाषा में प्रांजलता और माधुर्य आता जा रहा है। परम्परा के साथ ही उन्होंने इस पृष्ठभूमि पर अपने नये प्रयोग किये। प्रकृति का यह परम्परागत वर्णन प्रसाद के लिए एक प्रारम्भिक पाठशाला है। आगे चलकर इसी प्रकृति से उन्होंने

नवीन प्रेरणा ली; वह कवि का साधन है, जिसके सहारे वह आगे जाने का प्रयत्न कर रहा है :

धूलि धूसर है धरा मलिना तुम्हारे ही लिए
है फटी दूर्वादलों की श्याम साड़ी देखिए।

प्रकृति भावना में विकास के कतिपय चिह्न मिलते हैं। कवि प्रकृति और मानव को एक-दूसरे के निकट लाने का प्रयत्न करता है। प्रकृति-कवियों की भाँति प्रसाद प्रकृति में तन्मय होकर उससे एकाकार नहीं होते, परन्तु वे उसे मानव के उपयोग में ले आते हैं। प्रकृति के विविध रूपों में मानवीय भावनाओं का आभास मिलने लगता है। रजनीगन्धा के हृदय का अनुराग उसका नाम सार्थक करता है। कवि जलद का आवाहन इसलिए करता है कि आनन्द के अंकुर उग जाएँ। 'नव वसन्त' में युवक वसन्त के समागम से समस्त प्रकृति प्रफुल्लित हो उठती है; प्राण पपीहा भी बोलने लगता है। आख्यान-कविताओ में प्रकृति एक पृष्ठभूमि का कार्य करती है। उसके रूप-परिवर्तन से मानव के सुख-दुख का आभास मिलता है।

प्रकृति-वर्णन की सीमाओं से निकलकर प्रसाद ने नवीन विषयों को काव्य में स्थान दिया। प्रथम प्रभात, मर्मकथा, हृदय वेदना, सौन्दर्य, विरह, रमणीहृदय आदि कविताएँ आगामी परिवर्तन का आभास देती हैं। विषय-चित्रण की दृष्टि से यहाँ कवि की मौलिकता के भी दर्शन होते हैं। इनमें मनोवैज्ञानिकता का पुट पड़ने लगा था और सूक्ष्म मानसिक स्थितियों या मनोदशाओं के चित्रण की ओर प्रवृत्ति बढ़ रही थी। ये शीर्षक छायावादी कविता के प्रमुख विषय बने। इनके प्रतिपादन में कवि की परम्परागत प्रवृत्तियाँ अधिक स्पष्ट नहीं होतीं। इन कविताओं में उनकी व्यक्तिगत अनुभूति का प्रवेश होने लगता है। 'प्रथम प्रभात' में कवि अपने ही विषय में कह जाता है। उसके अन्तःकरण के नवीन मनोहर नीड़ में मनोवृत्तियाँ खगकुल-सी सो रही हैं। हृदय नील गगन की भाँति शान्त है। इस प्रकार कवि प्राकृतिक गुणों और मानवीय भावनाओं को एक-दूसरे पर आरोपित कर रहा है। छायावाद की आरम्भिक प्रवृत्तियाँ भी यही थीं। प्रकृति वर्णन से कवि अपने प्रथम प्रभात का चित्रण करता है। अन्त में कुसुम मकरन्द की वर्षा होने लगती है। इसी अवसर पर प्रेम की व्याख्या प्रस्तुत होती है :

सद्यःस्नात हुआ फिर प्रेम सुतीर्थ में
मन पवित्र उत्साहपूर्ण भी हो गया,
विश्व विमल आनन्द भवन सा बन रहा
मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था।

प्रसाद की कल्पना प्रकृति के नाना व्यापारों का चित्रण करने में कालिदास,

वर्ड्स्वर्थ, मेरिडिथ की भाँति नियोजित नही होती। वे प्रकृति के गुणो पर मानवीय भावनाओ को आरोपित करते हैं। इससे काव्य मे एक मार्मिकता आती है। जब मानव का साथ प्रकृति देने लगती है, तो भाव की तीव्रता बढ जाती है। रीतिकालीन कवियो ने जिस प्रकृति से उद्दीपन का काम लिया था, उसी से प्रसाद ने मानवीय भावनाओ का चित्रण किया। आगे चलकर कवि ने इस प्रकृति का उपयोग बिम्ब-प्रतीक के रूप मे भी किया। इससे शृगार का परिष्कार होता गया औरं सजीवता भी बढी। प्राकृतिक वस्तुओ और व्यापारो के उपमानो मे उन्होनें प्रतीकत्वें भरा।

जिन नवीन विषयो को प्रमाद ने आरम्भ मे काव्य का विषय बनाया, उनमे किचित मौलिकता है। साथ ही उनका व्यक्तित्व भी आभासित होता है। 'मर्मकथा' के द्वारा कवि प्रियतम और स्वय के सम्बन्ध की व्याख्या करता है। अपने हृदय की वेदना को वह वरदान मान लेता है और यही मधुर पीडा पीकर मस्त रहता है। इसी के द्वारा उसे प्रियतम का दर्शन प्राप्त हो जाता है। कल्पना मे, यह हृदय की वेदना सहयोग देती है। करुणा और वेदना के चित्रण मे कवि की अनुभूति का सयोग है। सौन्दर्य की परिभाषा मे प्रमाद ने एक व्यापक दृष्टिकोण से काम लिया है। इस अवसर पर प्रकृति के विविध व्यापारो से भी उन्होने सहायता ली। आकाश मे नीलनीरद देखकर चातक किम आशा मे खडा रहता है ? कवि अपनी जिज्ञासा से प्रकृति के इन क्रिया व्यापारो को देखता है। इसी से उसे सौन्दर्यबोध हो जाता है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सौन्दर्य वस्तु मे नही, दर्शन मे है। मानव अथवा प्राकृतिक सुषमा मे कोई अन्तर नही है। कवि का कथन है 'किन्तु प्रिय दर्शन स्वय सौन्दर्य है।'

इमी प्रकार प्रेम शृगार के अन्य अवयवो के विषय मे भी कवि निष्कर्ष पर पहुँचता है। नारी का हृदय एक विषम प्रहेलिका है, उसे समझ लेना सरल नही। रमणी हृदय अथाह है, उसके भीतर की बात नही जानी जाती। प्रसाद की नारी रहस्यमय रहती है। मधूलिका का चरित्र स्वय अरुण के लिए एक प्रहेलिका बन गया था। चन्द्रगुप्त अन्तिम समय मे ही जान सका कि मालविका उमे प्रेम करती थी। प्रसाद की नारी प्रेम का आधार है। वियोग को प्रेम परिपाक के लिए आवश्यक मानकर कवि ने उसे सहचर कहा है। नवीन विषयो मे वह उत्तरोत्तर विकासशील होता गया। मर्मकथा, हृदय वेदना, विरह, सौन्दर्य आदि आगे चलकर प्रसाद के काव्य मे एक ऐमा स्थान बना लेते है, जिन पर उन्होने स्वतन्त्र विचार प्रकट किये हैं।

विनय की कविताओ मे क्रमश भक्ति-भावना कम होती जाती है। अब कवि भक्ति के गीत अधिक नही गाता। उसे सर्वत्र ईश्वर की सत्ता का आभास मिलता है। चन्द्रिका, नदी, उपवन सभी मे दयानिधि की छाया है। इस प्रकार विनय करते हुए कवि किसी भावावेश मे नही दिखाई देता। एक जिज्ञासु दर्शक की भाँति वह विमल इन्दु की विशाल किरणो मे अनादि की अनन्त माया देखता है। 'कानन-कुसुम'

की विनय सम्बन्धी कविताओं मे प्रसाद दार्शनिकता की ओर बढ़ते दिखाई देते है। बौद्धिकता इस प्रकार की कविताओं में आरम्भ से ही थी, अध्ययन-चिन्तन से कवि दार्शनिक प्रवृत्तियों की ओर झुकता है। जीवन के अनेक झंझावातों में कभी-कभी वह ईश्वर का स्मरण करता है, स्वय को उनके हाथो मे समर्पित कर देता है। इस प्रकार की परिस्थितिजन्य विनय की कविताएँ अधिक नहीं हैं। धीरे-धीरे ईश्वर, प्रभु का स्थान एक परोक्ष सत्ता ग्रहण करती है। कवि ईश्वर को शक्ति और सहायता के लिए नहीं पुकारता, केवल उसके आलोक में ही आगे बढ़ सकता है। 'भक्तियोग' में सन्ध्या के समय प्रकृति की स्तब्धता में उस परम सत्ता का आभास मिलता है। प्रकृति की जड़ता से वह स्वयं सकेत ग्रहण कर लेता है। अनेक सदेश उसे मिलते हैं :

फिर भागते हो क्यों ? न हटता यो कभी निर्भीक है
ससार तेग कर रहा स्वागत, चलो, सब ठीक है।

कवि को ज्ञात हो जाता है कि 'प्रेममय सर्वेश' सर्वव्यापी है और इस प्रकार भक्ति का स्थान दर्शन को मिल जाता है। वह प्रसाद का कठोर जीवन-दर्शन है, जिसका निर्माण उन्होने अपने सासारिक अनुभवो के आलोक मे किया। 'कानन-कुसुम' की कविताओ मे कवि को जीवन के प्रति एक कर्मशील सन्देश देते हुए देखा जा सकता है। ससार से भीत हो जाना मूर्खता है। 'चित्राधार' की भक्ति कविताओ से कवि को एक आधार मिला था जिसका अवलम्ब लेकर वह आगे बढ़ा। 'कानन-कुसुम' में बौद्धिक चिन्तन के द्वारा वह शरीर के स्थान पर सत्ता को ग्रहण करता प्रतीत होता है। जड़ता में चेतनता का आरोप और मानवीकरण मे छायावादी प्रवृत्तियाँ कवि में दिखाई देने लगी थी जो 'झरना' मे स्पष्ट हो गयी।

आख्यान-कविताएं

भाव-चित्रण के लिए आख्यान-कविता एक सुन्दर माध्यम है। इनमे कवि अपनी अनुभूति के आधार पर जीवन-दर्शन भी प्रस्तुत कर सकता है। प्रसाद ने इतिहास-खण्डों को लेकर आख्यान-कविताओ की रचना की पर उनमे इतिवृत्तात्मकता नही मिलती। गुप्तजी के काव्यो मे सघर्ष के साथ ही एक लम्बा कथानक भी मिल जाता है; उसमें एक विकसित प्रबन्धात्मकता है। प्रसाद की आख्यान-कविताओं में संकेत अधिक हैं। कवि इनके माध्यम से किसी घटना का वर्णन नहीं करता, वह एक सन्देश देना चाहता है। इसी कारण प्रसाद की पौराणिक और ऐतिहासिक आख्यान-कविताओं में नवीनता है। वे उनके द्वारा कुछ अपनी बात भी कहते हैं। कवि के लिए वे सिद्धान्त-प्रतिपादन, दार्शनिक-स्थापन के माध्यम भी हैं। साहित्यिक नृत्य गीतो की पाश्चात्य परम्परा में भी प्रायः किसी नैतिकता अथवा आदर्श के प्रतिपादन की विशेषता रहती है और उसमें मानवीय भावनाएँ प्रधान होती हैं।[3]

'कानन-कुसुम' में चित्रकूट, भरत, शिल्प-सौन्दर्य, कुरुक्षेत्र, वीर बालक, श्रीकृष्ण जयन्ती आदि आख्यान-कविताएँ हैं जो पौराणिक-ऐतिहासिक आधार लेकर लिखी गयी हैं। प्रसाद ने नवीन दृष्टिकोण से रचना की है और पात्रों को नया स्वरूप प्रदान किया है। 'चित्रकूट' के आरम्भ में राम-वैदेही स्फटिक शिला पर आसीन हैं। वैदेही प्रियतम के साथ कानन में भी सुखी थीं। राम के प्रश्न का उत्तर देते हुए सीता ने कहा कि नारी के सभी सुख पति के साथ रहते हैं। मधुर-मधुर आलाप करते वैदेही सोने लगीं। तभी लक्ष्मण ने आकर कहा कि भरत ससैन्य वन में आ रहे हैं। राम ने बताया कि भरत मिलने आ रहे हैं। इसी के पश्चात् कवि ने रजनी के अन्तिम प्रहर का चित्र प्रस्तुत किया है। अभी खगवृन्द अपने नीड़ों में ही सो रहे थे। जानकी ने देखा कि लक्ष्मण वहाँ नहीं हैं। उन्होंने उन्हें पुकारा, किन्तु लक्ष्मण नहीं रुके। कुछ क्षण में कोलाहल सुनाई दिया। लक्ष्मण ने कहा : भरत राज-मद में हम पर आक्रमण करने आया है। राम ने उन्हें समझा दिया, और :

चरण स्पर्श के लिए भरत भुज ज्यों बढ़े
राम बाहु गल बीच पड़े, सुख से मढ़े।
अहा विमल स्वर्गीय भाव फिर आ गया
नील कमल मकरन्द विन्दु से छा गया।

कविता का विषय रामचरितमानस के अयोध्याकांड से लिया गया है। 'कारन कवन भरत आगवनू' को लेकर लक्ष्मण के हृदय में अनेक प्रकार के संदेह उठते हैं। उन्होंने कल्पना की कि सम्भवतः भरत अकंटक राज्य चाहते हैं। राम ने भरत को 'रविवंश का हंस' कहकर सान्त्वना दी थी। सीता के द्वारा लक्ष्मण को वत्स कहलाकर प्रसाद ने आदर्श-स्थापना का प्रयास किया है। सीता के सौन्दर्य-वर्णन तथा प्रकृति-चित्रण में कवि ने स्वतन्त्रता से काम लिया है। स्फटिक शिला पर बैठे हुए राम-वैदेही निर्मल सर मे नील कमल-कमलिनी की भाँति थे। नाटकीय कथोपकथन के द्वारा सुन्दर उपमानों की व्यवस्था की गयी है। राम ने जानकी के मुख को देखकर पूछा :

'स्वर्गंगा का कमल मिला कैसे कानन को'
'नील मधुप को देख, वहीं उस कंज कली ने
स्वयं आगमन किया' कहा यह जनक लली ने

राम और सीता के प्रेम-चित्रण में प्रसादजी ने आदर्शवादिता का सम्पूर्ण पालन नहीं किया; उसमें शृंगार का परिष्कृत रूप आया है। राम के अंक में सीता नीलगगन के चन्द्रमा की भाँति थीं; कचभार बदन पर बिखर गये थे, मानो कमल के आस-पास सिवार। रजनी के अन्तिम प्रहर के सजीव वर्णन में कवि ने नवीन उपमाओं का प्रयोग

किया है।

'भरत' कविता की प्रेरणा 'अभिज्ञानशाकुन्तल' का सप्तम अक है। प्रसाद ने इसमे केवल वीर बालक भरत का चित्रण किया है। दुष्यन्त, सुव्रता आदि को कोई स्थान नही दिया गया। कालिदास का बालक मर्वदमन शिशु मिह मे कहता है · 'खोल रे, सिह, अपना मुँह, मैं तेरे दॉत गिनूँगा।' प्रसाद का भरत भी कहता है :

'खोल, गोल मुख सिह बाल, मैं देखकर
गिन लूँगा तेरे दॉतो को हैं भले
देखूँ तो कैसे यह कुटिल कठोर है। —कानन कुसुम, पृ 105

प्रमाद की 'भरत' कविता मे राष्टीय भावना है। भरत भारत के गोरव का प्रतीक है। हिमगिरि का उत्तुग शृग इमका परिचय दे रहा है। इमी ने अपने बलशाली भुजदडो से भारत के प्रथम साम्राज्य की स्थापना की थी। कविता देश प्रेम मे अनुप्राणित है। इस प्राचीन पुरुष के द्वारा कवि भारत के अतीत गौरव का अकन करना चाहता है। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' मे मारीच ने सर्वदमन को जो वरदान दिया था उसी का चित्रण कवि ने किया है। कालिदाम का कथन है 'तुम्हारा वश चलाने के अतिरिक्त यह चक्रवर्ती राजा भी होगा। देखो, यह बालक अपने दृढ आर मीधे चलनेवाले रथ पर चढकर समुद्र पार करके सात द्वीपा की पृथ्वी अकेले ही जीत लेगा ओर ममार का कोई भी वीर इमके मामने न टिक सकगा। यहाँ सभी जीवो का तग करने के कारण इमका नाम सर्वदमन था। आगे यह समार का भरण पोषण करेगा और भरत कहलाएगा।'

'शिल्प सौन्दर्य एक ऐतिहासिक घटना के आधार पर है। आलमगीर ने आर्य मन्दिर खुदवा डाले थे, माथ ही मुगल साम्राज्य की बालू की दीवार भी गिर गयी। इमी समय सूर्यमल धूमकेतु की भॉति उदित हुए और आज उनकी समस्त प्रतिहिंमा जाग्रत हो उठी है। वे मोतो मसजिद के प्रागण मे खडे है—कर मे भीमगदा है और मन मे वग। क्रुद्ध हाकर उन्होने मबल हाथ उठाया गदा छज्जे पर जा पडी, मर्मर की दीवाल कॉपकर रह गयी। सूर्यमल रुक गये और

कहा नष्ट कर देगे यदि विद्वेष से
इमको, तो फिर एक वस्तु ससार की
सुन्दरता मे पूर्ण सदा के लिए ही
हो जायेगी लुप्त बडा आश्चर्य है
आज काम वह किया शिल्प सौन्दर्य ने
जिमे न करती कभी महस्रो वक्तृता।

अन्त मे कवि सन्देश देता है कि क्रूरता कभी वीरता नही होती। धर्म की

प्रतिहिंसा ने अनेक सुन्दर ग्रन्थ नष्ट कर दिये। विज्ञान, शिल्प, कला, साहित्य को हानि हुई। भारत के ध्वंस शिल्प अपने करुण वेश में भी वैभव छिपाए हुए हैं। कवि का मुख्य उद्देश्य शिल्प-सौन्दर्य के प्रभाव की स्थापना है। पाषाणों में भी उसने जीवन डालने का प्रयास किया है। वह एक सार्वभौमिक धरातल पर जाकर इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि धर्मान्धता से अनेक अनिष्ट हो जाते हैं।

'कुरुक्षेत्र' की रचना कृष्ण के प्रसिद्ध चरित्र के आधार पर हुई है। कविता का आरम्भ मोहन के 'गोप बालक वेष' से होता है। बाँसुरी की केवल एक फूँक में ही गोपबालों की सभा एकत्रित हो जाती थी। सभी उस रसीले राग में अनुराग पाते थे। इस भूमि में ऐसा कौन था जो मोहन को देखकर मोहित नहीं हो जाता था ? कालिन्दी के मनोहर कूल में धेनुचारण कार्य, कुंज का वेणुवादन भूलकर अपने माता-पिता के लिए कृष्ण ने कंस को मार डाला। इसके पश्चात् उन्होंने सत्रह कठोर आक्रमणों का सामना किया। मगध सम्राट् भी हारकर भाग गया था। कृष्ण ने सुभद्रा का विवाह पार्थ से करा दिया। कृष्ण स्वयं पांडवों के संरक्षक हो गये थे। अन्त मे उन्होंने धर्मराज्य की स्थापना की थी। राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का वध भी उन्हीं के द्वारा हुआ। फिर पांडवों को कौरवों के कुटिल छल से विपिनवासी हो जाना पड़ा। अन्त मे महाभारत का युद्ध हुआ। रथ रणक्षेत्र में खडा हुआ था। कृष्ण रथ के सारथी थे, किन्तु अर्जुन का हृदय दैन्य से भर गया। आज कृष्ण के करो में मोहिनी वंशी के स्थान पर रथ की रश्मि थी। उन्होंने शंखध्वनि की। अर्जुन ने कहा कि स्वार्थ से मैं युद्ध न करूँगा। कृष्ण ने उन्हें कर्म करने का सन्देश दिया। इसमें गीता की छाया है :

क्यो हुए कादर निरादर वीर कर्मो का किया
सव्यसाची नें हृदय दौर्बल्य क्यों धारण किया।
*   *   *
क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्वय्युपपद्यते
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोतिष्ठ परंतप। 2-3

पार्थ, कायर मत बन ! यह तुझे शोभा नहीं देता। हृदय की क्षुद्र दुर्बलता त्याग कर, उठ जा।

नर न कर सकता कभी वह एकमात्र निमित्त है
प्रकृति को रोके नियति किसमें भला यह वित्त है।
*   *   *
अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति। 2-17

अखिल जगत में व्याप्त वह अविनाशी है। इस अव्यय का नाश करने की

शक्ति किसी में नहीं है।

आत्मा सबकी सदा थी, है, रहेगी, मान लो
नित्य चेतन सूत्र की गुरिया सभी को जान लो।
*   *   *
देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्व भारत
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि। 2-30

सबके शरीर में विद्यमान देहधारी आत्मा अवध्य होती है। भूतमात्र के विषय में शोक करना उचित नहीं। आत्मा के विषय में गीता ने विस्तार से विचार किया है।

कर्म जो निर्दिष्ट है, हो धीर. करना चाहिए
पर न फल पर कर्म के कुछ ध्यान रखना चाहिए।
*   *   *
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सगोस्त्वकर्मणि। 2-47

कर्म पर तुझे अधिकार है, उससे प्राप्त होनेवाले अनेक फलो पर कदापि नहीं। कर्म का फल तेरा हेतु न हो और कर्म न करने का भी आग्रह तुझे न रहे।

इस प्रकार कृष्ण ने 'कुरुक्षेत्र' में अर्जुन को जो उपदेश दिये है, उनकी भावना गीता के अत्यन्त समीप है। श्रीकृष्ण के विविध रूपो का वर्णन करने के पश्चात् कवि गीता के 'कर्मवाद' की स्थापना करता है।

'वीर बालक' मे सिक्ख बालक जोरावर सिह और फतेह सिह की कथा है। कवि कहता है कि आज इसी सरहिन्द मे भारत का सिर गौरवमंडित होना चाहता है। जनता दुर्ग के सम्मुख एकत्र है। युगल बालकों की कोमल मूर्तियाँ खड़ी हुई हैं। सूबा ने कर्कश स्वर से कहा कि 'पवित्र इस्लाम धर्म स्वीकार कर लो, सम्राट् की कृपा से सब कुछ मिल जायगा।' यह सुनते ही जोरावर सिह के मुख पर एक स्वर्गीय आलोक छा गया; धमनियों में पैतृक रक्त-प्रवाह बहने लगा, वे बोले–'वाह गुरु की मेरी शिक्षा पूर्ण है। तुम मुझे व्यर्थ मत समझाओ।' लघु भ्राता ने भी बड़े भाई का साथ दिया और दोनों आकंठ ईंटों में चिन दिये गये। सूबा ने एक बार और कहा, अब भी समय है, बाहर निकलकर हमारी बात मान लो।[4] बालक बोल उठे :

क्यों अन्तिम प्रभु स्मरण कार्य में भी मुझे
छेड़ रहे हो ? प्रभु की इच्छा पूर्ण हो।

कविता का मुख्य लक्ष्य 'शिल्प-सौन्दर्य' की ही भाँति धार्मिक असहिष्णुता का

विरोध है। कवि स्वयं कहता है कि इस निर्मम शास्त्र का क्या यही धर्म है ? यह तो धर्म का प्रबल भयानक रूप है। इसी कारण न जाने कितने व्यक्ति जला दिये गये, कितनों का ही वध हुआ, कितने निर्वासित कर डाले गये। धर्मान्धता की देवी के कारण असख्य व्यक्तियो को बलि हो जाना पडा। इस ऐतिहासिक कथानक मे जातीयता की भावना के स्थान पर धार्मिक असहिष्णुता की अधिक निन्दा की गयी है। इसमे भी अतुकान्त छन्द है। 'शरत्काल की प्रथम शशिकला सी हँसी' तथा 'बिना नाल के स्थलपद्म' सुन्दर उपमाएँ है।

अन्तिम आख्यान कविता 'श्रीकृष्ण जयन्ती' है। जगत मे अन्धकार व्याप्त है। घोर घन उठ रहे हैं। नीरद अपने नीर से भीगकर मन्थर गति से जा रहा है। वह रुककर कृष्णवर्ण को लज्जित कर देना चाहता है। व्योम की भॉति ही जगत मे आन्तरिक अन्धकार है। उसे प्रकाश देने को दिव्य ज्योति प्रकट होगी। इसके अनन्तर सुर-सुन्दरी-वृन्द कुछ ताक रहे है। चचला झॉक-झॉककर देखती है। मेघ भी प्रेम-सुधा छिडक रहा है। किसी के आनन्दमय आगमन मे समस्त प्रकृति बावली हो उठी है। कवि द्विजकुल चातको से ललकारने के लिए कहता है कि सोये ससार के बालको, जाग पडो। मानव जाति गोधन बनेगी, गोपाल ससार मे आ रहे है। वे सब जीवो को परमानन्दमय कर्ममार्ग दिखलावेगे। यमुना अपना क्षीण प्रवाह बढा दो। ब्रजकानन हरे हो जाओ। कृष्ण आ रहे है, प्रकृति के कण कण आह्लादित हो उठो।

अन्य छोटी कविताओ की अपेक्षा इन आख्यान कविताओ मे प्रसाद के काव्य विकास का अधिक स्पष्ट आभास मिलता है। भावना और कल्पना मे मौलिकता तथा एक अभिनव स्वतन्त्रता का सचार होने लगा है। 'कानन कुसुम' मे भाव के कई रूपो के दर्शन एक साथ हो जाते है। उसकी कविताओ मे विभिन्नता है। प्रकृति, विनय, भक्ति, इतिहास, पुराण सभी से कवि ने प्रेरणा ग्रहण की है। भाषा की दृष्टि से उसमे परिमार्जन है। भावो का नैसर्गिक प्रवाह भी दिखाई देता है। स्वयं कवि ने इनके विषय मे कहा है कि "इसमे रगीन और सादे, सुगन्धवाले और निर्गन्ध, मकरन्द से भरे हुए, पराग मे लिपटे हुए, सभी तरह के कुसुम हैं। असयत भाव से [illegible] किये गये है।"

विकास और स्वरूप

काव्य यात्रा की दृष्टि से प्रसाद की खडीबोली के प्रथम चरण मे विकास के चिह्न मौजूद हैं। इतिहास-पुराण के आधार पर जिन कविताओ की रचना की गयी है, उनमे अनुकरण ही नही किया गया है। कवि की स्वतन्त्र कल्पना ने सामग्री मे इच्छानुसार परिवर्तन किये है। इतिहास के अनुसार वीर बालको की कथा का आधार जातीय है किन्तु कवि ने उसे एक व्यापक स्वरूप देकर धार्मिक असहिष्णुता की निन्दा की। 'प्रेम पथिक' मे उसने प्रेम-दर्शन की स्थापना की। इसके अतिरिक्त वह विचार-प्रकाशन

के लिए प्रबन्धात्मक प्रणाली की ओर अधिक उन्मुख दिखाई देता है। आगे चलकर उसने अपने नाटको को इमका साधन बना लिया और काव्य मे उपदेशात्मकता अपेक्षाकृत कम हो गयी। उपमाओ मे कवि की नवीनता के दर्शन होते हैं और प्रकृति के प्रतीको का उपयोग भी मिलता है। मानवीय गुणो के लिए प्राकृतिक सौन्दर्य की उपमा कवि ने कई स्थलो पर दी है। प्रकृति की कविताओ मे प्रमाद ने उसका उपयोग मानव के लिए ही किया है। कोकिला नवीन गीत ससार के लिए गाती है। रजनीगन्धा अनुराग-परिमल बिखेरती है। अब कवि 'चित्राधार' की भाँति केवल जिज्ञासा से उसके सौन्दर्य को देखता नही रह जाता; उमे अनेक मन्देश मिलते है, जिन्हे वह मानव-कल्याण मे नियोजित करना चाहता है। आख्यान-कविताओ मे प्रकृति एक सुन्दर पृष्ठभूमि का कार्य करती है। कवि ने नवीनतम विषयो पर भी रचना आरम्भ कर दी है। इम दृष्टि से प्रेम, वेदना आदि विषय छायावाद के समीप है।

आरम्भिक कविताओ मे प्रमाद ने शृगार का पर्याप्त परिष्कार किया। कल्पना के द्वारा सौन्दर्य, प्रेम का एक नवीन रूप उन्होने प्रस्तुत किया। यद्यपि नारी का अधिक चित्रण आरम्भ मे नही मिलता किन्तु जहाँ कही भी उमके सौन्दर्याकन का अवसर कवि को प्राप्त हुआ है, उसने अपनी नई भावनाओ का परिचय दिया है। स्वय सीता राम के अक मे इम प्रकार सुशोभित थी, मानो नी[illegible] गगन म चन्द्रमुख, अथवा कमल के आसपास मि[illegible]। राम और सीना के सब[illegible] म जो आदर्शवादिता चली आ रही थी, उमका अन[illegible] कवि न नही किया। कृत्रिमता के स्थान पर एक सरसता और मामनता इन कवि[illegible] में मिलती है। आचार्य वाजपेयी के शब्दो मे . 'नारी के प्रति प्राचीन [illegible] का मा औदात्य, कादम्बरी का मा मह[illegible] स्वातन्त्र्य एक बार पमा[illegible] म पुन [illegible] हो [illegible]।

[illegible] प्र[illegible] के काव्य ने अन्तस्तल का स्पर्श किया। भावो को प्रवाहमयता [illegible] [illegible] छन्दो की योजना की। संस्कृत काव्य म अतुकान्त छन्दो की परम्परा थी। [illegible] न हिन्दी म य[illegible] आरम्भ किया। इसमे वर्णविन्यास का प्रवाह, श्रुति[illegible] आदि का [illegible] पूर्ण ध्यान [illegible] है। इक्कीस मात्रा का अरिल्ल [illegible] से अधिकाश आरम्भिक कविताओं मे प्रयुक्त किया गया है। [illegible] न मा[illegible] भावना का प्रकाशन किया। छोटी छोटी कविताओ मे [illegible] भावना मिलती है। कवि ने बाह्य जगत की पूर्ण अवहेलना नही की किन्तु नाटक, कहानी, उपन्यास [illegible] के अन्य माध्यम भी होने के कारण उसने कविता के द्वारा [illegible] का अधिक प्रकाशन किया। नवयुवक कवि प्रेम, सौन्दर्य और यौवन का एक उदात्त स्वरूप प्रस्तुत करने मे सफल हुआ है। इसमे उसकी व्यक्तिगत अनुभूति के साथ ही अध्ययन का भी समन्वय है। प्रसाद ने प्रकृति, ईश्वर के साथ ही खड़ीबोली की आरम्भिक रचनाओ मे मानव को भी अपना लिया है। प्रत्येक वस्तु का उपयोग उसी के लिए है। देश-काल की दृष्टि से प्रसाद के समय

में एक समन्वय चल रहा था और उनकी कविताओं पर इसका प्रभाव देखा जा सकता है। भावनाप्रधान होते हुए भी काव्य में जीवन की वास्तविकता के संकेत हैं।

प्रसाद की इन आरम्भिक आख्यान-कविताओं के सम्बन्ध में ज्ञातव्य बात यह है कि ये कथात्मक होती हुई भी वर्णनात्मक अथवा वाह्यार्थमूलक नहीं हैं। इनकी रचना में कवि के भावनात्मक आदर्श ही मुख्य प्रेरक हैं। अपनी नवोदित दार्शनिक तथा सामाजिक भावनाओं को ही कवि कतिपय आख्यानों का आधार लेकर व्यक्त करता है। इन आख्यानों में इसीलिए वाह्यार्थजीवी काव्य की-सी परिपुष्ट वस्तुस्थापना और वर्णनात्मकता नहीं मिलती। प्रसादजी के इन आख्यानों की रचना में प्रयोगात्मक शैली ही काम करती है। कहीं वे नाट्यगीत की संवादशैली अपनाते हैं, कहीं कथा और संवादों की सम्मिलित शैली चलती है और कहीं कथात्मक शैली ही मुख्य रूप से बरती जाती है। कहीं आत्म-कथन द्वारा कथा का निर्माण होता है, कहीं तृतीय पुरुष में उसकी रचना होती है। इन समस्त प्रयोगों में प्रबन्ध-काव्य की प्रौढ़ पद्धति अथवा सर्गबद्ध वर्णनात्मकता का स्वरूप पूर्ण प्रस्फुटित नहीं हो पाता, एक आभास मात्र मिलकर रह जाता है। प्रसाद के ये प्रयोग उनकी दार्शनिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए साधन का ही काम करते हैं।

अन्य विशेषता जिसकी ओर ये आख्यान संकेत करते हैं, कवि की अन्तर्मुखीन प्रवृत्ति और अन्तर्द्वन्द है। एक प्रकार से इनमें कवि के व्यक्तित्व-विकास का इतिवृत्त समाया हुआ है। यौवन-सुलभ शृंगारिक भावनाएँ और वीरोन्माद के भाव एक उच्चतर जीवनादर्श में परिवर्तित हो रहे थे। प्रसाद का यह व्यक्तित्व सम्बन्धी संघर्ष उनकी इन आख्यानक रचनाओं में भी प्रतिफलित हुआ है। यदि किसी कवि के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उसकी सम्पूर्ण काव्यकृति उसके व्यक्तित्व के विकास से पूर्णतः सम्बद्ध है और उसके बाहर वह अधिक नहीं गयी, तो प्रसादजी के सम्बन्ध में निःसंकोच कहा जा सकता है। इस दृष्टि से प्रसाद की सम्पूर्ण काव्य-रचना अहंकेन्द्रीय भी कही जा सकती है। इसकी विविध दशाएँ और स्थितियाँ उनके काव्य में साक्षी रूप से उपस्थित हैं और कुल मिलाकर उनका काव्य उनके इस अहं के विकास का इतिवृत्त है। किशोर वय के इन आख्यानों में प्रसाद की अहंभावना शारीरिक इन्द्रियाकर्षण और सौन्दर्यानुभूति से अभिभूत-सी हो गयी है, किन्तु उसमें निरन्तर इस वाह्याकर्षण से ऊपर उठने का एक अदम्य प्रयत्न भी दिखाई देता है जो उन्हें एक उच्च भाव-भूमि पर ले जा सका।

प्रसाद के इन आख्यानों की तुलना हिन्दी के तत्कालीन आख्यानक कवियों से समझ-बूझकर की जानी चाहिए। वर्णनप्रधान, वाह्यार्थजीवी आख्यानों से इनकी समता सुविधापूर्वक नहीं की जा सकती, क्योंकि इनकी प्रकृति ही उनसे भिन्न है। प्रसाद के आख्यानों में भावना की जो गहराई और निष्ठा दिखाई देती है वह उनकी अपनी वस्तु है। उनमें जो एक अनगढ़ प्रवाह दिखाई देता है वह कवि हृदय के ही

अनिर्दिष्ट प्रवाह का प्रतिरूप है। ये आख्यान न तो वस्तु-विन्यास की दृष्टि से और न भाषा के सौन्दर्य या चमत्कार की दृष्टि से अधिक उल्लेखनीय हैं किन्तु इनमे प्रसाद के सघर्षशील व्यक्तित्व की मनोरम छाया देखी जा सकती है। मैथिलीशरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी के खण्डकाव्यो मे विस्तार तथा व्यवस्था अधिक है; कथात्मक और वर्णनात्मक सौन्दर्य का स्वारस्य अधिक है। वे वस्तुमुखी, तटस्थ, विवरणप्रधान आख्यान हैं, जबकि प्रसाद के आख्यान-व्यक्तित्वनिष्ठ, आत्माभिमुखी और भावप्रधान हैं।

प्रसादजी की इन आख्यानक रचनाओ के साथ श्रीधर पाठकजी की कतिपय कृतियाँ भी रक्खी जाती है और दोनो की समता और विभेद पर तुलनात्मक प्रकाश डाला जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे पाठकजी के आख्यानो का उल्लेख करते हुए उन्हे नवीन स्वच्छन्दतावादी काव्यशैली का प्रवर्त्तक ठहराया है। पाठकजी के इन आख्यानो (एकान्तवासी योगी, ऊजड ग्राम, श्रान्तपथिक) के सम्बन्ध मे यह उल्लेख करना आवश्यक है कि ये अग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के हर्मिट, डेजर्टेड विलेज, ट्रेवलर नामक काव्याख्यानो के अनुवाद या रूपान्तर है, अतएव इन्हे मौलिक रचना का पद नही दिया जा सकता। यह कहने की आवश्यकता नही कि गोल्डस्मिथ की अनुभूतियॉ श्रीधर पाठक की मौलिक अनुभूतियाँ नही कहला सकती। साहित्य मे नये प्रवर्त्तन का श्रेय किसी छायानुवाद या रूपान्तरित रचना को देना उस साहित्य के प्रति न तो न्यायानुमोदित कहा जाएगा और न सम्माननीय ही। कदाचित् किसी भी स्वावलम्बी साहित्य के इतिहास मे ऐसी बात नही देखी गयी। फिर, हमे यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अग्रेजी साहित्य के इतिहास मे गोल्डस्मिथ पूर्णतया स्वच्छन्दतावादी नही माना जाता।[5] उसकी कृतियो मे स्वच्छन्दतावाद की थोडी-सी अग्रसूचनामात्र मिलती है, विशेषत उसके भाषाप्रयोगो मे एक अभिनव सरलता है जो परम्परागत शैलियो से भिन्न है और नया रास्ता अपनाती है। केवल इतने आधार पर उसे नयी शैली के प्रवर्त्तन का श्रेय नही दिया जा सकता। दूसरी बात यह है कि गोल्डस्मिथ और श्रीधर पाठक के व्यक्तित्वो मे भी स्पष्ट अन्तर है। गोल्डस्मिथ का सारा जीवन दुःखमय और दुर्भाग्यग्रस्त रहा। उसकी रचनाओ मे इसीलिए एक अतिरिक्त भावनामयता और सहानुभूति है। श्रीधर पाठकजी का जीवन व्यवस्थित, साधन सम्पन्न और अभिजात था। उनके लिए करुणा या सहानुभूति केवल मानसिक सवेदना का विषय हो सकती थी। उनका प्रकृति-प्रेम एक नागरिक का प्रकृति-प्रेम है। पाठकजी की मौलिक और अनूदित रचनाओ मे भाषा की आलंकारिकता स्पष्ट है। उनकी कृतियो मे भाषा का माधुर्य और शालीनता है, किन्तु गोल्डस्मिथ की-सी नैसर्गिक सरलता और अकृत्रिमता नही। उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व मे विद्रोह का कोई ऐसा तत्त्व नही जो उन्हे साहित्य के क्षेत्र मे नये प्रवर्त्तन की ओर ले जा सके। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी साहित्य के विकासक्रम को अत्यन्त

स्वतन्त्र और निष्पक्ष दृष्टि से देखना होगा, उसके विभिन्न व्यक्तित्वों की तटस्थ छानबीन करनी होगी और उसके नवीन प्रवर्त्तनों को वास्तविक, सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियो के परिवेश मे परखना होगा। प्रसाद की अन्तर्मुखी वृत्ति और उनके व्यक्तित्व का द्विधात्मक द्वन्द जिस आग्रह और निरंतरता के साथ उनकी इन आख्यानक रचनाओ मे प्रतिफलित हुआ है, वह इन कृतियो को एक विशेष प्रकार की प्रगीतात्मक भावनामयता प्रदान करता है। ये आख्यानक रचनाएँ हिन्दी के तत्कालीन अन्य आख्यानो से प्रकृति और प्रवृत्ति दोनो मे ही भिन्न हैं, अतएव इनकी परख प्रगीत आख्यान की भूमिका पर ही की जा सकती है, जो प्रसाद की समस्त आख्यान-रचनाओ का मूलाधार है। कामायनी का विशद और प्रौढ आख्यान भी इस विशेष प्रवृत्ति से रहित नही है।

प्रसाद की आख्यानक कविताएँ एक समन्वित रूप का परिचय देती है। पश्चिम मे वर्णनात्मक काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य, कथाकाव्य, साहित्यिक नृत्यगीत आदि आते है। कथाकाव्यो मे प्रबन्ध तथा नृत्यगीत दोनो की ही विशेषताएँ निहित रहती है। कवि विषय प्रतिपादन मे, कथानिर्माण मे प्रबन्धकार हो जाता है। भावनाओ का अकन वह गीतकार रूप मे करता है। समीक्षको ने अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी प्रवृत्तियो के सगम को आख्यान कविताओ की विशेषता कहा है।[6] किसी विशेष भावना के प्रतिपादन का वह सुन्दर माध्यम है। पश्चिम मे नृत्यगीतो की साहित्यिक परम्परा कथाकाव्य का प्रथम चरण है। दूसरा चरण आख्यानक कविता का है और अन्त मे महाकाव्य का स्थान आता है। वर्ड्स्वर्थ ने साहित्यिक नृत्यगीतो को प्रस्तुत करते हुए उनकी भावानुभूति पर विशेष प्रकाश डाला। आख्यानक कविताएँ भारतीय खण्डकाव्य के अधिक समीप है। साहित्य दर्पणकार खण्डकाव्य के क्षेत्र को सीमित कर देते है किन्तु उसमे कथा की पूर्णता का आग्रह है, महाकाव्य का एक भाग उसकी पूर्ति नही कर सकता। जीवन के किसी पक्ष पर विचार होते हुए भी उसमे पूर्णता अपेक्षित है। हिन्दी मे 'जयद्रथवध' इसी श्रेणी मे आयेगा। प्रसाद की आख्यानक कविताएँ जीवन की पूर्णता की दृष्टि से खण्डकाव्य के अन्तर्गत नही आ सकती। उनमे किसी विशेष उद्देश्य का प्रतिपादन है। 'प्रेमपथिक' मे प्रेमादर्श, 'करुणालय' मे करुणा और 'महाराणा का महत्त्व' मे वीरता के आदर्श की स्थापना है। एक साधारण सी घटना और पात्रो की सीमित सख्या ही उसमे सहयोग देते हैं। इस दृष्टि से 'कानन कुसुम' की अयोध्या का उद्धार, चित्रकूट, भरत आदि आख्यान-कविताएँ भी उस श्रेणी मे नही आ सकती। वास्तव मे द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता ने आख्यान कविताओ को प्रोत्साहित किया। किसी मार्मिक दृश्य को लेकर इनकी रचना की गयी। रवीन्द्र ने 'उर्वशी' आदि की रचना की। प्रसाद की इन आख्यान-कविताओ के मूल मे लक्ष्य-प्रतिपादन की भावना है। 'चित्राधार' से आरम्भ होकर वह 'लहर' तक गयी और कवि ने इनमे अपनी प्रबन्ध शैली का परिष्कार किया। उसकी आन्तरिक अनुभूतियाँ विषय-प्रतिपादन

के साथ प्रस्तुत हुईं। उनमें पश्चिम के कथाकाव्यों से अधिक सामीप्य है जहाँ आन्तरिक भावनाओं को भी स्थान मिला। चॉसर, स्पेन्सर, मिल्टन, ड्रायडन, कूपर, वर्ड्स्वर्थ, कीट्स आदि कवियों ने इसमें योग दिया। प्रसाद की आख्यान-कविताओं की शैली इनके अधिक निकट है। इस प्रकार कवि के खड़ीबोली के प्रथम चरण में भावी विकास के चिह्न निहित हैं।

संदर्भ

1 रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 522
2. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ. 20
3. ट्रेविल (सं.) . ए बुक आफ़ नरेटिव वर्स, भूमिका
4. जदुनाथ सरकार : हिस्ट्री आफ़ औरंगज़ेब, भाग 3, पृ 319
5 कज़ामियाँ : हिस्ट्री आफ़ इंग्लिश लिटरेचर, पृ 852
6. ट्रेविल (स) · एक बुक आफ़ नरेटिव वर्स भूमिका

आँसू

'आँसू' का प्रथम सम्करण 1982 वि. मे चिरगाँव से प्रकाशित हुआ था। रचनाकाल की दृष्टि से अन्य गीत सृष्टियो के पूर्व ही उसकी रचना हो चुकी थी। अपने आरम्भिक रूप मे आँसू एक विरह काव्य है और उसमे वियोग शृंगार की प्रधानता है। लगभग एक सौ छब्बीस छन्दो मे कवि ने प्रेमी की वेदनाभूति, अतीत की स्मृति आदि अकित करने का प्रयत्न किया है। करुणा कलित हृदय मे बजती हुई विकल रागिनी से कवि उन क्षणो को याद करता है, जब उसे अपलक नयनों से उस छवि को निरखने का अवसर प्राप्त हुआ था। उस दिन जीवन मे मधुमास आया था। कवि उस रूप की कल्पना करता है। अन्त मे विरह-मिलन के सत्य का आभास उसे मिल जाता है। वह विस्मृति की समाधि पर कल्याण के मेघो की वर्षा चाहता है।

'आँसू' का द्वितीय सस्करण 1990 वि मे प्रयाग से प्रकाशित हुआ। इसमे छन्दो के क्रम मे परिवर्तन कर दिया गया। इसके अतिरिक्त अन्य छन्दो का भी समावेश हुआ जो इस बीच लिखे गये थे, और कुल सख्या लगभग एक सौ नब्बे हो गयी। आरम्भ मे ही कवि अन्तरतम मे उठनेवाली करुण भावनाओ की ओर सकेत करता है। कुछ विस्मृत बीती बाते उसे याद आ रही है। वह अनेक प्रश्न करता है, किन्तु उसे उत्तर नही मिलता। बस शून्य क्षितिज की प्रतिध्वनि लौट आती है। ये अतीत की स्मृतियाँ 'महामिलन' के अवशेष है, जब प्रिय से उसका समागम हुआ था। कवि उस कहानी के विषय मे कहता है :

मादक थी मोहमयी थी
मन बहलाने की क्रीडा
अब हृदय हिला देती है
वह मधुर प्रेम की पीड़ा।

कवि अपने प्रिय से बाते करने लगता है। आज उसके प्राणों मे क्रन्दन हो रहा है, किन्तु कोई नही सुनता। जो अपने ही सुखों से बेसुध हैं, वे इस पर ध्यान नही देगे। प्रेमी ने उस रूप को ही सत्य मान लिया था, उसे अपनी अकिंचनता का ज्ञान

न रहा। उस अपरिचित को देखते ही प्रणयी को आभास हुआ मानो वह युग-युग से परिचित है। प्रेमी उस सौन्दर्य को अपलक नेत्रो से देखता रह गया। जीवन के पतझर मे मधुमास छा गया। वसन्त का सगीत अपनी सम्पूर्ण चेतना से गा उठा। कवि अपनी तन्मयता में कहता है :

शशि मुख पर घूँघट डाले
अचल में दीप छिपाये
जीबन की गोधूली मे
कौतूहल से तुम आये।

कवि रूप-वर्णन करता है। मुख पर विखर जानेवाली अलकें उन जजीरो की भॉति थी जो चन्द्रमा को बॉधती है। काली ऑखो मे यौवन की मदिरा छलक रही थी। केवल भ्रू-भगिमा से ही न जाने कितने हृदय घायल हो जाते थे। मुख के समीपस्थ कर्ण कमलपत्र की याद दिला देते थे। उस पावन शरीर की शोभा ऐसी थी, मानो चंचला चन्द्रिका पर्व मे स्नान कर आयी हो। आज इस परिवर्तन के क्षण मे प्रेमी कहता है कि वह छलना थी, फिर भी मैने उस पर विश्वास किया। शेक्सपियर मे भी एक स्थान पर यही भावना है : 'आई डू बिलीव हर, दो आई नो शी लाईज।' कवि कहता है · वह केवल रूपराशि थी अथवा उसमे हृदय भी था। एक साथ अनेक प्रश्न प्रेमी के मस्तिष्क मे आ रहे है। अब तो केवल विस्मृति और मादकता शेष रह गयी है, स्वप्न टूट गया। स्कन्दगुप्त का मातृगुप्त अपनी भावना मे तल्लीन होकर कहता है : "अमृत के सरोवर मे स्वर्ण कमल खिल रहा था, भ्रमर वशी बजा रहा था, सौरभ और पराग की चहल पहल थी। सवेरे सूर्य की किरणे उसे चूमने को लौटती थी, सन्ध्या मे शीतल चॉदनी उसे अपनी चादर से ढँक देती थी। उस मधुर सौन्दर्य, उस अतीन्द्रिय जगत की साकार कल्पना की ओर मैने हाथ बढाया था, वही स्वप्न टूट गया।" शीतल प्रणय प्रेमी को विरह की अग्नि बनकर जलाने लगा है। आज और कल के अन्तर पर विचार करता-करता प्रेमी दुखी हो जाता है।

प्रिय आकर चला गया, स्मृतियॉ वातावरण मे घूम-फिर रही है। हृदय किसी के प्रेम मे ऐसा रग गया है कि छूटता ही नही। प्रेमी अनुनय-विनय करता है कि मनोरथ-सुमनो को कुचल न देना। प्रेमी का आज भी अपनी वेदना पर विश्वास है कि उसका प्रियतम शिथिल आहो से खिचकर चला आयेगा। चिरदग्ध दुखी वसुधा का कण-कण आलोक दान का भिक्षुक है, प्रियतम अब भी उसमे जीवन का सचार कर सकता है।

प्रेमी अपने अन्तरतम को समझाने लगता है कि जगती ही व्यथाओं से भरी हुई है। यह वेदना को नया दार्शनिक रूप देता है, सन्ध्या और रजनी के नीरव प्रहरों मे भी वेदन-ज्वाला सदा जलती रहती है। वेदना सदा सुहागिनि, मानवता-सिर की

रोली है। हृदय की ज्वाला निर्मम जगती को मंगलमय प्रकाश का दान दे सकती है। प्रेमी वेदना को एक चिरन्तन सत्य के रूप में स्वीकार कर अपने प्रेम से मधुवन में विहँसने की प्रार्थना करता है। वह चाहता है कि सच्चा जीवन जाग्रत होकर मंगल-किरणो का सृजन करे। आशा का सुन्दर अचल जीवन में लहर उठे। प्रेमी की कामना है कि उसका शिथिल हृदय पुनः मग्न हो उठे, उससे अनन्त यौवन का मधु झरने लगे। वेदना भी मधुर हो जावे, निर्दय हृदय को सहृदयता प्राप्त हो। प्रेमी के ऑसू उसके लिए वरदान बन जाते हैं, उसे एक·नवीन चेतना मिलती है। वेदना 'कल्याणी शीतल ज्वाला' के रूप में परिवर्तित हो जाती है। कवि कामना करता है कि करुणा मे भी आनन्द लहर उठे। मन की समस्त पीड़ाऍं हँस पड़ें। प्रेमी वेदना को अपनी चिर सगिनी के रूप मे स्वीकार कर उससे जगती का कलुष धो देने की अनुनय करता है। उससे तादात्म्य स्थापित कर अनेक प्रश्न पूछता है। शून्य गगन में तुमने क्या देखा ? सागर की पागल लहरियाँ कलानिधि की असीमता को छूने का प्रयास करती हैं और अन्त मे हाहाकार मचाती हुई उठ-उठकर गिर जाती हैं। युगों से अपनी ही जडता मे मौन पर्वतमालाएँ न जाने कौन-सा अभिशाप झेल रही हैं। कवि सोचता है कि सर्वत्र वेदना का ही साम्राज्य है। जगतीतल भूखा और प्यासा है। वह प्रश्न करता है :

सूखी सरिता की शैय्या
वसुधा की करुण कहानी
कूलो मे लीन न देखी
क्या तुमने मेरी रानी।

अन्त मे कवि अपनी वैयक्तिक वेदना को एक उदार मानवीय समापन देता है :

सबका निचोड लेकर तुम
सुख सं सूखे जीवन मे
बरसो प्रभात हिमकन-सा
ऑंसू इस विश्व सदन मे।

भाव और अनुभूति

अपने वर्तमान रूप में 'ऑसू' वेदना को मानवीय रूप प्रदान करता है। नवीन संस्करण मे कवि का वेदना-दर्शन विशेष महत्त्वपूर्ण है। वेदना को कवि एक शाश्वत चेतना के रूप मे ग्रहण करता है। 'द रेनी डे' मे लांगफेलो की धारणा है कि प्रत्येक जीवन में पावस की कुछ बूँदें अवश्य गिरती हैं; कुछ दिवस अन्धकारपूर्ण और धूमिल होते हैं। अपने आरम्भिक स्वरूप मे 'ऑंसू' एक विरह काव्य था। उसका प्रथम संस्करण

पन्त के 'ग्रन्थि' की भाँति एक असफल प्रणय-गाथा के रूप मे प्रस्तुत हुआ है। हाँ, अन्तिम पक्तियो मे कवि विस्मृति का सकेत अवश्य करता है। आँसू का वर्तमान रूप प्रसाद के बौद्धिक विकास तथा दार्शनिक चिन्तन का प्रतिरूप है। आवेग कम हो जाने पर कवि जगत जीवन पर भी दृष्टिपात कर सका। वह अपने हृदय की सीमाओ के बाहर निकलता है और तभी उसे धरणी का कण कण सूखा दिखाई देता है। बौद्ध दर्शन के 'दुख वाद' का सकेत 'लहर' के गीतो मे मिलता है। 'आँसू' केवल कवि की आत्माभिव्यक्ति न होकर व्यापक दर्शन मे परिवर्तित होता है। अब तक जिस वेदन-ज्वाला को प्रणयी केवल अपने अन्तर मे जलती हुई देख रहा था, वह कण कण मे व्याप्त हो जाती है

यह ज्वालामुखी जगत की
यह विश्व वेदना बाला
तब भी तुम सतत अकेली
जलती हो मेरी ज्वाला।
* * *
इस व्यथित विश्व पतझड की
तुम जलती हो मृदु डाली
हे अरुण सदा सुहागिनि
मानवता सिर की लाली!

स्वानुभूति का व्यापक प्रसार कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियो को एक स्वस्थ जीवन दर्शन के रूप मे प्रस्तुत करता है और वह अधिक आशावादी हो जाता है। जिन आसुओ को उसने केवल अनुभूतियो के रूप मे अपनाया था, उन्हे सृष्टि कल्याण मे नियोजित करता है। 'आँसू' एक ओर यदि प्रणय गाथा है तो साथ ही सामजस्य के चिह्न भी उसमे दिखाई देते है। जिस वेदना ने उसे गिरा दिया था, उसी के सहारे प्रणयी उठने का प्रयत्न करता है। इस आशावाद तथा वेदना दर्शन के अतिरिक्त नवीन सस्करण म छन्दो के क्रम मे भी परिवर्तन किया गया है। इसके द्वारा प्रसाद काव्य को एक कथा क्रम देना चाहते है और यह कार्य उन्होने आत्माभिव्यक्ति के द्वारा सम्पन्न किया। 'प्रेमपथिक' की भाँति पात्रो की प्रत्यक्ष व्यवस्था तथा कथानक इस प्रणय काव्य मे नही मिलते। कवि की अन्त प्रेरणाएँ अपनी भावनामयता के द्वारा जिन भावनाओ और चित्रो का समन्वय करती है, उसमे परस्पर एक तारतम्य प्रतीत होता है। सभी भावनाएँ एक केन्द्र-बिन्दु से सम्बन्ध रखती हैं। मुक्तक गीतो मे घनीभूत वेदना अन्त मे एक समन्वित प्रभाव डालती है। एक भावना दूसरे की पूरक बनती है और यह भाव साम्य ही उसमे प्रबन्धत्व लाता है।

'आँसू' की प्रारम्भिक पक्तियो का भावावेश वेदना दर्शन मे बौद्धिकता को अपना

लेता है और वेदना व्यष्टि से समष्टि पर पहुँचती है। वेदना से इस नवीन निष्कर्ष का ग्रहण कवि के बौद्धिक विकास का परिणाम है। 'आँसू' का प्रबन्धत्व उसकी भावनाओं के केन्द्रीभूत प्रभावोत्पादन में है। फ़ारसी कवियों की रुबाइयाँ भी कहीं-कहीं अपने संगृहीत रूप में एक कथा का आभास देती हैं। 'आँसू' के प्रणय निवेदन से कथा का एक रेखाचित्र प्रस्तुत हो जाता है, जिसे सचेत कलाकार संकेतों से चित्रित करता है। अन्तर्मुखी वृत्तियों की प्रधानता शारीरिक प्रेम को मानसिक भूमिका प्रदान करती है। इस प्रकार 'आँसू' का प्रत्येक छन्द उस मुक्ता की भाँति है, जो अकेला ही जगमगाता रहता है और मौक्तिक माल में भी चमकता है।[1] 'आँसू' का आलम्बन छाया संकेतों के द्वारा प्रकट हुआ है। प्रियतम सामने नही आता, केवल उसका आभास भर मिलता है। सौन्दर्य वर्णन की सूक्ष्मता उसे पूर्णतया शरीरी नहीं होने देती।

'झरना' के गीत जिस प्रणय-भावना की ओर इंगित करते हैं, उसी का विकास आँसू है। कवि स्वयं इसे 'घनीभूत पीड़ा' का मस्तक मे स्मृति-सी बनकर दुर्दिन में बरसना मानता है। 'द प्रिन्सेस' में टेनिसन ने इन्हीं अश्रुओं के लिए कहा था : "अश्रु, धूमिल अश्रु, मुझे स्वयं ज्ञात नहीं कि इनका क्या आशय है। किसी स्वर्गिक निराशा की गहराई से ये अश्रु हृदय में भर आते हैं और नेत्रो मे साकार हो उठते हैं। लहलहाते हुए पतझर के खेतों को देखता हूँ और उन दिनों की याद हो आती है, जो अब नहीं रहे।" 'आँसू' में प्रसाद का व्यक्तित्व और कृतित्व अपने सम्मिलित स्वरूप में प्रस्तुत हुआ है। 'आँसू' में कवि का अन्तरतम बोल रहा है। आरम्भ में ही वह विस्मृत बीती बातो की याद करने का प्रयत्न करता है। उसे एक-एक कर सभी बाते याद आती हैं। परिवर्तित समय के चित्रण में वह वियोग की अन्तर्दशाओं को प्रमुखता देता है। रूपवर्णन में नारी का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत हो जाता है। इस अवसर पर पुरुष-नारी का प्रेम प्रकाश में आता है। कवि उस सौन्दर्याकन मे सूक्ष्म तूलिका का प्रयोग करता है। प्रियतमा के नख शिख-वर्णन में वह अतीन्द्रिय कल्पना करने लगा। उस प्रेयसी का हास देखकर मधु-उषा में विकसित होनेवाले कमल दल के समस्त वैभव को भी लज्जित होना पडेगा :

विकसित सरसिज वन-वैभव
मधु ऊषा के अंचल में
उपहास करावे अपना
जो हँसी देख ले पल में।
* * *
चंचला स्नान कर आवे
चंद्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी।

'ऑसू' का आलकारिक, किन्तु मादक रूप-वर्णन, लौकिक धरातल के प्रणय की ओर सकेत करता है। केवल 'महामिलन' अथवा 'अज्ञात प्रियतम' के कारण 'ऑसू' को रहस्यवादी भावनाओ से सम्बद्ध नही किया जा सकता। किसी नैतिकता अथवा आध्यात्मिकता का आरोप काव्य के मूल आशय को दुर्बल करता है। इस विरह-काव्य मे छायावाद की प्रवृत्तियॉ प्रकाशित हुई थी, वह स्थूल और कृत्रिम के प्रति एक विद्रोह था। 'ऑसू' की स्वीकारोक्ति मे ही इतना बल था कि एक बार हिन्दी-साहित्य मे हिलोर-सी आ गयी थी। प्रसाद ने गीतकाव्य के द्वारा 'ऑसू' मे जिस प्रणयानुभूति का प्रकाशन किया उसका आलम्बन इसी ससार का है और यह लौकिक सवेदना ही काव्य का प्राण है। 'ऑसू' मे अनुभूति की सच्चाई उसकी महानता है, वह कवि की साहसपूर्ण अभिव्यक्ति है। 'हिन्दी मे जब किसी के पास इतनी शक्ति नही थी कि वह इस तरह की बाते कहे, तब प्रसादजी ने उन्हे कहा। यह साहस और कवि की सवेदना स्वतः ही काव्य को आध्यात्मिक ऊँचाइयो पर ले गयी है।'[2] कविप्रिया एक साधारण मानव प्रतिमा है, किन्तु कवि की गम्भीर वेदना उसे रोमाण्टिक मात्र नही रह जाने देती। भावो का गाम्भीर्य, वेदना-दर्शन और अन्त मे उस करुणा का व्यापक प्रसार मानवीय आलम्बन के होते हुए भी, प्रेम को उच्च भावभूमि पर ले जाते है। प्रसाद की दृष्टि आदर्शवादी है और 'ऑसू' के विरह निवेदन मे भी इन्होने इसकी रक्षा की है। रूप, विलास और वासना अन्त मे उदात्त प्रणय मे प्रतिष्ठित होते है। प्रेम की यह उदात्तता, रूप का अशरीरी चित्रण, स्नेह के छाया सकेत काव्य मे कही कही रहस्यमय भावनाओ की सृष्टि करते है। यह कला की उत्कृष्टता है, आध्यात्मिक निरूपण नही। उस आदर्श-चित्रण के कारण प्रसाद के काव्य को किन्ही 'वादो' मे बॉधने की भूल की जाती है। किन्तु काव्य मे गहरे प्रवेश करने पर मानव की स्वाभाविक अनुभूति ही दिखाई पडेगी। 'आसू' का कवि किसी रहस्यमय अथवा अलौकिक सत्ता से प्रणय सम्बन्ध स्थापित नही करता, अन्यथा 'नख शिख-वर्णन' की आवश्यकता क्या थी ? लौकिक से ईश्वर तक जानेवाले सूफी अपने प्रेमी के 'नूर' मात्र की कामना करते है। सगुणोपासना करनवाले भक्त कवियो ने भी रूप की अपेक्षा गुणो का ग्रहण अधिक किया है। 'सूर' ने कृष्ण के रूपवर्णन मे अतीन्द्रियता रक्खी है। वैष्णव कवियो की रूपोपासना मे भी सौन्दर्य केवल साधन है। उसके द्वारा कवि लक्ष्य तक जाना चाहता है। मर्यादा के कारण तुलसी की सीता केवल 'तिरछे करि नैन द सैन तिन्हे समुझाइ कछू मुसकाइ चली' के द्वारा ग्राम बालिकाओ के प्रश्न का उत्तर देती हैं। प्रेम-चित्रण मे प्रसाद ने आदर्श को लिया और इसी का निर्वाह करने के लिए उन्हे प्रतीक विधान तथा छाया सकेतो का सहारा लेना पडा। आदि से अन्त तक 'ऑसू' म मानवीय भावनाओ की प्रधानता है और उसका यह मानवीय पक्ष उसे श्रेष्ठता प्रदान करता है।

सारोज आफ वर्थर

गेटे के 'सारोज आफ वर्थर' के विषय मे लेखको के विभिन्न मत है। एक वर्ग यदि उसे एक साधारण उपन्यास रूप मे देखता है, तो अन्य उसे कवि की 'आत्मकथा' कहता है। स्वय गेटे का कथन है कि 'मेरी समस्त कृतियाँ एक महान स्वीकारोक्ति का भाग होती है।' उसके जीवन से ज्ञात होता है कि यौवन के आरम्भ मे उसने लोटे बफ से प्रेम किया था। उसी समय गेटे के एक अन्तरग सखा जेरुसलम ने अपने प्राणो का अन्त कर लिया जो एक मित्र की पत्नी से प्रेम करता था। अपने अभागे साथी को कवि ने स्वय की परिस्थिति के अत्यधिक निकट पाया। उसने लगभग चौबीस वर्ष की अवस्था मे 'वर्थर' की रचना की। इस प्रकार गेटे ने अपने उपन्यास मे एक ओर मित्र जेरुसलम से प्रेरणा ली, तो साथ ही उसने अपनी आन्तरिक अभिव्यक्ति भी की। स्वय कवि ने इस विषय मे कहा था कि, "अमोल युवक जेरुसलम की वेदना के साथ ही मैंने अपनी भावनाओ को भी इस कथा मे समन्वित कर दिया है और अब वह अत्यन्त सुन्दर है।"[3] इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् ही जर्मनी मे एक विचित्र स्थिति आ गयी थी। पाठको को उसमे अपनी ही भावनाओ की छाया मिली। 'वर्थर' बहुत लोकप्रिय हुआ और समाचारपत्रो की भाँति बिकने लगा, लगभग सैतीस वर्ष की अवस्था मे गेटे ने पुस्तक मे परिवर्तन किये और अपने जीवन-काल मे ही उसने वर्थर की रजत जयन्ती भी देख ली थी। प्रकाशन के समय इसकी मार्मिक अनुभूति ने देश मे अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था। आत्महत्या की अनेक घटनाएँ सुनने को मिली, और पुस्तक किंचित काल के लिए बन्द भी कर दी गयी थी। इस प्रकार कवि की आन्तरिक अनुभूति का स्वागत हुआ। समीक्षको का विचार है कि उपन्यास का उत्तरार्द्ध गेटे के जीवन के अधिक समीप है और वर्थर की आत्महत्या जेरुसलम से अनुप्राणित है।[4]

गेटे के उपन्यास का आरम्भ प्रणय से होता है। निराशा की चरम सीमा मे नायक की हत्या हो जाती है। इस वेदना की तीव्रता के साथ ही उसमे जीवन की प्रहेलिका पर विचार किया गया है। कवि अन्त मे आशावाद का भी सृजन करता है। लगभग सैतीस वर्ष की अवस्था मे उसने अपने उपन्यास मे परिवर्तन किये। प्रसाद के 'आँसू' का नवीन सस्करण भी इसी विचार-विकास का प्रमाण है। युवक कवि की भावुकता पीछे छूट जाती है; उसकी निराशा आशा मे बदलती है। 'आँसू' की आरम्भिक वेदना अन्त मे व्यापक भूमि पर स्थित होती है। प्रणयोन्माद का ज्वार समाप्त होते ही गेटे ने इस उपन्यास मे अन्य समस्याओ पर भी विचार किया। वह कहता है : "एक दूसरे को दुख देना, कष्ट पहुँचाना कितना बुरा है। नवयुवक यौवन के मधुमास मे ही अपना जीवन नष्ट कर देते हैं, निराशा उन्हे घेर लेती है। वे सदा यही कहा करते हैं कि सुख अनायास ही व्यतीत हो जाता है और दुख के पल काटे

नहीं कटते। प्रत्येक दिवस यदि उन्मुक्त हृदय से प्रकृति का उपभोग किया जाय, तो आनेवाले कष्ट को सहन करने की शक्ति मिल सकती है।" इस तरह 'वर्थर' एक जीवनदर्शन को प्रस्तुत करता है और इस प्रकार वह 'ऑमू' का समीपी है। दोनों में ही लेखकों की स्वानुभूति किसी-न किसी अंश मे निहित है। जेरुसलम अपने प्राणों का अन्त कर पाठको की समस्त सहानुभूति प्राप्त कर लेता है। 'आँसू' की वेदना का वर्णन इस रूप मे किया गया है कि उसके साथ तादात्म्य हो जाता है। आँसुओं के विषय में गेटे का कथन है कि "जिसने आँसुओ मे भिगा-भिगोकर रोटियाँ नहीं खाई वह अलौकिक शक्ति को नही पहचान सकता।"

'वर्थर' में गेटे ने गद्य के माध्यम से प्रणय की आशा-निराशा का चित्रण किया है। जिस कथा का अवलम्ब उसने ग्रहण किया उसमे एक साथ दो प्रेमियो की कहानियाँ अपनी छाया डालती है। जेरुसलम केवल एक माध्यम है जिसके द्वारा लेखक अपने उद्देश्य तक जाना चाहता है। आरम्भ मे प्राप्त होनेवाली निराशा बौद्धिकता से मिलकर नवीन जीवन दर्शन मे परिणत होती है। जेरुसलम की मृत्यु एक नवीन संकेत करती है। गेटे ने वर्थर के प्रकाशित हो जाने पर उसकी एक प्रति लोटे बफ को भेजते हुए लिखा था, कि "मैंने इसे सैकड़ो बार चूम लिया है। मुझे ऐसा लगता है, मानो संसार मे केवल यही एक प्रति है।' लेखक का अपनी इस कृति से अत्यधिक प्रेम था। स्वयं 'वर्थर' पर उसने एक कविता भी लिखी है। "जीवन की समस्त निराशाओ के होते हुए भी गेटे ने प्रणय, पुस्तक और प्रशसकों को पीछे ही छोड़ दिया। वह नवीन निर्माण मे लग गया।"[1] इस प्रकार 'वर्थर' का उद्देश्य आत्मप्रकाशन के द्वारा केवल करुणा का संचार नही था, लेखक जीवनदर्शन की स्थापना करने मे सफल हुआ है। अलबर्ट और उसके मित्र मे उचित अनुचित के विषय मे एक वाद विवाद होता है। लेखक आध्यात्मिकता का अवलम्ब नही ग्रहण करता। उसका विश्वास है कि दुख देनेवाले उन्माद, पागलपन और मादकता ही उसे किसी महान कार्य मे भी नियोजित कर सकते हैं। निराशाओ से घबड़ाकर किसी अदृश्य शक्ति के पूजन-अर्चन में लीन हो जाने की परम्परा से दोनो कृतियाँ दूर है। 'वर्थर' का आधार मानवीय उत्थान-पतन है जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति 'फाउस्ट' मे जाकर होती है। 'वर्थर' 'आँसू' की भाँति कवि के यौवन काल की रचना है, जिसका आधार उसकी प्रणय कथा है। दोनो में स्वानुभूति का उपयोग किया गया है और रचना के अंत मे एक मानवीय आशावाद व्यक्त हुआ है।

वेदना-दर्शन और सूफी कवि

'आँसू' का वेदना-दर्शन गीतिकाव्य को शक्ति देता है। प्रेमी आरम्भ में रुदन करता है। उसे बीते हुए क्षण बारम्बार याद आते हैं और वह प्रेयसी के रूप पर रीझ-रीझ उठता है। अन्त मे वह वेदना के साथ एक प्रकार की सन्धि करता है। आन्तरिक

वेदना और पीड़ा प्रेमी को एक नवीन प्रकाश देते हैं, जिसके सहारे वह आगे बढ़ता है। कवि की गहन अनुभूति वेदना को एक शाश्वत चेतना के रूप में स्वीकार करती है :

मणिदीप विश्व मन्दिर की
पहने किरणों की माला
तुम एक अकेली तब भी
जलती हो मेरी ज्वाला।

वेदन-ज्वाला का चिरन्तन सत्य जगती को नए प्रकाश का दान देता है। काव्य के आरम्भ मे प्राणो की व्यथा बन जानेवाली यह वेदना 'कल्याणी शीतल ज्वाला' हो जाती है। निराशा में आशा की जो किरण प्रेमी को वेदना के द्वारा प्राप्त होती है, उसे वह सम्पूर्ण ससार मे बिखेर देना चाहता है। 'निर्मम जगती' को इसी के द्वारा 'मगलमय उजाला' मिल सकता है। एक ओर यदि 'आँसू' उत्कृष्ट विरह काव्य है, तो साथ ही वह जीवन के व्यावहारिक ज्ञान का उन्नायक है। यदि निराशा के पंक में ही कल्याण का शतदल विकसित हो सकता है, तो उसकी सार्थकता मे विश्वास क्यों न किया जाय। गिरता-उठता प्रणयी अन्त में एक महान् उद्देश्य पर पहुँच जाता है। प्रेम की असफलता और निराशा उसकी प्रगति में बाधा नहीं बनती। प्रसाद के निराशावाद में उनका मौलिक चिन्तन निहित है। प्रायः निराशा के पश्चात् विरक्ति का उदय होता है। बौद्ध दर्शन के 'दुःखवाद' में भी यह भावना निहित है। मैत्रि उपनिषद् मे वृहद्रथ ने कहा कि केवल अस्थि, रक्त, मास से निर्मित शरीर पर अभिमान कैसा ? कठोपनिषद् में नचिकेता ने यमराज से कहा था (1/1/28) : 'मानव जीर्ण होनेवाला तथा मरणशील है, इस सत्य का भली-भाँति ज्ञान रखनेवाला मनुष्य अजर-अमर महात्माओ का संग प्राप्त कर, भला नारी-सौन्दर्य, क्रीड़ा, आमोद-प्रमोद का बारम्बार चिन्तन कर इस लोक मे अधिक समय तक आनन्द उपभोग की कल्पना क्यो करेगा ?'

'आँसू' का वेदना दर्शन आध्यात्मिक निराशावाद की प्रवृत्तियो से भिन्न है। उसमे कवि के जीवनानुभव का योग है और आध्यात्मिकता अथवा वैराग्य की छाया नहीं है। वासना से प्रेम, निराशा से आशा, निद्रा से जागृति और व्यष्टि से समष्टि का ग्रहण इसी वेदना-दर्शन के द्वारा सम्भव हो सका :

आँसू वर्षा से सिंचकर
दोनो ही कूल हरा हो
उस शरद प्रसन्न नदी में
जीवन द्रव अमल भरा हो।

जब कवि की मूर्च्छना समाप्त होती है तो वह सूफ़ी कवियो की भाँति किसी अन्य शक्ति की ओर उन्मुख नही होता। वह जीवन को और भी दृढ़ता से ग्रहण करता है। 'आँसू' के प्रणय-निवेदन में सूफी कवियों की-सी तन्मयता है। सूफी कवि लौकिक प्रेम के सहारे अलौकिक तक जाना चाहते हैं। 'आँसू' का कवि लौकिक को व्यापकत्व प्रदान कर व्यष्टि को समष्टि से जोडता है। अल्लाह के 'जमाल' पर जान देनेवाले सूफी लौकिक प्रेम को एक साधन बनाते है। उनके आत्मसमर्पण मे ईश्वर को पाने की कामना है। रूमी तथा जामी ईश्वर-प्राप्ति के लिए प्रेम का आग्रह करते है।[6] उनके अनुसार अल्लाह कभी अमूर्त रूप मे दर्शन नही देता और स्त्री-रूप में उसका साक्षात्कार होता है। सूफी मसनवियो मे जो स्त्री-पुरुष का प्रणय चित्रित है, उनमे परमात्मा वास्तात्मक आलम्बन और जीवात्मा आश्रय है। 'सूफियों के काव्य मे प्रेम की प्रधानता है और विचारों में एक अलौकिक कल्पना विचरण करती है।'[7] सूफी कविता का बहिरंग प्रेममय होता है, किन्तु उसके अन्तरतम में रहस्यवादी भावना रहती है।

सूफी साधक प्रेम और सौन्दर्य की अलौकिक झाकी देखने के प्रयासी होते है। प्रसाद के 'आसू' का प्रेम कल्पना लौकिक भूमि पर प्रतिपादित है, अतएव सूफ़ियो की प्रेम पद्धति से उसकी तुलना करना सरल नही। सूफ़ियो के प्रेम की आरम्भिक भूमिका अलौकिक है, उसकी विकास-भूमि अलौकिक है और उसकी परिणति भी वही है। प्रसाद की प्रेम-भूमिका लौकिक और मानवीय है, उसका विकास भी सासारिक धरातल पर होता है तथा उसकी परिणति होती है, उदात्त विश्वप्रेम या सर्वतोमुखी करुणा मे। प्रसाद लौकिक या मानवीय प्रेम की वैयक्तिक भूमि से क्रमश: ऊपर उठते है, वैयक्तिक सौन्दर्य और तज्जन्य अनुभूतियो से प्रभावित होते है, उन्हे परखते है और उनसे आगे बढ़ने का उपक्रम करते है। अतएव प्रसाद की प्रेम कल्पना सूफी प्रेम-साधना से अधिक एकीकृत नही होती, केवल किंचित साधारण साम्य मिल जाता है।

सूफी कवियो की भावप्रवणता तथा मुक्तक भावना अपने वाह्य रूप मे 'आँसू' के निकट प्रतीत होती है। सूफियो की 'प्रेम की पीर' ही उनका सर्वस्व है। 'आँसू' की वेदना उसकी आत्मा है। सूफियो की मादन और माधुर्य भावना मे तन्मयता है। वे पागलो की भाँति इस ससार का गीत गाकर भी ऊपर उठने का प्रयत्न करते है। फरीदुद्दीन अत्तार का कथन है : 'वह अत्यन्त रूपवती तथा लावण्यमयी था। उसका सौन्दर्य विकसित और सकुचित होनेवाले अशुमाली की भाँति प्रकाशमान था। सूर्य, उसकी रूपराशि के सम्मुख लज्जित होकर धूमिल पड़ गया था। उसकी प्रभा सुन्दरी के प्रेमियो से भी अधिक पीत थी, जो गलियो में पड़े थे। प्रियतमा को केवल एक ही बार प्रेममय दृष्टि से देखनेवाला व्यक्ति उसी के ध्यान में डूबा रह जाता है।'

सूफ़ियों के सौन्दर्य-वर्णन तथा प्रेमाभिव्यक्ति के पीछे रहस्यमय संकेत रहते हैं। स्थूल दृष्टि से उनमें कोई अलौकिक भावना नहीं मिलती, किन्तु अंचल हटाते ही आध्यात्मिक आभास मिल जाता है। सूफ़ी कवियों ने अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिए प्रतीकों का सहारा लिया। बुलबुल, तोता, मछली, बाँसुरी आदि प्रेममय प्रतीकों के द्वारा वे भावों का प्रकाशन करते हैं। प्रतीकों द्वारा प्रस्तुत-अप्रस्तुत का सम्बन्ध जोड़ा गया। अन्योक्ति, संकेत, भावभंगिमा तथा निदर्शन से प्रेमाभिव्यक्ति सूफ़ी कवियों की विशेषता है। सम्पूर्ण काव्य का आधार प्रेम अथवा रति होने के कारण उन्होंने सुरा, साक़ी को भी स्थान दिया।

प्रसाद की प्रेमभावना सूफ़ियों की भाँति गम्भीर है। प्रेम को सर्वस्व मानकर चलनेवाला सूफ़ी प्राणों तक का मोह नही करता। वह प्रेम के सहारे परमात्मा को पा लेना चाहता है। 'आँसू' अपने प्रेम को जगती के कण-कण में बिखेरकर मंगलमय प्रकाश करता है। उसमें उतना ही ताप है जितना कि किसी सूफ़ी में होता है। भावप्रवणता में प्रसाद ने प्रस्तुत-अप्रस्तुत का सम्बन्ध स्थापित किया। 'मादकता की भाँति आकर संज्ञा सा चले जाना' प्रेम की जिस भावधारा की सृष्टि करता है, उसमें आवेग है। प्रतीकों के आधार पर होनेवाला सौन्दर्य तथा नख-शिख-वर्णन काव्य में एक नया प्रयोग है। वह केवल उद्दीपन का कार्य नहीं करता, उसमें प्रीति की ध्वनि है। बॉवरा मानते हैं कि प्रतीकयोजना एक असाधारण कला है।[8] बन्द पलकों से 'आँसू' में जिस मधुमदिरा-पान की चर्चा है, वह सूफ़ियों की मूर्च्छना की भाँति है। प्रतीक विधान द्वारा 'आँसू' का भावावेश अन्तिम समय तक जीवित रहता है। इस प्रकार अपने 'मानवीय प्रेम' में 'आँसू' सूफ़ी कवियों की प्रेम-परम्परा के समीप है। किन्तु 'आँसू' में लौकिक पक्ष अपने ताप में उपस्थित है। स्वयं प्रसाद ने माधुर्य भाव की चर्चा में रबिया का उल्लेख किया है।[9] 'जायसी' के 'पद्मावत' में नागमती का विरह-वर्णन प्रेम के जिस चरमोत्कर्ष का प्रतीक है, उसमें रहस्य भावना का भी आग्रह है। सूफियों की प्रेम-पद्धति में इसी प्रकार के छाया-संकेत मिलते हैं। 'छालों का फूटना' तथा प्रिय का लिंग विपर्यय आदि भी फ़ारसी कविता के अधिक निकट हैं। फ़रीदुद्दीन अत्तार ईरानी सूफी कवि थे। 'हिकायत शेख़ सनआ' में भी प्रतीक विधान के द्वारा अभिव्यक्ति की गयी और बालिका को पुरुष रूप में सम्बोधित किया गया। कवि की वैयक्तिक अनुभूति से निर्मित 'आँसू' उसकी स्वतन्त्र रचना-शक्ति का परिणाम है और उसे किसी दर्शन विशेष की छाया नहीं कहा जा सकता।

'आँसू' का प्रतिपाद्य

'आँसू' के स्वस्थ प्रेम, जाग्रत निराशा, सूक्ष्म रूप ने उसे एक उच्च धरातल पर पहुँचा दिया है। इसी जीवन की यह कथा अपने उदात्त रूप में इतनी गम्भीर हो गई है कि उसे अलौकिक स्वीकार करने का मोह हो जाता है। विशेषतया 'आँसू' के प्रियतम

मे इस अलौकिकता का आरोप किया जाता है। यह आदर्श-स्थापना कवि की महान कलाकृति है। यदि प्रेम का आवेश अनुभूति के सत्य के कारण मार्मिक व्यजना तथा साधारणीकरण मे सफल हुआ, तो उसकी आशामय परिणति उसे ऊँचाई पर ले जाती है। स्वाभाविक उत्थान-पतन मे बँधा हुआ प्रेमी अन्त मे जीवन सत्य को जान लेता है। 'आँसू' का यह जीवनदर्शन वियोग पक्ष के होते हुए भी, उसे स्वस्थता प्रदान करता है। पीडा मे क्रन्दन करता हुआ कवि यह जान जाता है कि अपने ही सुख से बेसुध व्यक्ति, जिसकी वेदना भी सो गयी है, दूसरो की करुण कथा नही सुन सकता। प्रेमी केवल प्रिय के शारीरिक आकर्षण पर ही नही रीझा था, उसने 'चिर सत्य', 'चिर सुन्दर' के रूप मे उसे ग्रहण किया। प्रेम का रग एक बार चढकर कभी नही छूटता। प्रेम के जिस बीहड पथ मे प्रेमी आज है, उसमे इसके पूर्व कोई नही आया। सुख दुख नियति का ही दान है, दोनो मे मौलिक अन्तर नही। केवल एक ही चेतना के दो रूप है। कवि जीवन मे जिस सामजस्य की स्थापना चाहता है, उसके लिए कहता है :

मानव जीवन वेदी पर
परिणय हो विरह मिलन का
सुख-दुख दोनो नाचगे
है खेल आँख का मन का।

सुख-दुख मन मे उसी प्रकार निवास करते हैं, जैसे मालती कुज मे चद्रिका और अन्धकार का मिलन। पन्तजी इसी सुख-दुख के समन्वय का स्वीकार करते है। बिना दुख के सुख का कोई मोल नही और दुख के बाद ही तो सुख आता है। उनकी 'मानव जग मे बँट जावे, सुख-दुख से औ' दुख-सुख से' पक्तियो मे यही सकेत है। प्रसाद मे यह सामजस्य उनका मूल स्वर है। देवसेना कहती है, "पवित्रता की माप है मलिनता; सुख का आलोचक है दुख; पुण्य की कसौटी है पाप।" धीरे-धीरे प्रेमी व्यक्तिगत अनुभूति के क्षेत्र का प्रसार करता है। चारो ओर उसे निराशा ही निराशा दिखाई देती है। इस विश्व प्रपीडन के प्रति उसका सकेत है : 'चुन चुन ले रे कन-कन से/जगती की सजग व्यथाएँ।' व्यक्तित्व का प्रसार उसकी वेदना को सार्वभौमिक रूप प्रदान करता है। जब यह अग्नि सर्वत्र ही प्रज्ज्वलित है, फिर व्यक्ति केवल अपने प्राणो का मोह क्यो करे ? वेदना अभिशाप नही, वास्तव मे मानवता का शृंगार है। वह उसके सुहाग को अचल रखती है। वेदना, असन्तोष और चिन्ता जगती को गति प्रदान करते है। कवि विषमताओ के बीच भी जीवन के प्रति जिस आस्था को पा लेता है, वह 'आँसू' को एक स्वस्थ धरातल पर प्रतिष्ठित करती है। सागर के अन्तराल मे बडवानल की भाँति जलती हुई वेदना सम्पूर्ण कलुष भस्म कर सकती है। कवि वेदना को अपनी ही थाती समझकर उससे तादात्म्य स्थापित करता है।

उसे यह भी आभासित हो जाता है कि विश्व ही मधु की भिक्षा माँग रहा है। 'प्रलय की छाया' की पन्क्तियाँ हैं :

अपना दन - अचल पसार कर वनराजी
माँगती है जीवन का विन्दु-विन्दु ओस-सा।
क्रन्दन करता - सा जलनिधि भी
माँगता है नित्य मानो जरठ भिखारी-सा
जीवन की धारा मीठी-मीठी सरिताओ से। —लहर, पृ 70

कवि जिन तात्विक निष्कर्षो पर पहुँचता है, वह उसे अनुभव द्वारा प्राप्त हुए है और बौद्धिक चिन्तन उनका माथ देता है। बौद्धदर्शन की करुणा जीवन के प्रति वैराग्य को जन्म दती है, पर उमी वेदना ने 'आँसू' के प्रेमी को जीवन के रहस्य का द्वार खोल दिया। 'आँसू' की यही सार्थकता है कि वह किसी निराशाजन्य जडता का कारण नही बन जाता, वरन् कवि जीवन की गम्भीरतर समस्याओ मे प्रवेश करता है।

भावना प्रकाशन के रूप मे 'आँसू' प्रसाद के व्यक्तित्व का प्रौढ चरण है, जिसका पूर्ण विकास 'कामायनी' मे हुआ। आसू' किसी-न किसी रूप मे प्रसाद के अन्तरतम का छायाचित्र है और आरम्भ के छन्दो मे उनका हृदय ही प्रधान है। अन्त में बुद्धि आकर अपने चिन्तन से कथानक को नया मोड देती है। जेरुसलम के अन्त के पश्चात् गेटे भी अपने 'वर्थर' मे जीवन सत्य को दृढता से पकडता हुआ दिखाई देता है। प्रसाद के मानसिक चित्रण मे प्रकृति भी सहयोग देती है। मिलन काल मे मधुवर्षा के मेघ वियोग मे प्रलय घटा हो जाते है। 'आँसू' मे केवल साधारण प्रणय के दर्शन नही होते, किन्तु उसमे एक गहन अनुभूति भी है और 'आँसू' समष्टि तक जाता है। प्रेमादर्श का जो सकेत 'प्रेमपथिक' मे मिलता है, वह अलौकिक अधिक है। उसमे 'शिवसमष्टि' की चर्चा है किन्तु उसमे प्रेम की स्वाभाविकता और उसका प्रकृत रूप अपेक्षाकृत कम हो जाता है। 'आँसू' मानव-जीवन की एक झाँकी है। प्रेम काव्य म भी उसकी उदात्तता बोलती रहती है, जो कवि के साहित्य का मूलाधार है। शैल-मालाएँ युगो से मौन होकर अभिशाप झेल रही है। उन पर कोई वनस्पति भी नही उगन पाती। वह जनपद-परस तिरस्कृत और अभिशप्त कही जाती है। कोई भी व्यक्ति वहाँ नही आता। वसुधा की जिस करुण कहानी का सकेत कवि 'आँसू' के अन्त मे करता है, उसी को लेकर वह मानवता के कल्याण मे अग्रसर होता है ·

फिर उन निराश नयनो की
जिनके आँसू सूखे है
उस प्रलय दशा को देखा
जो चिर वचित भूखे है।

जीवन पथ पर जाता हुआ मानव अन्त मे एक सामजस्य स्थापित करता है। 'ऑसू' की करुणा का यह चरमोत्कर्ष है। सूफी अलौकिक को चाहता है, प्रमाद का प्रेम जीवन का रहस्य जान जाता है। एक यदि रहस्यमय है, तो दूसरा उदात्त। 'ऑसू' की भावनाओ मे 'झरना' की सी जिज्ञासा अथवा साधारण प्रेम कल्पना नही है। ब्रजभाषा की रचनाओ मे परम्परा का जो प्रभाव था, वह प्रयोगकालीन कवि ने आग चलकर त्याग दिया। कथाकाव्यो मे उसकी मौलिकता का आभास मिलने लगता है। 'प्रेमपथिक' मे प्रेम और 'करुणालय' म करुणा का प्रतिपादन कवि-दर्शन है। 'झरना' मे प्रथम बार प्रमाद का व्यक्तित्व मुखर हुआ। 'चित्राधार' का कवि प्रकृति को जिज्ञासा की दृष्टि स देखता है। चाग ओर बिखरी हुई विभूति उसे आश्चर्य मे डाल देती है। 'झरना मे यही जिज्ञासा मानव तक चली आती है। कवि केवल वर्षा म नदी-कूल को देखकर ही प्रश्न नही करता, वरन् मानव के विषय मे उसका कुतूहल जा' त हाता है। इन मानवीय जिज्ञासाओ ने 'झरना' के कवि को छायावाद के समीप प्रस्तुत किया। 'कानन कुसुम' की रचनाएँ भाषा की दृष्टि से खडीबोली मे अवश्य है, किन्तु उसम कवि अभी भी परम्परामुक्त नही हो सका है। वह "भणी हृदय' के प्रति भी जिज्ञासु है, किन्तु स्थूल रूप से। अन्तस्तल मे झॉककर मानवीय भावनाओं का प्राप्त करने का प्रयत्न उसमे नही है। 'झरना' का कवि इस दृष्टि स अधिक गहराई मे उतरता दिखाई देता है। वह जीवन के कुछ सत्य जान लेता है, जिनका प्रयाग मगलमय हो सकता है। रूप के वाह्य आकर्षण तक जाने का जो प्रयत्न 'झरना' म चल रहा था, उसका पूर्ण विकास 'ऑसू' मे मिलता है। हृदय का दान, उसकी वेदना आदि के छाया सकत 'झरना' के गीतो मे है। उसका प्रयाग 'ऑसू' मे आकर अधिक मुखर हुआ है। प्रमाद ने मानवीय धरातल का ग्रहण कर लिया है। कवि कवल एक जिज्ञासु नही रह जाता, वह जीवन का सत्य जान लेने के लिए व्यग्र है। असफलता से प्राप्त निराशा का उदात्तीकरण तथा प्रसार उसे सर्वव्यापी बना देता है। 'ऑसू' के चित्रो का सृजन अधिक विस्तृत आधार पर हुआ है। अन्तर का वाह्य जगत के साथ एक सामजस्य-सा स्थापित होता है, जो साधारणीकरण मे सहायक है। दर्शक अथवा श्रोता के साथ काव्य का तादात्म्य भावानुभूति की गम्भीरता और उसके व्यापक प्रसार पर निर्भर रहता है। 'ऑसू' इस दृष्टि से एक सफल कृति है। स्वस्थ जीवन दर्शन 'ऑसू' को एक दुखान्त काव्य होने से बचा लेता है। उसका कवि एक ऐसे स्वस्थ और विस्तृत रगमच पर खडा है, जहाँ से उसकी मानवीय दृष्टि स्पष्ट दिखाई देने लगती है।

कला पक्ष

कला की दृष्टि से 'ऑसू' एक सफल गीति सृष्टि है। स्वानुभूति का सहज प्रकाशन गीतो का स्रष्टा है और यहाँ गीतकार का व्यक्तित्व निहित रहता है। आन्तरिक

अनुभूति में रागात्मक सम्बन्ध के कारण एक तन्मयता आती है जो गीतों को लय, गति, संगति प्रदान करती है। वाद्ययन्त्र पर गाये जानेवाले गीतों की प्राचीनतम परम्परा से लेकर आधुनिक अतुकान्त गीतों तक यह लयात्मकता मिलती है। अनुभूति की तन्मयता उसे संगति प्रदान करती है। काव्य में व्यक्तित्व की प्रधानता के साथ गीति-काव्य का अधिकाधिक विकास होता गया। पश्चिम का स्वच्छन्दतावादी काव्य गीतों पर निर्मित है। किसी विशेष मनोदशा में प्रकाशित भावना इन गीतों में निरन्तर गूँजती रहती है। वर्ड्स्वर्थ ने 'लिरिकल बैलेट्स' की भूमिका में सुन्दर काव्य में प्रवाहमयता को आवश्यक माना है। गीतकार वाह्य जगत को आत्मवत् देखता है और संसार का ग्रहण अपनी भावना के अनुसार करता है। उसकी भावना में बौद्धिक चिन्तन तथा दार्शनिक मनन का समावेश गीतों में गाम्भीर्य भरता है।

गीतिकाव्य के रूप में 'आँसू' का भावावेग स्फुट छन्दों में रहकर भी अन्त में एक प्रभाव-स्थापन मे सफल होता है। भावानुभूति की सच्चाई ने 'आँसू' को आवेग दिया। संगीतात्मकता उसके लाक्षणिक प्रयोग और शब्द चयन में है। केवल चौदह-चौदह के विराम से अट्ठाईस मात्राओं के निश्चित छन्द के द्वारा 'आँसू' का सृजन हुआ। श्रेष्ठ गीतिकाव्य के अवयव उसमें साकार हुए हैं। बिना किसी स्पष्ट कथानक के, समन्वित रूप में प्रभावोत्पत्ति 'आँसू' की श्रेष्ठता है। प्रत्येक छन्द भावावेग के द्वारा अन्य से गुम्फित है। भावप्रवणता के चारों ओर समस्त छन्द केन्द्रित प्रतीत होते हैं। भावना का यह साम्य एक-सी ध्वनि का संचार करता है। चिन्तन की दृष्टि से 'आँसू' का उत्तरार्द्ध अधिक प्रौढ़ है। वियोग-वर्णन तथा रूप-चित्रण में कवि का हृदय-पक्ष ही प्रबल है; उसके पश्चात् बौद्धिकता का संयोग होता है। काव्य मे बौद्धिकता का रामावेश जहाँ एक ओर दर्शन का सृजन करता है, वहीं गीतों का प्रवाह मन्द पड़ जाता है। 'आँसू' में चिन्तन का योग वेदना-दर्शन को लेकर हुआ। आरम्भिक छन्दों की आत्मा है, वियोग भावना और अन्तिम भाग का प्राण है, उसका दार्शनिक निरूपण। इस प्रकार भावना और चिन्तन दोनों के योग से 'आँसू' एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करता है।

'आँसू' का बिम्ब-प्रतीक-विधान उसके रूपकत्व का भार वहन करता है। प्रसाद के अधिकांश प्रतीक प्रकृति के वातावरण से ग्रहण किये गये हैं। साहित्य में प्रतीक का इतिहास यद्यपि अत्यन्त प्राचीन है, किन्तु सूफियों ने इसमें विशेष योग दिया। प्रतीक के द्वारा धार्मिक यातना से उन्हें मुक्ति मिली और भावों के प्रकाशन में सरलता हुई। 'आँसू' के प्रतीक उसके भावोद्रेक को जीवित रखते हैं। जड़ता मे चेतनता का आरोप, लाक्षणिक व्यंजना, अन्योक्ति सभी सूक्ष्मता की ओर अग्रसर हैं। नीलाम्बर में नक्षत्र बिखरे हुए हैं, उसी प्रकार हृदय में स्मृतियाँ। सागर की लहरों का संगीत मन में विस्मृति की कथाओं के समीप है। सागर के अन्तराल में सोती हुई बड़वाग्नि अनायास ही आन्दोलित होकर ज्वार को जनम देती है। प्रणय भी इसी प्रकार विरहाग्नि

का सृजन करता है। अलि कमल की पखुरिया मे बन्दी हो जाता है : प्रेमी का मन अलको मे उलझ गया। चातक और श्यामा के स्वर प्रेमी की 'करुणार्द्र' कथा के प्रतीक है। झझा, विद्युत और नीरदमाला वेदना का सकेत करते है। ज्योत्स्ना और सागर का परिचय प्रिय-प्रियतम के प्रथम मिलन की भाँति है। "इसी प्रकार सुषमा का वर्णन करते हुए लावण्य के साथ 'राई' का व्यवहार ध्यान देने योग्य है। अति सुन्दर पर 'राई लोन वारना' नजर न लगने का बहुप्रचलित विधान है।"[10]

सौन्दर्य-वर्णन मे कवि ने अप्रस्तुत योजना का प्रयोग किया। सुन्दरता सूक्ष्म, अशरीरी हो गयी है। सुन्दरी का मुख अलको से घिरकर काली जजीरो मे बँधे चन्द्रमा की भाँति प्रतीत हो रहा था। नीलम की प्याली मे मदिरा की तरह स्थिति थी, नेत्रो मे झूमती मादकता की। कोमल कपोलो पर स्मित रेखा की कल्पना फारसी काव्य के निकट है। सुन्दरी की ठुड्डी मे चाँदी के से गढे का वर्णन अत्तार ने किया है।[11] सीपी मे मोती के दानो की भाँति प्रिया की दशनपक्ति थी। कमल के समीप पुरइन रहते है। कमल पात पर जल बिन्दु क्षण भर भी नही ठहरते। प्रिया के कमल मुख के ही निकटस्थ कर्णो मे भी प्रमी की आर्त्तवाणी न रुक सकी। इस प्रकार प्रतीको के द्वारा भावाभिव्यजना होती है। नारी के नख शिख वर्णन मे नीलम की प्याली, चन्द्रमा, क्षितिज, कमल मुक्ता आदि जिन प्रतीको का प्रयोग प्रसाद ने किया है, उनमे भाव साम्य है। 'परिरम्भ कुम्भ की मदिरा' तथा 'मुग्ध चन्द्र चाँदनी' के प्रतीको मे कवि ने सम्भोग शृगार का सकेत किया है। मिलन विरह, सौन्दर्य निर्दयता सभी का अकन प्रतीको द्वारा किया गया। विरोधाभास कही कही और भी चमत्कार ला देता है। हीर का कोमल शिरीष कैसे कुचल सकता है ? किन्तु नही, सौन्दर्य की सुकुमारता ने ही तो प्रेमी के हृदय को पराजित किया। स्वय शीतल हिम प्रणयाग्नि बनकर जल उठा, और यही तो है प्रेम का परिवर्तित रूप।

विरह के दिनो मे प्रकृति के निम्न प्रतीक धूमिल रूप मे चित्रित है। मलयानिल नदी के तट पर एकाकी ही निश्वासे भरता है। सूखा पराग उडता रहता है, उसका भी मधु विलीन हो गया। प्रियतम चला गया, आज उसका प्रकाश जीवन पथ का पाथेय बन गया। मेघो के जलदान से वन की कलिका को नव-जीवन मिलता है। वीणा के स्वर उदात्त होकर अधिक झकार करते है। सागर मन्थन से वडवाग्नि निकली और प्रेमी ने प्रिय के प्राणो को देखने का प्रयत्न किया, तभी उसे वेदना मिली। इसी प्रकार दीपक और शलभ का प्रतीक है, जो फारसी और उर्दू कवियो मे प्रमुखता प्राप्त कर चुका है। शलभ दीप के रूप पर जल मरता है, वह अपनी हस्ती फना कर देता है। परवाना और शमा उर्दू कवियो के प्रिय प्रतीक रहे हैं। यदि माशूक के रूप की ज्वाला, उसकी सम्पूर्ण निर्दयता की प्रतिनिधि है शमा, तो आशिक की सच्चाई, त्याग की प्रतिमूर्ति है परवाना। प्रसाद ने इस प्रसिद्ध प्रतीक मे त्याग को प्रमुखता दी है। जलने की दीन दशा मे भी पतग फूल की भाँति खिलता है। प्रेम

में प्राण दे देने में भी सुख है, सच्चा प्रेम प्रतिदान की आकांक्षा नहीं करता। प्रेम के विभिन्न मानवीय व्यापारों के अतिरिक्त तात्विक निरूपण में भी बिम्बों-प्रतीकों का प्रयोग 'आँसू' में किया गया है। मन में सुख-दुख लिपटकर सो रहे थे, मानो मालतीकुंज में छाया और अन्धकार। वेदना को एक दार्शनिक रूप देने में भी कवि ने प्रकृति के प्रतीकों का उपयोग किया है। प्रकृति के प्रतीकों ने काव्य को एक गाम्भीर्य दिया है। सीपी में रत्नाकर का समावेश एक कठिन कल्पना है, किन्तु आँखों में करुणा की दो बूँदें समस्त धरणी को स्नेहसिक्त करने की शक्ति रखती हैं। अन्तिम पंक्तियों में 'आँसू' के कवि की भावविह्वलता मुखर है :

सूखी सरिता की शय्या
वसुधा की करुण कहानी
कूलों में लीन न देखी
क्या तुमने मेरी रानी।

प्रसाद के विम्ब-प्रतीक सम्पूर्ण चित्र को लेकर प्रस्तुत होते है। उनमें रूप, गुण, स्थिति आदि का समावेश हो जाता है। प्रतीक स्वयं स्पष्ट कर देते है। घटाएँ, प्रलय, वेदना का सकेत करती है। प्रतीको मे मनोभावो का प्रवेश प्रसाद की प्रमुख विशेषता है। उनके प्रतीक केवल वाह्य स्थूल वर्णन के ही लिए नहीं है, वे अन्तरतम की मनोदशा पर प्रकाश डालते है। प्रतीको के द्वारा कवि ने भावों का व्यापक निरूपण किया है। देश, काल, परिस्थिति के अनुसार प्रतीको में विभिन्नता अवश्य रहती है, किन्तु उनकी भावधारा मे एक साम्य भी देखा जा सकता है। अंग्रेजी की नाइटिन्गेल, फारस की बुलबुल तथा भारत की कोकिला मिलन और विदा के अनुसार एक ही भावना की अभिव्यक्ति करते हैं। प्रतीक-विधान यद्यपि छायावाद की विशेषता है, किन्तु इसमे प्रसाद को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। चित्र उनके काव्य की आत्मा हैं। सुमित्रानन्दन पन्त की प्रकृति-विषयक कविताओं मे प्रेम का समावेश प्रतीकों को स्थान दे सका है। निराला के प्रतीको में दार्शनिक अभिव्यजना भी है। महादेवी के प्रतीक उनकी वेदना की अभिव्यक्ति करते है। 'यामा' के चार प्रहर : सान्ध्यगीत, नीरजा, नीहार, रश्मि जीवन के प्रतीक बन गये है। दार्शनिक नियोजना, आध्यात्मिक संकेत तथा रहस्यवादी प्रवृत्तियो के कारण देवीजी का प्रतीक-विधान कहीं-कहीं अस्पष्ट हो जाता है। प्रसाद के विम्ब-प्रतीक सजीव चित्र, सहज भावना के वाहक हैं और इस दृष्टि से सर्वोपरि हैं। प्रसाद के प्रतीकों में स्वच्छन्द कवियों की-सी भाव-भगिमा है। कालिदास की उपमा सस्कृत काव्य में सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है, प्रसाद के विम्बों-प्रतीकों का भी हिन्दी में यही स्थान है। व्यक्तिगत अनुभूति के कारण उनके प्रतीक भी स्वनिर्मित हैं।

वियोग-काव्य-परम्परा

'आँसू' वियोग शृगार का काव्य है। उसमे वेदना की प्रधानता है और यह वेदनानुभूति ही उसकी आत्मा है। काव्य मे वेदना का आरम्भ आदिकवि वाल्मीकि से माना जाता है। यूनान के दुखान्त नाटकों मे भी इसकी प्रधानता है। वेदना अपनी कोमल अनुभूतियो के कारण मर्मस्थल का स्पर्श सरलता से कर सकती है। होमर मे सौन्दर्य और युद्ध का सघर्ष भी करुणा-परिचालित है। सस्कृत मे भवभूति ने कहा कि करुण रस ही एक रस है, जो विभिन्न भेद मे भिन्न हो जाता है। वह सर्वत्र जल की भाँति है जो भँवर, बुद्‌बुद, लहर सभी मे विद्यमान है। स्वय कालिदास का 'मेघदूत' विरही यक्ष का आन्तरिक प्रकाशन है। पश्चिम के स्वच्छन्दतावादी कवियो ने वेदना को प्रधानता दी है। इसके पूर्व शेक्सपियर के दुखान्त नाटक मानव के अन्तरतम का उद्‌घाटन कर चुके थे। सौन्दर्य का अन्यतम उपासक कीट्स प्रेम के पीछे वेदना की छाया पाता है। 'ला बेल डाम सान्स मर्सी' मे वेदना का स्वर है। अग्रेजी म शोकगीत अथवा 'एलिजी' की रचना भी की गयी। रोमान्टिक काव्य मे विरह के अनेक गीतो का निर्माण हुआ। फारसी म वियोग शृगार की प्रमुखता है। वेदना के इस लौकिक पक्ष के अतिरिक्त रहस्यवादियो ने इसे अन्य रूप म ग्रहण किया और वे पीडा के सहारे अलौकिक तक जाना चाहते है।

हिन्दी मे कबीर की वेदना रहस्यवादी भावो से ओत-प्रोत है। उनकी 'विचित्र वेदना' अपार्थिव है। वैष्णव कवियो के माधुर्य मे विरह के भी क्षण दिखाई देते है। जायसी ने प्रेम की पीर को स्थापित किया। रत्नसेन और पद्‌मावती के सकेतात्मक रूपक के द्वारा उन्होने रहस्यवाद का प्रतिपादन भी किया। सूफी वेदना ने हिन्दी की आधुनिक काव्य परम्परा को अधिक प्रभावित किया। बिहारी की डोलती हुई नायिका की अपेक्षा पदमावत का वियोग-वर्णन छायावादी कवियो के अधिक समीप है। छायावाद युग म वेदना को एक बार पुन: प्रधानता मिली। पन्त मे स्वर मे 'आह से उपजे हुए गान' का सकेत है। उनकी 'आँसू' कविता की पक्तियाँ है :

> मेरा पावस ऋतु सा जीवन
> मानस सा उमडा अपार मन
> गहरे धुँधले धुले साँवले
> मेघो से मेरे भरे नयन।

प्रकृति से प्रेरणा ग्रहण करनेवाले कोमल भावनाओ के कवियो ने वेदना को काव्य मे स्थान देकर कल्पना का नवीन द्वार खोल दिया। पन्त की छाया, उच्छ्‌वास आदि कविताएँ इसी भावना से प्रभावित हैं। निराला का पौरुषमय काव्य भी

'सरोज-स्मृति' आदि कविताओं मे सकरुण हो गया है। महादेवी ने वेदना को सर्वाधिक महत्त्व दिया है और उनका सम्पूर्ण भावना-साम्राज्य ही पीड़ा का है। मीरा के 'मेरो दरद न जाने कोय' में जिस लोकगीत की परम्परा का हृदयवाद निहित है वह देवीजी में एक दार्शनिक चिन्तन का स्थान ग्रहण करता है। रोज़ेटी ने एक स्थान पर लिखा है : 'मेरे प्रियतम, मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरे लिए कोई शोकगीत न गाना'। आँसुओं के लिए महादेवी का कथन है :

जन्म से ये साथ हैं, मैंने इन्हीं का प्यार जाना
स्वजन ही समझा, दृगो के अश्रु को पानी न माना।

छायावादी कवि ने मानव के अन्तरतम का प्रकाशन किया। आनन्दवादी कवि होते हुए भी प्रसाद ने वेदना का चित्रण स्वाभाविक रूप मे किया है। आरम्भिक रचनाओं में वेदना का अधिक आभास नहीं मिलता। 'झरना' का कवि अपनी व्यक्तिगत स्वानुभूति के कारण वेदन स्वर में गाता है। 'आँसू' में प्रसाद का अन्तःकरण बोलता है। यौवन के प्रथम प्रहर मे आनेवाली यह करुण भावना कवि के सम्पूर्ण साहित्य मे छाया वनकर डोलती है। 'आँसू' की वेदना गहन है, किन्तु उसका पर्यवसान वेदना मे ही नही हो जाता। निराशा आशा के द्वार तक जाती है। प्रसाद की वेदना इस जाग्रत स्वरूप के कारण महान् जीवन दर्शन की नियोजना मे सफल हो सकी और उसका उदात्तीकरण उसे गौरव देता है।

'आँसू' की व्यक्तिगत वेदना अन्त में एक आदर्श का निर्माण कर लेती है। प्रसाद के साहित्य मे प्राप्त वेदना की छाया उसे अस्वस्थ नहीं बना देती। आन्तरिक पीडा लेकर भी स्कन्दगुप्त अपने उद्देश्य-स्थापन मे सफल होता है। वेदना और करुणा के कोमल मनोभाव चरित्र-चित्रण के आन्तरिक पक्ष मे सहायता करते है। नाटको का आन्तरिक संघर्ष प्रसाद की इस करुणा का प्रतीक है। कवि तो चाणक्य के पाषाण हृदय मे भी प्रेम की भावना भरता है। पात्रों का आन्तरिक द्वन्द्व, घात-प्रतिघात वेदना से परिपूर्ण है। वेदना की जाग्रत, स्वस्थ कल्पना प्रसाद को निराशावादी नहीं हो जाने देती। करुणा के चरण आनन्द तक जाते हैं किन्तु साथ ही आनन्द भी अपनी कोमलता मे किसी छाया से परिचालित रहता है। वेदना का यह पर्यवसान महान कवियो का सृजन करता है। कालिदास के 'मेघदूत' की वेदना एक व्यापक धगतल पर आकर 'रघुवंश' और 'कुमारसम्भव' की रचना में संलग्न होती है। शिव-पार्वती के रूपकों से चित्रित वेदना एक विशाल रंगमच पर आधारित है। शिव-पार्वती के संयोग-वियोग में मार्मिकता की अपेक्षा विस्तार अधिक है। गेटे के 'वर्थर' की वेदना 'फ़ाउस्ट' की असीम करुणा मे परिणत हो जाती है। वह कहता है, 'आँसू के साथ आँसू भागते चले जा रहे हैं। मेरा अन्तरतम स्वयं पर अधिकार खो चुका है।' जीवनानुभव से प्राप्त यह

दर्शन वेदना को समाप्त नहीं करता वरन् उसका उदात्तीकरण कर लेता है। रवीन्द्र का संगीत भी जिज्ञासु बनकर विषाद की रेखाओं का अंकन करता है : 'पूर्णिमा की नीरव रजनी में जब सर्वत्र उज्ज्वल, तरल हास बिखर जाता है, सुदूर की स्मृतियाँ वशी मे अत्यन्त व्याकुल राग भर देती है, और बस फिर अश्रु झरते ही चले जाते है।'

इस प्रकार रहस्यवादी जिस वेदना का प्रसार आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए करता है, उसी के द्वारा मानववादी कवि जीवन के शाश्वत मूल्यो का उद्घाटन करते है। 'प्रसाद' की करुणा 'आँसू' मे व्यापकत्व प्राप्त करती है और 'कामायनी' के विशाल रगमच पर वह और भी उदात्त हो उठी है। कवि का व्यक्तिवाद पीछे छूट जाता है और नारी मे ही 'करुणा-ममता' को समन्वित कर दिया गया है। 'आँसू' मे करुण रस की प्रधानता है; पर उसका अन्त करुणा के विस्तार से होता है। शृगार मे करुणा का समन्वय काव्य को अधिक सवेदनशील बनाता है। इसे कवि के व्यक्तित्व का विकास कहा जायेगा।

वेदना को प्रसाद नियति से सम्बन्धित करते हैं। यह एक अदृश्य शक्ति है, जो मानव की गतिविधि का संचालन करती है। साधारण भाग्यवाद अथवा प्रारब्ध किसी अलौकिक सत्ता का अस्तित्व स्वीकार करते है। 'आँसू' का नियतिवाद वैयक्तिक अनुभूति से भी अनुप्राणित है। कवि अभिशाप को नियति का वरदान मानकर स्वीकार कर लेता है। काल के काले पट पर अस्फुट रेखाएं लिखी रह जाती है। कवि संसार मे नियति नटी की कन्दुक क्रीडा देखता है, और व्यक्तिगत पीडा से आहत विश्व उसे व्यथित प्रतीत होता है। भावनाओं को ससार म आरोपित करने के कारण नियति दुख का वाहक बन गयी। वेदना दर्शन का प्रतिपादन करते हुए कवि कहता है :

> सकेत नियति का पाकर
> तम से जीवन उलझाये
> जब सोती गहन गुफा मे
> चचल लट को छिटकाए।

प्रेम की पराजय तथा पीडा को कवि नियति-चक्र मानता है। जीवन के आरम्भ मे ही 'प्रसाद' ने अनेक उत्थान-पतन देखे थे। कवि ने स्वय से प्रश्न किया : इसका कारण कौन है ? इस कुतूहल का उत्तर ही नियति बन जाती है। वह जीवन पर अपनी छाया डालती रहती है और उसकी सत्ता का प्रसार व्यापक है। उसी के सकेत से विश्व के पतझर में वेदना होलिका की भाँति जलती रहती है। घनीभूत पीड़ा इसी नियति का दान है और अन्त में दुर्दिन में आँसू बनकर, वह उसी के आदेश से बरस जाती है। नियति का यह स्वरूप कवि की व्यक्तिगत अनुभूति के कारण किंचित् एकांगी अवश्य हो गया है। विरह काव्य में उसके उदात्त पक्ष का चित्रण

करने का अधिक अवसर मिलना भी सरल नही। वेदना का उदात्तीकरण व्यक्तित्व के प्रसार का परिणाम है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि मे 'आँसू' में प्रसाद की नियति-कल्पना आत्मानुभूति से प्रभावित है। यौवन के प्रथम चरण में ही वैभव का अन्त, एक साथ अनेक निधन इन सबने कवि को नियति पर विश्वास करने के लिए विवश कर दिया था। धीरे-धीरे कवि की इस नियति-भावना मे विकास हुआ। नाटकों मे नियति सुख-दुख का सूत्रधार बन गयी। कवि के बौद्धिक चिन्तन तथा दार्शनिक मनन ने उसमे परिवर्तन किये। 'कामायनी' मे नियति एक ओर देव विध्वस का कारण है, तो साथ ही वह आनन्दवाद तक भी ले जाती है। 'ऑसू' मे नियति का विकास व्यक्तिगत अनुभूति के कारण दब गया, किन्तु क्रमश उसमे परिष्कार होता गया। प्रत्यभिज्ञा-दर्शन ने उसे बौद्धिक आधार दिया।

नारी और सौन्दर्य

'आँसू' का नख शिख-वर्णन अपने प्रतीको मे शृगार का परिष्कृत चित्र है। प्रसाद की आरम्भिक रचनाओ मे परम्परा की जो छाया मिलती है, वह धीरे धीरे अनुभूति के विस्तार से दूर होती गयी। कानन कुसुम' मे 'रमणी हृदय के अथाह रूप' को देखने का प्रयत्न कवि ने किया। इसका विकास 'झरना' मे स्वच्छन्द प्रवृत्तियो के द्वारा हुआ। कवि नारी के विषय मे एक जिज्ञासु मात्र नही है, वह उसके निकट जाता है। 'चित्राधार' की कविताओ का स्थूल नारी वर्णन तथा 'कानन-कुसुम' का नारी कुतूहल छूट जाता है। कवि आरम्भ मे ही 'झरना' को समर्पित करते हुए प्रकट कर देता है कि वह अपने आलम्बन को निकट से देख सका। आलम्बन से प्राप्त निराश भावनाओ का आभास भी मिल जाता है :

किसी हृदय का यह विषाद है
        छेडो मत यह सुख का कण है
उत्तेजित कर मत दौडाओ
        करुणा का विश्रान्त चरण है   —झरना, पृ. 17

कवि ने जो अनुभव प्राप्त किये थे, उसी से उसने 'ऑसू' की नारी का निर्माण किया। उसमें रूप-ताप सभी कुछ हैं, जिन पर प्रेमी आकृष्ट हुआ। सम्पूर्ण मादकता को लेकर भी यह नारी केवल वासना और ऐन्द्रियता का प्रतीक बनकर नही रह जाती। अपने शारीरिक आकर्षण में वह गुणों से भी पूरित है। जिस दिन उसने प्रेमी के जीवन में प्रवेश किया, पतझर में मधुमास छा गया था। इसके पूर्व पतझर था, झाड़ खड़े थे किन्तु वह सौन्दर्यमयी किसलय-कुसुम बिछाती हुई आयी। उसके शरीर में 'पावनता' का आरोप करते हुए कवि ने उसमे मधुर आलोक की व्यजना की। स्वप्नभंग हो जाने के पश्चात् प्रेमी उसकी 'जडता' पर अवश्य विचार करता

है, किन्तु प्रथम परिचय के समय वह केवल शारीरिक सौन्दर्य पर ही तो मुग्ध नही हुआ था। 'आँसू' की रूपराशि मे गुण निहित थे। प्रसाद ने नारी को प्रेरणा के रूप मे ग्रहण किया। 'आँसू' की प्रेरणा केवल नारी का सौन्दर्य ही नही उसमे प्राप्त प्रेम और निराशा भी है। रवीन्द्र ने नारी के श्रृंगार मे ससार के हृदय को वशीभूत कर लेने की शक्ति देखी है, जैसे सागर का गाम्भीर्य पृथ्वी को घेरे रहता है।[12]

'आँसू' मे सौन्दर्य वर्णन के लिए जिन बिम्बो प्रतीको का प्रयोग किया गया, उनमे भी नारी का गुण भासित होता है। उसमे यदि जीवन को सरस कर देने की शक्ति थी तो आज विदा के क्षणो मे उसका भान हुआ। उस छवि से सुकवि को प्रतिभा का दान मिला। नारी की जिस शक्ति का आभास 'आँसू' मे मिलता है, उसका पूर्ण विकास गीतिकाव्य के कारण सम्भव न था। छोटे-छोटे भावखण्डो मे केवल उसका सकेत मिलकर रह जाता है। नारी के अभाव मे जीवन का मरुभूमि हो जाना वेदना का परिचायक है। नारी के गुणो मे प्रेमी का हृदय रँग गया है, जो अनेक प्रयत्न करने पर भी छुडाए नही छूटता। नारी का रूप वर्णन करते समय उसमे गुण भरने का प्रयत्न किया गया है। मुखचन्द्र की चाँदनी मे अपना मुख धोकर प्रातः उठनेवाला प्रणयी स्नेह के अभाव मे क्रन्दन करता है। प्रसाद ने नारी मे स्नेह-सौहार्द की भावना भर दी, जिसने उसे केवल शरीरी प्रतिमा होने से बचा लिया। सौन्दर्य और नारी के प्रति इस उदार दृष्टिकोण के कारण 'आँसू' मे व्यापकत्व का समावेश हो सका। नारी यहाँ एक ऐसा आलम्बन है, जो केवल उद्दीपन बनकर नही रह जाती। नारी-भावना का उदात्तीकरण उसकी विशेषता है। छायावाद ने नारी को जिस चेतना रूप मे ग्रहण किया, उसका उत्कर्ष प्रसाद साहित्य मे मिलता है। व्यक्तिगत अनुभूति के कारण 'आँसू' की नारी बहुमुखी शक्ति से समन्वित न हो सकी, किन्तु 'कामायनी' मे जाकर वह अपने विकास पर पहुँची। 'आँसू' की नारी का एक रूपचित्र है :

जिसमे इतराई फिरती
नारी निसर्ग सुन्दरता
छलकी पडती हो जिसमे
शिशु की उर्मिल निर्मलता

वियोग-काव्य के कारण नारी को निष्ठुर प्रतिमा के रूप में चित्रित करना अनिवार्य है। 'आँसू' की नारी मे जिन निर्दय भावो को आरोपित किया गया, उसमे माशूको की 'बेवफाई' मात्र नही मिलती। नारी के चित्रण मे कवि ने इतनी सूक्ष्म दृष्टि से कार्य किया है कि परिवर्तन के होते हुए भी उसमे गाम्भीर्य जीवित रहता है। इस नारी-भावना के क्रमिक विकास ने प्रसाद-साहित्य को गति प्रदान की।

नारी-पुरुष की समस्या को कवि ने दार्शनिक रूप में भी देखने का प्रयत्न किया। प्रेम की अन्य प्रतिमाएँ चम्पा,सालवती, इरावती, मधूलिका, देवसेना अपने उत्थान-पतन में इसी कारण पाठक की संवेदना पा जाती हैं। नारी के जिस स्वरूप को प्रसाद ने साहित्य में स्थान दिया, उसका एक उन्मुक्त चित्र 'आँसू' में दिखाई देता है।

वैशिष्ट्य

'आँसू' मे प्रकृति-वर्णन स्वतन्त्र रूप मे नहीं किया गया। प्रकृति के विभिन्न अंग काव्य मे प्रतीक बनकर आये हैं और विविध व्यापारो से चित्र प्रस्तुत हो जाता है। आकाश हृदय बन जाता है, तो झझा वेदना। 'झरना' मे प्रकृति के द्वारा भावनाओ के प्रकाशन का जो द्वार प्रसाद ने खोला, उसी का अधिक प्राजल स्वरूप 'आँसू' में चित्रित हुआ। प्रकृति सम्पूर्ण भावनाओ का वाहक बनती है। आकाश मे घिर जानेवाली मेघमालाएँ स्मृति बनकर आती हैं। धरणी के श्यामल अचल पर बिखरी हुई अश्रुमाल वेदना का प्रतीक बनती है। मलयानिल के निश्वासो मे वियोग है। भाव-परिवर्तन के साथ प्रकृति के वर्णन में भी नवीन प्रयोग आरम्भ होते हैं। मिलन-वेला मे प्राणो को मादक बनानेवाले रूप को पाने के लिए, अब तो बौना सागर मचलता है। प्रतीक विधान के अन्तर्गत 'आँसू' का प्रकृति-वर्णन स्थान पा जाता है। प्रकृति मानव से भिन्न नही रह जाती। मानववादी कवि के लिए इस सम्बन्ध की स्थापना आवश्यक है। 'प्रसाद' ने इस सामजस्य के द्वारा मानवीय भावों को चेतना प्रदान की। तादात्म्य-भावना में प्रेमी कहता है :

चातक की चकित पुकारें
श्यामा ध्वनि सरल रसीली
मेरी करुणार्द्र कथा की
टुकड़ी आँसू से गीली।

इसी प्रकार प्रकृति अप्रस्तुत को प्रस्तुत करने मे भी सहयोग देती है। व्यजना के द्वारा भावों का प्रतिपादन हो जाता है। बिम्बों प्रतीकों के अतिरिक्त प्रकृति उपमान बनकर भी आती है। अपने इस रूप मे वह गुण, धर्म के निर्वाह में सफल हुई है। प्रकृति के व्यापक रंगमंच की योजना 'आँसू' के सीमित वातावरण में सम्भव न हो सकी, किन्तु वियोग शृगार के निरूपण में उसने योग दिया। आकृति और गुण दोनो प्रकार के साम्य लेकर प्रकृति का प्रयोग किया गया। प्रेमिका अथवा आलम्बन मे यदि शशि का सौन्दर्य था, तो साथ ही उसकी शीतल किरणें भी। सागर में उठनेवाली हिलोरें करुण कटाक्ष की भाँति लौट जाती हैं। सौरभ भी विरह के दिनों में सूख जाता है। इस प्रकार 'आँसू' का प्रकृति-वर्णन मानवीय भावनाओं के वाहक रूप में हुआ और इस दृष्टि से उसे सफलता प्राप्त हुई है। 'आँसू' की प्रकृति महादेवी

की भाँति प्रतीक और उपमा बनकर आती है। प्रसाद प्रकृति के कवि नही हैं, उन्होने उसका उपयोग मानवीय भावो के लिए किया।

भाव, भाषा, शैली की दृष्टि से 'आँसू' आधुनिक कविता की उस दिशा का प्रतिनिधित्व करता है जिसमे प्रेम की स्वच्छन्द प्रकृति को प्रमुखता दी गयी। जिस सीमित वातावरण मे 'आँसू' ने कला की उत्कृष्टता को प्रस्तुत किया, उसका पूर्ण विकास 'कामायनी' मे हुआ। प्रेम के स्वच्छ रूप मे 'आँसू' की भावनाएँ साहित्य के उदात्त रूप का परिचायक हैं। वह उस जागरूक चेतना का चित्र है, जिसमे कवि स्वाभाविक घात प्रतिघात के बीच भी अपना पथ खोज लेता है। एक सुन्दर गीतसृष्टि के रूप मे 'आँसू' एक सफल रचना है। गीतिकाव्य के उपादानो का समावेश उसमे हुआ। सरस सहज सघन भावना वैयक्तिक अनुभूति, समन्वित प्रभाव आदि के प्रतिपादन मे वह सफल है। अपने समय का समस्त साहस लेकर प्रसाद ने 'आँसू' की रचना की। हिन्दी मे छायावादी काव्य के प्रवर्तन मे 'आँसू' ने महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। अपनी विशिष्ट कला के कारण उसने एक प्रतिमान का कार्य किया। वह एक नई दिशा का सूचक था, साथ ही कवि के सुन्दर कृतित्व का परिचायक भी, जहाँ लाक्षणिक शैली द्रष्टव्य है।

सामान्य विरह काव्यो से इसकी भिन्नता इस बात मे है कि इसमे कवि की वैयक्तिक जीवन घटना का योग है। इसकी वियोगानुभूति व्यक्तिगत होने के कारण जहाँ एक ओर अत्यधिक गम्भीर और मार्मिक है, वही यह तीव्र इन्द्रियाकर्षण का परिणाम भी है। रचनाओ मे कवि की तटस्थता और कल्पना की पूरी स्वच्छन्दता का अवकाश न होने के कारण वैयक्तिक वेदना की एक अतिरिक्त मात्रा आ गयी है और यदि इस वेदना का एक अतिशय उदात्त दार्शनिक अनुभूति मे पर्यवसान न होता तो इस कृति मे कला की सार्वजनिकता पूरी तरह उभर न पाती। वैसी स्थिति मे रीतिकालीन शृंगारिक रचनाओ की ही भाँति इसमे वियोग की शारीरिक और मानसिक प्रतिक्रियाओ का ही चित्रण हो पाता और यह रचना किसी प्रकार की उदात्त भावना, मनोरम कल्पना अथवा उच्च जीवन-सन्देश से वचित ही रह जाती। किन्तु प्रसादजी का व्यक्तित्व उनकी वैयक्तिक अनुभूतियों से ऊपर उठने की क्षमता रखता है। इस कृति मे हम अनभूतियो के साथ प्रसाद के व्यक्तित्व का द्वद्व देख पाते है। इस द्वन्द्व मे प्रसाद के व्यक्तित्व की, उनकी अनुभूतियो पर विजय भी हुई है और यही विजय उनकी इस रचना को उत्कर्ष देती है।

'आँसू' काव्य मे दार्शनिक चिन्तन या अनुभूति का योग मूल वियोगानुभूति से एकतान हो गया है दोनो की पृथक् सत्ता नही रह गयी है। वियोग की विह्वलताकारी अनुभूतियो से सान्त्वना और समाधान की संयमित अनुभूतियों तक पहुँचने की आँसू की भावना-सरणि विशेष रूप से सुग्रथित है। यदि ऐसा न होता

और इन पूर्ववर्ती और परवर्ती अनुभूतियो मे कोई व्यवधान या खाई रह गयी होती, तो रचना का स्वारस्य जाता रहता। उसमे नीति, आध्यात्मिकता या जीवन-सन्देश की भावना-भूमि ऊपर से जोडी गयी मालूम देती, जो काव्य के लिए एक बड़ा व्याघात होती। प्रस्तुत रचना मे ऐसा कोई जोड नही आ पाया। यही नही, इसमें मर्मस्पर्शी वैयक्तिक अनुभूति के साथ उदात्त दार्शनिक निष्पत्ति इतनी गहराई मे जाकर जुड गयी है कि दोनो मे पूर्व अभिन्नता स्थापित हो सकी है। ऑसू की नायिका परकीया है और प्रसाद का जीवन-विकास एक नैतिकतावादी युग मे हुआ था। उनका पारिवारिक और सामाजिक वातावरण ही नही, हिन्दी साहित्य की सम्पूर्ण रचनात्मक दिशा उन दिनो आदर्शोन्मुखी थी। अतएव प्रसाद की उस जीवन घटना और उनके सामाजिक वातावरण और संस्कारो के बीच भी एक बडा द्वन्द्व उपस्थित हुआ था। ऑसू मे इस द्वन्द्व की स्पष्ट छायाएँ दिखाई देती है और यह प्रसादजी तथा हिन्दी काव्य की एक नयी विजय थी कि इस द्वन्द्व का भी समाहार किया जा सका। ऑसू मे प्रतीकात्मक सौन्दर्य वर्णन आदि इसी द्वन्द्व के संकेत है।

भारतीय साहित्य मे प्रेम तथा विरह काव्य की परम्परा अनेक रूपो मे मिलती है। कालिदास का 'मेघदूत' विरही यक्ष की भावनाओ का प्रकाशन है। कथासूत्र को समझाने के लिए आरम्भ और अन्त मे कवि केवल कतिपय संकेत कर देता है। सम्पूर्ण चित्रांकन यक्ष के द्वारा कराया गया है, वह अपनी भावनाओ का प्रकाशन करता है, अपना संदेश कह देता है। मेघ को प्रियतमा तक जाने का मार्ग उसी ने बताया। पथ मे मिलनेवाले नगरो तथा निवासियो का चित्रण भी उसने किया। कालिदास की विशद कल्पना, सूक्ष्म चित्रण 'मेघदूत' मे प्रबन्धत्व तथा गीतितत्त्व दोनो की ही प्रतिष्ठा कर सके। एक विरही की सम्पूर्ण व्यथा उसमे मिलती है। मेघ से उसका तादात्म्य हो जाता है। यक्ष अन्त में निवेदन करता है : 'मेरे मेघ ! जो कार्य मैंने तुम्हे बताया, उसे कराना अत्यन्त अनुचित है। किन्तु मित्र समझ अथवा मुझ विरही पर करुणा कर, तुम प्रथम मेरा प्रिय सन्देश कह देना। तदनन्तर अपना पावस रूप लेकर इच्छानुसार घूमते रहना। मेरी यही कामना है कि प्रेमिका कादम्बिनी से एक क्षण के लिए भी तुम्हारा वियोग न हो, जो मुझे प्राप्त हुआ।'

सूर की गोपिकाओ की विरह-वेदना ने हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया। गीतिकाव्य मे उसका स्वर युगो तक तिरता रहा। जायसी 'प्रेम की पीर' से पद्मावत को रसमय कर गये। 'ऑसू' के वियोग शृंगार में जीवनदर्शन की प्रतिष्ठा उसकी मौलिक वस्तु है। वेदना का दर्शन-रूप में प्रकाशन काव्य में प्रस्तुत हुआ। बौद्धों ने करुणा दर्शन की उद्भावना अवश्य की, किन्तु रचनात्मक साहित्य में उसकी अधिक प्रतिष्ठा न कर सके। 'ऑसू' के विरह में भी जीवन के प्रति जो आशावाद निहित है, वही उसकी निधि है। वियोग प्रतिपादन के लिए प्रायः साहित्य में किसी-न-किसी

कथा का अवलम्ब अवश्य ग्रहण किया गया। व्यथा की ताप-वृद्धि, उद्दीपन के लिए अनेक व्यवधान भी प्रस्तुत किये गये। 'आँसू' लौकिक रूप में प्रस्तुत हुआ और छाया-संकेतों के द्वारा कवि मार्मिक अनुभूति का प्रकाशन करता है। सीमित पृष्ठभूमि पर अपनी जाग्रत चेतना से उसने चित्र प्रस्तुत किया। वह यदि अश्रु का दान देता है, तो साथ ही आँसुओं से ऊपर उठने का सन्देश भी। जीवन की मार्मिक और शाश्वत समस्या पर आधारित 'आँसू' हिन्दी की विशिष्ट रचना है।

संदर्भ

1. विनयमोहन शर्मा : कवि प्रसाद, पृ. 70
2. नन्ददुलारे वाजपेयी : जयशंकर प्रसाद, पृ. 67
3. लुडविग : गेटे, पृ. 81
4. राबर्टसन : द लाइफ एण्ड वर्क आफ गेटे, पृ. 57
5. लिविंग बॉयग्राफीज़ आफ फेमस मेन (सं.) पृ. 110
6. निकल्सन : द मिस्टिक्स आफ इस्लाम, पृ. 109
7. आर्बरी : सूफीज़्म, पृ. 61
8. सी. एम. बॉवरा : हेरिटेज आफ सिम्बालिज़्म, पृ. 6
9. काव्य और कला, पृ. 21
10. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिन्दी का सामयिक साहित्य, पृ. 183
11. भटनागर (सं.) : ईरान के सूफी कवि, पृ. 116
12. आर. आई. पाल : टैगोर, पृ. 13

गीत-सृष्टि : 'झरना' से 'लहर' तक

'झरना' और 'लहर' प्रसाद की गीत सृष्टि है। 'झरना' का प्रकाशन 1928 ई में हुआ था, और 'लहर' का 1935 मे। 'झरना' मे लगभग 1914 से 1917 तक की कविताएँ है। कवि के इन दोनो गीत-संग्रहो मे गीतिकाव्य परम्परा का विकास है, जिसे उसने अपने व्यक्तित्व से नवीन स्वरूप प्रदान किया। गीतिकाव्य की भारतीय परम्परा काव्य के अन्य रूपों की भाँति धार्मिक ग्रन्थों मे उत्पन्न हुई है। वेद की ऋचाएँ समवेत स्वर मे उच्चरित की जाती थी। 'सामवेद' में आकर संगीत तत्व की प्रधानता हो गयी, वेदो का सामूहिक रीति से पाठ सस्वर किया जाता था। कीथ स्वीकारते है कि संस्कृत में ईसवी शताब्दी के पूर्व गीतिकाव्य का प्रचलन था।[1] उस समय केवल धार्मिक ग्रन्थों मे ही नही, किन्तु साहित्य मे भी उसका प्रयोग होता था। कालिदास ने उदात्त कल्पना और मनोरम चित्रणो के द्वारा काव्य को सरसता प्रदान की।

गीता के दो रूप दिखाई देते है—सांगीतिक और लोकभाषा सम्बन्धी। उस समय नाटक भी काव्य के ही अन्तर्गत रखे जाते थे इस कारण गीतिकाव्य का पृथक् विधान न था। प्रबन्ध काव्यों म भी गीत बिखरे मिलते है। काव्य का भारतीय वर्गीकरण करने पर गीतिकाव्य मुक्तक काव्य के अन्तर्गत आता है। अग्निपुराण के अनुसार मुक्तक की स्वतन्त्र रचना म रसोद्रेक के लिए अनुबन्ध की आवश्यकता नही होती। धीरे धीरे मुक्तक अथवा गीत रचना के स्वरूप म परिवर्तन होता गया। संस्कृत की गीतिकाव्य परम्परा मे संगीत को विशेष स्थान प्राप्त है। कालिदास के काव्य और नाटको के अतिरिक्त मृच्छकटिक, रत्नावली आदि मे भी प्राकृत के गीत है, जिनमे कल्पना का स्वच्छन्द रूप दिखाई देता है। इस प्रकार धर्म के स्थान पर सामूहिक उत्सवो और साहित्य मे गीतिकाव्य का प्रवेश हुआ। संस्कृत मे वह मुक्तक काव्य के ही अन्तर्गत आ जाता है।

गीतिकाव्य

हिन्दी साहित्य की गीतिकाव्य परम्परा का आरम्भिक स्वरूप वीरगाथा काल मे दिखाई

पडता है। इसके पूर्व वैदिक युग से लेकर विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी तक स्वतन्त्र रूप मे गीतिकाव्य की रचना अधिक नही हुई। वीरगीतो मे प्रेम और युद्ध के प्रसग प्रमुख थे। शृगार और वीर रस का समन्वित स्वरूप इन कविताओ मे मिलता है। ग्राम गीतो के रूप मे जनता मे इनका प्रचार था और 'रासो' नाम से ग्रन्थो मे इनका साहित्यिक स्वरूप आ रहा था। 'आल्हा ऊदल' के गीत विशेष उत्सवो पर जनता गाती है। सस्कृत का मुक्तक काव्य गीतो के निकट अवश्य था किन्तु उसमे गीति तत्त्व अस्पष्ट ही रह गया है। बारहवीं शताब्दी मे जयदेव ने भारतीय गीतिकाव्य मे एक नवीन उद्भावना की। 'गीतगोविन्द' के गीतो मे एक बार सौन्दर्य और प्रेम की अभिवृद्धि हुई। राधा कृष्ण के प्रेम मे तन्मय होकर कवि ने जिन गीतो को जन्म दिया, उनमे कवि का अन्तर भी सम्मिलित है। एडविन आर्नाल्ड ने अनुवाद की भूमिका मे स्वीकार किया है कि 'गीतगोविन्द' का सगीत और काव्य हृदय को स्पर्श करता है। सगीत की उत्कृष्ट राग रागिनियो का उसमे समावेश है

> ललितलवगलता परिशीलन कोमल मलयसमीरे
> मधुकरनिकर करम्बित कोकिल कूजित कुजकुटीरे
> विहरति हरिरिह सरसवसन्त
> नृत्यति युवतिजनेन सम सखि विरहिजनस्य दुरन्त

हिन्दी गीतिकाव्य को जयदेव के गीतगोविन्द ने प्रभावित किया। वीरगीतो मे गीतिकाव्य का एक विशेष रूप दिखाई देने लगा था। आगे चलकर मैथिलकोकिल विद्यापति ने जयदेव की परम्परा का विकास किया और हिन्दी गीतिकाव्य की स्वतन्त्र सत्ता उन्ही से आरम्भ होती है। जयदेव की भाँति उन्होने भी राधा-कृष्ण को अपना विषय बनाया। अपनी सम्पूर्ण तन्मयता मे स्वच्छन्द होकर गान गानेवाले इस कवि ने ग्राम गीतो से अनुभूति लेकर उसे एक साहित्यिक रूप प्रदान किया। उनका रागात्मक आवेग पाठक को अपने साथ दूर तक खीच ले जाता है। माधुर्य और शृगार का नैसर्गिक स्वरूप इन गीतो का प्राण है। उनमे एक प्रकार का इन्द्रियाकर्षण है, जो बगाल के चण्डीदास तक पर अपना प्रभाव डाले हुए है। 'देसिल बयना अवहट्ट' मे विद्यापति ने शृगारिक पदो की रचना की और राधा-कृष्ण को आलम्बन बनाकर हिन्दी गीतिकाव्य परम्परा का एक नवीन द्वार खोल दिया।

कृष्ण चरित के गान मे गीतकाव्य की जो धारा पूर्व मे जयदेव और विद्यापति ने बहायी उसका अवलम्बन ब्रज के भक्त कवियो ने किया।[2] उत्तर भारत के वैष्णव कवियो मे शृगार सौन्दर्य की भावना कुछ मर्यादित अवश्य हो गयी थी, किन्तु आलम्बन राधा-कृष्ण ही थे। निर्गुण उपासको के गीतो मे नीति और अध्यात्म की प्रधानता होने के कारण भावो की तन्मयता उतनी न आ सकी। कल्पना और भाव-प्रदर्शन की शक्ति होते हुए भी सन्तो की रचनाओ मे गीतिकाव्य अपने पूर्ण वैभव को न

प्राप्त कर सका। मीरा की प्रेम-साधना में एक बार पुनः गीत तरगित हो उठे। प्रेमयोगिनी के रूप में उन्होंने गिरधर गोपाल को वरण किया था। उनके गीतो मे अन्तरात्मा की करुण पुकार है, वेदनानुभूति है। वेदना की तीव्र अनुभूति के कारण गीतो मे एक तन्मयता और वैयक्तिकता की छाप है जो उनका मुख्य आकर्षण है। गीत हृदय से निकलकर स्वच्छन्दता से प्रवाहित होते हैं और सासारिक सम्बन्धो के प्रति विद्रोह की भावना भी यहाँ बलवती होकर आयी है। नीति, मर्यादा को वे पार कर जाती है। नारी की सुकुमारता के साथ निष्ठा इन गीतो मे साकार हो उठी है। वैष्णव कवियो ने राधा कृष्ण के प्रेम मे गीतिकाव्य को नये आयाम दिए। इन भक्त कवियो मे ज्ञान के स्थान पर प्रेम का अधिक आग्रह है। यहाँ कृष्ण-भक्ति अनेक रूपो मे बिखरी हुई मिलती है। कभी भक्त अपने आराध्य का स्मरण दास बनकर करता है, तो कभी वह माधुर्य भाव मे डूबता है। सूर मे कृष्णकाव्य को चरम विकास मिला और वे उसक सर्वश्रेष्ठ कवि है। कृष्ण को अपना सखा मानकर उन्होंने अपने अन्तःकरण का प्रकाशन किया। गोपिकाओ के विरह निवेदन मे कवि ने वेदनानुभूति की परिणति प्रस्तुत की। 'भ्रमरगीत' मे सगुण भक्ति अपना अखण्ड आधार पा गयी है। अनुभूति की इस सच्चाई और तीव्रता से हिन्दी गीतिकाव्य को महान शक्ति प्राप्त हुई। रामकाव्य मे नैतिक बन्धनो के कारण गीतिकाव्य मे वह मार्मिकता न आ सकी। सूर की तन्मयता और माधुर्य तुलसी की कवितावली और विनयपत्रिका मे करुणा और विनय भावना का स्वरूप ग्रहण करते है। तुलसी भक्ति भावना मे बहत है, किन्तु उन्हे मर्यादा का ध्यान रहता है। राम का लोकरजनकारी स्वरूप सम्मुख रहता है। आत्मनिवेदन के पदो मे भी तुलसी का लोकपक्ष सचत है। भावुकता पर दास्य भावना का नियन्त्रण रहता है, पर विनयपत्रिका अथवा कवितावली श्रेष्ठ गीत रचनाएँ है।

रीतिकाल मे काव्य का स्वरूप ही परिवर्तित हो गया। गीतिकाव्य को ग्रामगीता से भी प्रेरणा मिलती रही है। इस समय कविता का सम्बन्ध उससे छूट गया। यह कवित्त, सवैया और दोहो मे बाँध दी गयी। गीतिकाव्य का विकास मन्थर पड गया। गीतिकाव्य को भारतेन्दु ने अपनी मौलिक प्रतिभा से ऊपर उठाया। राधा-कृष्ण की भक्ति तथा अपनी प्रेम-भावना मे उन्होने जो पद और गीत गाये उनमे भक्तिकालीन गीतिकाव्य की प्रवृत्तियो का यथेष्ट समावेश हुआ। एक बार हिन्दी मे पुनः गीतो की सरस काव्यधारा दिखाई दी। रीतिकाल के शरीरी शृगार के परिष्कार का प्रयास भारतेन्दु ने किया। गीतिकाव्य का पुनरुत्थान तो स्वय भारतेन्दु ने ही कर दिया था, किन्तु नवीन सामाजिक परिस्थितियो के साथ उसमे परिवर्तन होने लगे। इसके पश्चात् साहित्य ने एक नवीन मार्ग अपनाया और गीतिकाव्य का स्वरूप भी बदलने लगा।

उन्नीसवी शताब्दी मे अनेक सस्कृतियों और सभ्यताओं का सगम हो रहा था।

उस समय नवीन विचारधाराएँ काम करने लगी थी। बदलती हुई परिस्थितियो के अनुकूल साहित्य का निर्माण आवश्यक हो गया था। अग्रेजी की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ भी अपना प्रभाव डाल रही थी, जहाँ गीतिकाव्य स्वतन्त्र रूप से विकसित हो चुका था। फलस्वरूप उसका प्रभाव भी हिन्दी पर पडा। आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य की भूमिका क रूप मे पाश्चात्य धारा के प्रभाव का विद्वानो ने स्वीकारा है।[3] पश्चिम के अनुसार गीतिकाव्य 'सब्जेक्टिव पोयट्री' के अन्तर्गत आता है और उसके कई रूप होने है : हिम्स, एलिजी, ओड, सानेट आदि। लायर अथवा वीणा के साथ गाये जानेवाले गीतो का नाम 'लिरिक' पड गया। आरम्भ मे गीतिकाव्य मे सगीत तत्त्व प्रधान था। होमर स्वय अपने गीतो को गा गाकर सुनाया करता था। गीतिकाव्य के दो स्वरूप प्राप्त होते है। ग्रामगीतो के रूप म सगीतमय भावात्मक अभिव्यजना होती है। अपने साहित्यिक रूप मे गीतिकाव्य अधिक समय तक होमर से प्रभावित रहा। पर्याप्त समय तक गीतिकाव्य के साहित्यिक स्वरूप मे ग्रामगीतो का प्रभाव बना रहा। धीरे-धीरे सामाजिक विकास के साथ उसमे सगीत तत्त्व का स्थान भावो और विचारो को प्राप्त हुआ। गीतो मे व्यक्तित्व, कल्पना, भावना आदि का प्रवेश होने लगा। उसे एक आन्तरिक अभिव्यक्ति के रूप मे स्वीकार किया गया। एलिजाबेथ युग मे गीतिकाव्य की अधिक रचना हुई और अनेक गीतो का निर्माण कवियो ने किया। इन गीतो मे धार्मिक, पौराणिक, प्रणय सभी प्रकार की भावनाएँ मिलती है। शेक्सपियर के गीतो मे प्रेम की चर्चा अधिक थी। सच्चा प्रेम, अन्धा प्रेम, वासनाविहीन प्रेम, जीवन से प्रेम, प्रेम और समय, प्रेम का शोकगीत, प्रेम का पक्षपात आदि अनेक गीतो का निर्माण उसने किया। उसके नाटको मे भी यत्र-तत्र सुन्दर गीत है। 'प्रेम का शोक गीत' मे वह कहता है : 'मेरे काले कफन पर एक भी मधुर पुष्प न हो, कोई भी मित्र बधाई न दे। मेरा अकिंचन शव, अस्थियो के साथ जहाँ भी डाला जाय, वहाँ केवल सहस्रो उच्छ्वास मेरी रक्षा करे। मै ऐसी जगह रहूँ कि शोकमग्न सच्चा प्रेमी मेरा मजार तक न पा सके। इतना ही नही, वह रो भी न सके।'

क्लासिकल कवियो मे नैतिकता और बुद्धिवादी प्रवृत्तियाँ अधिक जाग्रत हुई। पर अठारहवी शताब्दी मे भावात्मक काव्य को प्रधानता मिली। काव्य के वाह्य स्वरूप मे पर्याप्त सुधार हो चुका था और कवियो का ध्यान भावना-परिष्कार की ओर गया। इनमे अब भी पूर्ववर्ती युग की बौद्धिकता थी, किन्तु उन्होने सघर्ष की आन्तरिक रूपरेखा पर भी विचार किया। प्रकृति, मानव, समाज का एक समन्वित रूप प्रस्तुत करने मे इन कवियो की रागात्मक अभिव्यक्ति बहुत सरस न हो सकी। यह काल क्लासिकल-रोमान्टिक का सन्धियुग कहा जा सकता है। एक ओर कवि यदि प्राचीन विषयो से प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे, तो दूसरी ओर वे स्वच्छन्दता की ओर जा रहे थे। काव्य मे अनुभूति और कल्पना का प्राधान्य आरम्भ हो गया था। अठारहवी

शताब्दी के अन्तिम भाग मे स्वच्छन्दता की लहर उठ चुकी थी। रोमान्टिक युग मे वर्ड्स्वर्थ के, प्रकृति से अनुप्राणित गीतो मे कलात्मक सौन्दर्य का प्रकाशन हुआ। प्रकृति के अन्तराल मे प्रवेश कर उससे चेतना ग्रहण करनेवाले इस प्रकृतिप्रेमी मे अनुभूति की सच्चाई थी। 'लिरिकल बैलेड्स' की प्रसिद्ध भूमिका मे उसने कहा : 'समस्त सुन्दर कविता उदात्त भावनाओ का गतिशील प्रवाह है। अनजान मे इन सगृहीत भावनाओ से वह प्रेरणा ग्रहण करती है।'

परम्परा और रूढि के विरुद्ध कीट्स, शेली, बायरन ने विद्रोह किया। इन सौन्दर्यवादी कवियो मे एक विद्रोही भावना थी। उन्हे ससार मे चारो ओर करुणा-सौन्दर्य दिखाई पड़े। उन्होने कोई भी बन्धन स्वीकार नही किया। शेली के लिए 'प्रफुल्लित जीवन के सर्वोत्तम आनन्दपूर्ण क्षणो का सग्रह' ही काव्य बन गया। कीट्स ने पशु पक्षी मे अपना गान सीखा। बायरन केवल एक आलिगन की ही कामना से प्रसन्न था। इन स्वच्छदतावादी कवियो ने अनुभूति की तीव्रता मे सौन्दर्य को एक नया स्वरूप प्रदान किया। उनका व्यक्तित्व उनके काव्य मे व्यक्त हुआ और आन्तरिक अभिव्यक्ति को सरस रूप मिला। गीत को कवियो ने आत्माभिव्यक्ति का एक साधन बनाया और अपनी निजी अनुभूतियो को प्रक्षेपित किया।

इस प्रकार इन गीतो मे भी किसी न किसी रूप मे भावो का आवेग है। कवि अन्तर्मुखी ढग से अपनी आन्तरिक अनुभूति का प्रकाशन करने लगे। सक्षिप्त रूप मे वे किसी एक भावना का प्रतिपादन करते है और स्वच्छन्द प्रवाह मे उनमे भावावेग अधिक होता है। प्राय इनमे सुकोमल, मधुर सात्विक भावनाओ की अभिव्यजना होती है। कही कही एक अस्पष्टता सी भी दिखाई देने लगती है। कला की दृष्टि मे गीतो ने एक नवीन धारा को जन्म दिया था। व्यक्तिवाद के साथ ही नवीन चेतना से भी प्रभावित है। पश्चिम मे गीतिकाव्य की परम्परा के अन्तर्गत अनेक भावनाओ को लेकर गीतो की रचना हुई। धर्म राष्ट्र, गौरव, प्रणय, शोक, उत्सव आदि अनेक आधार पर गीतो का सृजन हुआ। 'उनमे एक साथ दर्शन रहस्यमयता और तन्मयता का सामजस्य मिल जाता है।'[4]

छायावादी गीतसृष्टि

पाश्चात्य गीतिकाव्य ने आधुनिक हिन्दी कविता को भी प्रभावित किया। द्विवेदीयुग मे गीतिकाव्य का पूर्ण विकास आदर्शवादिता के कारण न हो सका। छायावाद की स्वच्छन्दता के साथ साथ गीतो को प्रधानता मिली। उसी समय बगाल मे रवीन्द्र का व्यापक प्रभाव था। उन्होने पूर्व-पश्चिम का समन्वय प्रस्तुत किया। मातृभाषा मे रचना करने के कारण सर्वप्रथम उनके गीतो मे लोकगीतो की सरसता थी। वैष्णव कवियो मे उन्होने माधुर्य भाव पाया, भारतीय सस्कृति और दर्शन ने उन्हे आधार दिया। पश्चिम की रूप सम्पत्ति मे उन्हे सौन्दर्यग्रहण, आत्माभिव्यक्ति की शक्ति मिली।

समीक्षकों की टिप्पणी है कि एक ओर यदि वे कबीर, सूर की परम्परा में हैं तो दूसरी ओर कालिदास की।[5]

कहा जाता है कि छायावाद ने इतिवृत्तात्मकता के प्रति विद्रोह किया। द्विवेदीयुग की नैतिकता में वह अपनी व्यक्तिगत अनुभूति का प्रकाशन स्वतन्त्रता से न कर सकता था। रवीन्द्र के रूप मे उसे एक समन्वय शक्ति दिखाई दे रही थी। छायावादी काव्य ने शृंगारिकता के परिष्कार का प्रयत्न किया। प्रेम, सौन्दर्य, यौवन, नारी आदि को सूक्ष्मतम रूप देने के प्रयत्न मे छायावाद किसी अतीन्द्रिय लोक मे भी गया। वैष्णव कवियों की तन्मय और रागात्मक अनुभूति राधा और कृष्ण की आड़ में खुलकर खेलती थी। छायावाद के सम्मुख आन्तरिक प्रकाशन की समस्या थी और कवियो ने बिम्बो प्रतीकों द्वारा अपने लक्ष्य की पूर्ति की। नारी को उसने अशरीरी सौन्दर्य प्रदान किया, वह केवल सुन्दरी न रहकर, साकार सौन्दर्य हो गयी। कवियों ने अपने भावो को व्यापक बनाने के लिए प्रकृति का मानवीकरण किया तथा जडता मे चेतनता का आरोप किया गया। छायावाद ने गीतिशैली के द्वारा स्वच्छन्दता के मार्ग पर चलना आरम्भ किया। 'छायावाद की कविता सच्ची भाव सृष्टि का परिणाम है, जिसमें शब्द और अर्थ का, उपमान और प्रतीक के समान, मधुर लय से योग रहता है।'[6] गीतों मे सौन्दर्याकर्षण, प्रणय निवेदन, अतृप्ति, वेदनानुभूति, जीवन की मार्मिक व्यजना मिलती है। छायावाद की कविताओ, विशेषतया गीतो मे ऐसा समन्वित स्वरूप सम्मुख आया कि शृंगार, प्रेम, वियोग के अतिरिक्त अन्य भावनाओं की अभिव्यक्ति भी उनके द्वारा हुई। हिन्दी गीतिकाव्य का यह बहुमुखी प्रसार एक नवीन वस्तु है। अपने साहित्यिक रूप मे छायावाद के गीतो में ग्रामगीतो की सी भावप्रवणता नहीं है। किन्तु वे साहित्य का सर्वोत्तम प्रकाशन है। यह कहना उचित नही कि छायावाद का गीतिकाव्य पश्चिम की देन है। स्वयं रवीन्द्र के गीतो मे वैष्णव कवि, भारतीय दर्शन, सगीत और पश्चिम का सौन्दर्यवाद समन्वित रूप मे मिलते है। छायावाद ने सूर मीरा से माधुरी ली तो कबीर, जायसी आदि से रहस्यवाद। उसकी विशेषता यह कि उसने गीतिकाव्य को सीमित परिधि से निकालकर उन्मुक्त वातावरण में प्रस्तुत किया, जिससे गीत विविध भावनाओ के प्रकाशन का साधन बन सके। ऐसी ही स्थिति में प्रसाद की गीत-सृष्टि हुई।

झरना

'झरना' का कवि यौवन के द्वार पर खड़ा है। जीवन के अनेक झझावात उसके सामने हैं। कवि एक ऐसी आधारभूमि पर है जहाँ उसे वाह्य वस्तु से काव्य-विषय चुनने की अधिक आवश्यकता नही पड़ती। यौवन का आवेग उसके साथ है। प्रथम परिचय मे ही उसने अपना आन्तरिक भाव किसी को समर्पित कर दिया, और आज उसी का खेल अपने सामने देख रहा है। झरना स्वच्छन्द गति से झर-झर बहता

है। कोई इसे उच्छृंखलता कह सकता है, और किसी के लिए वह यौवन का आवेग है। झरना में सरिता की-सी सीधी-सादी गति नहीं होती, वह बेसुध होकर बहता है। 'झरना' के गीतों में भी भावनाएँ अनेक रूपों में बिखरी हुई हैं। उत्थान-पतन, आशा-निराशा, सुख-दुख सभी उसमें तिरोहित हो रहे हैं। आरम्भ में ही कवि झरना के अन्तस्तल को झाँक लेने के लिए विकल है। उसमें कुछ गहरी बात छिपी हुई है। उसे देखकर वह कल्पनातीत काल की घटना का स्मरण करता है। प्रणय ने उसके तन-मन को प्लावित कर दिया था। प्रेम की पवित्र परछाईं में झरना बहता जाता है। कवि का मन प्रकृति की इस सरस कृति से एकाकार हो उठा है। कवि का झरना हृदय के अन्तस्तल की गिरि-गुहाओं को विदीर्ण करता हुआ प्रेमरस में विह्वल होकर बह रहा है। रवीन्द्रनाथ का मन-रूपी निर्झर भी अपने अन्तर की अन्धगुहा के कारागार में आवद्ध रहने के पश्चात् प्रबल वेग से उमड़ता हुआ मुक्त आलोक में प्रवाहित होता है : 'रे हृदय, आज बन्धनों को छिन्न-भिन्न करके अपनी अभिलाषा पूरी कर ले। लहर-पर-लहर उठाकर, आघात-पर-आघात करता चला जा। जब प्राण मतवाले हो उठे हैं तो कहाँ का अन्धकार और कैसा पाषाण।' दोनों कवियों का अन्तराल ही निर्झर बन गया है। प्रसाद का मानस विश्व के नीरव निर्जन में चमत्कृत हो उठता है। विश्वपति के आँगन में जब कभी कवि प्रार्थना की इच्छा से विचारों का संकलन करता है, कामना के नूपुर झंकृत हो उठते हैं। जीवन की यही उद्दाम लालसा समस्त गीतों में बिखरी हुई है। वह स्वीकार करता है :

सद्यः स्नात हुआ मैं प्रेम सुतीर्थ में
मन पवित्र उत्साहपूर्ण-सा हो गया,
विश्व, विमल आनन्द भवन-सा हो गया
मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था। —झरना, पृ. 6

यही प्रेम कवि के गीतों का सर्वस्व हो जाता है। उसकी भावनाएँ इसी के चारों ओर परिक्रमा करती हैं। प्रेमी के जीवन का प्रथम प्रभात हो चुका है। अब वह अपने प्रियतम के बीच की प्राणों की दूरी को समाप्त करना चाहता है। वह अनुनय-विनय से अपने प्रियतम से द्वार खोलने का आग्रह करता है। प्रेमी के इस आत्मसमर्पण में निस्वार्थ प्रेम निहित है। वह अपने प्रियतम का चित्र बनाना आरम्भ करता है। इस सौन्दर्य-प्रतिमा को प्रणयी अपने निकट ला चुका है। प्रकृति का प्रत्येक कण उसे इसी प्रेम की खोज में पागल प्रतीत होता है। प्रेमी सोचता है : कभी तो अनायास ही फूल खिल उठेंगे, नयी कोंपलों से कोकिल किलकारेगा। उस दिन जब वसन्त अपनी अन्तिम झाँकी दिखला रहा था, कवि ने जिज्ञासा भरकर वसन्त से क्षण-क्षण परिवर्तन का कारण पूछा था। इस प्रश्न का उत्तर उसे नहीं मिलता। हृदय में करुणा और विषाद भर गया है। गोधूलि के मलिनांचल में कोई वनवासी वन में बैठा है : धनुष भंग

है, उसकी प्रत्यंचा शिथिल, वंशी नीरव, वीणा निस्पन्द। इस प्रतीक के द्वारा कवि ने निराश स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया है। अन्तरतम में स्मृतियाँ छाई हुई हैं। ठोकर खाकर निर्झर बिलख रहा है। अन्त मे आन्तरिक पीड़ा अनुनय करती है :

किसी हृदय का यह विषाद है,
छेड़ो मत यह सुख का कण है।
उत्तेजित कर मत दौड़ाओ,
करुणा का विश्रान्त चरण है। —झरना, पृ. 17

प्रेमी के जीवन में केवल स्मृतियाँ शेष रह गयी हैं। मिलन का क्षणिक स्वरूप चिरन्तन विदा में बदल चुका है। अतीत की स्मृतियाँ नीरव प्रहरों में सुखद लगती है। मनुष्य बारम्बार उन पलों को लौटा लाने के लिए मचलता है, जो किसी मूल्य पर भी नहीं मिल सकते। साक्षात् प्रियतम अब आँखो से ओझल हो चुका है, अज्ञात बन गया है। कवि के हृदय में कभी-कभी आशा की रेखाएँ दिखाई देने लगती है। हाफिज वियोग-क्षण को महत्त्व देते हैं : 'दुख में एक क्षण भी व्यतीत करना संसार के सम्पूर्ण सुखों से कहीं बढ़कर है। हमारी गुदड़ी को मदिरा से बदल ले। गुदड़ी का मूल्य उससे बढ़कर नहीं है।' प्रेमी का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। भावावेश की मात्रा भी तीव्र है। कभी वह अतीत की स्मृतियों से उलझता है, कभी जिज्ञासा से प्रश्न करता है, कभी अनुनय-विनय से करुण हो उठता है। प्रियतम के चंचल हृदय ने तो केवल खेल खेला और प्रणयी के लिए वह जीवन-मरण की समस्या बन गयी। प्रेमी के हृदय में एक विचित्र प्रकार का असन्तोष भर गया। कभी-कभी प्रसाद रीतिमुक्त कवियों की भाँति 'अनुनय' करते हैं : किसी बहाने से तो याद कीजिए।

धीरे-धीरे कवि की भावनाएँ विकास की ओर बढ़ती हैं। 'स्वप्नलोक' में प्रियतम का दर्शन होता है। वह उसकी आँखों से दूर है, किन्तु प्राणो के अत्यन्त समीप। निर्मल जल पर जब सुधाभरी चन्द्रिका बिछल जाती है, नीरव व्योम में वंशी की स्वर-लहरी गूँज उठती है, मोहन-मुख का दर्शन होने लगता है। धीरे-धीरे प्रणय निवेदन व्यापक होने लगता है। प्रकृति के कण-कण और समस्त विश्व में प्रियतम दिखाई देता है। किसी आध्यात्मिक आवरण से कवि प्रेम-शृंखला का अन्त नहीं करना चाहता। वह इस प्रेम को विश्वव्यापी बनाता है और उसका उदात्तीकरण करता है। कवि सर्वत्र प्रियतम की छाया देखता है। एकान्त में वह निर्जन प्रकृति के शान्त रूप में उसे देखता है। झील में उसी की परछाईं है। नभ, शशि, तारा सभी झील में प्रतिबिम्बित हैं; प्रिय का प्रियतम उसके हृदय में ही आ गया है। कवि जीवन के उत्थान-पतन में तात्विक निष्कर्ष पर पहुँच गया है कि सर्वत्र प्रियतम का आभास है। 'गीतांजलि' की छाया प्रसाद की इन पंक्तियों पर दिखाई देती है :

प्रार्थना और तपस्या क्यो ?
पुजारी किसकी है यह भक्ति
डरा है तू निज पापो से
इसी से करता निज अपमान —झरना, पृ. 64

'पुजारी यह मन्त्रोच्चारण, भजन और माला का जाप छोड दे। मन्दिर के कोने मे किवाड बन्द कर तू किसकी पूजा कर रहा है ? अपनी ऑख खोलकर देख, तेरा ईश्वर तेरे सामने नही है।' रवीन्द्र की पक्तियो मे धार्मिक आडम्बर के प्रति विद्रोह की भावना है किन्तु प्रसाद स्वय को समझा रहे हैं। अब कवि कृत्रिमता को अपने पास नही आने देना चाहता। उसे एक सत्य मिल गया है, जिसे वह किसी भी मूल्य पर न छोडेगा। उसे विश्वास है कि उसका हृदय शुद्ध सुवर्ण हृदय है। प्रियतम तो एक अतिथि था, आकर चला गया। कवि जीवन-दर्शन को अपना चुका है, फिर भी कभी-कभी उस अतीत की याद हो आती है। 'वसन्त' मे वह कहता है :

मलयानिल पर बैठे आओ धीरे-धीरे नाथ
हँसते आओ सुमन सभी खिल जाये जिसके साथ।
मत झुकना हम स्वय खडे है माला लेकर राज
कोकिल प्राण पचमी स्वर लहरी मे गाता आज। —झरना, पृ 82

गीतो का स्वरूप

इस प्रकार 'झरना' के गीतो मे युवक कवि के भावुक जीवन के कथातन्तु निहित है। उसकी प्रेरणा व्यक्तिगत अनुभूति है, जो उसे जीवन मे प्राप्त हुई। अभी कवि मे इतना साहस नही है कि वह हृदय खोलकर रख सके। इसीलिए भावना पर अनेक प्रकार के आवरण चढाता है। अभी तक वह दर्शन के कारण गीतिकाव्य को उसके उत्कृष्ट स्वरूप मे न प्रस्तुत कर सका। 'झरना' मे भी भावना और अभिव्यक्ति के बीच कवि का स्वभावगत सकोच एक व्यवधान बनता है। जहाँ कही वह अत्यन्त स्पष्टवादी हो जाता है, गीतो का स्तर साधारण होने लगता है, भावो मे गाम्भीर्य नही रहता। किसी पर मरना यही तो दुख है : आदि गीतो मे अभिव्यक्ति की सरलता होते हुए भी भावानुभूति की वह गहराई नही, जो होनी चाहिए। 'झरना' के गीतो की प्रेरणा कवि के व्यक्तिगत जीवन से अधिक सम्बन्ध रखती है। उस पर किसी प्रकार के रहस्यवाद का आरोपण करने का प्रयास उसके साथ अन्याय होगा। हाँ, छाया चित्रो और अशरीरी रूप के कारण कही कही रहस्याभास अवश्य हो सकता है। शैली भी 'अज्ञात का स्वप्न' (ए ड्रीम आफ अननोन) देखता है, किन्तु उसे रहस्यवाद कहना भूल होगी। शैली कहता है : 'मै उस स्थान की ओर तेजी से भागा, जहाँ से मै आया था, ताकि सुन्दर प्रहरो को उपहार मे दे सकूँ, किन्तु

किसे ?' कवि को स्वयं ज्ञात नहीं।

प्रसाद के इन प्रणय गीतों मे मिश्रित भावनाएँ बिखरी हुई मिलती हैं। प्रकृति के रूपों को कवि उनकी वास्तविकता में नहीं देख पाता। कभी प्रकृति प्रियतम के सौन्दर्य का शृंगार करती है, कभी कवि उसी में प्रियतम का आभास पा जाता है। इस प्रकृति में प्रसादजी कालिदास की भाँति तन्मय नहीं हो जाते, जिनका दुष्यन्त प्रकृति का चित्र बनाकर शकुन्तला को निकट ले आता है। वह सानुमती से कहता है : 'अभी मालिनी नदी बनानी है, जिसके बालुका तट पर हंस के जोड़े बैठे हों। उसके दोनों ओर हिमालय की वह घाटी भी दिखानी है जहाँ हरिण बैठे हुए हों। मैं एक ऐसा वृक्ष भी खींचना चाहता हूँ जिस पर वल्कल वस्त्र टँगे हों और उसी के नीचे एक हरिणी अपनी बायी आँख काले हरिण की सीग से रगड़कर खुजला रही हो' (6-17)

गीतों की दृष्टि से 'झरना' एक प्रयोगशाला है क्योंकि वहाँ भावजगत का विस्तार है और कई प्रकार के छन्द कवि ने अपनाए हैं। भावना की गहराई में कवि जाने लगा है। उसे प्रेरणा का एक ऐसा स्रोत प्राप्त हो गया, जो कभी सूख नहीं सकता। धीरे-धीरे कवि आत्माभिव्यक्ति की ओर अग्रसर हो रहा है। इस प्रकार 'झरना' में सुन्दर गीतिकाव्य की आशा दिखाई देने लगती है। आख्यान-कविताओं में वह जिन मानवीय भावनाओं का चित्र वना चुका था, वे ही गीतों में आकर केन्द्रित हो जाती हैं। वहाँ प्रकृति और मानव का भेद समाप्त हो जाता है। प्रकृति के क्रिया-व्यापार में परम सत्ता की छाया भी दिखाई देने लगती है। यह अज्ञात किसी एकाकी साधना अथवा आध्यात्मिक पूजन से सम्बन्धित नहीं है। 'झरना' के कवि ने एक नवीन दिशा ग्रहण की है। 'प्रेमपथिक' का आदर्शवादी प्रेम जीवन के कठोर धरातल पर नहीं ठहर पाता। 'झरना' का प्रेम अधिक स्वाभाविक, सजीव और मांसल है। काव्य-विकास की दृष्टि से 'झरना' में निर्झर की-सी स्वच्छ दता है, जो जीवन से अनुप्राणित है। परिष्कृत कल्पना, सुन्दर उपमा, सरस भावना उसमे आभासित है। कवि किरण से कहता है :

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज, रँगी हो तुम किसके अनुराग
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान, उड़ाती हो परमाणु पराग।
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश, मधुर मुरली-सी फिर भी मौन
किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती-सी तुम कौन।

इस प्रकार कवि ने प्रकृति का मानवीकरण किया है। गीतों में सुन्दर व्यंजना दिखाई देती है। प्रसाद प्रेम-सौन्दर्य की सरस भावनाओं के कवि हैं और इसी को वे आनन्द से जोड़ते हैं। 'झरना' के कवि ने केवल प्रणयगीत ही नहीं गाये हैं, वह किसी तथ्य को भी खोजता है। जीवन का झंझावात अब भी यद्यपि पूर्णतया शान्त

नही हो सका, किन्तु ज्वार उतरने लगा है। झरना' मे अनेक सुन्दर चित्र कवि ने प्रस्तुत किये है जैसे 'विषाद' के विषय मे

कौन प्रकृति के करुण काव्य सा वृक्ष पत्र की मधु छाया मे
लिखा हुआ सा अचल पडा है, अमृत सदृश नश्वर काया मे।
*   *   *
निर्झर कौन बहुत बल खाकर, बिलखाता ठुकराता फिरता ?
खोज रहा है स्थान धरा मे, अपने ही चरणो मे गिरता।

- झरना, पृ 17

लहर

'लहर' के प्रणीता म प्रसाद की प्रौढता अधिक निखर गयी है। इसके पूर्व 'आँसू' म वह अपनी आन्तरिक अभिव्यक्ति कर चुका था। 'लहर' म कवि एक चिन्तनशील कलाकार के रूप म सम्मुख आता है, जिसन अतीत की घटनाओ से प्रेरणा ग्रहण की है। प्रसाद के गीतो की विशेषता यही है कि उनम केवल भावोच्छ्वास ही नहीं रह, जिनम प्रणय के विभिन्न व्यापार हो, किन्तु कई बार एक स्वस्थ जीवन दर्शन की नियोजना भी होती है। कवि अनुभव के द्वारा सिद्धान्तो का निरूपण करता है और व्यक्तिगत अनुभूति व्यापक जीवन दर्शन की ओर उन्मुख होती है। लहर का कवि यौवन का झझावात और जीवन की विषमता देख चुका था। वह अपने निजी सुख दुख म डूब जाने का अधिकार छोड देता है। प्रणय गीतो के अतिरिक्त लहर मे ऐतिहासिक दार्शनिक चित्रण भी मिलते है। वे सम्भवत बौद्ध दर्शन की करुणा से भी प्रभावित है। प्रथम चरण मे केवल शिव तत्त्व को स्थान देनेवाला कवि अन्य दर्शनो की ओर भी जा रहा है। इस दिशा परिवर्तन म प्रसाद अपने आदर्श नही बदल देते। उनमे समन्वय की अद्भुत शक्ति थी और वे अनुभव ज्ञान और दर्शन का सार्थक उपयोग करते है, किन्तु उनके मूल तत्त्व निश्चित है।

'लहर' के आरम्भ म कवि अपने अन्तस्तल को पहचानने का प्रयत्न कर रहा है। लहर' कवि की अन्तरतम भावना का प्रतीक है। सागर के विशाल वक्षस्थल पर उठनेवाली अगणित लहर उसके अन्तस्तल को छू लेती है। ज्वार समाप्त हो जाने पर ये ही छोटी छोटी लहरियाँ हिलती डोलती रह जाती है। 'आँसू' यदि प्रसाद के जीवन की हलचल है, तो 'लहर' उसकी शान्ति। वह कवि की आन्तरिक दशा का प्रतीक है। कवि मन को अनेक प्रकार की सान्त्वना देकर अपना आगामी चरण रखने के लिए प्रयत्नशील है। प्राणो मे स्नेह भरकर वह आन्तरिक लहर को दुलारता है 'उठ-उठ री, लघु लघु, लोल लहर !' कवि के नये चरण मे नवीनता, करुणा और चेतना होगी। वह देखता है कि केवल उसका ही अन्तर्मन नही, किन्तु ससार का कण कण सूखा है। अपनी प्राण-लहरियो से वह ससार मे सहानुभूति वितरित करने

की अनुनय करता है। फिर, जीवन मे निराशा कैसी ? इस खेल मे ज्य पराजय तो लगी ही रहती है इसकी क्या चिन्ता ? कोमल भावनाएँ ही जीवन की मज्जा बन सकती है। शीतलता, कौमार्य का कम्पन ही दग्ध वसुधा मे हरीतिमा भर सकता है। जीवन उत्थान पतन का ही दूसरा नाम है। गिर गिरकर मनुष्य आगे बढ़ना सीखता है। लहरियां को पदचिह्न बनाते हुए सदा आगे बढ़ते जाना है। सिकता पर भी रेखाएँ बन जाएँ, मरुस्थल के शुष्क प्रदेश मे सिहरन हो उठे। कवि की भाव लहरियाँ ससार के नीरस वातावरण मे सरसता भर सकती हैं

तू भूल न री पकज वन मे
जीवन के इस सूनेपन म,
ओ प्यार पुलक से भरी ढुलक !
आ चूम पुलिन के विरस अधर।

कवि अपने गीतो म करुणा भरकर ससार को मुखरित कर देने की कामना करता है। इनमे मधु भरकर वह जीवन मे सरसता ला देगा। ससार के कण कण म अतृप्ति और वेदना है। समस्त मानवता प्रेम की भूखी है। कवि इस प्रथम गीत म ही समष्टि की ओर उभरा है। अपनी व्यक्तिगत आन्तरिक अनुभूति म वह ससार का सगम चाहता है। प्रिय प्रणी का द्वैत यहाँ समाप्त हो जाता है

तुम हो कौन और मै क्या हूँ ?
इसमे क्या है धरा सुनो।
मानस जलधि रहे चिर चुम्बित
मेरे क्षितिज उदार बनो।

'लहर' के आत्मकथात्मक मे प्रकाशित कवि। प्रसाद के आन्तरिक पक्ष पर प्रकाश डालती है। कवि ने छाया रूपको के द्वारा अपनी आन्तरिक पीडा को व्यक्त किया है। यह प्रियतम इसी पृथ्वी का वासी है, इसे किसी प्रकार का रहस्यमय स्वरूप प्रदान करना भूल होगी। प्रभी विभिन्न रूपो म अपनी प्रणय कथा कहता है उस दिन जीवन के पथ मे प्रणयी चला जा रहा था। कम्पित करो मे छिन्न पात्र और अधरो पर मधु भिक्षा की रटन थी। निकट का नगर भी अनजाना था, पथिक अकिचन। अकिचन मधु की भीख चाहता था। उस दिन मधु की सरिता ही उमड आयी। जैसे भिखारी के पास स्वय कोई भिक्षा माँगने चला आया हो। प्रकृति का समस्त वैभव उस सगम पर प्रफुल्लित हो उठा। हृदय के छोटे से पात्र मे वह सौन्दर्य, स्नेह रस कैसे समा सकता था ? प्रणयी उस अनीन्द्रिय मधुवन को देखकर स्वय आश्चर्यचकित था .

छिन्न पात्र मे था भर आता
वह रस बरबस था न समाता

स्वय चकित-सा समझ न पाता
कहाँ छिपा था ऐसा मधुवन।   —लहर, पृ 18

मनु ने भी श्रद्धा से ऐसे अवसर पर कहा था : 'क्षुद्र पात्र इसमे तुम कितनी मधुधारा हो डाल रही।' कवि एक कुशल शब्दशिल्पी की भॉति साकेतिक भाषा मे, सार्थक रूपको के द्वारा करुण गाथा कहता है और इन छाया-सकेतो मे उमे सफलता प्राप्त हुई है। प्रेमी प्रियतम की ऑखो के भोलेपन पर रीझ उठा था। कवि प्रिय का चित्र भी बनाना चाहता है जिसमे शैशव की नैसर्गिकता थी तथा उसी की चपलता। इसी बाल-चापल्य ने तो अल्हड खेल खेला, ऑख-मिचौनी। आज जब वह खेल समाप्त हो चुका, तब प्रणयी का प्रत्येक घटना याद आ रही है। वह अपनी ऑखो मे उसे बमा लेना चाहता है

मेरी ऑखो की पुतली मे
तू बन कर प्राण समा जा रे!

जिस प्रियतम ने उसे निराशा दी है, वही उसे जीवन का गीत सुनाये, प्रणयी की यही कामना है। ससार भी स्तम्भित रह जाय, उस पुनर्मिलन को देखकर। वह प्रियतम को केवल अपने बाहुपाशो मे जकडकर नही रखना चाहता, प्रार्थना करता है कि 'जीवनघन, इस जले जगत को वृन्दावन बन जाने दो।' हृदय के अन्धकार के लिए वह ज्योति की भिक्षा चाहता है। किसी व्यक्ति को ही स्नेह दान करनेवाला प्रणयी समार-भर के प्राणियो पर रीझता है। काव्य मे यही छायावाद का जीवन दर्शन है। सूफी कवि इसी लौकिक प्रेरणा से अलौकिक-आध्यात्मिक तक जाते हैं।

कवि मानव की गहराई मे उतरता है। सौन्दर्य के वाह्य आकर्षण को छोडकर, वह अन्तस्तल मे प्रवेश करता है, और वही तो शान्त, शीतल, पारदर्शी सौन्दर्य है। उसका विषाद दूर हो चुका है; भ्रम दूर हो गया, अब वह हॅसना चाहता है और अपने साथ ही प्रकृति को भी हॅसाने की कामना करता है। इस गतिशील चरण के लिए प्रणयी स्वय को अनेक प्रकार से सान्त्वना देता है। प्रेम मे प्रतिदान नही मिलता। प्रेम मे तो देना ही-देना रहता है, लेना कुछ नही। सृष्टि कराह रही है—'मुझको न मिला रे कभी प्यार'। इसी कारण कवि अपनी करुणा समस्त वसुधा पर बिखेरता है। अपलक जगती हुई रात की छाया मे समस्त पीडित विश्व विश्राम करता रहे। वसुधा के अचल पर कन-कन-सी बिखरी हुई ओस की बूँदे अम्बर की करुणा है। ऑखो के ऑसू जगती को शीतलता प्रदान करते हैं। यही कवि की जाग्रत प्रेरणा है। वह भी नयनो के उज्ज्वल मनहर ऑसू से धरणी का सन्ताप हरगा :

अब जागो जीवन के प्रभात!
वसुधा पर ओस बने बिखरे

हिमकन आँसू जो क्षोभ भरे
ऊषा बटोरती अरुण गात। —लहर, पृ. 24

पुरी के समुद्र-दर्शन से अनुप्राणित कविताओं का दर्शन 'लहर' के गीतों का चरम विकास है। व्यक्ति के स्थान पर कवि युग को देखता है। प्रसाद की प्रेमाभिव्यक्ति मे इसी गम्भीरता की छाया है; कवि नाविक से भुलावा देकर, जिस निर्जन एकान्त में ले जाने का निवेदन करता है, वह जीवन के प्रति पलायनवाद नहीं है। इस एकान्त मे वह कल्पना करेगा, जिससे वह संसार को अमर जागरण का दान से सके। सांसारिक विषमताओं के बीच सम्भव है वह आत्मा का सूक्ष्म सगीत न सुन पाये। 'लहर' में कवि के साधारण प्रणयी रूप का दर्शन नहीं होता। उसने जीवन को गाम्भीर्य के साथ ग्रहण किया है। वह नीचे, गहराई मे उतरता जा रहा है और आगामी चरम विकास की सूचना देता है। उनमें आन्तरिक अनुभूति के साथ एक व्यापक दृष्टिकोण है, जो उन्हे 'कामायनी' तक ले जा सका। 'निश्छल प्रेम कथा कहती हो, तज कोलाहल की अवनी रे' कवि का स्वप्न है।

मूलगन्ध कुटी विहार, सारनाथ के उपलक्ष्य मे लिखी गयी कविता मे बौद्धों के करुणा-दर्शन की छाया है। वरुणा की शान्त कछार इसी करुणा का प्रतीक है। 'विराग का प्यार के विरोधाभास से कवि ने सुन्दर व्यजना की है। बौद्ध दर्शन के प्रतिपादन का भी किंचित प्रयत्न किया गया है। स्वर्ग से वसुधा की शुचिसन्धि का प्रयास, मस्तिष्क-हृदय का अधिकार, दुःख-निदान आदि का सफल प्रयत्न बौद्ध दर्शन ने किया था। गौतम व्यथित विश्व की सजीव चेतनता बनकर अवतीर्ण हुए थे : 'दया ने जिनसे सृष्टि बनाई थी।'

कथा-कविताएँ

'अशोक की चिन्ता' कविता भी बौद्ध दर्शन से प्रभावित है। इतिहास कहता है कि कलिंग विजय मे भीषण नर-सहार देखकर सम्राट् अशोक के मन मे विरक्ति की भावना भर गयी थी। वह स्वयं अपने कार्य पर पश्चात्ताप करता है, उसे क्षोभ होता है। यह जीवन पतंग जलता जा रहा है। जीवन भी तो दो क्षण का ही है, न। फिर तृष्णा और पिपासा के लिए इतना रक्तपात क्यो ? आज मगध का सिर ऊँचा हो गया, विजित पद-तल में गिरा पड़ा है, किन्तु दूर से आती हुई क्रन्दन-ध्वनि विजयी का अभिमान भग कर देती है। यह वास्तविक विजय नहीं है। रक्त की धार बहाकर ही कलिंग नतमस्तक किया जा सका। शासन तो मानव के मन पर होना चाहिए। जीवन की अस्थिरता के विषय में अशोक सोचता है : कुछ क्षण के पश्चात् उत्सवशाला निर्जन हो जाएगी। नूपुर-मालाओं में नीरवता छायेगी। मधुबाला भी सोने लगेगी। प्याला ढुलक जायेगा, वहाँ मृदंग और वीणा न बजेंगे। मरु-मरीचिका के वन में चंचल-मन-कुरंग उलझ गया है। काल का निषंग खाली नहीं होता। सृष्टि

के कण कण में इसी उदासी की छाया है। वायु इसी करुण गाथा को गा रही है। उषा उदास आती है पीला मुख लेकर चली जाती है। अन्त में कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जब क्षण भर के मिलन के अनन्तर चिर वियोग है, तो इतनी तृष्णा क्यों? वह स्वयं अपने भावी कार्य की घोषणा करता है कि सृति का पग विक्षत है, वह डगमग चली जा रही है, अब उसे अनुलेप सदृश लगना होगा। इस मग में मृदु दल बिखेरना होगा। बौद्ध दर्शन की करुणा पर आधारित इस कविता में प्रसादजी ने सूक्ष्मतम भावनाओं का अंकन किया है और कवि का गतिशील रूप उसमें देखा जा सकता है

भुनती वसुधा तपते नग
दुखिया है सारा अग जग
कंटक मिलते हैं प्रति पग
जलती सिकता का यह मग
बह जा बन करुणा की तरंग
जलता है यह जीवन पतंग।

शेरसिंह का शस्त्र समर्पण और पेशोला की प्रतिध्वनि का आधार ऐतिहासिक है। जनरल गफ से युद्ध में सिक्खों ने अंग्रेजी सेना का सामना किया पर एक सेनापति ने भूल किया और शत्रुओं से मिल गया। उसने बारूद के स्थान पर आटा व गारा और लकड़ी भर दी। सिक्खों ने पराक्रम से युद्ध किया किन्तु पराजित हुए। शेरसिंह ने अन्त में शस्त्र समर्पण किया। उसने सिक्खों की गौरव गाथा गाते हुए सतलज के तट पर मरे सिख बालक एवं वीरमूर्ति श्यामसिंह को याद किया। युद्धभूमि युगों तक वीर यश गान गाती रहेगी। पेशोला की प्रतिध्वनि भी अतीत गौरव का चित्र प्रस्तुत करती है। महाराणा प्रताप के इस प्रदेश में आज वह वीरता नहीं रह गयी, केवल मात्र प्रतिध्वनि सी उभर रह जाती है। आज कोई भी भार का वहन करने वाला व्यक्ति नहीं मिलता। केवल अरावली शृंग की भाँति समुन्नत सिर करके कोई नेपथ्य से पुकार उठता है - मैं हूँ मेवाड़ में

गौरव की काया पड़ी माया है प्रताप की
वही मेवाड़!
किन्तु आज प्रतिध्वनि कहाँ? —लहर, पृ 58

इन अनेकान्त मात्राविहीन कविताओं की प्रेरणा भारतीय इतिहास का अतीत गौरव है जिसमें राष्ट्रप्रेम समाहित है। प्रसाद की राष्ट्रीय भावना किसी क्षणिक आवेश की भाँति नहीं है, उन्होंने इसमें चिरन्तन भावना भरने का प्रयत्न किया है। भारतीय इतिहास का यह वैभव उनके नाटकों में भी स्पष्ट है।

प्रलय की छाया

'प्रलय की छाया' सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सजीव रूप-चित्र लेकर प्रस्तुत हुई है। नारी के अन्तरतम में रूप-यौवन को लेकर उठनेवाली आकांक्षाएँ तथा क्षण-क्षण में परिवर्तित भावनाओं को चित्रित करने का प्रयत्न कवि ने किया है। चित्र के अनुकूल बिम्बों-प्रतीकों का उपयोग किया गया है। गुर्जर की रानी कमला के मानस-पटल पर अतीत एक चित्रपट के लेख की भाँति आता जा रहा है। संध्याएँ यहाँ जीवन के मोड़ हैं। आज यौवन के ढलते प्रहरों में वह सोच रही है :

> थके हुए दिन के निराशा भरे जीवन की
> सन्ध्या है आज भी तो धूसर क्षितिज में। —लहर, पृ. 59

उसे याद आता है कि उस दिन मैं अपने ही यौवन, सौन्दर्य से पागल हो उठी थी, जैसे कस्तूरी से मृग। नीली अलकें लहरों के समान मुझे चूमती थीं, समीर मुझे छूकर ही साँस ले पाता था। मधुभार से चरण विजड़ित हो गये। उस दिन तो मेरे रूप और सौन्दर्य का अभिषेक करने के लिए काम-बालाएँ स्वर्ग से उतर पड़ीं। समस्त गुजरात का कौमार्य मुझमें घनीभूत हो उठा था। जीवन के प्रथम मदिर-पान में ही मैं मदहोश हो गयी। मैंने देखा—विश्व का वैभव मेरे चरणों पर लोट रहा था। मदिर यौवन भागा चला जा रहा था, सौन्दर्य की सुरभि लेकर। सृष्टि की समस्त स्निग्धता मुझे छू लेने के लिए व्याकुल थी। गुर्जरेश मेरे संकेतों पर चलते थे। अनायास ही नियति ने परिवर्तन किया। एक बार पुनः सती पद्मिनी के आत्मगौरव की गाथाएँ गूँज उठीं। कुल की कन्याएँ अपने जीवन का भविष्य नये सिरे से सोचने लगीं। देव-मन्दिरों की घटाध्वनि मूक हो गयी। उस क्षण मैंने सोचा :

> पद्मिनी जली थी स्वयं किन्तु मैं लाऊँगी :
> वह दावानल ज्वाला
> जिसमें सुलतान जले।

किन्तु यह मेरी भूल थी। पद्मिनी का वाह्याकर्षण मुझसे कम हो सकता था, परन्तु मेरे पास वैसा हृदय कहाँ ? हृदय की वह महानता और पवित्रता मुझमें कहाँ थी ? सुलतान का क्रोध गुजरात के हरे-भरे कानन को दावानल बनकर जलाने लगा। बालकों की करुण पुकार, वृद्धों की आर्तवाणी, रमणियों का क्रन्दन भैरव संगीत बन गया। मैं भी वीरपति के साथ देश की आपत्ति मे कूद पड़ी। हम दोनों ही निर्वासित शरण खोजने लगे। एक दिन दुपहरी में यवनों के दल से युद्ध करते मेरे गुर्जरेश दूर चले गये और मैं बन्दी हुई। एक क्षण के भुलावे में आ गयी, पद्मिनी का अनुकरण न कर सकी। उस आपदा में भी रूप का ही ध्यान आया कि सुलतान भी तो इसे देखे और उसी के साथ अभूतपूर्व मृत्यु। क्षण-क्षण में विचारों

का परिवर्तन हो रहा था :

कभी सोचती थी प्रतिशोध लेना पति का
कभी निज रूप सुन्दरता की अनुभूति
क्षण भर चाहती जगाना मै
सुलतान ही के उस निर्मम हृदय मे
नारी मै !
कितनी अबला थी और प्रमदा थी रूप की !

अन्तस्तल मे साहस वेगपूर्ण ओघ-सा उमडता था, पर मै इतनी हल्की थी कि तृण की भॉति विचारो मे तिरती फिरती थी। मैने मोचा, आज न जाने कितने दिनो बाद उम सुलतान का साक्षात्कार होगा। वासना की ऑधी सी आकर चली गयी। तभी मणि-मेखला में लगी कृपाणी चमक उठी पर आह, आत्महत्या भी न कर सकी। मन ने छल किया, सोचा . जीवन मौभाग्य है, जीवन अलभ्य है। कमला स्वर्णपिंजर मे बन्दिनी थी। एक दिन सन्ध्या के समय किसी अपरिचित के पद-शब्द स कॉप उठी। यह शैशव-अनुचर मानिक था। उसने स्नेहदान मॉगा ओर तभी सुलतान की तातारी दासियों ने बन्दी कर लिया। कमला ने मानिक को मृत्युदण्ड से बचा लिया। गुर्जरेश कर्णदेव ने सन्देश भेजा कि कमला अपने प्राणो का अन्त कर ले, किन्तु वह यह भी तो न कर मकी। रूप के बल से वह भारतेश्वरी होने के लिए आतुर थी। हिमालय शृंग तक कमला के सौन्दर्य और कटाक्ष का शासन था और इसी मे वह अपनी विजय समझ बेठी। एक दिन छल मे काफूर ने अलाउद्दीन को मार डाला। सुगरो ने सुलतान का अन्त किया और कमला का सौन्दर्य पराजित था :

नारी यह रूप तेरा जीवित अभिशाप है
जिसमे पवित्रता की छाया भी पडी नही

इस कथा की प्रेरणा इतिहास है।[7] प्रसाद की कला इस कविता मे अपने सर्वोत्तम रूप मे व्यक्त हुई है। नारी के अन्तस्तल मे अनेक घात-प्रतिघातो का सजीव चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। कमला के प्राणो का झझावात नारी की स्वाभाविक दुर्बलता है। सौन्दर्य वर्णन मे सूक्ष्म भावनाओं का अकन हुआ है। इस सौन्दर्याकन के साथ ही नारी की मानसिक प्रवृत्तियो के उद्घाटन मे कवि को सफलता प्राप्त हुई है। कालिदास का सौन्दर्य-वर्णन आन्तरिक अनुभूतियो को इतनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नही देखता। नारी का यह नवीनतम विश्लेषण कवि ने इतिहास को आधार बनाकर प्रस्तुत किया। नारी के आन्तरिक द्वन्द्व के सूक्ष्म विश्लेषण को वह एक व्यापक रूप प्रदान करता है। केवल कमला ही नही सोचती कि जीवन सौभाग्य है, जीवन अलभ्य है। किन्तु यह जिजीविषा सबमे है :

कितनी मधुर भीख माँगते हैं सब ही :
अपना दल-अंचल पसार कर बनराजी
माँगती है जीवन का बिन्दु-बिन्दु ओस-सा।
क्रन्दन करता-सा जलनिधि भी
माँगता है नित्य मानो जरठ भिखारी-सा
जीवन की धारा मीठी-मीठी सरिताओं से।
व्याकुल हो विश्व, अन्ध तम से
भोर में ही माँगता है
जीवन की स्वर्णमयी किरणें प्रभा भरी।
जीवन ही प्यारा है, जीवन सौभाग्य है।

गीत-प्रगीत

प्रसाद की गीत-सृष्टि उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का परिचायक है। छायावाद की गीत-प्रगीत परम्परा पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद का अनुकरण नहीं है। उसमें केवल विद्यापति की शृंगारी भावनाओं की प्रतिध्वनि नहीं है, और न वह बँगला के ही सहारे अपनी भावनाओं का प्रकाशन करती है। छायावाद के प्रगीतों में एक समन्वय है, उनमें एक नवीन दृष्टि है, कृतित्व से पूर्ण। मुक्तक रचनाओं में प्रगीत निस्संदेह आगे बढ़े। कवि के व्यक्तित्व-प्रकाशन का यह माध्यम छोटे-से आकार में घनीभूत भावना को व्यक्त करता है। अनुभूति को लेकर चलनेवाले छायावाद के प्रगीतों में विभिन्न भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई। प्रसाद की प्रेम, सौन्दर्य, राष्ट्रप्रेम आदि की भावनाएँ इनमें संगृहीत हैं। निराला की स्वच्छन्दता, पन्त की प्रकृति और महादेवी का रहस्यवाद इन्हीं गीतों मे साकार हो उठा। छायावादी कवियों ने प्रगीत को अपनी भावना, अभिव्यक्ति से नवीन सज्जा प्रदान की। प्रसा. के गीतों में उनका दर्शन भी अपने गाम्भीर्य को लेकर प्रस्तुत हुआ है। इसी कारण उनके गीत 'निराला' की भाँति छन्द-बन्ध की कारा तोडकर कम बहते हैं। 'निराला' के गीतों में यदि निर्झर का आवेग है, तो प्रसाद में सागर की गहराई। पन्त में सरिता की गति है, तो महादेवी में मेघराशि की-सी उदासी। प्रसाद के प्रणय-गीतों में भी शैली की भाँति आवेग के स्थान पर करुणा और गाम्भीर्य अधिक है। इसी कारण प्रबन्ध-काव्य की रचना भी कवि गीत शैली में करने में सफल हो सका। 'झरना' के गीतों में प्रणय का उन्मुक्त रूप है किन्तु 'लहर' में वह अधिक गम्भीर हो गया है। कवि व्यक्तिगत अनुभूति को व्यापक धरातल पर लाकर देखता है। सुन्दर चित्र, मृदुल भाव, सरस कल्पना रूमानी रूप लेकर प्रसाद के गीतों में साकार हुए हैं।

'झरना' यदि गीत-सृष्टि का प्रयोग है तो 'लहर' उसका उत्कर्ष। 'लहर' की अधिकांश रचनाओं में एक जीवन-दर्शन की नियोजना है। कवि बीती विभावरी को

जागते हुए देखता है। वह जीवन के प्रभात का जागरण लाने के लिए उद्‌बोधन गीत गाता है। अतीत की प्रेरणा आज उसके जीवन का पाथेय बन गयी है। 'प्रलय की छाया' मे कमला का आन्तरिक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किन्ही मूल्यां से प्रेरित है। मात्राविहीन अनुकान्त छन्द मे प्रसाद को 'निराला' की-सी सफलता, दार्शनिक निरूपण के कारण न मिल सकी किन्तु अपने सजीव चित्रो मे प्रसाद के गीत मार्मिक है। प्रेम-सौन्दर्य के साथ ही ऐतिहासिक घटनाओ के द्वारा राष्ट्रीय भावना का भी प्रकाशन कवि ने किया। स्वय अलाउद्दीन स्वीकारता है कि .

देखता हूँ मरना ही भारत की नारियो का
एक गीत भार है।

'झरना' का मानसिक झझावात 'लहर' म कम हो जाता है और कवि की आगामी महती रचना का आभास मिल जाता है। जीवन दर्शन की दृष्टि से गीतकार प्रसाद इन छोटे छोटे गीतो द्वारा किसी सत्य तक पहुँचे है। प्रेम अपरिमेय है, उसे सीमाओ मे बाँधकर नही रक्खा जा सकता। ससार का कण कण प्रेम का भूखा है। व्यक्ति को अपनी करुणा से विश्व का शृगार करना चाहिए। जीवन नश्वर है, फिर क्षणिक आकर्षण मे क्या लाभ ? शरीर का रूप समाप्त हो जाता है, किन्तु हृदय का सौन्दर्य नही मरता। प्रकृति के कण कण म सौन्दर्य है। मानव के लिए प्रकृति है और प्रकृति के लिए मानव, दोनो मे अन्तर नही। सुख दुख आकाश के दो नक्षत्र है। इनमे सामजस्य आवश्यक है। कवि राष्ट्र-प्रेम मे भी प्रेरित है। इतिहास व भग्नावशेषो मे अतीत की गौरव गाथाएं राजती है। यहा आध्यात्मिक प्रवृत्तियो का आरोप कवि ने नही किया। इसी लौकिक धरातल पर वह स्वर्ग का निर्माण करने मे प्रयत्नशील है। विभिन्न दर्शनो को उसने अपने चिन्तन और अनुभूति से काव्य मे एकाकार किया है। ये दार्शनिक विवेचन ऊपर से आरोपित किसी कृत्रिम उपकरण की भाँति नही प्रतीत होते, काव्य का एक भाग बन गये है। अशोक के मानसिक चिन्तन म 'त्रिपटिक' के उपदेश नही बोलते वरन वह मानव की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है, जिस पर बौद्ध दर्शन की छाया है। नारी के रूप का अभिशाप समझनेवाली कमला, सन्यासिनी नही हो जाती, वह जीवन की सन्ध्या और नियति का क्रीडा देखती रहती है। कवि अपने काव्य को मानवीय मूल्यो के साथ प्रस्तुत करने मे सफल हुआ है। व्यष्टि से वह समष्टि पर पहुचता है :

मेरा अनुराग फैलने दो
नभ के अभिनव कलरव मे। -लहर, पृ 39

कवि वस्तु का समाहार करता चलता है, असाधारण अलकरण से गीत बोझिल नही हो जाते। भाषा पर उसका अधिकार है और तूलिका पर नियन्त्रण। सौन्दर्य

का चित्रांकन करनेवाला कलाकार 'पेशोला की प्रतिध्वनि' मे प्रताप के पौरुष का सफल चित्र प्रस्तुत करता है। उसके विविध रूप इस गीत-सृष्टि मे प्राप्त होते है। प्रसाद की रहस्यभावना अद्वैतवादियो की आध्यात्मिकता के निकट नही रक्खी जा सकती, वह जीवन की ही एक उदात्त प्रवृत्ति है। छायावाद की प्रवृत्तियाँ इन गीतो मे अपने सर्वोत्तम रूप मे प्रकाशित हुई है। जडता मे चेतनता का आरोप, प्रेम का प्रकाशन, अतृप्ति सभी मिल जाते है। ध्वनि, रस, अलकार की दृष्टि से भी 'लहर' के गीत उत्कृष्ट है। सुन्दर उपमा, साग रूपक और बिम्ब प्रतीक स्वाभाविक रीति से आए है। इन स्फुट कविताओ म प्रसाद का व्यक्तित्व निखरा है। 'झरना' की गीत-सृष्टि का आरम्भिक स्वरूप अधिक आशाप्रद नही प्रतीत होता। उसकी शिथिल भाषा, लय का अभाव, उदात्तीकरण की न्यूनता बाधा प्रस्तुत करती है। 'लहर' की गीत सृष्टि प्रौढ है और कवि के सुनिश्चित भविष्य का सकेत मिल जाता है।

सन्दर्भ

1 ए. बी. कीथ : ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ 48

2 रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 142

3 रामखेलावन तिवारी : गीतिकाव्य पृ 28

4 लेगाविस : ए हिस्ट्री आफ इंग्लिश लिटरेचर पृ [illegible]

5 आर. आई. मान : [illegible] पृ

6 वंशीनारायण शुक्ल : [illegible], पृ 216

7 द कैम्ब्रिज शार्टर हिस्ट्री आफ इण्डिया [illegible] पृ 223

नाटकों के गीत

नाट्य कृतिया की दृष्टि से प्रसाद की कृति 'सज्जन' इन्दु, कला 2, किरण 8, 9, 10, 11, सन् 1910-11 मे प्रकाशित हुई थी। अन्तिम कृति 'ध्रुवस्वामिनी' का प्रकाशन सन् 1933 मे हुआ। कवि के साहित्यिक जीवन की लम्बी साधना इनमे छिपी हुई है। गीतो मे कवि की भावुकता निहित है। उनके माध्यम से आन्तरिक अनुभूतिया को अभिव्यक्ति दी गयी है। प्रसाद का कवि साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र मे मुखर रहता है। यही कारण है कि नाटको के नारी-पात्रो तथा गीता मे भावुकता अधिक है। 'सब प्रकार की भारतीय परिपाटी का अनुसरण करने पर भी प्रसाद इस नवीनता को स्वीकार कर ही लेते है, क्योकि भावुक कवि-हृदय मचलता है और इसका स्वीकार करने में एक प्रकार की सन्तुष्टि का अनुभव करता है।'[1] केवल भावुकता प्रकाशन की दृष्टि म नाटका मे गीतो का समावेश नही किया गया, उनकी सार्थकता भी है। गायिकाएँ और नर्तकियाँ जीविकानुसार गाती है। कुछ नारी पात्रो म स्वाभाविक गानप्रियता है, जैसे देवसेना। गीतो की रचना विशेष मनोवृत्ति के प्रकाशन क लिए भी की गयी है। विषाद से पीडित पात्र अपनी वेदनानुभूति का प्रकाशन गीतो के माध्यम मे करते है। रगमच पर कथोपकथन द्वारा आत्मप्रकाशन अधिक सगत नही प्रतीत होता। लम्बे स्वगत भाषण अस्वाभाविक हो जाते है। सगीत तत्त्व की दृष्टि मे भी गीतो का महत्त्व है। प्रसाद के नाटको मे प्रायः अलग से प्रहसन आदि नही होते, इस कारण इनमे मनोरजन भी हो जाता है। एक ओर यदि गीत चरित्र-चित्रण मे सहायक है, तो दूसरी ओर दर्शको का अनुरजन भी करते है।

सस्कृत की नाट्य-परम्परा मे नाटक प्रायः पद्य मे लिखे जाते थे और इनमे गीतो को स्थान दिया जाता था। धीरे-धीरे नाट्य साहित्य के अभाव मे उनका स्वरूप भी परिवर्तित हो गया। आरम्भ मे पारसी नाटक-कम्पनियो का अधिक प्रचलन था। गद्य के साथ ही बीच-बीच मे कथोपकथन के लिए दो-चार पक्तियाँ पद्य की कह दी जाती थी। इससे प्रभावान्विति मे सहायता मिलती थी। साधारण जनता के लिए उसका प्रयोग किया जाता था। प्रसाद ने भारतेन्दु की परम्परा को आगे बढाया। उन्होंने

नाटक को एक साहित्यिक धरातल पर प्रस्तुत किया। प्रारम्भिक रचनाओं में परम्परा की छाया मिलती है और सज्जन, कल्याणी-परिणय, प्रायश्चित्त आदि में गीतों की संख्या अधिक नहीं है। सम्भाषण के लिए भी पद्य का प्रयोग किया गया है। गानेवाली 'सदा जुग-जुग जीओ महाराज' गाकर नृत्य करती हैं। कथोपकथन में कविता के द्वारा अधिक सरसता उत्पन्न की जाती है और दर्शकों पर उसका प्रभाव पड़ता है। किन्तु बीच-बीच में इस प्रकार के पद्य-खण्ड अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं। इसी कारण आगे चलकर प्रसाद ने इनका त्याग कर दिया।

राज्यश्री : विशाख

रचनाक्रम के अनुसार आरम्भिक प्रयासों के पश्चात् राज्यश्री (जनवरी, 1915 ई.) का प्रकाशन हुआ। इसके सात गीतों में चार सुरमा, दो राज्यश्री और एक समवेत स्वर से सभी गाते हैं। सुरमा के गीतों में उसकी वेदना और करुणा का आभास है। वह अपने गीतों द्वारा घनीभूत वेदना का प्रकाशन करती है। अन्त में विकटघोष को पाकर 'अलख अरूप' का भी जाप करने लगती है। राज्यश्री नेपथ्य से गान सुनती है और स्वयं भी प्रार्थना करती है। नाटक के अन्त में सभी पात्र समवेत स्वर से 'करुणा कादम्बिनी' की वर्षा के लिए प्रार्थना करते हैं।

विशाख (1921 ई.) में गीतों के अतिरिक्त सम्भाषण के लिए पद्य का प्रयोग भी हुआ है। नाटक के आरम्भ में विशाख अतीत की अभिव्यक्ति गान के द्वारा करता है। चन्द्रलेखा सुख की परिभाषा जानना चाहती है। उसे जगत निर्दय और कठोर हृदय दिखाई देता है। वन्दिनी होकर वह प्रणय की आकुलता में गीत गाती है :

देखी नयनों ने एक झलक, वह छवि की छटा निराली थी
मधु पीकर मधुप रहे सोए, कमलों में कुछ-कुछ लाली थी
—विशाख, पृ. 29

सखियाँ भी प्रणय-गान गाती हैं। वे रानी का मनोरंजन करती हैं। इस प्रेम-भावना के अतिरिक्त प्रेमानन्द परिव्राजक होकर प्रकृति का दर्शन करना चाहता है। वह स्वयं गीत गाकर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है कि शुचिता से इस कुहक जाल को तोड़ दो। नर्तकी राजसभा में मादकता का संगीत अलापती है। इस प्रकार के गीत राजाओं के लिए मनोरंजन के साथ ही उद्दीपन का कार्य भी करते हैं। गीत के लिए उसे पुरस्कार भी दिलाया जाता है। विशाख में गीतों की संख्या अधिक हो गयी है। सम्भवतः प्रसाद नवीनता के हामी होते हुए भी अपने समय से प्रभावित थे। साधु भी गीत गाते हैं और वे अपने उपदेश इन्हीं के द्वारा प्रतिपादित करते हैं। इस प्रकार की भावनाओं का समावेश उनमें हुआ है। इसी के साथ प्रत्येक पात्र गाने लगता है। विशाख, चन्द्रलेखा, सखियाँ, नर्तकी,

साधु, नरदेव, इरावती सभी गाते है।

अजातशत्रु : कामना

अजातशत्रु (1922 ई) मे भी गीतो की सख्या अधिक है। आरम्भ मे भिक्षुक गाते हुए प्रवेश करते है। उनके स्वर मे जगत की नश्वरता के प्रति सकेत है। वे दुखियो के आँसू पोछने के लिए कहते है। गान-प्रिय नारी मागन्धी प्रणय-गीत गाती है। राजभवन की मर्यादा के अनुसार नर्तकियो का गान होता है। मागन्धी मदिरा पान कराती और गाती है। पद्मावती एक सगीतिका के रूप मे आती है ·

मींड मत खिचे बीन के तार !
निर्दय उँगली ! अरी ठहर जा
पल भर अनुकम्पा से भर जा
यह मूर्छित मूर्छना आह सी
निकलेगी निस्सार। –अजातशत्रु, पृ 58

श्यामा गान के साथ नृत्य करती है। शैलेन्द्र के प्रति अपने प्रणय का प्रदर्शन भी इन गीतो के द्वारा कर देती है। गीत प्रणयी को सम्बोधित करके कहे गये है। मागन्धी अन्त मे निराशा का गीत गाती है। उसका मिथ्या गर्व समाप्त हो जाता है। विरुद्धक के गीत मे उसके जीवन का इतिहास निहित है। अतीत की प्रणय पिपासा चपला सी जाग्रत हो उठती है। वह मल्लिका के प्रति अपनी भावनाओ को स्पष्ट कर देता है। अजातशत्रु के लगभग 15 गीतो मे पात्रो के व्यक्तित्व की छाया है। उनमे गीतो के प्रधान तत्त्व आत्माभिव्यजना का समावेश है। भाव, भाषा शैली की दृष्टि से कवि ने प्रगति की है।

कामना (1924 ई) एक सुन्दर रूपक है जिसका निर्माण मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ। प्रत्येक पात्र स्वय एक विशेष मनोविकार का प्रतीक है। फूलो के द्वीप मे मानव की सामाजिक वृत्तियो का सूत्रपात होता है। कामना विदेशी विलास का स्वागत करती है। प्राचीन सस्कृति का स्थान नवीन सभ्यता ग्रहण करती है। कामना और सन्तोष के पुनर्मिलन से नाटक का अन्त होता है। कामना एक गान-प्रिय नारी है और भावमय गीत के द्वारा अपना परिचय देती है। करुणा-जल से भरी उसकी मानसतरी ऊपर नीचे होती है। वह यह भी बता देती है कि उसका निर्दय अभी तक लौटकर नही आया। विलास सबको प्रेम का प्याला पीने की शिक्षा देता है। विनोद लीला का गीत सुनता है। विलास लालसा के सगीत की अमृतवर्षा से पागल हो उठता है। वनलक्ष्मी अपने गीत के द्वारा मृदुल कुटुम्ब मे कोमल शृगार का परिचय देती है। इस प्रकार इस साकेतिक रूपक मे आठ गीतो के द्वारा प्रसाद ने कथानक को सजीवता प्रदान की है।

जनमेजय का नागयज्ञ

जनमेजय का नागयज्ञ (1926 ई.) महाभारत का आधार लेकर निर्मित हुआ। यहाँ प्रकृति और मानव में एक सन्तुलन स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। दामिनी प्रथम अंक मे ही उत्तंक की आज्ञा से गाती है। सांकेतिक भाषा में वह बता देती है कि मीठी बात करके कोई बरजोरी रस छीन ले गया। नेपथ्य से आता हुआ संगीत मानव को नवीन चेतना प्रदान करता है। जीवन का वास्तविक ज्ञान आस्तीक, मणिमाला को इसके द्वारा होता है। सरमा गाती हुई ही प्रवेश करती है :

> लौट न आया, निर्दय ऐसा, रूठ रहा कुछ बातों पर
> था परिहास एक दो क्षण का, वह रोने का विषय हुआ।
> —जनमेजय का नागयज्ञ, पृ. 6।

'कामायनी' मे श्रद्धा कहती है : 'लौट न आया वह परदेशी, युग छिप गया प्रतीक्षा में।' सरमा अपनी सकरुण भावनाओं का प्रकाशन आगे भी करती है। वपुष्टमा कहता है—'सचमुच कलिका, जब एक रोता है तभी तो दूसरे को हसी आती है।'[2] सम्पूर्ण गीत मे संसार की विषमता पर दृष्टिपात किया गया है। मनसा और उसकी दो सखियां राष्ट्र-गीत गाती है। जातीय मान की रक्षा आवश्यक है। इसी प्रकार आर्य-सैनिक सम्मिलित गीत गाते हुए प्रवेश करते हैं। वे जनमेजय की विजय मनाते हैं। आर्य भूमि और जाति के लिए उनमे अभिमान है। प्रार्थना के अतिरिक्त अन्त में दार्शनिक भावनाओं से प्रभावित एक गीत है। व्यास के द्वारा नाटककार ने विश्वात्मा का वन्दन कराया है।

'जनमेजय का नागयज्ञ' के गीतो ने चरित्र-चित्रण के साथ ही कथानक मे भी परोक्ष रीति से योग दिया है। सैनिक-गीत से भावी विजय का आभास मिल जाता है। पहाड की तराई मे मनसा और उसकी दो सखियों द्वारा गाया हुआ गीत अपना प्रभाव स्थापित करता है। इस उद्बोधन गीत द्वारा कवि ने अपने मन का प्रसार किया है। केवल राजसभा की शोभा और राजा के मनोरंजन के लिए ही गीतों का समावेश अधिक नहीं किया गया। यदि कलिका गीत के द्वारा अपनी करुणा का प्रकाशन करती हे तो अन्त मे नेपथ्य का गीत दार्शनिक तथ्य का निरूपण करता है।

स्कन्दगुप्त

स्कन्दगुप्त (1928 ई.) प्रसाद की सर्वोत्तम नाट्य कृतियों में से है। इसमें पात्रों का विभाजन दो वर्गों मे किया जा सकता है। आरम्भ में ही कुमारगुप्त की सभा में नर्तकियाँ गाते हुए प्रवेश करती हैं। इस गीत में किसी प्रकार की मानसिक अभिव्यक्ति उनके द्वारा सम्भव नहीं। गायन उनकी जीविका है और राजा का मनोरंजन करने के लिए वे शृंगार गीत गाती हैं। मातृगुप्त, देवसेना में प्रसाद ने

अपनी भावुकता का प्रकाशन किया है। मातृगुप्त कालिदास का प्रतिरूप प्रतीत होता है। सुन्दर भाषा में वह अपने उद्‌गार प्रकट करता है। मातृगुप्त के कवि रूप में प्रसाद ने भावुकता को निहित किया है और उसके गीत के द्वारा आत्म-प्रकाशन-सा किया है। देवसेना संगीत को अपना प्राण-सहचर मानती है। वह गाये बिना रह ही नहीं सकती। युद्ध के समय भी वह गा लेना चाहती है। क्या मालूम प्रिय गान फिर गाने को मिले या नहीं। जयमाला के लिए युद्ध भी गान है। देवसेना गाती है :

भरा नैनों में मन में रूप
किसी छलिया का अमल अनूप। —स्कन्दगुप्त, पृ. 45

इस अवसर पर रहस्यभावना की प्रवृत्तियाँ भी मिलती है। वह छलिया जल, थल, मारुत, व्योम सब ओर छाया हुआ है। उसी को खोज-खोजकर देवसेना पागल प्रेम-विभोर हो गयी है। बिना गान के देवसेना कोई कार्य नहीं कर सकती। उसे विश्व के प्रत्येक कम्प मे एक ताल दिखाई देती है। बागेश्वरी की करुण कोमल तान के द्वारा पुरुष को भी जीता जा सकता है। 'घने प्रेम तरु तले' में गायिका ने प्रेम की जीवन-शक्ति का चित्र प्रस्तुत किया। बन्धुवर्मा अपनी बहिन के गाने के इस रोग पर हॅंस पडता है। विजया अपने परिवर्तनशील रूप मे भी कभी-कभी गाने•लगती है। उसके गान अधिक स्वाभाविक नहीं प्रतीत होते। वह स्वय देवसेना की गान-प्रवृत्ति पर व्यंग्य कर चुकी है। वास्तव में 'स्कन्दगुप्त' मे देवसेना ही गीतो का भार वहन करती है। युद्ध, श्मशान सभी स्थलों पर वह गान-मुखर हो उठती है। वह अपनी स्वाभाविक वृत्तियों के अनुसार गाती है, किन्तु कवि ने गीतो में जीवन-दर्शन की स्थापना की है। नेपथ्य से गान हो रहा है कि धूप-छाँह के खेल सदृश सब जीवन बीता जाता है; प्रतिक्षण समय भागता है। प्रेम की पुजारिन सगीत को अपना साथी बना लेती है। वह स्वयं कहती है—इस बार-बार के गाये हुए गीतो मे क्या आकर्षण है ? क्या बल है जो खींचता है ? केवल सुनने को नही, प्रत्युत जिसके साथ अनन्त काल तक कंठ मिला रखने की इच्छा जग जाती है।[3] उसने स्कन्द को आजीवन प्रेम किया। उसके हृदय में करुणा, वेदना की एक टीस-सी उठकर रह जाती है। इसकी अभिव्यक्ति वह गीत के माध्यम से करती है। प्रेम में सर्वस्व बलिदान कर देनेवाली नारी देश के लिए उद्‌बोधन गीत भी गाती है। वह देशवासियों को ललकारती है। अन्त मे अपने जीवन की सचित वेदना गीत द्वारा प्रकट कर देती है। 'आह वेदना मिली विदाई' में उसकी घनीभूत पीडा छिपी हुई है। इस प्रकार देवसेना नाटक के गीतो की गायिका बन जाती है। इन गीतों में प्रसाद ने भावुक नारी के व्यक्तित्व-प्रकाशन के साथ ही अपनी भावुकता को भी स्थान दिया है। प्रेमिका के माध्यम से जैसे कवि की भावनाएँ बोल उठी हैं।

प्रणय-गीतों के अतिरिक्त कवि का प्रसिद्ध देश-गीत भी नाटक में संगृहीत है। मातृगुप्त इस भारत-गीत के द्वारा सैनिकों को उत्साहित करता है। रणक्षेत्र में देशप्रेम का गीत गाकर हूणों को परास्त किया गया। मातृगुप्त गाता है : भारत के अतीत वैभव का गीत। भारत ने विश्व मे आलोक प्रसारित किया। मनु ने नाव पर प्रलय की शीत झेल ली थी। अस्थियुग का इतिहास पुरन्दर ने पवि मे लिख दिया है। अन्त म वह आर्य गौरव से अनुप्राणित होकर कहता है :

जियें तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष
निछावर कर दे हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष

—स्कन्दगुप्त, पृ. 163

इस लम्बे गीत मे कवि ने राष्ट्रीय भावना का प्रतिपादन किया है। देवसेना की गानप्रियता के कारण गीतो की सख्या अधिक हो गयी है। इसका प्रभाव इतना बढ जाता है कि स्कन्दगुप्त भी 'बजा दो वेणु मन मोहन' का गीत गाता है। विजया अपने विलास की कल्पना गीत द्वारा करती है। सुन्दर गीतो का स्वरूप नाटक मे प्रस्तुत हुआ है।

एक घूँट

एक घूंट (1930 ई.) केवल एक अक और दृश्य का लघु नाटक है। इसमे कवि ने आश्रम का एक स्वरूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। जीवन के विषय मे अनेक विचार प्रकट किये गये है। आरम्भ मे अरुणाचल आश्रम का वर्णन है। समीर के झोके चल रहे है। वसन्त के फूलो की भीनी भीनी सुगन्ध उस हरी-भरी छाया मे कलोल कर रही है। मालसिरी के नीचे वदी पर बनलता बैठी। नेपथ्य मे होनेवाले गान को सुन रही है। प्रेमलता गान सुनाकर शुष्क तर्को की ग्लानि दूर करती है। जीवन के प्रति उसका स्वस्थ दृष्टिकोण है। गीत के अनुसार एक घूँट का प्यासा जीवन सबको लोचन भरकर निरख रहा है। आगे चलकर वह दुख का भी एक गान गाती है :

घुमड रही जीवन-घाटी पर जलधर की माला

*　　　　*　　　　*

क्षणिक सुखो पर सतत झमती शोकमयी ज्वाला —एक घूंट, पृ. 24

इस गीत की भावनाओं मे रसालजी परिष्कार करने के लिए कहते हैं। नाटक के अन्त मे जीवन दर्शन की स्थापना होती है। अरुणाचल आश्रम एक आदर्श स्थान बनता है। उसका लक्ष्य जीवन का शृंगार और प्रेम के स्वस्थ रूप का प्रचार बन जाता है। मस्तिष्क-हृदय का समन्वय स्थापित होता है और इस लक्ष्यपूर्ति से सभी को प्रसन्नता

होती है। सब मधुर मिलन कुज का यशोगान करते हैं। छोटे-से अन्यापदेशिक नाटक मे केवल तीन गीतो द्वारा नाटककार ने नाटक तथा गीत की भावनाओ मे साम्य रक्खा है। परिस्थिति और विषय के अनुकूल उनका निर्माण हुआ है। गान के द्वारा पात्र एक भावना का प्रतिपादन करते हैं। उसमे उनकी व्यक्तिगत अनुभूति कम होती है, नाटककार का विचार-प्रतिपादन अधिक।

चन्द्रगुप्त

चन्द्रगुप्त (1931 ई.) प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ नाट्यकृतियो में है। भारतीय इतिहास के इस यशस्वी वीरपुरुष पर इसके पूर्व भी नाट्य रचना हो चुकी थी पर प्रसाद ने एक नवीन दृष्टिकोण अपनाया। ऐतिहासिक पुरुष को उन्होने आधुनिकता प्रदान की। यहॉ एक लम्बे इतिहास को बॉधने का प्रयास किया गया है। इस नाटक मे स्कन्दगुप्त जैसे भावुक पात्र अधिक नही मिलते किन्तु गीतो का प्रयोग कथानक के विकास और समयानुकूलता के अनुसार हुआ है। लगभग दस गीत नाटक मे मिलते हैं जो आकार को देखते हुए अधिक नही है। सुन्दरियो की रानी सुवासिनी से सभी नागरिक एक सुन्दर आलाप, एक कोमल मूर्च्छना की इच्छा प्रकट करते है। वह भाव-सहित गान करती है :

तुम कनक किरण के अन्तराल मे
लुक-छिपकर चलते हो क्यो ?
नत मस्तक गर्व वहन करते
यौवन के घन, रस कन ढरते
हे लाज भरे सौन्दर्य !
बता दो मौन बने रहते हो क्यो ?

सौन्दर्य का सूक्ष्म चित्रण इस गीत मे मिलता है। प्रसाद के सर्वोत्तम गीतो मे इसकी गणना की जा सकती है। अपने सूक्ष्म रूप मे भी गीत का चित्र स्पष्ट है। सगीत के सयोग से वह सरस हो उठा है। इसी के पश्चात् राक्षस सुवासिनी के सम्मुख मूक अभिनय सहित गाता है। गीत के अनुसार दुर्बल आह यदि बाहर निकलेगी तो उसे हॅसी का शीत लगेगा। ससार करुणा का उपहास करता है। द्वितीय अक मे कार्नेलिया सिन्धुतट की रमणीयता का गीत गाती है : 'अरुण यह मधुमय देश हमारा।' वह केवल भारत के प्रकृति वैभव का चित्र नही बनाती, वरन् उसके सगीत को भली भाँति याद रखना चाहती है। यह अरुण देश मधुमय है। उषा सवेरे हेमकुम्भ भरकर उसके सुख ढुलकाती है। सर्वत्र प्राकृतिक सौन्दर्य छाया है। अलका एक ओर यदि राष्ट्रसेविका है, तो साथ ही वह सिहरण को प्रेम भी करती है। वह देश की स्वतन्त्रता के लिए पर्वतेश्वर की प्रणयिनी बनने का अभिनय करती है। अलका की अन्तर्वृत्तियों

के प्रकाशन के लिए गीत का प्रयोग कवि ने किया है।

सुवासिनी आरम्भ से ही यौवन, सौन्दर्य और मादकता से ओतप्रोत है। स्वयं नन्द इसे स्वीकार करता है। वह बारम्बार उन्मादक गान सुनना चाहता है। सुवासिनी सम्पूर्ण तन्मयता से गा उठती है–'आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा है। वह मधु पीकर पागल हो गया, प्रेमालाप कर रहा है। चाँदनी बिछल रही है। छवि से मतवाली रात कम्पित अधरों से बहकाने की बात कहती है। न जाने कौन अनायास ही मधु-मदिरा घोल देता है।' मादकता से भरे गीत का नन्द पर प्रभाव पड़ता है, वह कामुक की-सी चेष्टा करता है। सुवासिनी उसे 'एक वेतन पानेवाली का अभिनय' कहकर टाल देती है। कल्याणी, मालविका नाटक की भावुक नारियाँ हैं। दोनों ही चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व से आकर्षित हैं पर अन्त में उन्हें विदा लेनी पड़ती है। चन्द्रगुप्त एक वीर सेनानी है। युद्ध और संघर्ष से ऊबकर वह भी एक क्षण संगीत के द्वारा अपना मनोरंजन चाहता है। उसके हृदय में भी आशा-निराशा का युद्ध चलता है। मालविका उसे मधुप की चंचल प्रवृत्ति का गीत सुनाती है। चन्द्रगुप्त कहता है कि मन मधुप से भी चंचल और पवन से भी प्रगतिशील है। उसका मन नहीं भरता, वह मालविका के स्वर में स्वर्गिक मधुरिमा प्राप्त करता है। मालविका 'बज रही वंशी आठों याम की' का गीत गाती है। अलका का गीत प्रसाद का सर्वोत्तम राष्ट्रगीत है। सैनिकों के लिए एक सुन्दर प्रयाण-गीत के रूप में उसकी रचना हुई। वीरता और उत्साह से भरी हुई अलका गाती है :

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती
अमर्त्य वीरपुत्र हो, दृढ़ , प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ
विकीर्ण दिव्य दाह-सी
सपूत मातृभूमि के
रुको न शूर साहसी !
अराति सैन्य सिन्धु में, सुवाडवाग्नि-से जलो,
प्रवीर हो, जयी बनो, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

गीत में लय-गति प्रयाण के अनुकूल है। इस प्रकार प्रसाद केवल प्रणयगीतों की रचना में ही सफल नहीं हुए, उन्होंने देशप्रेम की भावनाओं को भी स्थान दिया। चन्द्रगुप्त के गीतों में प्रसाद ने विभिन्न प्रकार की भावनाओं का समावेश किया है, यद्यपि

प्रणय-गीत अधिक हैं। सुवासिनी और राक्षस के गीतों में प्रेम का तरल स्वरूप है। कल्याणी और मालविका आन्तरिक करुणा का प्रकाशन करती हैं। देशप्रेम के गीतों में प्रसाद ने देश-काल की मर्यादा रखी है। संगीत की दृष्टि से नाटक के गीतों में सुन्दर प्रवाह है। एक ओर यदि गीतो ने पात्रों की विशेष मनोवृत्ति का परिचय दिया है, तो दूसरी ओर संगीत-समन्वित पंक्तियों ने नाटक को सरसता प्रदान की। इनके माध्यम से प्रसाद की कल्पना बोलती है। 'विशाख' का नाटककार अब प्रौढ़ हो जाता है। व्यर्थ के गीतों का समावेश उसमें नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त कथोपकथन के लिए पद्य का प्रयोग समाप्त हो जाता है। 'चन्द्रगुप्त' के गीतों में भी किसी-किसी स्थान पर अधिकता हो गयी है। चतुर्थ अंक में मालविका एक साथ तीन बार गा उठती है। शैली और भाव की दृष्टि से नाटक के गीत सुन्दर हैं और उनमे कलात्मक निखार है।

ध्रुवस्वामिनी

प्रसाद का अन्तिम नाटक ध्रुवस्वामिनी (1934 ई.) है। नाट्य कला की दृष्टि से यह नाटककार की सर्वोत्कृष्ट रचना है। पश्चिम का चरित्र-चित्रण और भारतीय साहित्य का रस-सिद्धान्त यहाँ सुन्दर समन्वित रूप मे प्रस्तुत हो सके है। केवल एक ही दृश्य के अन्तर्गत सम्पूर्ण कथानक को बाँधा गया है। आरम्भिक गीत मन्दाकिनी का है। वह साम्राज्य के लिए चिन्तित है और कर्तव्य के लिए हृदय कठोर बना लेती है। वह संसार के प्रति एक उदार भावना रखती है : 'दुखिया वसुधा पर करुणा बनकर बिखरो'। इस प्रथम गीत में मन्दा अपने आदर्श की ओर सकेत करती है। वह मालविका की भाँति अपने प्रेम को किसी के बन्धनो में नही बाँध देती। सन्तप्त वसुन्धरा पर शीतलता बिखेरती चलती है। मन्दाकिनी आगे चलकर इसी भावना पर दृढ रहती है। सामन्त-कुमारो के आगे-आगे वह गम्भीर स्वर से गाते हुए प्रवेश करती है। जीवन का कोई भी झझावात उसे रोक नहीं सकता। गिरिपथ का अथक पथिक कभी नहीं रुकता। वह सदा बाधा-विघ्नो से सघर्ष करता हुआ आगे बढ जाता है :

> पृथ्वी की आँखो मे बनकर, छाया का पुतला बढ़ता हो
> सूने तम मे हो ज्योति बना, अपनी प्रतिमा को गढ़ता हो।
> पीड़ा की धूल उड़ाता-सा, बाधाओं को ठुकराता-सा
> कष्टो पर कुछ मुसक्याता-सा, ऊपर ऊँचे सब झेल चले।
>
> —ध्रुवस्वामिनी, पृ. 39

सम्पूर्ण गीत में जीवन के प्रति आस्था-विश्वास निहित हैं। उसमें शक्ति-साहस गूँज रहे हैं। कवि की इस प्रगतिशील विचारधारा का जीवन-दर्शन अनुभव पर आधारित

है। कवि कमशः जीवन की मीमा पर जा रहा है, जहाँ यह आशा निराशा, सुख-दुख को समान मानकर आगे बढता है। इस गीत मे अन्तर वाह्य दोनो ही सघर्षो का सामना करने की ओर मकेत है। मानव माहस लेकर बाधाओ को झेले, साथ ही अपनी ज्वाला को भी आप पीता रहे। कोमा सुवासिनी की भाँति प्रेम के रहस्य को जानने का प्रयत्न करती है। कार्नेलिया ने सुवासिनी से यौवन और प्रेम की परिभाषा पूछी थी। भावुक नारी ने स्त्री-जीवन के सत्य का उद्‌घाटन किया। नन्द की रगशाला मे अभिनय करने वाली युवती को यह रहस्य ज्ञात है कि 'अकस्मात जीवन कानन मे एक राका रजनी की छाया मे छिपकर मधुर बसन्त घुस आता है। शरीर की सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती है।' कामा मन ही मन जीवन की भूख-प्यास पर विचार करती है। वह यौवन की चचल छाया पर मुग्ध है और उसी का गीत गाती है। यौवन के साथ हृदय मे अनेक अभिलाषाओ और आकाक्षाओ का उदय होता है। कोमा अपनी तन्मयता मे जीवन के इस मधुमास से बोल उठती है कि, मेरे प्याले मे मद बनकर, कब छली कब समा गया ?

अन्तिम गीत नर्तकियो का है। वे राजराज के सम्मुख नाचती हुई गाने लगती है। गीत मे यन्त्रणा की कल्पना युवती की भाँति की गयी है। घुँघराली अलको के खुलते ही अन्धकार छा गया। प्रकृति मिलन मे विभार हो उठी। रत्नाकर ने झोला की रत्नमयी प्याली भर ली। वसुधा मदमाती हुई आपा..ा सा झुकाने लगी। अपनी समग्र जिज्ञासा मे कवि ने कई प्रकार के प्रश्न किये है। किसी अज्ञात के प्रति एक सकेत इनमे मिलता है, यद्यपि प्रसाद की रहस्योन्मुख प्रवृत्तियाँ अधिक स्पष्ट न हो सकी।

काव्य विकास

काव्य विकास की दृष्टि से नाटको के गीत एक लम्बी अवधि के भीतर लिखे गये है। उनमे निरन्तर परिष्कार होता गया। सभी गीत विषय और स्थिति के अनुकूल नही मिलते, इस कारण उनके रचनाकाल को नाटको के साथ ही नही रक्खा जा सकता। कुछ गीतो की रचना स्वतन्त्र रूप मे की गयी है। नाटक के गीत पत्रिकाओ मे भी प्रकाशित हुए है। चन्द्रगुप्त का गीत 'पैरो के नीचे जलधर हो, बिजली से उनका खेल चले', जागरण साप्ताहिक, 19 अक्तूबर 1932 ई मे प्रकाशित हुआ था। इस प्रकार कतिपय अन्य गीत भी मिलते हैं। आरम्भिक नाटको मे गीतो की सख्या इतनी अधिक है कि उनका प्रयोग वाह्यारोपित प्रतीत होता है। धीरे-धीरे प्रसाद ने उन्हे स्वाभाविक गति प्रदान की। नाट्यगीतो मे विकास के चिह्न दिखाई देते है और उन्ही का परिपाक अन्य रचनाओ मे हुआ।

राज्यश्री 'जय जयति करुणासिन्धु' गीत गाती है। मानव त्रस्त होकर चारो ओर निहारता है, अन्त मे उसकी दृष्टि कृतिकार पर रुक जाती है। आरम्भ मे कवि

ने इस रहस्य को अपनी जिज्ञासा से देखा था। धीरे-धीरे प्रकृति का स्थान मानव को मिल जाता है। जहाँ कही भावनाएँ अधिक सूक्ष्म हो उठी, एक रहस्यमय वातावरण निर्मित होता है। इन प्रवृत्तियो के छाया-सकेतो मे कुतूहल अधिक है। स्वयं प्रणय का गीत गानेवाली सुरमा 'अलख रूप' को जान लेना चाहती है। इस अवसर पर रचे गये आख्यानक काव्यो मे भी सक्रमण-भावना के दर्शन होते हैं। प्रसाद ने इन प्रयोगो के आधार पर अपने भावी दर्शन का निर्माण किया। नाटक के गीतो ने कवि को पर्याप्त अवसर दिया कि वह 'कामायनी' तक आ सके। 'विशाख' मे भी एक प्रकार की अनिश्चित स्थिति है। चन्द्रलेखा अपनी सखी से सुख की परिभाषा जानना चाहती है। व्यक्ति और जगत के समन्वय का प्रयास नाटककार कर रहा था। इस स्थिति के कारण कही-कही गीत भावहीन, नीरस हो जाते हैं; वे उपदेश की भाँति प्रतीत होने लगते है, जैसे महन्त का गीत।

अध्ययन के कारण जो दार्शनिक चिन्तन प्रसाद को मिल रहा था, उसका प्रयोग उन्होने आरम्भ से ही किया। यदि एक ओर 'विशाख' का कवि जग भर मे मचे हुए अन्धेर पर विचार करता है, तो साथ ही खिले हुए वसन्त, यौवन के मधुपान का भी सकेत करता है। आरम्भ से ही जिस समन्वय का प्रयत्न प्रसाद ने किया, वह उनके सम्पूर्ण काव्य का मूलाधार है। आरम्भिक नाटक 'विशाख' मे गीतो की सख्या बहुत हो गयी है और कवि इन्ही के द्वारा विभिन्न प्रकार की जिज्ञासाओ को प्रस्तुत करता है। प्रणय-यौवन का व्यापार, सुख-दुख का रहस्य, आनन्द की प्राप्ति आदि को गीतो मे स्थान प्राप्त हुआ है। व्यक्तिगत अनुभूतियाँ दर्शन की ओर बढती दिखाई दे रही है।

'अजातशत्रु' की दार्शनिक पृष्ठभूमि मे बौद्ध विचारधाराएँ है और गीतो मे भी इसकी छाया स्पष्ट है। गौतम के गीतो मे करुणा का सगीत है। भिक्षुक दो दिन के सपने का परित्याग करने की शिक्षा देते है। बौद्ध दर्शन के इस करुणा-प्रतिपादन मे पूर्व की-सी शुष्कता नही आने पायी है। दर्शन काव्य से समाविष्ट हो गया है। यद्यपि गीत बौद्ध दर्शन से प्रभावित हैं, किन्तु अब भी उनमे कवि की व्यक्तिगत प्रवृत्तियाँ पूर्णतया विलीन न हो सकी। मागन्धी का गीत है : 'आओ हिये मे अहो प्राण प्यारे।' एक ओर यदि गौतम के गीतो मे विश्व-बन्धुत्व का स्वर है, तो साथ ही मागन्धी की आत्मा भी चीख उठती है। दोनो एक सत्य के दो रूप है। साधु जीवन के सत्य को जान लेने के लिए विकल है, प्रेमी अपनी प्रीति का रहस्य। प्रसाद का व्यक्तिवाद आनन्दवाद तक जाने का एक प्रयास है। अजातशत्रु के गीतो मे व्यक्तिवादी, सास्कृतिक दोनो प्रकार की भावनाएं व्यक्त हुई हैं। एक ओर यदि कवि दार्शनिक स्थापना चाहता है, तो साथ ही वह पात्रो के व्यक्तित्व का विनाश करने को तत्पर नही। प्रसाद के पात्र सजीव और मासल हैं। उनकी व्यक्तिगत भावनाएँ उन्हे एक ऊँचाई तक ले जाती है। श्यामा किसी पथिक की राह देखते-देखते शिथिल हो गयी

है, किन्तु फिर भी प्रकृति के बरसते फूल देख लेती है। जीवन के अन्तर और वाह्य दोनों पक्षों पर गीतों के माध्यम से विचार किया गया है। इसी दृष्टि से चरित्रों का निर्माण हुआ।

'कामना' के मनोवैज्ञानिक रूपक में अन्तम्तल की सूक्ष्म अनुभूतियों का संगीत निहित है। सभी पात्र मनोविकार के अनुरूप चरित्र रखते हैं। उनके गीतों में अपनी ही प्रतिध्वनि है। कामना कभी नहीं मरती। विलास सबको प्रेम का प्याला पिलाता है। विनोद अपनी ही मस्ती का गीत गाता है। उसे चारों ओर सौन्दर्य दिखाई देता है। लालसा 'नैनो के नुकीले तीर' को गीत मे स्थान देती है। अन्त में कवि आनन्दवाद की स्थापना करता है। व्यष्टि-समष्टि का समन्वय हो जाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखे गये नाटक के गीतों में भावों की सूक्ष्मता अधिक है। 'कामायनी' की विशद कल्पना के बीज इन गीतों और विशेषकर मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों में निहित हैं।

जनमेजय का नागयज्ञ—मे जिस सार्वभौमिकता का संकेत गौतम के द्वारा कराया गया है, वह बौद्ध दर्शन के बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय मे समन्वित है। आस्तीक, माणवक विश्व मे समता की घोषणा चाहते हैं, किन्तु दर्शन की अपेक्षा उसमें राजनीतिक प्रभाव अधिक है। कवि धीरे-धीरे व्यावहारिकता की ओर जाता दिखाई देता है। यही कारण है कि 'स्कन्दगुप्त' मे प्रणय-गीतों की अधिकता होते हुए भी मातृगुप्त का भारत-गीत है, जिसमे कवि ने एक लम्बे इतिहास को बाँधने का प्रयत्न किया। इसके द्वारा वह अतीत-वैभव, जाति-गौरव, नवीन चेतना, देशप्रेम आदि की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराना चाहता है। नाटको मे फैली हुई विचारधारा इस गीत में आकर स्पष्ट हुई है। देश का इतिहास जाति का पथप्रदर्शन करता है, उसे नवीन शक्ति देता है। किन्तु प्रगतिशील होते हुए भी प्रसाद गुप्तजी की भाँति राष्ट्रीय कवि नही हैं। उनका मूल स्वर प्रेम और आनन्द का है और राष्ट्रीय भावना मे सास्कृतिक दृष्टि प्रमुख है। मातृगुप्त अपनी कल्पना में अतीत की स्मृतियों में उलझ जाता है। नर्तकी के गीतों में भी शृगार के उच्छृंखल रूप की अपेक्षा गाम्भीर्य अधिक है। एक बौद्धिकता की छाया इन गीतो मे दिखाई देती है। जीवन के सिद्धान्तों को कवि निर्धारित कर चुका है और उनका प्रतिपादन उसने गीतों में किया। देवसेना प्रेमिका का सर्वोपरि आदर्श है और अपनी व्यक्तिगत आकाक्षाओं में उलझकर वह जीवन का सत्य नहीं भूल जाती। उसे नेपथ्य से गीत सुनाई देता है :

सब जीवन बीता जाता है
धूप छाँह के खेल सदृश। —स्कन्दगुप्त, पृ. 94

'स्कन्दगुप्त' तक आते-आते कवि जीवन के अनुभव से बहुत कुछ सीख चुका था। नग्न सत्य सम्मुख प्रस्तुत है। ईश्वर और प्रिय सभी धीरे-धीरे विलीन होते दिखाई

देते है। उसका स्थान किसी अज्ञात शक्ति और मानव को प्राप्त होता है। व्यष्टि और समष्टि का सघर्ष समाप्त हो जाता है; प्रसादजी व्यावहारिक जीवन मे सुख, शान्ति तथा चिरन्तन आनन्द की समस्या पर विचार करते है : मानव की आन्तरिक तृप्ति के साथ ही उसका भौतिक जीवन भी सुखी रहे और अन्त मे उसे वास्तविक आनन्द मिले। रणक्षेत्र मे युद्ध करता हुआ वीर स्कन्द राष्ट्रसेवी होते हुए भी व्यापक दृष्टिकोण रखता है। उसकी प्रार्थना है : 'हमारे सुप्त जीवन को जगा दो।' कवि के गीतो मे शाश्वत भावनाओ का प्रवेश हुआ है जो उसके दर्शन का चरम विकास है। भावना की दृष्टि से स्कन्दगुप्त के गीतो की दार्शनिक नियोजना प्रौढ है। उसमे प्रणय भावुकता मात्र नही है, वरन् मानवीय मूल्यो का समावेश भी करता है। एक स्वस्थ जीवन-दर्शन की नियोजना मे कवि सफल हुआ है। स्वाभाविक उत्थान-पतन मे बँधे हुए मानव की ऊपर उठने की आकाक्षा की अभिव्यक्ति गीतो के द्वारा कवि ने की है।

'एक घूँट' मे जीवन के चिरन्तन मूल्य पर अधिक विस्तार से विचार किया जा सका। उसमे कवि ने एक प्राकृतिक वातावरण का निर्माण किया। यहाँ राजनीतिक-सामाजिक सघर्ष अधिक नही रह जाते। कवि ने ऐतिहासिक कथानक का स्थान स्वतन्त्र कल्पना को दिया है, ताकि वह लक्ष्य मे सफल हो सके। प्रारम्भिक गीत मे ही अलौकिकता का आभास मिलता है। नेपथ्य से सुनाई देता है 'इस अनन्त स्वर से मिल जा तू वाणी मे मधु घोल।' विश्व चेतना पर विचार करता हुआ कवि सम्पूर्ण जीवन को एक इकाई के रूप मे ग्रहण करता है। ऐतिहासिक सत्य, राजनीतिक सघर्ष पीछे छूट जाते है। कवि अधिक गहराई मे जा रहा है और उसने मूल तन्तु को पकड लिया है। व्यक्ति की करुणा, नारी का प्रेम, कल्पना का उद्वेग सब पीछे रह जाते है। कवि अमर सत्य को जान लेने के लिए विकल है। प्रमलता के गीत मे इसी भाव की प्रतिध्वनि है :

एक घूँट का प्यासा जीवन
निरख रहा सबको भर लोचन।
कौन छिपाए है उसका धन
कहाँ सजल वह हरियाली है। —एक घूँट, पृ 21

काव्य के इन शाश्वत मूल्यो ने प्रसाद को उन कवियो की श्रेणी मे रख दिया, जिनका स्वर युगो तक गूँजता है। उन्होने एक दार्शनिक की भाँति जीवन पर विचार किया।

'चन्द्रगुप्त' की राष्ट्रीय तथा ऐतिहासिक कल्पना मे 'स्कन्दगुप्त' की ही रूपरेखा दिखाई देती है। सर्वप्रथम पात्रो की व्यक्तिगत भावनाएँ गीतो मे मुखर हो उठती है। नर्तकी के रूप मे सुवासिनी के गीत शृंगारिक भावनाओ से भरे है, पर

उनमे स्नेह का ताप है।[4] भावुक नारियाँ, कार्नेलिया कल्याणी और मालविका का जीवन व्यक्तिगत भावनाओ म निर्मित है। कल्याणी कुमुदबन्धु को देखकर कहती है सुधा सीकर स नहला दो।' अपनी करुणा का प्रसार उसे सर्वत्र दिखाई देता है। मालविका चन्द्रगुप्त के लिए ही गाती है। अन्तिम गीत मे कवि न भावुक प्रणयिनी के प्राणा का क्रन्दन भर दिया है। कथानक के अनुरूप गीता मे राष्ट्रीय भावनाओ का भी समावेश हुआ है। यवन कुमारी के गीत मे भारत का प्रकृति वैभव है। अलका राष्ट्र सैनिको के लिए प्रयाण गीत गाती है। ऐतिहासिक सत्य की रक्षा के साथ ही गीत कवि प्रसाद की भावुकता का प्रकाशन करते हैं। ध्रुवस्वामिनी के गीतो मे जीवन का सत्य एक भिन्न सी भांति पुन स्पष्ट हो जाता है। प्रगतिशील विचारो म वर्ग सघर्ष की अपेक्षा स्वस्थ दार्शनिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन है। मन्दाकिनी आँसू गिराती हुई भी दुखिया वसुधा पर करुणा बिखरने की कामना करती है। प्रेम और जीवन के प्रति कवि का दृष्टिकोण विकसित हो गया है वह केवल उपभोग की सामग्री नही वरन् जीवन का एक सत्य है। इतना ही नही नर्तकियो का गीत भी जीवन के मूल उपादानो के समीप है

यौवन मदमाती हुई उधर आकाश लगा देखा झुकने
सब भ्रम रहे अपने मुख म, तूने क्या बाधा डाली है।

—ध्रुवस्वामिनी, पृ 47

भाव विकास के साथ ही नाटक के गीतो द्वारा विभिन्न विचारा का भी समावेश होता गया। कामायनी म भी गीतितत्त्व की प्रधानता है और कवि एक उदात्त कल्पना का निर्माण करने म सफल हुआ है। झरना और लहर के गीता मे भावना की दृष्टि म विविधता कम है किन्तु एक दीर्घकाल के कारण नाटक के गीतो म अनेक प्रयोग मिलते है। झरना के मानव और प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण विचारो मे अधिक स्पष्ट है। कामना मे उर्मी का संकेत है। किन्तु अन्य नाटको मे राष्ट्रीय भावना तथा प्रेम करुणा की दार्शनिक अनुभूतियो की प्रधानता है। देश काल से सम्बन्धित कथानक के अनुरूप देश प्रेम की कविताएं स्थान पा सकी है। कल्पित नारी पात्रो के माध्यम मे गीतो म कवि की भावुकता और प्रेम भावना बोलती है। प्रणय गीतो म 'आँसू' की करुणा वेदना का आभास मिलता है। कवि ने जिस अनुभूति पर अपने काव्य की स्थापना की थी वह धीरे धीरे व्यापक होती जाती है। अध्ययन से प्राप्त होनेवाली दार्शनिकता को कवि आरोपित नही करता, वह उसे काव्य मे समन्वित कर लेता है। लहर' मे बौद्ध दर्शन स प्रभावित तीन कविताओ की भावना 'अजातशत्रु मे गौतम के गीतो के अधिक समीप है। कवि की एक ही चिन्तनधारा दो स्थलो पर बिखरी हुई है। 'अशोक की चिन्ता' मे कवि ने जीवन की नश्वरता पर विचार करने के पश्चात् कहा कि मानव को करुणा ससार भर मे बिखेर देनी चाहिए। 'अजातशत्रु' मे गौतम

के गीतों की रचना दार्शनिक नियोजना के लिए की गयी है। अधिकांश पात्र इसमें सहयोग देते हैं। मल्लिका 'विश्वमोहजाल' में चित्त को अधीर न करने के लिए कहती है। इस प्रकार 'लहर' के गीतों में जिन भावों के संकेत मिलते हैं, उनका विकास परवर्ती नाटकों में हुआ। 'कामायनी' की गीत-सृष्टि के लिए कवि को पर्याप्त अवसर मिल गया। जिस विशद योजना का निर्वाह प्रसाद ने अपने महाकाव्य में किया, उसके आरम्भिक प्रयोग इन गीतों में मिल जाते हैं।

भावना के अतिरिक्त शैली की दृष्टि से भी गीतों में प्रयोग किये गये हैं। गीतों की संगीतात्मकता उन्हें नाटक के अनुरूप बना देती है। कई नाटकों के अन्त में स्वर-लिपि दी हुई है। गीतों को राग-रागिनियों से बाँधने का यत्न किया गया है। संगीत की दृष्टि से आरम्भिक नाटकों के गीतों में गति का समावेश है। विशाख का गीत 'तू खोजता किसे, अरे आनन्दरूप है', भैरवी दादरा के अनुसार है। एक अन्य गीत 'लगा दो गहने का बाजार' अंग्रेजी संगीत के अनुसार भी प्रस्तुत किया जा सकता है। संगीत में पूर्व-पश्चिम का समन्वय बँगला से होकर हिन्दी में आया। किन्तु उच्चारण-वैषम्य के कारण हिन्दी को बँगला की भाँति सुकोमल भावनाओं के संचार का अवसर कम मिला। प्रसाद के गीत छन्द तथा संगीत के मात्रिक विधान में अधिक समान हैं। उसमें एक ओर देशी प्रभाव है तो साथ ही शास्त्रीय संगीत को भी स्थान दिया गया है। 'चन्द्रगुप्त' के कई गीतों को कजली, कहरवा की ताल में बाँधा जा सकता है। संगीत की प्रकृति खड़ीबोली में अधिकाधिक विस्तृत होती गयी। निरालाजी ने शुद्ध संगीत पर काव्य को स्थापित किया। छन्दों के विषय में आरम्भ से ही प्रसाद ने भावना के अनुरूप नवीन प्रयोग किए हैं। नाट्य-गीतों में विविधता स्पष्ट हो उठी है। 'चन्द्रगुप्त' का प्रसिद्ध गीत स्वरलिपि के अनुसार इस प्रकार है :

तुम कनक किरण के अन्तराल में
लुक छिपकर चलते हो क्यों !

खम्माच–तीन ताल, स्थायी

		o	3
	रे ग	स रे स म	ग ग ग –
	तु म	क न क कि	र ण के ऽ
x	2		
म – प प	– प म ग	म म प प	प ध सं सं
अ ऽ न्त रा	ऽ ल में ऽ	लु क छि प	क र च ल
नि ध प म	ग –		
–			
ते ऽ हो ऽ	क्यों ऽ		

अन्तरा

		0	3
	ग म	ध – ध ध	ध – ध ध
	न त	म ऽ स्त क	ग ऽ र्व व
x	2		
ध नि ध नि	प – ग –	म म प –	प ध सं सं
ह न क र	ते ऽ यौ ऽ	व न के ऽ	ध न र स
क न ढ र	ते ऽ		

स्वर के आगे पड़ी पाई (–) तथा अक्षर के आगे अवग्रह (ऽ) दीर्घ मात्राकाल का संकेत करते है। x सम का चिह्न, अंक ताल का सूचक तथा o शून्य का प्रतीक है। विभाजन का आधार खडी लम्बी रेखाएँ हैं।

नाट्यशास्त्र के अनुसार नृत्य और गान नाटक के आवश्यक अंग हैं।[5] प्रसाद के गीतों ने इसकी पूर्ति की। नाटकों के गीत पात्रों की आन्तरिक अभिव्यक्ति होने के कारण चरित्र-चित्रण में सहायक होते हैं और कथानक का विकास भी उनसे होता है। इस प्रकार उनकी नाट्योपयोगिता है। अधिकांश नाटकों में प्रहसन न होने के कारण गीत मनोरंजन का कार्य भी करते हैं। प्रहसन के द्वारा नाटकों की स्वाभाविक गति में एक व्यवधान प्रस्तुत हो जाता था। प्रसाद ने इसमें सुधार किया। उन्होने कहा है कि प्राचीन काल में नृत्य अभिनय से सम्पूर्ण नाटक और गीतिनाट्य भारत में प्रचलित थे।[6] इसी का नवीन संस्करण प्रसाद मे मिलता है। इनके माध्यम से उनका कवि-रूप मुखरित होता गया। पात्रों की भावुक कल्पना, स्वगत भाषण, अधिक गीत सभी उनकी कल्पना के प्रसार मे सहयोग प्रदान करते है।

नाटकों में गीतिकाव्य के अनेक रूप मिलते हैं और विभिन्न प्रकार की भावनाओं का उसमें समावेश हुआ है। प्रणय और सौन्दर्य के गीतों मे कवि ने सुन्दर शब्द-चित्रों की रचना की। छायावादी कविता में प्रसाद के प्रणय-गीतों का उच्च स्थान है। पन्त के आरम्भिक प्रणय-गीत प्रकृति का अवलम्ब ग्रहण करते हुए आगे बढ़ते हैं। उनका प्रणय प्रसाद की भाँति उन्मुक्त न हो सका। प्रकृति के नाना व्यापारों को साथ ले चलने के कारण उनमें प्रणय-गीतों का प्रवाह मन्द पड़ गया है। निराला के गीत प्रसाद की भाँति स्वच्छन्द अवश्य हैं, किन्तु वे बहुत सग्रथित हो गए हैं। पन्त अपने प्रियतम से कहते हैं कि आज गृह काज न करो। निराला सखी से वसन्त की बातें करते हैं। महादेवी के प्रणय-गीतों का प्रियतम आध्यात्मिक बन्धनों में बाँधा गया है। कवयित्री का समस्त प्रणय-व्यापार छाया-संकेतों की भाँति है। प्रसाद के प्रणय-गीतों में कीट्स के स्वच्छन्दतावादी गीतों का ताप है। इसके अतिरिक्त इन गीतों की प्रमुख विशेषता उनका सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। गीतों के द्वारा व्यक्ति की विशेष अन्तर्दशा

का चित्रण किया गया है। मानव-हृदय में उठनेवाली सूक्ष्म और उदात्त भावनाएँ उनमें निहित हैं। वे सुख-दुख, आशा-निराशा अन्तःकरण की प्रतिध्वनि बनकर आए हैं। लोक-गीतों की सरसता की अपेक्षा साहित्यिक उत्कर्ष प्रसाद के प्रणय-गीतों में अधिक है। 'इस कवि में जो मस्ती है, भावना एवं अनुभूति की जो मृदुता है और मानव-जीवन के उत्कर्ष का जो गौरव है, उसे देखते हुए उसकी प्रतिभा गीतिकाव्य की रचना के अत्यन्त उपयुक्त थी।'[7]

प्रसाद के गीतों में मूलतः स्वानुभूति की अभिव्यक्ति अधिक है और उनमें कवि का व्यक्तित्व झलकता है। उसका भावुक मन नाटकों में इन गीतों के माध्यम से व्यक्त होता है। इस कारण नाट्योपयोगी होते हुए भी गीत कहीं-कहीं कथानक का साथ नहीं देते। उनका स्वतन्त्र अस्तित्व स्पष्ट हो जाता है। गीतों में प्रसाद का हृदय-पक्ष प्रबल रहा है, किन्तु अध्ययन ने उनमें दार्शनिक तथ्यों का समावेश किया। जहाँ कही चिन्तन भावधारा में मिल जाता है, संगीत बोझिल होने लगता है। कवि सत्य के निरूपण में सफल होता है किन्तु गीत का नैसर्गिक प्रवाह मन्थर हो जाता है। 'अजातशत्रु' में गौतम के गीत इसी प्रकार के हैं :

चंचल चन्द्र, सूर्य है चंचल
चपल सभी ग्रहतारा हैं
चंचल अनिल, अनल, जल, थल सब
चंचल जैसे पारा है। —अजातशत्रु, पृ. 48

वर्ड्स्वर्थ और कोलरिज में भी दार्शनिक निरूपण के कारण इसी प्रकार की उपदेशात्मकता यत्र-तत्र मिल जाती है। उनके गीतों का चिन्तन गभीर है। प्रकृति के अन्तस्तल में जाकर प्रेरणा लेनेवाले वर्ड्स्वर्थ को उसके निकट जाकर ही देखा जा सकता है। प्रकृति के विशाल रंगमंच पर उसने अपनी गीतसृष्टि की। उसे प्रकृति से शिक्षा प्राप्त हुई। वर्ड्स्वर्थ कहता है : मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं अब भी तुझे अधिक-से-अधिक प्रेम करता जा रहा हूँ (इट्स पास्ट दैट मेलांकली ड्रीम)। प्रसाद के गीतों में बायरन का-सा विद्रोह नहीं है, उसमें चिन्तनशील कलाकार के संकेत हैं। वह अधिक-से-अधिक प्रकाश की ओर जा रहा है। प्रेम का आदर्श 'प्रेमपथिक' में स्थापित हो चुका था, उसी का विकास नाटक के गीतों में हुआ।

नाटक के गीतों में कवि की भावना अधिक स्पष्ट हुई है। प्रणय के सम्बन्ध का परोक्ष दर्शन होने के कारण 'झरना' के गीतों में रहस्यवादी भावनाओं को खोजने का प्रयत्न किया जाता है। नारी-पुरुष पात्रों के माध्यम से नाटक के गीतों में यह भावना स्पष्ट हुई है। सुवासिनी किसी अज्ञात मौन के लाज भरे सौन्दर्य का संकेत नहीं करती। वह अपने सूक्ष्म रूप में भी इसी धरातल का व्यक्ति है। एक ओर कवि ने जड़ता को चेतनता प्रदान की, तो साथ ही स्थूल को सूक्ष्म बनाया। सौन्दर्य का

स्थान वेदनानुभूति लेती है। नारी का रूप, उसकी प्रवृत्तियाँ गीतों में अधिक मुखर हो उठीं। इसके पूर्व छोटे-छोटे गीतों में कवि अपने ही माध्यम से बोलता है। नाटकों में पात्रों के द्वारा वह अनेक संकेत करता है। विजया चंचला होकर भी स्कन्दगुप्त पर रीझ उठी। उसके गीत मे विलास की कल्पना है :

अगरु धूम सी श्याम लहरियाँ, उलझी हों इन अलकों से
मादकता लाली के डोरे इधर फँसे हों पलकों से।
व्याकुल बिजली-सी तुम मचलो आर्द्र हृदय घनमाला से
आँसू बरुनी से उलझे हों, अधर प्रेम के प्याला से।
इस उदास मन की अभिलाषा अटकी रहे प्रलोभन से
व्याकुलता सौ-सौ बल खाकर उलझ रही हो जीवन से।

—स्कन्दगुप्त, पृ. 155

नारी-पुरुष का सम्बन्ध नाटकों के गीतों में स्पष्ट हुआ है। जीवन के इस सत्य को जब कभी कवि प्रिय-प्रियतम के रहस्य-संकेतों में बाँधने लगता है, चित्र सूक्ष्म हो जाते हैं और इससे शृंगार का परिष्कार होता है। इसके लिए कवि ने प्रतीक विधान का अवलम्ब ग्रहण किया। नवीन प्रतीकों के प्रयोग के कारण कहीं-कहीं चित्र अस्पष्ट हो जाते हैं। केवल अप्रस्तुत विधान तथा सूक्ष्मता के आधार पर काव्य मे रहस्यवाद की कल्पना नही की जा सकती। रहस्यवाद का आध्यात्मिक अंश उसका प्राण है। प्रसाद एक दार्शनिक के रूप में विचार और तर्क करते हैं, किन्तु मानव रूप में जीवित रहते और देखते हैं। प्रसाद का दार्शनिक निरूपण और जीवन-सत्य उन्हें एकमात्र रहस्य-भूमि में रम जाने से रोक लेता है। आध्यात्मिक रहस्यवाद की रूप-रेखा कवि नहीं निर्धारित करता किन्तु उसका संकेत परोक्ष के प्रति भी है। सूक्ष्म कल्पना के द्वारा प्रेम एक ऐसी उदात्त भाव-भूमि पर गया, जहाँ वह सर्वोपरि हो जाता है। इस प्रयास में कवि को जिन छाया-संकेतों का सहारा लेना पड़ा उनमे छायावाद का उत्कृष्ट स्वरूप है। दार्शनिक, रहस्यवादी और छायावादी अपनी चरम सीमा मे एक-दूसरे के निकट है। दार्शनिक तर्क-वितर्क के द्वारा जिस समस्या पर विचार करता है, रहस्यवादी आत्मा परमात्मा की प्रहेलिका सुलझाता है। छायावादी भावानुभूति की चरम परिणति का प्रकाशन करता है। प्रसाद के गीतों में आन्तरिक भावों का मार्मिक प्रकाशन है। जड़ता को चेतनता प्रदान करने का प्रयास 'चित्राधार' की प्रकृति रचनाओ में स्थूल था। झरना, लहर मे भावो से उसका तादात्म्य हुआ और गीतों में उसका पूर्ण परिपाक।

प्रसाद के गीतों में विकास की रेखाएँ भावना की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। कवि लौकिक के सहारे उच्च भावभूमि तक जाने का प्रयत्न कर रहा है। किसी प्रणयिनी के प्रणय-निवेदन और वेदन स्वर में जो संकेत मिलते हैं, उनमें परोक्ष की

भी छाया है। प्रकृति उस परम सत्ता और मानव के बीच एक शृखला का कार्य करती है। 'प्रसाद ने प्रकृति की भूमिका मे ऐसे प्रेमवाद की अभिव्यक्ति की, जिसमे कही-कही परोक्ष प्रेम का सकेत है।'[8] इन्ही परिस्थितियो मे सूफ़ी साधको ने काव्य-रचना की थी। जायमी ने जिस रूपक के द्वारा प्रेम के आदर्श की स्थापना की, वह साकेतिक है। छायावाद-रहस्यवाद के लक्ष्य मे रोमास और अध्यात्म का जो भेद है, उसके दोनो रूप गीतो मे दिखाई देते हैं। लौकिक प्रेम मे भी कवि ने आदर्श का अकन किया है। अलका के सगीत मे यही स्वर है :

ममय विहॅग के कृष्णपक्ष मे रजत चित्र-सी अकित कौन
तुम हो सुन्दर तरल तारिके ! बोलो कुछ बैठो मत मौन।
मन्दाकिनी समीप भरी फिर प्यामी ऑखे क्यो नादान
रूप निशा की ऊषा मे फिर कौन सुनेगा तेरा गान।

—चन्द्रगुप्त, पृ 93

प्रतीक-विधान मे कवि ने नवीन प्रयोग किये और काव्य मे मूर्तिमत्ता, लाक्षणिकता तथा चित्राकन का सुन्दर रूप प्रस्तुत किया। यौवन के माधवी कुज मे कोकिल की कुहू-कुहू मे कवि लज्जानत सौन्दर्य, यौवन का अकन करता है और मौन्दर्य माकार हो उठता है। प्रमाद ने गीतो मे एक सधी तूलिका मे कार्य किया। 'प्रलय की छाया' के चित्रो का विकाम क्रमश होता चला गया। प्रसाद के चिन्तन और दार्शनिक पक्ष ने गीतो को पर्याप्त गाम्भीर्य प्रदान किया पर निराला का मा निर्झर मगीत उसमे स्थान न पा मका। निराला के गीता मे आवेग और गति अधिक है। यही कारण है कि मुक्त छन्दो का निर्माण उन्होने केवल लय के आधार पर किया। प्रमाद की भावना गहराई मे जाकर डूबती है। केवल भावुकता और आवेग के आधार पर उन्होने गीतो का निर्माण नही किया, उसमे मानव मूल्यो को पाने का प्रयत्न है।

गीतिकाव्य की आत्मा अनुभूति है। गीतो मे कवि आन्तरिक भावनाओ को प्रस्तुत करता है। गीतो मे लय, गति, सगीत की प्रधानता का यही रहस्य है। गीतिकाव्य का स्रष्टा इम मगीत गुण, गायन की अधिक मात्रा रखता है। समीक्षक कहते है कि वह व्यक्तिवादी होता है और अपने निजी समार, विचार तथा भावनाओ मे अधिक उलझा रहता है। प्रमाद ने जिस समार का निर्माण किया उसमे भावानुभूति की तीव्रता के माथ ही बौद्धिक चिन्तन है। नाटको के गीता म उन्होने अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन पात्रो के माध्यम मे किया। पात्रो की भाषा मे कभी-कभी झरना और लहर के प्रणयगीतो का कवि बोल उठता है। राक्षस गाता है :

निकल मत बाहर दुर्बल आह !
लगेगा तुझे हँसी का शीत

शरद नीरद माला के बीच
तड़प ले चपला-सी भयभीत। —चन्द्रगुप्त, पृ. 13

आत्म-प्रकाशन के अतिरिक्त गीतों में संगीत तत्त्व की प्रधानता है। नाटकों के अन्त में दी हुई स्वर-लिपियाँ गीतों को संगीत में बाँधती हैं। लय के द्वारा गीतो की रचना करने का प्रयत्न जिन कवियों ने मुक्तछंद में किया, उनसे प्रसाद का स्वर भिन्न है। संस्कृत के मुक्तक काव्य की संक्षिप्त भावधारा तथा पश्चिम की वैयक्तिक अनुभूति प्रसाद के गीतों में मिलती है। एक गीत किसी विशेष मनोदशा का कल्पना-खंड होता है। वह कवि की विशेष मनोवृत्ति का परिचायक है। इस प्रकार कुछ अत्यन्त सुन्दर गीत नाटकों में मिलते हैं :

हे लाज भरे सौन्दर्य ! बता दो
मौन बने रहते हो क्यों ? —चन्द्रगुप्त
* *
सब जीवन बीता जाता है
धूप-छाँह के खेल सदृश। —स्कन्दगुप्त
* *
आह वेदना मिली बिदाई। —स्कन्दगुप्त

इन गीतों मे कवि को अपने भावी निर्माण के लिए प्रयोगों का अवसर मिला। 'कामायनी' में जिस मानवीय भावना, चित्रमय रूपक, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि का सर्वोत्कृष्ट रूप प्रस्तुत हुआ, उसके बीज इन गीतों में निहित हैं। कवि मानव-मूल्यों को गहराई से पकड़ता है और जीवन का आधारभूत सत्य पा जाता है। सुख-दुख का समन्वित स्वर काव्य, दर्शन के साथ ही जीवन-सत्य के रूप में प्रस्तुत होता है। प्रसाद का यह रूप महाकाव्य में अधिक मुखर हो सका, किन्तु उसका संक्षिप्त स्वरूप गीतों मे मिल जाता है। बौद्ध दर्शन से प्रभावित लहर के गीतों में एक विशेष दर्शन का आग्रह है। गीतों में गौतम के भी उपदेश 'अजातशत्रु' में हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त जीवन की अन्य अनुभूतियों का निर्देश कवि ने अपने गीतों में किया। नाटकों के गीतों में भावना की विविधता, भाव की स्पष्टता और भाषा की सहजता है, किन्तु मनोरम भंगिमा में भी वे 'झरना' और 'लहर' के गीतों से कुछ कम आकर्षक और प्रभावशाली नहीं हैं।

संदर्भ

1 जगन्नाथप्रसाद शर्मा प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन, पृ 10
2 जनमेजय का नागयज्ञ, पृ 78
3 स्कन्दगुप्त, पृ 149
4 चन्द्रगुप्त, पृ 192
5 नाट्यशास्त्र, 1/17
6 काव्य और कला—पृ 61
7 रामनाथ सुमन कवि प्रसाद की काव्य-साधना, पृ 127
8 सुधीन्द्र हिन्दी कविता मे युगान्तर, पृ 394

कथाचक्र

'कामायनी' की कथा जलप्लावन से आरम्भ होती है। चारों ओर जल ही जल था' और 'तरुण तपस्वी'-सा मनु हिम की श्मशानभूमि में साधना कर रहा था। जलप्लावन धीरे धीरे उतर रहा था। नौका महावट से बँधी हुई थी। उस 'पुरुष' के हृदय में चिन्ता का उदय होता है और वह देव सृष्टि का स्मरण करता है। इस अवसर पर कवि ने देवताओं की अपूर्णता का दर्शन कराया है। देवता केवल वासना के उपासक थे, वह वास्तविक सुख नहीं, उसका संग्रह मात्र था। उनका समस्त भोग विलास एक स्वप्न की भाँति विलीन हो गया। मनु को आज केवल इतना ही याद आता है कि उस दिन जब भीषण प्रलय आया तो नौका ने उसको [illegible] लिया जिसमें डाँड पतवार न थे। कितने ही दिनों के पश्चात् महामत्स्य के चपेट से नौका उत्तरगिरि से आ लगी। मनु जीवन की प्रहेलिका पर विचार करने लगते हैं। अभी अभी महान भीषण संहार हुआ था, उसका स्मरण हो आया। आरम्भिक 'चिन्ता' सर्ग में जलप्लावन, देवसृष्टि की अपूर्णता, जीवन और मृत्यु की समस्या पर विचार किया गया है।

जलप्लावन

जलप्लावन और मनु की कथा शतपथ ब्राह्मण, पुराण, महाभारत आदि अनेक ग्रन्थो मे बिखरी हुई है। इसके अतिरिक्त विश्व के अधिकांश धर्मो मे भी जलप्लावन घटना का प्रचार किसी न किसी रूप मे प्राप्त है। 'इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एंड इथिक्स' मे 'फ्लड' शीर्षक लेख मे कहा गया है कि बाइबिल, अवेस्ता, ग्रीक, बेबीलोनिया, चीन आदि के प्राचीन धार्मिक ग्रन्थो मे इसका संकेत मिलता है। एन्ड्री ने मिस्र, जापान आदि ऐसे भी देश बताये है जहाँ इसका वर्णन प्राप्त नही। अफ्रीका मे भी इस घटना का प्रचलन नगण्य-सा है। इस कारण सार्वभौमिक जलप्लावन को

स्वीकार करना कठिन है। धार्मिक पृष्ठभूमि पर चित्रित होने के कारण जलप्लावन घटना को ईश्वरीय वस्तु स्वीकार किया गया। इसकी सूचना किसी प्रकार उस व्यक्ति को मिल जाती थी जो प्रलय के पश्चात् भी जीवित रहता था। विज्ञान से इस जलप्लावन की पुष्टि हो जाती है। भूगर्भशास्त्र के विद्वानों का अनुमान है कि "समय-समय पर पृथ्वी के विशेष खंड समुद्र में डूब जाते है। भूमि पर जल-ही-जल भर जाता है। इस प्रकार बहुत समय तक सागर रहते है। धीरे-धीरे पृथ्वी का ऊँचा भाग जल मे गलने लगता है और सागर की तलहटी में तमाम तलछट जमा होती रहती है। तभी क्रमशः स्थिति में परिवर्तन होता है। इस प्रकार पर्वत खड़े हो जाते है, जहाँ युगो से भारी सागर थे।"[1] इस भाँति पृथ्वी पर सागर और उसके अनन्तर पर्वत का उदय होता है। इस प्रक्रिया के विषय मे यद्यपि भूगर्भशास्त्र के विद्वानों के विभिन्न मत है किन्तु उसका अस्तित्व सभी स्वीकार करते है। होम्स, वेगनर आदि विद्वानों ने इस वैज्ञानिक सत्य पर अनुसन्धान किया है।

भारतीय जलप्लावन के वैज्ञानिक आधार पर स्वयं प्रसादजी ने विचार किया और डाक्टर ट्रिकलर, होर्मसा आदि के मत उन्होंने प्रस्तुत किए। हिमालय से लौटे हुए डाक्टर ट्रिकलर की धारणा है कि बालुका में दबे हुए प्राचीन ध्वसावशेषो के चिह्न स्वय इसका प्रमाण है कि हिमालय और उसके प्रान्त मे भी जलप्लावन अथवा ओघ अवश्य हुआ होगा।[2] वैज्ञानिक डॉ. वाडिया का कथन है कि "परमियन काल से ही हिमालय और तिब्बत के निकट समुद्र का मलवा एकत्र हो रहा था। क्रमशः वह ऊपर उठने मे ऊँचा होने लगा। अन्त में सागर विलीन हो गया और उसके स्थान पर ससार का महान् हिमालय पर्वत दृष्टिगोचर होने लगा।"[3] इस भूगर्भ-क्रिया में जाइनर पृथ्वी का समय लगभग सात करोड वर्ष पूर्व मानते है।[4] मानवशास्त्र के विशेषज्ञ मानव का जन्म इसके पर्याप्त समय पश्चात् बताते है। मानव ने मौखिक कथाओं के रूप में इस कथा को जीवित रक्खा। इतिहास, गाथा और विज्ञान में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न समय-समय पर किया गया। भारतीय दर्शन की पौराणिक गाथाओं के अनेक खड आलंकारिक विधि से चित्रित किये गये। जल से आदि सृष्टि की कथा के विषय मे वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है :

> आप एवेदमग्र आसुस्ता आपः सत्यमसृजन्त सत्यं ब्रह्म
> ब्रह्म प्रजापति, प्रजापतिर्देवान्, ते देवाः सत्यमेवोपासते।। 5 । 5 । 1

आरम्भ मे केवल जल-ही-जल था। जल से सत्य, सत्य से ब्रह्म, ब्रह्म से प्रजापति, और प्रजापति से देवता की उत्पत्ति हुई। ये देवता सत्य की उपासना करते हैं। इसी के लिए यूनानियों ने ιJχ 6 V S शब्द का प्रयोग किया। थेल्स आदि भी जल से संसारोत्पत्ति स्वीकार करते हैं।' विश्व-उत्पत्ति के इस सिद्धान्त से भारतीय जलप्लावन का पौराणिक स्वरूप किंचित साम्य रखता है। विश्वकर्मा की कथा इसके

निकट है। उन्होने वृत्र का विनाश कर एक नवीन जाति को जन्म दिया था। उनकी प्रतिष्ठा ज्वालामुखी के देवतारूप में है। इसी के पश्चात् उन्होंने कश्यप का धरणी दान दे दी थी। तिलकजी ने 'आर्कटिक होम इन वेदाज' में लिखा है कि इस कथा की प्रेरणा सभी ने एक ही स्थान में ग्रहण की।

जलप्लावन कथा सम्भवतः अधिक समय तक धार्मिक ग्रन्थों मे स्थान पाती रही। साथ ही परम्परागत मौखिक गाथा के रूप मे भी उसका प्रचलन रहा। आगे चलकर काव्य मे भी उसे स्थान प्राप्त हुआ। इसी कारण प्राचीन साहित्य में इसका उल्लेख है। होमर ने कहा है–"सूर्य सागर के प्रवाह की ओर भागा जा रहा है। सागर, निर्झर, सरोवर, सभी महासागर में निकले है जो पृथ्वी को घेरे हुए है। सूर्य स्वर्ण नौका मे पश्चिम में पूर्व की ओर जा रहा है।" इसका अर्थ डाक्टर वारेन ने यही निकाला कि ससार जलमय है।[6] धार्मिक ग्रन्थो मे इस जलप्लावन घटना का उल्लेख किया गया, तदनन्तर काव्य मे उसे स्थान मिला। यूनानी जलप्लावन कथा के दो रूप है। डिजीजियन डेल्यूज के अनुसार अटिका जलमय हो गया था, अन्य कथा ड्यूकालियन फ्लड की है। इसका वर्णन 140 ई. पू. अपालोडोरस ने अपनी पुस्तक 'विब्लोथिका' : 1 । 7 । 2 में किया है। ज्यूस ने अपने पिता की इच्छापूर्ति के लिए ताम्रयुग के व्यक्ति ड्यूकालियन का विनाश करना चाहा। अपनी रक्षा के लिए उसने एक कवच का निर्माण किया। उसी मे वह अपनी पत्नी पायरा के साथ बैठ गया। ज्यूस ने भीषण जलवृष्टि से पृथ्वी को डुबा दिया और सभी कुछ विनष्ट हो गया। वे दोनो पति पत्नी नौ दिन के पश्चात् पैरासस स्थान पर पहुँचे। उसी समय जलप्लावन कम हुआ। यही उन्होने देवताओं के लिए अपने अंगरक्षक की बलि दी। प्रसन्न होकर ज्यूस ने उनकी इच्छा जानने का प्रयत्न किया। उन्होंने सन्तान की कामना प्रकट की। इस पर पत्थर फेंके गये। जो ड्यूकालियन ने फेके वे पुरुष और जो पायरा ने फेंके वे नारी हो गये।

बाइबिल मे नूह जल का देवता है। नूह को सूचना मिली कि जीवन के नाश के लिए पृथ्वी पर जलप्लावन होगा। प्रत्येक वस्तु विनष्ट हो जायेगी (जेनेसिस 6/17)। उसके पश्चात् पृथ्वी पर अपार जलराशि छा गयी। समस्त पर्वत आदि उसी में विलीन हो गये (जेनेसिस 7/19)। सभी चराचर विनष्ट हुए, केवल नूह और उसके साथी नौका मे बच गए (जेनेसिस 7/23)। यह नौका अराकान पर्वत पर टिक गयी। धीरे-धीरे दसवे मास के प्रथम दिवस में जल कम हुआ। पर्वत-श्रेणियाँ दिखाई देने लगी (जेनेसिस 8/5)। नूह से ही मानवता का विकास हुआ।[7] ईसाइयो की अन्य धार्मिक कथाएँ बाइबिल से प्रभावित है और इनके वैज्ञानिक आधार पर भी विद्वानों ने विचार किया है।

बेबीलोनिया के साहित्य मे जलप्लावन की कई कथाएँ प्रचलित है। उन सबका संग्रह पर्सी हैडकाक ने किया है। प्रमुख कथा के अनुसार बेबीलोनिया मे लगभग तीन

सौ ईसवी पूर्व बेरोसस बेल का पुरोहित था। हस्तलिखित प्राचीन पुस्तको के आधार पर उसने जलप्लावन का वर्णन करते हुए लिखा—"आर्डेट्स की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र एक्सूथ्रोस ने लगभग अठारह सर (18X3600 वर्ष) तक राज्य किया। उसी समय एक भीषण बाढ़ आयी। राजा को पूर्व ही स्वप्न में इसका आभास मिल गया था। समस्त भू-भाग के जलमय हो जाने पर भी वह अपनी नौका में बना रहा। जल का वेग कम हो जाने पर उसने तीन बार पक्षी उड़ाए। अन्तिम बार पक्षी के न लौटने पर वह बाहर निकला। उसने देवताओ को बलि देकर पुनः बेबीलोनिया का निर्माण किया।" इसके अतिरिक्त गिलगमेश महाकाव्य में भी जलप्लावन का सजीव चित्रण है। शुरिपाक नामक नगर यूफ्रेट्स के किनारे स्थित है। वही भीषण जलप्लावन हुआ। सातवें दिन वातावरण के शान्त हो जाने पर मानवता का विकास आरम्भ हुआ।[8] बेबीलोनिया और बाइबिल की कथाओं मे सामीप्य है। पहलवी ग्रन्थों के अनुसार सृजन के पूर्व एक वाद-विवाद हुआ। आकाश, जल वायु आदि से दानवों का संघर्ष हुआ।[9] फारसी धार्मिक ग्रन्थों में देवताओ ने विचार विमर्श के पश्चात् यह निर्णय किया कि अपार शीत के साथ ही हिमपात द्वारा एक भीषण बाढ़ ले आयी जाय। यीमा को संकेत कर दिया गया कि वह अपनी रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर ले।[10] सुमेरियन ग्रन्थों में भी स्वप्न में जलप्लावन का संकेत जी यु-सुद्र को मिला जो सात दिन रहा। उनके 'पारनिपीश्तम' जल देवता ही थे। 'सेक्रेड बुक आफ चाइना' के अनुसार चीन में भी शीह पूजा के अन्तर्गत यू की बुद्धिमत्ता का वर्णन है जिसमे राजा बच जाता है।

इस प्रकार विश्व की जलप्लावन कथा में कई पारम्परिक साम्य है। सभी में जल के साथ झझा, हिमपात, अन्धकार आदि भी आते है। इस भीषण वेला की सूचना एक व्यक्ति को पूर्व ही किसी न किसी प्रकार मिल जाती है। धीरे धीरे जलप्लावन कम होता है, वह पुरुष बच जाता है। इसी व्यक्ति से आगे चलकर मानवता का विकास होता है। भारतीय साहित्य मे जलप्लावन की कथा शतपथ ब्राह्मण, पुराण, महाभारत आदि ग्रंथों मे बिखरी हुई मिलती है। महाभारत के वनपर्व मे मत्स्यापाख्यान की कथा है। विवस्वान पुत्र मनु ने पर्वत पर दस सहस्र वर्ष तक तपस्या की। एक दिन चारिणी तट पर आकर मत्स्य ने जीवन-रक्षा की प्रार्थना की। मनु ने उसे क्रमश. जलपात्र, झील, महासरोवर आदि मे रखकर अन्त में सागर मे फेंक दिया। उसी समय मत्स्य ने आगामी प्रलय की सूचना दी। वह बोला, "उस भीषण प्रलय मे सभी कुछ नष्ट हो जायेगा। तुम नौका मे सप्तर्षियों के साथ मेरी प्रतीक्षा करना।" जलप्लावन के समय धरणी जलमय हो गयी। मत्स्य मनु की नौका को हिमालय पर्वत से 'नौबन्धन' तक ले गया। महाभारत के आगामी पर्वों मे भी इसी का सविस्तार वर्णन किया गया। मत्स्यपुराण का प्रारम्भ ही आदि रचना से होता है। मनु की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हे वरदान दिया कि वे प्रलयकाल मे सम्पूर्ण जगत की रक्षा मे सफल होंगे।

एक दिन जब मनु अर्घ्य दे रहे थे कमण्डल के जल में एक शफरी [illegible]। राजा ने उसे कई स्थलों पर रख दिया पर उसका आकार बढ़ता ही चला गया। [illegible] बोले कि तुम अवश्य कोई महाराक्षस हो अथवा भगवान् विष्णु। तब भगवान विष्णु का रूप धारण करने वाले मत्स्य ने कहा कि शीघ्र ही समस्त पृथ्वी जल में डूब [illegible] उन्होंने मनु को एक नाव दी। प्रलयकाल के समय सींगवाले मत्स्य का रूप धारण कर विष्णु मनु के समीप आए। मनु ने भगवान द्वारा सभी जीवों को [illegible] कर नाव में स्थान दिया। यही मनु सृष्टि के आदि कारण हैं और इन्हीं से [illegible] रचना का [illegible]। इसके अतिरिक्त [illegible] पुराण [illegible] पद्मपुराण (उत्तर [illegible]) विष्णु पुराण [illegible] भागवत पुराण [illegible] [illegible] मत्स्यपुराण [illegible] [illegible]

[illegible]

चिन्ता

प्रसाद कामायनी को [illegible] धार्मिक ग्रन्थ नहीं बनाना चाहते थे। मानवता का इतिहास प्रस्तुत करना ही उनका अभिप्राय था। यही कारण है कि ऐतिहासिक सामग्री के होते हुए भी उन्होंने नूतन उद्भावनाओं के द्वारा नए दृश्य उपस्थित किए हैं। कामायनी का आरम्भ जलमय पृथ्वी से होता है और मत्स्य की कथा छोड़ दी गयी है मनु को पहले ही [illegible] संकेत आदि नहीं मिल जाता। उसके पूर्व की प्रासंगिक कथा को कवि ने त्याग कर दिया। आदिपुरुष के शरीर का सजीव वर्णन है

अवयव की दृढ़ मांसपेशियाँ
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिराएँ, स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार।
चिन्ता-कातर वदन हो रहा
पौरुष जिसमें ओत प्रोत
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत।

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर का वर्णन आरम्भ में करते हुए, कवि उसे काव्य की पीठिका बनाता है। कालिदास के 'कुमारसम्भव' की यही पृष्ठभूमि है। भारतीय धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित मनु की तपस्या का आभास 'तरुण तपस्वी' की साधना से मिल जाता है। पौराणिक कथाओं में मनु की जिस दिव्य शक्ति, अलौकिकता पर जोर दिया गया, उसे कवि ने त्याग दिया। मनु मानवता के प्रतीक रूप में 'कामायनी' में चित्रित किये गये हैं। वे स्वाभाविक दुर्बलताओं से युद्ध करते हुए 'आनन्द' तक जानेवाले संघर्षरत मानव हैं। मानवता की इस स्थापना के लिए प्रसाद ने आरम्भ में ही मनु के मानसिक झंझावात के द्वारा देवत्व की अपूर्णता का पर्याप्त चित्रण किया है। यद्यपि आज भी उसे देवत्व की मधुर स्मृतियाँ याद आती हैं किन्तु वह जान गया है कि :

देव सृष्टि की सुख विभावरी
ताराओं की कलना थी

जलप्लावन के उतरने पर 'एक पुरुष' की नौका महावट से बँधी है। शतपथ ब्राह्मण में मनु की नाव, 'उत्तरगिरेर्मनोरवसर्पण' में एक वृक्ष से बँधी जिसे प्रसाद ने 'वटवृक्ष' कहा। प्रलय दशा की भीषणता पौराणिक कथा के समीप है किन्तु कवि ने स्वतन्त्र उपमाएँ की हैं। मनु की नौका में डाँड़े अथवा पतवार न थे। वह महामत्स्य के एक चपेटे से उत्तरगिरि के शिर से टकराती है। उत्तरगिरि का यह स्थान हिमालय में है। इस जलप्लावन स्थान और मनु के नौकावरोहण के विषय में 'कोषोत्सव स्मारक संग्रह ग्रंथ' के निबंध में प्रसादजी का विचार है कि "मेरु और उसके पास ही उत्तर कुरु का वर्णन है। कई प्राचीन ग्रंथों में मेरु के समीप ही उत्तर कुरु का नाम आने से प्रतीत होता है कि ये दोनों देश और पर्वत आसपास के हैं। वह उत्तर कुरु प्रदेश भारतीय उपाख्यानों में पवित्र और पूर्वजों का देश कहा गया है। भीष्म पर्व में इसका विशद वर्णन है। वहाँ के लोग शुक्ल वर्ण (गौर) अभिजात, सम्पन्न, नीरोग और दीर्घजीवी होते थे।" बृहत्संहिता में भी कहा है :

उत्तरतः कैलासो हिमवान वसुमान गिरिर्धनुष्मांश्च
क्रौंचोमेरुः कुरवो तथोत्तराः क्षुद्रमीनाश्च।। 14/24

इस विषय में अविनाशचन्द्र दास का भी मत है कि सप्तसिन्धु उत्तर पश्चिम की ओर गांधार प्रान्त के द्वारा पश्चिमी एशिया अथवा एशिया माइनर से मिला हुआ था।[11]

जलप्लावन के समय चराचर का कोई भी चिह्न शेष नहीं रह गया था, इसे कामायनी में 'वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही हँसती-सी पहचानी-सी' के द्वारा चित्रित किया गया। परिस्थिति वर्णन के पश्चात् मनु के हृदय का झंझावात दिखाया गया जो कि मनोवैज्ञानिक आधार पर है। भारतीय दर्शन में मनु का मन अर्थ भी किया जाता है। इस स्थिति से प्रसाद ने देवत्व को 'अपूर्ण' कहकर मानव को सर्वोपरि बताया। गन्धर्वो का विलासी रूप पौराणिक ग्रन्थो में भी मिलता है। 'कामायनी' के भीषण जलप्लावन दृश्य का समर्थन तद्विषयक सभी ग्रन्थों में मिल जायेगा। बाइबिल में प्रसंग है : 'पृथ्वी पर सर्वत्र जल बिखर गया। सम्पूर्ण स्वर्ग के नीचे के ऊँचे पर्वत उमसे भर गये। प्रत्येक जीवित वस्तु नष्ट हो गयी, केवल नूह बच गया।' गिलगमेश महाकाव्य का यही चित्र है। मत्स्य पुराण, शतपथ ब्राह्मण में भी सम्पूर्ण पृथ्वी जलमय हो जाती है। इस ऐतिहासिक, पौराणिक दृष्टि से 'कामायनी' का जलप्लावन वर्णन सार्थक है। कवि ने वाडव ज्वाला, जलधि, झंझावात का वर्णन किया है। वह पचभूत का भैरव मिश्रण था। इसी अवसर पर मानवीय भावनाएँ आरोपित है। मनु के 'भीगे नयन' थे। जिस नौका का वर्णन पौराणिक ग्रन्थों में हुआ, वह अलौकिक थी। प्रसाद की नौका मे भी डाँड़ अथवा पतवार न लगते थे, वह पगली बारम्बार उठ-उठ गिर-गिर पड़ती थी। मनु की इस नौका को महामत्स्य का एक 'चपेटा' उत्तरगिरि के शिर से टकरा देना है। प्राचीन आख्यान मे वह मत्स्य के पख से बँधकर हिमवान प्रदेश मे पहुँचती है। यही एक स्थान पर 'तिमिंगल' शब्द का प्रयोग हुआ है। यह वही बड़ा मत्स्य है जो छोटे को खा जाता था। पुराण कथाओं में शफरी ने मनु से इसी स रक्षा करने की प्रार्थना की थी (शतपथ 8/1.3)। चिन्ता के अन्त मे मनु जीवन-मृत्यु के विषय मे विचार करता है। इस चिरन्तन सत्य के विषय मे भारतीय दर्शन मे भी अनेक प्रकार से विचार किया गया। वृहदारण्यक उपनिषद् (3/9/28) मे याज्ञवल्क्य ने इसी प्रश्न को उठाया है। वृक्ष कट जाने पर पुनः पल्लवित और पुष्पित हो उठते है, किन्तु अभागा मानव काल के निष्ठुर प्रहार से आहत होकर पुनः जीवन नहीं पाता। यदि एक बार वह विलीन हो जाता है, तो फिर उसे जीवन क्यों नहीं मिलता ? छान्दोग्योपनिषद् (5/3/1) में जीवल के पुत्र प्रवाहण ने आरुणिकुमार श्वेतकेतु से पाँच प्रश्नों में मृत्यु का ही रहस्य पूछा था। कठोपनिषद् (1/1) मे नचिकेता ने यमराज से तीसरे वरदान में काल के रहस्य की याचना की थी : 'मृत मनुष्य के विषय में सन्देह हैं। किसी का कथन है कि मृत्यु के पश्चात् आत्मा रहती है और कोई कहता है, नहीं रहती। आपके उपदेश से मैं

इस विषय में भली भाँति जानने का अभिलाषी हूँ।' यही तीसरा वर है। 'कामायनी' के आरम्भिक सर्ग 'चिन्ता' में इतिहास के साथ ही प्रसाद की स्वतन्त्र कल्पना भी दिखाई देती है।

आशा

धीरे-धीरे धरातल से हिम आच्छादन हटने लगा। सागर का आन्दोलन शान्त हो रहा था। वनस्पतियाँ फिर से हरी भरी हो गयीं। क्रुद्ध प्रकृति की निद्रा भंग हो गयी, वह नवीन जागरण था। सिन्धु शय्या पर पृथ्वी नववधू की भाँति शोभायमान थी। यही पुनरुत्थान प्रायः सभी जलप्लावन कथाओं में मिलता है। प्रलय शान्त हो जाता है और नवीन मानवता का विकास आरम्भ होता है। पौराणिक गाथाओं में आदिपुरुष को ईश्वरीय शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है, इस कारण उसके हृदय में प्रायः उस प्रकार के विचार नहीं उठते। 'कामायनी' के आदि मानव में इस प्रकार की जिज्ञासा स्वाभाविक है। चारों ओर मनु नूतन जीवन की पुकार सुनता है, वह भी अपने अस्तित्व का ज्ञान कराना चाहता है। विस्तृत गुहा में मनु ने सुन्दर स्वच्छ स्थान बनाया था। वे सागर के तीर अग्निहोत्र प्रज्वलित करने लगे। शतपथ में भी वर्णन मिलता है 'मनुर्ह वा अग्रे यज्ञेनेजे यदनुकृत्येमाः प्रजा यजन्ते।' इसी समय मनु के हृदय में विचार आता है कि सम्भव है मेरी ही भाँति किसी और का भी जीवन बच गया हो। अतः अग्निहोत्र की तृप्ति के लिए वे अवशिष्ट अन्न दूर पर रखने लगे। तपस्वी मनु के अन्तर में द्वन्द्व चल रहा था। वे गाते

> कब तक और अकेले? कह दो
> हे मेरे जीवन बोलो?
> किसे सुनाऊँ कथा? कहो मत,
> अपनी निधि न व्यर्थ खोलो।

यहीं 'एकोऽहं बहुस्याम' की कामना है। मनु बारम्बार शून्य में प्रश्न करता है और केवल प्रतिध्वनि सुन पाता है। इस प्रकार 'आशा' में प्रसाद ने मनु को हवन करने वाले उस मानव के रूप में चित्रित किया जो किसी का सहवास चाहता है। अपने हृदय की जिज्ञासा का समाधान भी उसे चाहिए। तपस्या और एकाकी जीवन लेकर वह अधिक समय तक नहीं चल सकता। प्राचीन आलेखों के अनुसार भी मनु ने प्रलय के पश्चात् यज्ञ आरम्भ किया था। उनका यह रूप पौराणिक साहित्य के अतिरिक्त वेदों के भी निकट है। ऋग्वेद में भी मनु को इसी तपस्या से विभूषित किया गया है (10/63/10)। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मनु ने सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से पाक यज्ञ आरम्भ किया था।

श्रद्धा

'श्रद्धा' सर्ग के आरम्भ मे मनु को मधुकरी का मधुर गुजार सुनाई देता है। मनु ने उस अपरिचित के सौन्दर्य का देखा। कवि इसी स्थल पर नारी का अत्यन्त सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। नारी गाधार देश के नील रोमवाले मेषा का चर्म पहने हुए थी। वह 'विश्व की करुण कामना मूर्ति' की भाँति प्रतीत हुई। श्रद्धा अपना परिचय देती है वह काम की बालिका यहा बलि का अन्न देखकर चली आयी है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मनु के यज्ञ के शेषान्न से इडा की उत्पत्ति हुई। यहाँ प्रसाद ने उस कल्पित वस्तु को छोड़कर, श्रद्धा को प्रस्तुत किया है। वह अन्न देखकर ही जान गयी कि अभी यहा कोई जीवित अवश्य है। परिचय के पश्चात् वह मनु को जीवन का सदेश देना आरम्भ करती है। यही श्रद्धा का मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक निरूपण है, जिसके द्वारा प्रसाद ने मनु को नवीन कर्म मे नियोजित किया। श्रद्धा एक नवीन दर्शन की स्थापना करती है। वह अपनी समस्त आन्तरिक भावना दया, माया, ममता, मधुरिमा और अगाध विश्वास के साथ आत्म समर्पण करती है। श्रद्धा का अत्यन्त उदात्त चित्र प्रसाद ने अंकित किया है उसमे अनेक मानवीय गुणो का समावेश है। समस्त ग्रन्थ मे श्रद्धा अत्यन्त उदार शीलमयी नारी के रूप मे चित्रित है। स्वयं कवि ने आमुख मे अनेक उद्धरण देकर मनु से उसके सम्बन्ध की स्थापना की। 'शतपथ' के अनुसार मनु श्रद्धादेव है। भागवत पुराण मे मनु और श्रद्धा से दस पुत्रो का जन्म माना गया। छान्दोग्य उपनिषद् मे इसकी जो भावमूलक व्याख्या मिलती है, उसमे भी दोनो का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। श्रद्धा स्वय अपने विषय मे अधिक नही बताती किन्तु मनु को काम का सदेश देती हुई कहती है

> काम मंगल से मंडित श्रेय
>
> सर्ग, इच्छा का है परिणाम
>
> तिरस्कृत कर उसको तुम भूल
>
> बनाते हो असफल भवधाम।

सायणाचार्य का 'कामगोत्रजा श्रद्धानामर्षिका' सूक्त का परिचय भी इसकी पुष्टि करता है। इसी कारण श्रद्धा कामायनी भी है। प्रसाद ने इस सर्ग मे श्रद्धा का जो वर्णन किया उसका व्यापक प्रसार सम्पूर्ण काव्य मे होता गया।

काम

मनु के जीवन मे श्रद्धा के प्रवेश के साथ काम का उदय होता है। 'काम' सर्ग मे मनु के अन्तर मे उठते हुए भावो के द्वारा कवि ने उसका चित्रण किया। काम ने मनु के जीवन को आनन्द और उल्लास से भर दिया। उनके मन मे एक विचित्र प्रकार का कौतुक हो रहा था। हृदय मे मूर्तिमान काम स्वय कहता है . 'अब भी तो

मैं प्यासा हूँ, मेरी तृप्ति न हो सकी। देवताओ ने मेरी ही उपासना करते हुए स्वयं को समाप्त कर दिया।' विष्णु-पुराण में कामदेव-सम्बन्धी उल्लेख हैं। इस अवसर पर कवि रति और काम की एक रूप-रेखा प्रस्तुत करता है। रति रागमयी और मधुमय है। उसकी सहेलियाँ है, सुर-कन्याएँ। काम तृष्णा का विकास है। आज देवताओं के विनाश के साथ सब कुछ बदल गया। काम अब अनंग की भाँति भटक रहा है। उसे जीवन मे कर्म और शक्ति की आवश्यकता का अनुभव हुआ। काम स्वयं संसृति की प्रगति बनने का व्रत लेता है। श्रद्धा रति-काम का ही समन्वित रूप है। वह जीवन का वरदान है।

कवि ने मनु के मन में उठनेवाली भावनाओ से काम का चित्रण किया है। आरम्भ मे मनु काम से प्रश्न करते है और अन्त मे स्वप्न के समय काम स्वय उन्हें एक सदेश दे जाता है। प्रसाद ने काम को व्यापक रूप मे ग्रहण किया है। काम मानव जीवन को गतिमान करनेवाली चेतना शक्ति है। 'कामगोत्रजा श्रद्धा नामर्षिका' से भी श्रद्धा और काम के सम्बन्ध की पुष्टि होती है। वेदो मे श्रद्धा को कामायनी रूप मे स्वीकार किया गया, किन्तु पुराणो मे स्वय श्रद्धा से काम की उत्पत्ति मानी गयी। वेदों मे काम एक देवता रूप मे प्रतिष्ठित है। पर क्रमशः उसके इस व्यापक रूप मे परिवर्तन होने लगा। पुराणों मे कथा भाग अधिक होने के कारण काम को श्रद्धा का पुत्र बना दिया गया। सम्भवतः 'काम' की विशिष्टता के कारण पूर्वज एव सन्तान दोनो को एक ही गोत्र में स्थान मिला। 'कामायनी' मे श्रद्धा के दोनो रूप मिल जाते है। वह कामायनी है, साथ ही मनु को 'काम' मे नियोजित भी करती है।

काम की ऐतिहासिक परम्परा से ज्ञात होता है कि क्रमशः उसका रूप विकृत होता चला गया। वेदों का काम देवता पुराणों मे कथा की सामग्री बना। अथर्ववेद 9/2 के अनुसार काम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद में भी उसका वही रूप है 2/10/129। डॉ. ग्रिफिथ ने अनुवाद किया : 'द प्राइमल सीड आफ द जर्म आफ स्पिरिट।' पुराणो मे आख्यानो के द्वारा इसी का समर्थन है। उपनिषदो मे काम की दार्शनिक विवेचना हुई। काम का आध्यात्मिक दार्शनिक रूप आगमशास्त्रों में परिवर्तित हुआ। वह सौन्दर्य-कला का विषय बना। धर्म, अर्थ और मोक्ष के साथ काम भी समन्वित हुआ और सस्कृत नाटको मे प्रेम-कला बनकर आया।[12] उसका शृंगार पक्ष बढता रहा और 'कामसूत्र' की रचना भी हुई। शिव ने इसी काम को भस्म किया। वेदों का आध्यात्मिक काम इस अधोगति में आकर सकुचित हो गया। प्रसादजी ने काम के विषय मे 'काव्य और कला…' में लिखा है …"काम का धर्म में अथवा सृष्टि के उद्गम मे बहुत बडा प्रभाव ऋग्वेद के समय मे ही माना जा चुका है, 'कामस्तग्ने समवर्तताधि मनसोरेतः प्रथम यदासीत्'। यह काम प्रेम का प्राचीन वैदिक रूप है। और प्रेम में वह शब्द अधिक व्यापक भी है। … काम में जिस व्यापक भावना का समावेश है, वह इन भावो को आवृत्त कर लेता है।" 'कामायनी' के द्वारा प्रसाद ने

पुनः काम के उदात्त वैदिक स्वरूप की स्थापना की। उन्होंने उसका प्रवृत्तिमूलक तत्व ग्रहण किया और ऐतिहासिक चित्रण की ओर अधिक ध्यान न देकर, उसके मनोवैज्ञानिक पक्ष को लिया। श्रद्धा अपने प्रथम परिचय मे ही 'काम' की व्याख्या करती है .

काम मंगल से मंडित श्रेय
सर्ग, इच्छा का है परिणाम

इस प्रकार कामरूपा श्रद्धा मनु के जीवन का वरदान बनकर आती है। 'काम' सर्ग में कवि ने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण के द्वारा उसका उदात्त रूप प्रस्तुत किया। काम का एक व्यापक रूप चित्रित करने के पश्चात् कवि उसी के द्वारा संकुचित स्वरूप पर भी विचार करता है। काम के इस सीमित अर्थ को ग्रहण करने के कारण देवताओ का विनाश हुआ। आदिमानव को यह काम सचेत कर देता है। देवता केवल आकर्षण और मिलन की छाया में विचरण करते थे। उन्होंने काम के व्यापक रूप को नही ग्रहण किया और अन्त में उनकी वासना का अन्त हुआ। काम मानवता के आदि-पुरुष को सावधान कर देता है जिससे वह ऐसी भूल न करे। आरम्भ मे काम की रूपरेखा बनाते हुए मनु उसकी आकर्षक मधुर छवि को ही जानता है : कुसुम दुग्ध-सी मधु धारा। किन्तु श्रद्धा ने काम का संदेश मादकता में झूमने के लिए नही दिया था; उसने मानवता को विजयिनी बनाने के लिए कहा था। श्रद्धा ने मनु के जीवन में मधुरिमा भर दी। मनु के मन का काम स्वयं अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का प्रयत्न करता है। काम का सर्वोत्तम रूप श्रद्धा है। वह मूल शक्ति है जो वरदान-रूप में मनु को प्राप्त हुई। उसी के द्वारा विश्व की रंगस्थली मे विजय प्राप्त हो सकती है। जीवन में शुद्ध विकास के लिए काम का व्यापक ग्रहण अपेक्षित है। अथर्ववेद में कहा गया है : हे काम ! तू सर्वप्रथम उत्पन्न होकर, देव, पितर और मर्त्य सभी को प्राप्त हुआ, तुझसे कोई भी न बच सका। तू इस विश्व मे व्यापक और सर्वोपरि है। मै तुझे नमस्कार करता हूँ (अथ 9/2/19)। मनु का काम कहता है :

आरम्भिक वात्या उद्गम मे
अब प्रगति बन रहा संसृति का
मानव की शीतल छाया मे
ऋण शोध करूँगा निज कृति का।

काम के व्यापक रूप की प्रतिष्ठा कवि ने सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण के द्वारा की है। साहित्य मे यह वैदिक काम की नयी स्थापना है। 'कामना' नाटक के रूपक द्वारा भी प्रसादजी ने काम का उदात्तीकरण किया। काम का यह व्यापक, उदात्त रूप 'कामायनी' मे आदि से अन्त तक प्रक्षेपित हुआ है।

वासना

नारी-पुरुष का सम्बन्ध 'वासना' सर्ग के अन्तर्गत काम के पश्चात् चित्रित किया गया। सूक्ष्म वर्णन तथा अप्रस्तुत विधान के द्वारा कवि ने उसके रूप को विकृत होने से बचा लिया। निर्जन पथ पर जीवन का मधुर खेल चल रहा था, दोनो पथिक चले जा रहे थे। दोनो मे अभिन्नता की प्रतिष्ठा के लिए गृहपति-अतिथि, सिंधु-लहर, प्रभात-किरण, आकाश-घनश्याम आदि उपमाएँ प्रस्तुत की गयी है।

लज्जा

वासना के पश्चात् श्रद्धा के मन मे 'लज्जा' का उदय होता है। नारी के अन्तर मे उठनेवाली इस सूक्ष्म भावना का चित्रण कवि ने केवल सौंदर्यांकन के लिए नही किया, वरन् मनोविश्लेषण के आधार पर चित्रित है। आरम्भ मे श्रद्धा अन्तरतम मे प्रवेश करती हुई इस भावना का वर्णन करती है: सुकुमार नवपल्लव के अंचल मे छिपती नवजात कलिका, गोधूलि वेला के धूमिल वातावरण मे झिलमिल करती दीपक की वर्तिका। इस प्रकार का सूक्ष्म रूप धारण कर लज्जा ने पदार्पण किया। श्रद्धा के अन्तरतम मे बसनेवाली 'छायाप्रतिमा' लज्जा उसी प्रकार बोल उठी जैसे मन के हृदय का काम बोला था। लज्जा अपना एक कोमल रूप प्रस्तुत करती है: सौन्दर्य चेतना का उज्ज्वल वरदान है जिसमे अनन्त अभिलाषा के स्वप्न भी जागरण की अवस्था मे रहते है। इसी भाव से सौन्दर्य की रक्षा करने के लिए लज्जा का निर्माण हुआ। नारी के सौन्दर्य के साथ वह जो अपनी अनिवार्यता स्पष्ट करती है। लज्जा के इस परिचय को स्वीकार करती हुई श्रद्धा अपनी परवशता प्रस्तुत करती है: पगली सी उस अन्तर मे बैठी कोई अनोखा करती।

नारी के इस उत्सर्ग और समर्पण पर लज्जा उसका वास्तविक स्वरूप उसे बताती है। नारी श्रद्धा का प्रतिरूप है। सम्पूर्ण विश्वास के साथ मानव के जीवन मे अमृतधारा की भाँति बहते रहना ही उसकी सार्थकता है। चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया को मिलाते हुए चाणक्य कहता है : दो 'बालुकापूर्ण कगारो के बीच एक निर्मल स्रोतस्विनी का होना आवश्यक है।' प्रसाद लज्जा के द्वारा नारी पुरुष समस्या का समाधान भी प्रस्तुत करते है। अन्तर मे करुणा और अधरो पर हास लेकर नारी पुरुष का पथ सँवारेगी। श्रद्धा के अन्तरतम मे उठनेवाली वह एक सूक्ष्म भावना है जो नारी के उदात्त गुणो का भी बोध कराती है : 'मै उसी चपल की धात्री हूँ / गौरव-महिमा हूँ सिखलाती।

कर्म

इसके पश्चात् मनु 'कर्म' मे प्रवृत्त होते है। यज्ञ की कामना और सोम की पिपासा उनमे जाग्रत हो रही थी। श्रद्धा के वचनो का उन्होने अन्य अर्थ स्थापित किया।

एक दिन असुरो के पुरोहित किलात आकुलि मनु के पास आये। उन्होंने यज्ञ करने की सम्मति दी। यज्ञ की ज्वाला धधकने लगी। चारो ओर रुधिर के छींटे बिखरे थे और पशु की कातर वाणी वातावरण में गूँज रही थी। सामने सोम पात्र भरा रखा था, तभी श्रद्धा को न देखकर मनु की चेतना को चोट लगी, क्योंकि उन्होंने उसी के कुतूहल के लिए तो यज्ञ किया था। उधर श्रद्धा अपने शयनगृह में विश्राम कर रही थी, इधर मनु के प्राणो पर मादकता छा रही थी। उन्होंने श्रद्धा के सुप्त सौन्दर्य को देखा और तभी वह जाग उठी।

श्रद्धा ने करुणा का संदेश दिया, देवताओ की भाँति पशु-बलि करना उचित नही। नव मानवता का निर्माण अन्य रीति से होगा। श्रद्धा ने बताया कि भीषण स्वार्थ से विनाश होता है। स्वयं हँसना और दूसरों को भी सुख देना जीवन की सार्थकता है। मनु के कर्मकाडी रूप का वर्णन भारतीय वाङ्मय में भी मिलता है। वेदों में तपस्वी तथा हिंसक यजमान दोनों रूपों में मनु का चित्रण हुआ। यद्यपि ऋग्वेद में पशु बलि आदि का उल्लेख प्रत्यक्ष रीति से प्राप्त नही, किन्तु सोम, मधु आदि की चर्चा है। किलात, आकुलि को पुरोहित बनाकर पशु-बलि और यज्ञ की कल्पना का आधार शतपथ ब्राह्मण है। ऋग्वेद में श्रद्धा का सात्विक अर्थ लेने में उसे भी यज्ञ का सहायक माना जा सकता है। 'श्रद्धया अग्नि समिध्यते श्रद्धया हूयते हवि 10/151/1। किन्तु पशु बलि के लिए स्वयं 'कामायनी' की श्रद्धा भी अपने मनु को रोक देती है। कालान्तर में आकर वैदिक यज्ञों की रूपरेखा बदल गयी और उसमें हिंसक पशु-बलि का समावेश हुआ। ब्राह्मण और पुराणो में अनेक प्रकार से इसका वर्णन मिलता है। मनु का सोमपान, मादक रूप, कर्मकांड, पशु-बलि आदि इन्हीं से प्रभावित है। श्रद्धा वैदिक 'कर्म' की स्थापना का प्रयत्न करती है। देवताओ की विकृति से नव मानवता की रक्षा करना चाहती है। किलात आकुलि के पौराणिक स्वरूप को ग्रहण कर कवि ने श्रद्धा के द्वारा अहिंसा की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला। कर्मकाडी मनु को पशु-बलि और हिंसा में संलग्न देखकर श्रद्धा उसे पुनः एक बार सचेत करती है। आरम्भ में ही उसने काम और कर्म का वास्तविक रूप समझाकर तपस्वी की निवृत्तिमूलक निराश भावनाओं को समाप्त किया था। देवताओ के भोग और असत् कर्म से वह मानवता के आदिपुरुष को ऊपर उठाना चाहती है। उसने कर्म का समष्टिगत स्वरूप अपनाने का आग्रह किया।

प्रसाद ने 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' की निष्काम कर्म भावना की अपेक्षा कर्म के व्यापकत्व पर अधिक ध्यान दिया। इस दृष्टि से वे प्रवृत्तिमार्गी है। शैवदर्शन क्रियाशक्ति के इसी व्यापक प्रसार को महत्व देता है। आणव व्यवधान बनकर क्रियाशक्ति को क्षीण करता रहता है। इसी आणव मल से मुक्ति पाकर आत्मा समन्वय की ओर अग्रसर होता है। उपनिषदो की श्रद्धा कर्म को सात्विक बनाती है। शैवागम की माया आत्मा को क्रियाशक्ति देती है, आणव से मुक्त करती है और

उसे एक व्यापक भूमि पर ले जाती है। उसे 'मूलकारण' माना गया है। (तत्रालोकः 6/117)। प्रसाद का व्यावहारिक 'कर्म' भी 'हम-तुम' का भेद समाप्त कर मानवता का कल्याण चाहता है। श्रद्धा और मनु के सवादो मे उन्होने कर्म के उभय पक्ष पर विचार किया।

ईर्ष्या

यह सर्ग 'कामायनी' के कथानक को गति प्रदान करता है। मनु की हिसात्मक प्रवृत्तियाँ प्रवल हो गयी थी, वे मृगया मे व्यस्त रहते थे। एक दिन सध्या समय श्रद्धा अनमनी-सी बैठी थी। 'केतकी गर्भ-मा पीला मुँह' से उमकी गर्भावस्था का सकेत कवि ने करा दिया। 'भावी जननी' के इस रूप को देखकर मृगया से लौटे मनु कुछ नही बोले, तभी श्रद्धा ने कहा कि दिन-भर हिमा के कारण ही तुम्हे भटकना पडा। न जाने किस अभाव मे तुम्हे दूसरो के द्वार जाना पडा ? मनु बोल उठे कि कोई भूली सी मधुर वस्तु पीडा देती है। उन्होने स्वय को 'चिरमुक्त पुरुष' बताया। श्रद्धा के पीतवर्ण और तकली-गीत का कारण भी उन्होने पूछा। तभी श्रद्धा ने उन्हे करुणा और अहिमा का सन्देश दिया कि निरीह पशुओ को उपकारी बनकर जीन देना ही उचित है ·

पशु से यदि हम कुछ ऊँचे है
तो भव जलनिधि मे बने सेतु।

मनु के मन मे सकुचित विचार थे। वे सहज सुख को किसी मूल्य पर त्याग देने के लिए प्रस्तुत न थे। वे चाहते थे कि श्रद्धा केवल उन्ही की चिन्ता करे; तभी श्रद्धा उन्हे नवीन कुटीर मे ले गयी। गुफा के निकट पुआलो का छोटा-मा छाजन बना था। इधर-उधर लतिकाएँ झूल रही थी। गृहलक्ष्मी के उस गृहविधान को देखकर मनु के मन मे पुन· कुतूहल हुआ ओर तभी नीरवता को भग करती हुई श्रद्धा बोली कि यही हमारा नीड है। उसने अपना तकली-गीत सुनाया जो वह मनु के आखेट पर चले जान पर गाती रहती थी। उसने भावी सन्तान का भी सकेत दिया, जो उसके जीवन मे नवीन उल्लास ले आयेगा। पुत्र के प्रति अपनी प्रणयिनी के प्रेम को देखकर मनु ईर्ष्या मे जल उठे। उन्हे सशय हो गया कि वह सुखी होगी और वे मृग की भाँति कस्तूरी के लिए वन-वन भटकते रहेगे। अपना ज्वलनशील अन्तर लेकर वे चल दिये और श्रद्धा 'रुक जा, सुन ले, ओ निर्मोही' कहती रह गयी। इसी कल्पना के द्वारा कवि ने कथानक को गति प्रदान की। वैदिक साहित्य मे भी पशु-बलि और हिसा की निन्दा है।[13] ब्राह्मण काल मे हिसा के बढते हुए प्रचार के विरुद्ध ऋषियो ने आन्दोलन किया। असुर हत्या, माम भक्षण, सुरापान आदि के पुजारी थे और देवासुर सग्राम का कारण यही विचार-भेद है। मनु का हिसक रूप असुर पुरोहित किलात और आकुलि के समर्ग का परिणाम था। श्रद्धा अपनी उदार प्रकृति से इस हिसात्मक

प्रवृत्ति को रोकने का प्रयत्न करती है। आसुरी प्रवृत्ति के कारण मनु की भावनाएँ संकुचित होकर ईर्ष्या में परिवर्तित हो जाती हैं और वे श्रद्धा को छोड़कर चल देते हैं।

इड़ा

'इड़ा' सर्ग के आरम्भ में मनु के मानसिक द्वन्द्व के कई चित्र हैं : जीवन निशीथ के अंधकार। मन को अधिक स्वच्छन्द रखने हेतु वे श्रद्धा को छोड़कर चले आये, किन्तु उन्हें शान्ति न मिली। एक आन्तरिक संघर्ष उनके मस्तिष्क में चल रहा था। स्वतन्त्रता की कामना करनेवाले मनु स्वयं पर खीझ उठे। जीवन के बीहड़ पथ पर एकाकी वे शिथिल हो चुके थे। उन्हें चारों ओर अन्धकार दिखाई देने लगा। प्रलयकालीन निराशा और जड़ता ने पुनः उन्हें घेर लिया। जीवन निशीथ का अन्धकार मनु को कष्ट देता था। देवेन्द्र इन्द्र की विजय-स्मृतियाँ और भी दुख देने लगीं। तभी उन्हें देवासुर संग्राम का स्मरण हो आया। दानव शरीरोपासना में व्यस्त रहे और देवता 'अपूर्ण अहंता' मे उलझ गये। दोनों में संघर्ष चलता रहा। मनु इसी मानसिक तर्क-वितर्क में थे, कि काम बोल उठा : 'मनु तुम श्रद्धा को गये भूल' और :

> तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की
> समरसता है संबध बनी अधिकार और अधिकारी की।

इस स्थल पर कवि काम के शब्दों में मानव-जीवन की विषमताओं का वर्णन करता है। मनु ने श्रद्धा को समझने में भूल की और इसलिए उनका मानव शापग्रस्त होगा। काम का अभिशाप समाप्त होते ही मनु का आन्तरिक द्वन्द्व पुनः प्रारम्भ हो गया। उधर सरस्वती मधुर शब्द करती बही जा रही थी। वह निरन्तर कर्म का प्रतीक और प्रसन्नता की धारा थी। निराशा की रात्रि समाप्त हुई, प्रभात हो गया, आलोक-रश्मियाँ बिखर गयीं, कलरव जाग उठा। तभी मनु ने देखा कि तर्क-जाल की भाँति अलकें बिखरी थीं। किसी का भाल उज्ज्वल शशिखंड की भाँति चमक रहा था। पद्मपलाश से दोनों नेत्रों में अनुराग-विराग झूम रहे थे। गुंजरित मधुप से संयुक्त मुख में गीत भरे थे। संसृति का सर्व विज्ञान-ज्ञान उसके वक्षस्थल पर था। एक हाथ में वसुधा के जीवन का सार कर्म-कलश था, दूसरा विचारों के शून्य को आश्रय दे रहा था। त्रिबली, त्रिगुण, तरंगमयी सुन्दर परिधान-युक्त थी, चरणों में तालमय गति थी। उसने परिचय में बताया कि वह सारस्वत प्रदेश की इड़ा है और मनु को बुद्धिवादी सन्देश दिया। विज्ञान को सहज साधन उपाय मानकर मनु ने राज-काज का भार ग्रहण किया।

'इड़ा' सर्ग के साथ 'कामायनी' के कथानक की दिशा परिवर्तित होती है। इड़ा की प्रेरणा कवि को प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त हुई। शतपथ के अनुसार इड़ा की उत्पत्ति

मनु के पाक-यज्ञ से हुई। सन्तान की इच्छा से उन्होंने यज्ञ आरम्भ किया। जल मे हव्य जाता रहा। एक वर्ष पश्चात् नारी का उदय हुआ। मित्र और वरुण ने मार्ग मे उससे भेट की। वह मनु के पास आयी और स्वयं को 'दुहिता' बताया क्योकि आहुति से ही उसका निर्माण हुआ। मनु ने उसके सौन्दर्य की प्रशंसा की। इडा ने उन्हे समझाया कि मै मगलकारिणी हूँ और बलि मे मेरा प्रयोग करो। मुझसे सन्तान होगी। अन्त मे इडा के साथ मनु ने जीवन आरम्भ किया।[14] प्रसाद इड़ा को सारस्वत प्रदेश की रानी स्वीकार करते है। वह जलप्लावन के पश्चात् ही मनु को नही मिल जाती। श्रद्धा को छोडकर चले जाने पर मनु की उससे भेट होती है। कवि की कल्पना अधिक स्वाभाविक आधार पर है। 'इडामकृतवन्मनुषस्यशासनीम्' के अनुसार इडा मनुष्यो पर शासन करती है। कामायनी के 'आमुख' के अनुसार लौकिक सस्कृत मे इडा शब्द पृथ्वी, बुद्धि, वाणी आदि का प्रतीक है। 'कामायनी' मे वह बुद्धि के प्रतिनिधि रूप मे चित्रित है। उसके रूप-वर्णन से बुद्धि का सजीव चित्र प्रस्तुत होता है। वह बुद्धिवाद के द्वारा मनु को सारस्वत प्रदेश पर शासन करने का सन्देश देती है। इस प्रकार कवि ने कोशग्रन्थो मे वर्णित इडा के विभिन्न रूपो का भी प्रयोग किया। सरस्वती अथवा वृत्रघ्नी के निकटस्थ सारस्वत प्रदेश का वर्णन इतिहास मे मिलता है। स्वय कवि का विचार है कि 'ऋक्काल मे सरस्वती की घाटी मे भी रहनेवाले आर्यो से सघर्ष चल ही रहा था। इसीलिए सरस्वती को वृत्रघ्नी कहा है। ऋक्मत्र 10/27/17 मे सामश्रमी ने आक्षम नदी का भी उल्लेख माना है। इसीलिए उक्त प्रमाणो से गगा से लेकर वर्तमान हेल्मन्द की घाटी और वाल्हीक से लेकर दक्षिण के ऋक्कालिक राजपूताना के समुद्र तक हम आर्यो की एक घनी बस्ती मानते है, जिसके बीच मेरु स्थित है।'[15] नमुचि असुर के वध से भी सरस्वती का सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। इस प्रकार सरस्वती के निकट देवासुर सग्राम की ऐतिहासिक पुष्टि होती है। 'कामायनी' का मनु इसी सघर्ष की याद करता है। इडा भी स्वीकार करती है कि भौतिक हलचल से उसका देश किसी दिन चचल हो उठा था। कवि ने मनु को शासक रूप मे प्रतिष्ठित किया है।

स्वप्न

मनु सारस्वत प्रदेश के प्रजापति है और इडा रानी। 'स्वप्न' सर्ग के अन्तर्गत आरम्भ मे श्रद्धा की दशा का वर्णन कवि करता है। सन्ध्या समय कामायनी पृथ्वी पर पडी, बीते दिनो की याद करती है। विरहिणी के अन्तर मे अनेक विचार आ-जा रहे हैं। शून्य पर्वत प्रदेश मे श्रद्धा इसी प्रकार सोच रही थी कि कोई 'माँ' कहकर बोल उठा। प्रथम बार कवि श्रद्धा के पुत्र को प्रस्तुत करता है। माता उसे 'पिता का प्रतिनिधि' कहकर पुकारती है। उसके हृदय मे हर्ष-विषाद एक साथ आए। बालक के सोते ही वह पुनः उन्ही विचारो मे उलझ गयी। थोड़ी ही देर मे वह स्वप्न देखने लगी।

इसी स्वप्न के द्वारा कवि सारस्वत प्रदेश में मनु और इड़ा के सम्बन्ध की चर्चा कर कथानक को आगे बढ़ाता है। मनु की सुन्दर नगरी में प्रत्येक प्रकार की सम्पन्नता है। इड़ा उन्हें प्रजापति कहकर सान्त्वना देना चाहती है, किन्तु मनु पर मदिरा की मादकता छाती जा रही थी और वे पाशविक हो उठे। भयानक हलचल मच गयी, रुद्र हुंकार उठे। आकाश की क्षुब्ध देव शक्तियाँ क्रोधित हो गयीं। प्रजापति के अत्याचार से पृथ्वी त्रस्त हो गयी। चारों ओर भय का वातावरण था। इड़ा ने बाहर प्रजा के विद्रोही रूप को देखा। मनु उस आकस्मिक घटना से मर्माहत हुए।

इधर श्रद्धा स्वप्न में ही काँप उठी। इस प्रकार स्वप्न के द्वारा प्रसाद ने सारस्वत प्रदेश की स्थिति का वर्णन किया है। मनु इडा को रानी बनाना चाहते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति को अपनी ही कन्या के प्रति काम-इच्छा हुई। एक दिन 'क्या उसका आलिंगन हो सकता है', सोचकर उन्होंने उसे बाँहों में भर लिया। देवता अपनी बहिन के प्रति इस पाप को न देख सके। उन्होने पशुपति से यह अत्याचार बन्द करने की प्रार्थना की, और उन्होंने ऐसा ही किया। 'कामायनी' में इड़ा 'आत्मजा प्रजा' लगभग कन्या की भाँति है। मनु का प्रजापति रूप भी प्राचीन आधार पर है जिसे महाभारत, मनुस्मृति, शुक्रनीति आदि में देखा जा सकता है। शिव कल्याणकर्ता और विध्वंसक दोनों ही रूपों में ऋग्वेद में प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोलकर कामदेव को भस्म किया। शिव का रौद्ररूप 'रुद्र' में निहित है।[16] 'कामायनी' में स्थिति का वर्णन है :

> आलिंगन ! फिर भय का क्रन्दन ! वसुधा जैसे कॉप उठी
> वह अतिचारी दुर्वल नारी परित्राण पथ नाप उठी
> अन्तरिक्ष मे हुआ रुद्र हुंकार भयानक हलचल थी
> अरे आत्मजा प्रजा ! पाप की परिभाषा बन शाप उठी।

संघर्ष

श्रद्धा को स्वप्न में दिखाई देनेवाली स्थिति 'संघर्ष' में पूर्ण रूप से वर्णित है। स्वप्न सत्य होता है। भौतिक विप्लव से प्रजा भयभीत हो उठी। वह राजशरण में रक्षा के लिए आयी, किन्तु अपमानित हुई। इड़ा मनु को अनेक प्रकार से सान्त्वना देती और समझाती है। वे प्रजापति होने के कारण किसी भी नियम का पालन करने को तत्पर न थे। उन्होंने इड़ा की बातों पर ध्यान न देकर अपनी मादकता में उसे बाहुपाशों में रोक लिया। मनु स्वयं पर नियंत्रण खोते जा रहे थे। उन्हें आश्चर्य था कि जिस जनता के लिए उन्होंने अनेक सुख-साधन एकत्र किये, वह विद्रोह कैसे कर उठी। विद्रोहियों के नेता आकुलि-किलात थे। इड़ा उस भीषण जन-संहार को रोकने का प्रयत्न करने लगी। 'जीने दे सबको फिर तू भी सुख से जी ले' कहकर उसने मनु से आतंक न करने की अनुनय की, किन्तु किसी ने नहीं सुना। तभी उसने देखा कि

रक्त-नदी की बाढ़ फैलती जाती है और मनु वहीं गिर पड़े हैं।

'स्वप्न' में जिस भीषण घटना का सकेत कवि ने किया था, उसका वास्तविक स्वरूप 'संघर्ष' में आकर प्रस्तुत होता है। मनु-इड़ा, राजा-प्रजा, प्रकृति और उसके पुतलों का द्वन्द्व चलता है। मनु अथवा मन, इड़ा अथवा वाक् के विवाद का वर्णन शतपथ ब्राह्मण में भी है, जहाँ दोनों अपने महत्व की स्थापना का प्रयास करते हैं। ब्राह्मण के सांकेतिक अर्थ का एक रूप कवि ने ग्रहण किया जिसकी चर्चा उसने 'आमुख' में कर दी है। शतपथ के अनुसार देवताओं ने अपनी स्वसा पर अत्याचार होते देखकर रुद्र से प्रार्थना की और तब संहार हुआ। वहाँ रुद्र का आधा बीज भूमि पर गिर पड़ा। इस कथा का समर्थन अन्य स्थलों पर मिलता है। ताण्ड्य ब्राह्मण में भी प्रजापति अपनी दुहिता पर आकृष्ट हुए। वामन पुराण में पिता-कन्या के आधार पर एक कथा और भी मिलती है। काम का जन्म कृष्ण-रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न रूप में हुआ। नारद ने शम्बर से बताया कि प्रद्युम्न ही उसका काल होगा। राक्षस ने उसे चुराकर सागर में फेंक दिया जहाँ उसे एक मछली निगल गयी। रति नारद के आदेश से शम्बर के यहाँ भोजन पकाती थी। एक दिन उसे मछली में प्रद्युम्न मिला। नारद ने उसे अदृश्य करने की शक्ति दी। रति ने प्रद्युम्न का पालन-पोषण किया। युवक होने पर दोनों में प्रेम और अन्त मे विवाह भी हो गया। प्रद्युम्न ने शम्बर का नाश किया। यह कथा इड़ा-मानव-संबंध से अधिक साम्य रखती है। रूपक रूप में यह कथा भी प्रचलित है कि काम ब्रह्मा का पुत्र है। उत्पन्न होते ही उसने एक पुष्पबाण अपने पिता को मारा और वे अपनी कन्या के प्रेम मे पड़ गये। डॉ. फतेहसिंह ने पुरुरवा-उर्वशी को मनु-इड़ा-सम्बन्ध के समीप प्रस्तुत किया है।[17] इन कथाओ को रूपक रूप में ग्रहण कर आध्यात्मिक और सांकेतिक अर्थ लेना ही अधिक उचित है। शतपथ के बीजपात को कवि ने नही ग्रहण किया। 'कामायनी' मे देवताओं के स्थान पर समस्त प्रजा ही विद्रोह कर देती है जिसका नेतृत्व असुर-पुरोहित आकुलि-किलात करते है। प्रकृति और उसके पुतलों का संघर्ष एक शाश्वत सत्य है, जिसका संकेत कवि ने किया है। प्रकृति-पुरुष, नारी-मानव, हृदय-बुद्धि, सुर-असुर का द्वन्द्व चिरन्तन है। 'कामायनी' के आरम्भ में भी कवि ने देवताओं के प्रकृति-संघर्ष का वर्णन किया है। 'इड़ा' सर्ग में उसे इसका स्मरण हुआ और अन्त मे वह साकार रूप में सम्मुख आया। मनु प्रजापति होकर अत्यधिक स्वच्छन्दता की कामना करने लगे। अन्त में राजा-प्रजा का संघर्ष हुआ तथा जनता ने अत्याचारी के प्रति विद्रोह किया। रुद्र का भयंकर रूप 'आत्मजा प्रजा' के लिए है जो शतपथ ब्राह्मण के अधिक समीप है, किन्तु प्रजा अपनी 'रानी' के लिए संघर्ष करती है। प्रसाद ने अनेक स्थलों पर बिखरी हुई इस कथा में शतपथ से अधिक प्रेरणा ली और आध्यात्मिकता के साथ उसे राजनीतिक स्वरूप भी प्रदान किया।

निर्वेद

'निर्वेद' सर्ग के आरम्भ में सारस्वत नगर की क्षुब्ध, मलिन और मौन दशा का वर्णन है। सरस्वती नदी बही चली जा रही थी, अभी तक आहतों का करुण स्वर सुनाई देता था, प्रकृति में भी उदासी छायी थी। सूने मंडप में इड़ा बैठी थी, निकट ही आहत मनु पड़े हुए थे। वह ग्लानि से भरी बीती बातें सोच रही थी। इड़ा ने देखा राजपथ पर धुँधली-सी छाया, स्वर में करुण वेदना भरे चली आ रही थी। दोनों दुखी बटोही माँ-बेटे मनु को ही तो खोज रहे थे। इड़ा ने द्रवित होकर व्यथा जानने का प्रयत्न किया, तभी श्रद्धा ने आहत मनु को देख लिया। उसे स्वप्न की याद आ गयी। उसने मनु को अपने मधुर स्पर्श से कष्टरहित कर दिया। मधुर संगीत के साथ अरुणोदय हुआ। मनू कृतज्ञता के भार से झुक गये। उन्होंने अपनी आन्तरिक भावनाओं को श्रद्धा के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया। वे 'मंगल की माया', 'प्रभापूर्ण' आदि कहकर आभार प्रदर्शन करते हैं। अनियंत्रित बुद्धिवाद की भर्त्सना करते हुए उन्हांने अपने पुत्र कुमार को प्यार किया। मनु एक विचित्र प्रकार की ग्लानि का अनुभव कर रहे थे कि श्रद्धा को कलुषित मुख कैसे दिखाया जाय। इसी मानसिक द्वन्द्व में वे पुनः कहीं चल दियें। श्रद्धा, इड़ा, कुमार ने प्रातःकाल देखा तो मनु का पता न था। प्रसाद ने कल्पना के द्वारा 'निर्वेद' की कथा को गति दी है। श्रद्धा के उदात्त चरित्र का वर्णन उसकी प्रमुखता है। अभी तक श्रद्धा के मुख से सुन्दर सन्देशों के द्वारा कवि ने उसका रूप प्रस्तुत किया था, यहाँ जीवन की विभीपिका से त्रस्त मनु श्रद्धा की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। प्राचीन आलेखों में भी श्रद्धा का मंगलकारी वर्णन मिलता है। ऐतिहासिक रूप मे वह ऋषिका, कामायनी और मानवी है। 'कामगोत्रजा श्रद्धा नामर्षिका' मं उसका व्यक्तित्व महान है। पुराणों में वर्णित वंशपरम्परा में भी श्रद्धा का महत्वपूर्ण स्थान है।[18] भावना रूप में श्रद्धा का स्थान सर्वोपरि है; वह आदरणीय आस्तिक बुद्धि है। निरुक्त के अनुसार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के प्रति अविपर्य्यपूर्वक बुद्धि उत्पन्न करनेवाली देवी श्रद्धा है। त्रिपुरारहस्य में उसकी उपासना की गयी। इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों सं श्रद्धा के गुण लेकर कवि ने उसे उदात्त, महान, सुन्दर काव्यात्मक स्वरूप प्रदान किया।

दर्शन

'दर्शन' सर्ग का प्रारम्भ श्रद्धा और कुमार के वार्तालाप से होता है। माँ की उदासी का कारण पूछता हुआ भोला बालक अपनी शंका का समाधान चाहता है। श्रद्धा अनेक कटु अनुभवों के पश्चात् इस सत्य पर पहुँच चुकी है कि परिवर्तनशील जगत में सुख-दुख आते-जाते रहते हैं। अभी सृष्टि की विविधता पर विचार कर रही थी कि विषाद से भरी इड़ा दिखाई दी। श्रद्धा बोल उठी कि मुझे तुमसे विरक्ति नहीं। तुमने तो मुझे अवलम्बन दिया। आशामयि, चिरआकर्षण आदि कहकर

वह उसे 'मनु के मस्तक की चिर अतृप्ति' बताती है। इडा क्षमा-याचना करने लगी। अतिरिक्त भौतिकता और विज्ञानवाद से त्रस्त राज्य का वर्णन भी उसने किया। वह जनपद-कल्याणी होकर भी अवनति का कारण बन गयी। श्रद्धा ने अपनी सम्पूर्ण विनय से उसे सान्त्वना दी। अपने पुत्र मानव को वह 'तर्कमयी इडा' के सरक्षण मे रखकर मनु को खोजने के लिए जाना चाहती है। दोनो को राष्ट्रनीति देखने तथा समरसता का प्रचार करने के लिए वही छोडकर, वह चल पडती है।

कुछ दूर जाकर श्रद्धा ने प्रकृति के सुन्दर वातावरण मे मनु को निर्जन तट पर पाया। सर्वमगला के सम्मुख मनु ने अपनी लघुता स्वीकार की। आज उन्हे अपनी भूल का एहसास हुआ। 'प्रलय की छाया' की कमला ने भी अन्त मे पद्मिनी की वास्तविकता को जाना था। श्रद्धा ने मनु को पुनः जीवन के सत्य का बोध कराया। उस समय सर्वत्र प्रकाश छा गया। नटराज स्वय प्रसन्न होकर नृत्य कर उठे। उस आनन्दपूर्ण ताडव से समस्त ताप विलीन हो गया। मनु ने देखा . सम्मुख एक सुन्दर सृष्टि झूम रही थी। वे 'समरस अखड आनन्द वेश' को देखकर आश्चर्यचकित रह गये। इस प्रकार कवि ने आदर्श स्थापना का प्रयत्न किया। श्रद्धा की 'मातृमूर्ति' रूप मे कल्पना उसे नारी के सर्वोच्च पद पर ले जाती है। प्राचीन ग्रन्था मे उसका स्थान ऊँचा है। त्रिपुरारहस्य के ज्ञान खड मे कहा गया है ·

> श्रद्धा माता प्रपन्न सा वत्सलेव सुत सदा
> रक्षति प्रौढभीतिभ्य सर्वथा नहि सशय ।।
> श्रद्धा हि जगता धात्री श्रद्धा सर्वस्वजीवनम्
> अश्रद्धा मातृविषये बालो जीवेत् कथ वद ।।[19]

कवि ने श्रद्धा के दार्शनिक और आध्यात्मिक स्वरूप को स्पष्ट किया है। वह अपने ऋषिका रूप मे उपस्थित हुई। नारी की परिणति माता मे करके कवि ने अरविन्द की 'शक्तिरूपा' को स्थान दिया। भारतीय दर्शन मे नारी का सर्वोत्कृष्ट रूप माता है। प्रकृति के विशाल रगमच पर श्रद्धा के द्वारा प्रसाद ने आनन्द की स्थापना की। उपनिषदो की अद्वैत भावना तथा शैवदर्शन की समरसता का आभास कई पक्तियो मे मिल जाता है। श्रद्धा, इडा और कुमार एक क्षण के लिए विस्मृति की अवस्था मे हो जाते हैं। वह 'हृदयो का अति मधुर मिलन' है। इडा और कुमार पुर को लौटते समय दो नही रहते। आत्मा-परमात्मा को एक रूप माननेवाली वेदाती विचारधारा की छाया कवि की कल्पना पर स्पष्ट प्रतीत होती है। उपनिषदो का प्रसिद्ध शान्ति पाठ जिस पूर्णता की चर्चा करता है, वह उपनिषद् दर्शन का मूल स्वर है। प्रसादजी ने अभिन्नता को समरसता तथा आनन्द से समन्वित किया। नटराज के नृत्य से आनन्द की स्थापना शैव-दर्शन के अनुसार है। निर्माण और विनाश दोनो ही नटराज के नृत्य

से होते हैं। तांडव और लास्य में इसी कारण विभेद किया गया। शैवागम में 'क्रीड़ात्वेनखिलम् जगत्' की प्रतिष्ठा इसी आधार पर हुई। कामायनी में चर्चा है : 'संहार सृजन-से युगल पाद'। कवि ने विभिन्न दर्शनों का काव्यात्मक रूप प्रस्तुत किया है।

रहस्य

कथानक में दर्शन का प्रवेश बढ़ता है। 'रहस्य' सर्ग में मनु और श्रद्धा हिमप्रदेश में आगे बढ़ते हैं। अधिक थक जाने के कारण मनु रुक जाना चाहते हैं, पर श्रद्धा उन्हें लिये चली जा रही है। अन्त में वे समतल पर आ गये, जहाँ :

ऊष्मा का अभिनव अनुभव था
ग्रह, तारा, नक्षत्र अस्त थे,
दिवा रात्रि के संधि काल में
ये सब कोई नहीं व्यस्त थे।

इस अवसर पर श्रद्धा मनु को इच्छा, ज्ञान और कर्म के लोक दिखाती है। वहीं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की पुतलियाँ नृत्य कर रही हैं। इच्छा भावनाओं की जननी है। जीवन की मधुर लालसाओं का उससे सम्बन्ध है। पाप-पुण्य इसी पर अवलम्बित हैं, इच्छा चिर वसन्त का उद्गम है। कर्म में नियति की भी प्रेरणा रहती है। यहाँ क्षण-भर भी विश्राम नहीं। इसके पीछे समस्त समाज भागा चला जा रहा है। ज्ञान के क्षेत्र में सुख-दुख से उदासीनता होती है। बुद्धि मरु में भटकाती है। त्रिपुर में इच्छा, ज्ञान, क्रिया तीनों ही विलग हैं, इसी कारण इच्छा पूर्ण नहीं होती। अन्त में कवि श्रद्धा की स्मिति से इन तीन विन्दुओं का मिलन स्थापित कराता है। यहाँ शैवागमों का प्रभाव दिखाई देता है। 'त्रिपुरारहस्य' में इच्छा-ज्ञान-कर्म के समन्वय का वर्णन मिलता है : 'त्रिपुरानन्तशकतैक्य रूपिणी सर्वसाक्षिणी'। शंकर ने भी त्रिपुर-दाह किया था। प्रसाद श्रद्धा की स्मिति से इस कार्य को सम्पन्न करा देते हैं। तंत्रों में वर्णित पाँच तन्मात्र शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का भी समावेश हुआ है। श्रद्धा का उदात्त स्वरूप, इच्छा, ज्ञान-कर्म का समन्वय, रुद्र का तांडव आदि की कल्पना कवि ने शैव ग्रन्थों से प्राप्त की। मनोमय कोश तक विभिन्न प्रतीत होनेवाले इच्छा, ज्ञान, क्रिया विज्ञानमय कोश में एकाकार होने की चेष्टा करते हैं और अन्त में आनन्दमय कोश में एक हो जाते हैं। 'काव्य और कला' में कवि ने अपने आत्मवादी आनन्द की व्याख्या करते हुए स्वयं आगमों से अनेक उदाहरण दिए हैं। 'रहस्य' सर्ग के द्वारा प्रसादजी एक महान उद्देश्य की स्थापना करते हैं जिसका आधार श्रद्धा है। श्रद्धा जीवन-युद्ध के थके हुए सैनिक मनु का पथ-प्रदर्शन करती है।

आनन्द

अन्तिम सर्ग 'आनन्द' है। पर्वत प्रदेश से सरिता की घाटी मे एक यात्री-दल चला जा रहा था। धर्म के प्रतिनिधि वृषभ को मानव लिये हुए था, साथ ही इडा भी थी। वह बताती है कि किसी दिन एक मनस्वी समार की ज्वाला से पीडित होकर शान्त तपोवन मे आया। उसकी अर्धांगिनी इस दशा पर द्रवित हो उठी। उसके ऑसू वरदान बनकर ससार का मगल करने लगे। वन का समस्त ताप-शाप शान्त हो गया; हरीतिमा, सुख और शीतलता बिखर गयी। अब वे दोनो 'ससृति की सेवा' मे निमग्न, सबको सुख-सन्तोष देते है। वहाँ कोई महाह्रद नामक मानम है, जो मन की पिपासा निर्मल जल से शान्त कर देता है। सारस्वत नगर के वासी इसी अमृत से नवजीवन की कामना करते है। थोडी देर मे समतल आ गया। सम्मुख ही विराट् पर्वत खडा था। कैलास पर्वत पर मनु 'मानस' के किनारे ध्यान-मग्न थे, और निकट ही श्रद्धा पुष्पाजलि लिये खडी थी। इडा जाकर श्रद्धा के चरणो मे नतमस्तक होकर कहने लगी कि तुम्हारा ममत्व मुझे यहाँ खीच लाया, मेरा जीवन धन्य है। तभी मनु कैलास पर्वत की ओर सकेत करते हुए बोले :

> शापित न यहाँ है कोई
>   तापित पापी न यहाँ है
> जीवन वसुधा समतल है
>   समरस है जो कि यहाँ है।

जीवन की ममरमता, अद्वैत भावना, आनन्दवादी प्रकृति का दिग्दर्शन कराते हुए मनु न चराचर विश्व को चिर सत्य, शिव, सुन्दर बताया। वह किमी विराट से सचालित है। श्रद्धा मृष्टि की मगलकामना प्रतीत होती थी। उमकी आभा मानस के तट पर बिखर रही थी। उम 'पूर्ण काम' की प्रतिमा स समस्त सृष्टि परिचालित हो रही थी। क्षण-भर मे मर्वत्र आनन्दामृत छलक उठा। प्रकृति का वैभव अपने सर्वोत्कृष्ट स्वरूप मे दिखाई दिया, मानो स्वय वनलक्ष्मी ने शृगार किया हो। वह सुख-दुख का मधुर मिलन था। लास्य रास से आनन्द छा गया। इस प्रकार आनन्द और समरसता की स्थापना के साथ कवि काव्य का समापन करता है। उसका लक्ष्य है, आनन्द का निरूपण। इडा और मानव का सारस्वत प्रदेश के निवामियो के साथ कैलास पर्वत पर आना प्रसादजी की कल्पना है। इसके द्वारा वे मानवता का मगलमय रूप प्रतिष्ठित कर सके। भोतिक सघर्ष और व्यक्तिगत विषमता से ऊपर उठकर आनन्द का वास्तविक स्वरूप उन्होने मनु के द्वारा प्रस्तुत किया। 'कामना' नाटक मे भी अनेक पात्र सघर्ष के पश्चात् अन्त मे "ईश्वर और मनुष्य, राजा और प्रजा, शासित और शासको का भेद विलीन कर विराट, जाति और देश के वर्णो से स्वच्छ होकर एक मधुर मिलन को क्रीड़ा के अभिनय की कामना करते हैं। स्मित, आनन्द, उषा और

आशा का सम्मिलन ही उनका लक्ष्य है।"

भारतीय वाङ्मय में कैलास पर्वत शिव का साधना-क्षेत्र है। यहीं से वे सृष्टि का निर्माण और विनाश करते हैं। मानस भारत का प्रसिद्ध 'मानसरोवर'-जैसा प्रतीत होता है जहाँ कवि की कल्पना सक्रिय है। महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भव' के आरम्भ में हिमालय का भव्य चित्र प्रस्तुत किया है। वह देवताओं की भाँति पूजनीय है। प्रकृति के इस सुरम्य वातावरण मे कवि ने शिव-पार्वती को प्रतिष्ठित किया। प्रसाद का मनु भी उसी स्थिति पर पहुँचता है। उसके 'शान्त तपोवन' तक जाकर सब आनन्द प्राप्त करते हैं। धर्म का प्रतिनिधि वृषभ शिवजी का नन्दी है जिसे शैवग्रन्थों मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। शिव का यह वाहन शैवागम में भवसागर पार करने का एक उपाय माना गया है। वह धर्म का शुद्ध सात्विक रूप है जिसके द्वारा मानव का उद्धार सम्भव है। प्रसाद ने वृषभ को 'सोमवाही' की सज्ञा दी है। देवताओं के पेय के अतिरिक्त उसका सांकेतिक अर्थ भी लिया जा सकता है। समरसता को कवि ने आनन्द के रूप मे भी ग्रहण किया है। आनन्दवाद की प्रतिष्ठा 'पूर्ण काम' के द्वारा होती है। इसी अवसर पर 'लास रास' भी होता है। प्रकृति-पुरुष का सम्मिलन आनन्द का सृजन करता है। प्रसादजी को आनन्दवाद की मूल प्रेरणा शैवागम से प्राप्त हुई। 'काव्य ओर कला' के 'रहस्यवाद' शीर्षक निबध मे कवि ने स्वय इन्द्र को आत्मवाद का प्रतिनिधि मानकर शैव दर्शन के आनन्दवाद को अद्वैतवादी विचारधारा का ही एक रूप कहा है। प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार जीवन श्रद्धा के द्वारा आनन्द की उपलब्धि कर सकता है। शैवदर्शन का आनन्दवाद काम का ही पूर्ण विकसित रूप है। 'आनन्द' सर्ग मे मनु श्रद्धा से कैलास पर्वत की ओर सकेत करते हुए कहते है कि यहाँ पर कोई तापित और शापित नही है। शैवदर्शन भी आनन्दमय जगत मानता है। इस 'आनन्दवाद' मे उपनिषदो की अद्वैत भावना का भी सयोग हो गया। शिव आनन्दरूप कल्याणकारी है, किन्तु उनमे 'द्वयता' का वास नहीं। शिव यदि आनन्दमय हैं, तो ब्रह्म पूर्ण। शिव-शक्ति, आत्मा-परमात्मा का मिलन चिरन्तन आनन्द की सृष्टि करता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में रुद्र को लेकर अद्वैत भावना की प्रतिष्ठा की गयी, जो विचारणीय है : एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमांल्लोकानीशत इशनीभिः (3/2)

'आनन्द' सर्ग का जीवनदर्शन उच्च भावभूमि पर प्रतिष्ठित है। उसमें उपनिषदों का अद्वैतवाद, शैवदर्शन की आनन्द-कल्पना से समन्वित होकर प्रकट हुआ। श्रद्धा उसमें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करती है। इस 'ज्योतिष्मती' के सहयोग से मनु अपने महान आदर्श की स्थापना में सफल हुए। 'त्रिपुरारहस्य' के ज्ञानखंड (छठा अध्याय) में श्रद्धा की प्रशंसा मिलती है। इस प्रकार प्रसाद काव्य के अन्त में एक महान् जीवनदर्शन की प्रतिष्ठा करते हैं। 'कामायनी' का आनन्दवाद प्राचीन भारतीय दर्शन, विशेषतया शैवागमों से अनुप्राणित होकर भी व्यावहारिक है। मनु की भावी मानवता

आनन्द

अन्तिम सर्ग 'आनन्द' है। पर्वत प्रदेश से सरिता की घाटी में एक यात्री-दल चला जा रहा था। धर्म के प्रतिनिधि वृषभ को मानव लिये हुए था, साथ ही इडा भी थी। वह बताती है कि किसी दिन एक मनस्वी संसार की ज्वाला से पीडित होकर शान्त तपोवन मे आया। उसकी अर्धांगिनी इस दशा पर द्रवित हो उठी। उसके ऑसू वरदान बनकर संसार का मंगल करने लगे। वन का समस्त ताप-शाप शान्त हो गया; हरीतिमा, सुख और शीतलता बिखर गयी। अब वे दोनो 'संसृति की सेवा' में निमग्न, सबको सुख-सन्तोष देते है। वहाँ कोई महाह्रद नामक मानस है, जो मन की पिपासा निर्मल जल से शान्त कर देता है। सारस्वत नगर के वासी इसी अमृत से नवजीवन की कामना करते है। थोडी देर मे समतल आ गया। सम्मुख ही विराट् पर्वत खडा था। कैलास पर्वत पर मनु 'मानस' के किनारे ध्यान-मग्न थे, और निकट ही श्रद्धा पुष्पाजलि लिये खडी थी। इडा जाकर श्रद्धा के चरणो मे नतमस्तक होकर कहने लगी कि तुम्हारा ममत्व मुझे यहॉ खीच लाया, मेरा जीवन धन्य है। तभी मनु कैलास पर्वत की ओर सकेत करते हुए बोले :

शापित न यहॉ है कोई
    तापित पापी न यहाँ है
जीवन वसुधा समतल है
    समरस है जो कि यहां है।

जीवन की समरसता, अद्वैत भावना, आनन्दवादी प्रकृति का दिग्दर्शन कराते हुए मनु ने चराचर विश्व को चिर सत्य, शिव, सुन्दर बताया। वह किसी विराट से सचालित है। श्रद्धा सृष्टि की मगलकामना प्रतीत होती थी। उसकी आभा मानस के तट पर बिखर रही थी। उस 'पूर्ण काम' की प्रतिमा से समस्त सृष्टि परिचालित हो रही थी। क्षण-भर मे सर्वत्र आनन्दामृत छलक उठा। प्रकृति का वैभव अपने सर्वोत्कृष्ट स्वरूप में दिखाई दिया, मानो स्वय वनलक्ष्मी ने शृगार किया हो। वह सुख-दुख का मधुर मिलन था। लास्य रास से आनन्द छा गया। इस प्रकार आनन्द और समरसता की स्थापना के साथ कवि काव्य का समापन करता है। उसका लक्ष्य है, आनन्द का निरूपण। इडा और मानव का सारस्वत प्रदेश के निवासियो के साथ कैलास पर्वत पर आना प्रसादजी की कल्पना है। इसके द्वारा वे मानवता का मंगलमय रूप प्रतिष्ठित कर सके। भौतिक सघर्ष और व्यक्तिगत विषमता से ऊपर उठकर आनन्द का वास्तविक स्वरूप उन्होने मनु के द्वारा प्रस्तुत किया। 'कामना' नाटक में भी अनेक पात्र सघर्ष के पश्चात् अन्त में "ईश्वर और मनुष्य, राजा और प्रजा, शासित और शासको का भेद विलीन कर विराट, जाति और देश के वर्णों से स्वच्छ होकर एक मधुर मिलन को क्रीड़ा के अभिनय की कामना करते हैं। स्मित, आनन्द, उषा और

आशा का सम्मिलन ही उनका लक्ष्य है।"

भारतीय वाड्मय मे कैलास पर्वत शिव का साधना-क्षेत्र है। यही से वे सृष्टि का निर्माण और विनाश करते हैं। मानस भारत का प्रसिद्ध 'मानसरोवर'-जैसा प्रतीत होता है जहाँ कवि की कल्पना सक्रिय है। महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भव' के आरम्भ मे हिमालय का भव्य चित्र प्रस्तुत किया है। वह देवताओ की भाँति पूजनीय है। प्रकृति के इस सुरम्य वातावरण मे कवि ने शिव-पार्वती को प्रतिष्ठित किया। प्रसाद का मनु भी उसी स्थिति पर पहुँचता है। उसके 'शान्त तपोवन' तक जाकर सब आनन्द प्राप्त करते है। धर्म का प्रतिनिधि वृषभ शिवजी का नन्दी है जिसे शैवग्रन्थो मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। शिव का यह वाहन शैवागम मे भवसागर पार करने का एक उपाय माना गया है। वह धर्म का शुद्ध सात्विक रूप है जिसके द्वारा मानव का उद्धार सम्भव है। प्रसाद ने वृषभ को 'सोमवाही' की सज्ञा दी है। देवताओ के पेय के अतिरिक्त उसका सांकेतिक अर्थ भी लिया जा सकता है। समरसता को कवि ने आनन्द के रूप म भी ग्रहण किया है। आनन्दवाद की प्रतिष्ठा 'पूर्ण काम' के द्वारा होती है। इसी अवसर पर 'लास रास' भी होता है। प्रकृति-पुरुष का सम्मिलन आनन्द का सृजन करता है। प्रसादजी को आनन्दवाद की मूल प्रेरणा शैवागम से प्राप्त हुई। 'काव्य और कला' के 'रहस्यवाद' शीर्षक निबध मे कवि ने स्वय इन्द्र को आत्मवाद का प्रतिनिधि मानकर शैव दर्शन के आनन्दवाद का अद्वैतवादी विचारधारा का ही एक रूप कहा है। प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार जीवन श्रद्धा के द्वारा आनन्द की उपलब्धि कर सकता है। शैवदर्शन का आनन्दवाद काम का ही पूर्ण विकसित रूप है। 'आनन्द' सर्ग मे मनु इडा से कैलास पर्वत की ओर सकेत करते हुए कहते है कि यहाँ पर कोई तापित और शापित नही है। शैवदर्शन भी आनन्दमय जगत मानता है। इस 'आनन्दवाद' मे उपनिषदो की अद्वैत भावना का भी सयोग हो गया। शिव आनन्दरूप कल्याणकारी है, किन्तु उनमे 'द्वयता' का वास नही। शिव यदि आनन्दमय है, तो ब्रह्म पूर्ण। शिव शक्ति, आत्मा परमात्मा का मिलन चिरन्तन आनन्द की सृष्टि करता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् मे रुद्र को लेकर अद्वैत भावना की प्रतिष्ठा की गयी, जो विचारणीय है एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाल्लोकानीशत इशनीभि· (3/2)

'आनन्द' सर्ग का जीवनदर्शन उच्च भावभूमि पर प्रतिष्ठित है। उसमे उपनिषदो का अद्वैतवाद, शैवदर्शन की आनन्द कल्पना से समन्वित होकर प्रकट हुआ। श्रद्धा उसमे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करती है। इस 'ज्योतिष्मती' के सहयोग से मनु अपने महान आदर्श की स्थापना मे सफल हुए। 'त्रिपुरारहस्य' के ज्ञानखड (छठा अध्याय) मे श्रद्धा की प्रशसा मिलती है। इस प्रकार प्रसाद काव्य के अन्त मे एक महान् जीवनदर्शन की प्रतिष्ठा करते है। 'कामायनी' का आनन्दवाद प्राचीन भारतीय दर्शन, विशेषतया शैवागमो से अनुप्राणित होकर भी व्यावहारिक है। मनु की भावी मानवता

भौतिक और आध्यात्मिक दोनो दृष्टियो से सुखी रहने का प्रयत्न करती है। श्रद्धा और मनु कैलास पर्वत पर किसी तपस्वी की भॉति साधना मे निमग्न नहीं हैं, वे 'ससृति की सेवा' करते है। 'कामायनी' के अन्त तक आता-आता कवि भावी मानवता के सम्मुख उस महान् आदर्श को प्रस्तुत कर देता है, जिसका अनुसरण कर वह जीवन के सुख-आनन्द को प्राप्त कर सके।

कथा-संयोजन

'कामायनी' की कथा का आधार पौराणिक एव ऐतिहासिक है। शतपथ ब्राह्मण की जलप्लावन घटना से पुराणो मे बिखरी हुई सामग्री तक का प्रयोग प्रसाद ने किया। कथा-सूत्र मे क्रम स्थापित करने के लिए कल्पना का भी आश्रय उन्होने लिया। काव्य की महानता के लिए उन्होने सुन्दर कथा की योजना की जो महाकाव्य की एक आवश्यकता है। कथा मे स्वाभाविकता और नवीनता रखने की दृष्टि से प्राचीन ग्रन्थो मे वर्णित लघु कथाओ को छोड दिया गया है। युगो पूर्व जन्म लेनेवाली प्रथम मानवता मे आधुनिक समस्याओ का समावेश इसी कारण सम्भव हो सका। 'कामायनी' के अन्तिम भाग मे कवि ने कल्पना का अधिक प्रयोग अपने आदर्श स्थापन हेतु किया। अधिकाश प्रबन्धकाव्यो का सृजन ऐतिहासिक आधार को लेकर इसी दृष्टि से होता है कि उस महान् अतीत पर कवि अपने नवीन आदर्श की प्रतिष्ठा कर सके। होमर के काव्यो मे प्रेम, वीरता की भावना होते हुए भी देवी देवताओ के शाप और ऐतिहासिक युद्धो को स्थान मिला। दान्ते ने धार्मिक आधार के द्वारा सत्य का प्रतिपादन किया। शिव-पार्वती के प्रसिद्ध आख्यान के द्वारा 'कुमारसम्भव' की रचना मे कालिदास ने युग के वैभव का भी चित्रण किया। इस दृष्टि से इतिहास-प्रसिद्ध कथा एक साधन का कार्य करती है।

'कामायनी' मे नवीन जीवनदर्शन की प्रतिष्ठा के कारण प्राचीन कथा का अल्पाश ही प्रसाद ने ग्रहण किया। कथा महत्वपूर्ण होते हुए भी वृहत् आकार की नहीं है। जलप्लावन, मनु श्रद्धा का मिलन-विछोह, इडा का प्रवेश, जन-सघर्ष, पुनर्मिलन आदि की सीमित घटनाओ से 'कामायनी' का निर्माण हुआ। कथा मे उत्कर्ष-अपकर्ष लाने की दृष्टि से इडा मनु को बाद मे मिलती है, अन्यथा शतपथ ब्राह्मण मे वह पूर्व ही आ जाती है। सघर्ष को अधिक तीव्र करने की दृष्टि से मनु दो बार श्रद्धा को छोडते है। कवि ने इडा मानव के सम्बन्ध को अधिक स्पष्ट नही किया और उसे अपरिभाषित ही छोड दिया। कथा के माध्यम से प्रसादजी ने दर्शन की स्थापना की है। श्रद्धा का सदेश, मनु का आन्तरिक द्वन्द्व आदि के द्वारा उन्होने सत्य का प्रतिपादन किया। इसका आधार भारतीय दर्शन है। समरसता और आनन्द की चर्चा मे शैवदर्शन के सिद्धान्त स्पष्ट दिखाई देते है। शिव के लास्य और ताडव दोनो ही क्रमशः निर्माण और विनाश के रूप मे 'कामायनी' मे आये हैं। अद्वैत भावना की प्रेरणा

उपनिषद् हैं। इन प्राचीन दार्शनिक सिद्धान्तो का वर्णन इतने काव्यात्मक स्वरूप मे हुआ है कि सिद्धान्त और काव्य-दर्शन में अधिक अन्तर नहीं रह जाता। 'कवि का कार्य शिक्षक से भिन्न है। उपदेशक वाणी से जो कार्य करता है, वह कवि सकेत मात्र से कर डालता है।'[20] इसी कारण 'कामायनी' मे प्रजातन्त्र, मनोविज्ञान आदि नवीनतम विषय भी वर्णित है। दर्शन का काव्यात्मक सस्करण होकर भी उस पर कवि के जीवनानुभव तथा व्यक्तित्व की छाया है।

प्रसाद का एक उद्देश्य अपने आशय की अभिव्यक्ति भी है। इसके लिए उन्होने अत्यन्त प्राचीन कथा को लिया जिसमे मानव का विकास वर्णित है। 'कामायनी' के पूर्व मनु तथा आदिमानव की कथा इतिहास, पुराण एव धार्मिक ग्रन्थो मे बिखरी मिलती है। विश्व के प्राचीन धर्म किसी न किसी रूप मे आदिमानव की कथा सँजोये हुए है। नूह, आदम, मनु आदि इसी आदिसृष्टि से सम्बन्धित है। मानव के जन्म की आंशिक कथा का उल्लेख मिल्टन के पैराडाइज लास्ट, पैराडाइज रिगेन्ड तथा शली के प्रोमेथियस अनबाउन्ड में हुआ। उनमे मानव की उत्पत्ति का एक आभास मात्र है। तेलुगु साहित्य मे अलासनीपेदना के 'स्वरोचिशामनुसम्भवम्' मे आदिपुरुष के रूप मे मनु को ही ग्रहण किया गया। वह विजयनगर नरेश कृष्णदेव का दरबारी कवि था। उसका काव्य मार्कण्डेय पुराण की कथा के अधिक समीप है जिसमे चौदहवें मनु 'स्वरोचिशामनु' का उल्लेख मिलता है। उसमे एक ब्रह्मचारी प्रवरसिद्ध के आदेशानुसार हिमालय पर्वत पर जाता है। वह भटकता फिरता है कि हिम पिघलना आरम्भ हो जाता है और किसी प्रकार भी घर लौटना सम्भव नही प्रतीत होता। उसी अवसर पर उसकी भेंट गन्धर्वो की अप्सरा वरूथिनि से होती है जिससे उसमे प्रेम हो गया। इस कथा में पौराणिक चित्रण अधिक है। सम्भव है अन्य कवियो का ध्यान भी इस विख्यात प्रसिद्ध घटना की ओर गया था किन्तु किसी ने उसे आधुनिकतम रूप नहीं प्रदान किया। प्रसाद की 'कामायनी' इस दृष्टि से नवीन प्रयास है। कथा सामग्री के अतिरिक्त चरित्र भी उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त किये। मनु, श्रद्धा, इडा का नाम प्राचीन ग्रन्थो मे मिलता है। 'कामायनी' के कवि ने केवल इनके ऐतिहासिक पौराणिक रूप को ही ग्रहण नही किया, उसने इनमे नवीन प्राणप्रतिष्ठा की और उन्हें आधुनिक रूप प्रदान किया। मनु ऋषि के साथ साधारण उत्थान पतन से युक्त मानव भी है। श्रद्धा मातृरूप भी है और नारी के सम्पूर्ण सौन्दर्य से पूर्ण भी। कथानक-विकास के साथ पात्रों का व्यक्तित्व कवि-कल्पना का परिणाम है। उनके चरित्र निर्माण मे प्रसाद ने विशेष सफलता प्राप्त की।

'कामायनी' के पात्रो की सृष्टि जलप्लावन घटना के आधार पर हुई। इस कथा का वर्णन प्राचीनतम भारतीय ग्रन्थो मे स्पष्ट रूप से प्राप्त नही। वेदो मे इसका उल्लेख कालान्तर में हुआ। प्राचीन ऋग्वेद मे यम-यमी सम्बन्ध को लेकर एक ऋचा है : 'ओ चित्सखाय सख्यावृत्या तिरः पुरू चिदर्णव जगो' (ऋग्वेद 10/10)। 'अर्णव' शब्द के

आधार पर ही जलप्रलय की कल्पना सम्भव नहीं। प्रसाद का विचार है कि 'वास्तव में ऋग्वेद का समय उस जलप्रलय की घटना से पहले का है। ऋग्वेद की ऋचाओं में उसका वर्णन नहीं मिलता, पर पीछे के अथर्व मंत्रों में स्पष्ट उल्लेख है। यह घटना ऋग्वेद से पीछे की है, अन्यथा उसमें भी जल-प्रलय का प्रसंग आता। अथर्ववेद (2/35) का 'अपन्नपात' जलशक्ति है। प्रसाद ने जलप्लावन की घटना शतपथ ब्राह्मण से ग्रहण की। यह कथा अग्निपुराण, मत्स्यपुराण, महाभारत आदि में भी वर्णित है, किन्तु लगभग सभी शतपथ की भाँति हैं। 'कामायनी' का जलप्लावन ऐतिहासिक तथा पौराणिक के अतिरिक्त दार्शनिक दृष्टि से भी विचारणीय है। प्राचीन आलेखों में जलप्लावन सृष्टि के विनाश-रूप में आता है। भारतीय दर्शन के अनुसार प्रलय के दो भेद हैं, प्रलय तथा महाप्रलय। प्रलय के विषय में सांख्य का मत है कि तीनों गुण सत, रज, तम समानावस्था में आ जाते हैं। वैशेषिकों की धारणा है कि प्रत्येक वस्तु अणु-परमाणु में परिवर्तित हो जाती है। इस स्थिति में व्यक्ति की आत्मा गम्भीर निद्रा मे निमग्न रहती है, यद्यपि पूर्वजन्म के व्यक्तिगत कर्मों का बन्धन अब भी बना रहता है। तंत्रालोक इसी स्थिति का समर्थन करता है। शैवदर्शन ने प्रलय पर विस्तार से विचार नहीं किया। शैवदर्शन महाप्रलय को शंकर की इच्छा पर अवलम्बित मानता है। क्रमिक, अक्रमिक दोनों शक्तियाँ उसमें वास करती हैं। इस दशा में प्रत्येक वस्तु परमशिव में विलीन हो जाती है।[21] 'कर्म' इस महाप्रलय का कारण है। 'तिरोधान' के पश्चात् शिव के 'अनुग्रह' से पुनः सृष्टि का निर्माण सम्भव है। वह 'महाप्रलयान्तर सृष्टि' होती है। शैवदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शन इसी कारण प्रलय की सत्ता स्वीकार करते है।[22] तंत्रों में नियति और स्वातंत्र्य शक्ति को महत्व दिया गया है। उनमें 'महाप्रलय' की स्थिति में विलीन हो जानेवाली वस्तु का उद्धार किसी प्रकार सम्भव नहीं। महेश्वर पुनः नवनिर्माण करते है।

'कामायनी' के जलप्लावन अथवा प्रलय का कारण अस्पष्ट है। सम्भवतः वह देवताओं के अत्यधिक भोग-विलास से हुआ। प्रलय के पश्चात् मनु, श्रद्धा, इड़ा शेष रह जाते हैं। इसके अतिरिक्त सारस्वत प्रदेश के अनेक नागरिक हैं। साथ ही मनु 'विराट' और 'विश्वदेव' की स्तुति करते हैं। 'चिन्ता' सर्ग के अन्त में प्रलय-निशा का प्रात होता है। इस दृष्टि से 'कामायनी' का प्रलय साधारण प्रलय है। शिव का तांडव नृत्य कवि ने क्रोध-प्रदर्शन के रूप में चित्रित किया, जो शतपथ ब्राह्मण में भी मिलता है। प्रत्यभिज्ञादर्शन से अनुप्राणित रुद्र का तांडव और लास्य कवि ने अवश्य ग्रहण किये, किन्तु 'कामायनी' का प्रलय साधारण श्रेणी के अन्तर्गत है। प्रलय की दशा में सो जानेवाले कर्म को श्रद्धा जागरण देती है और सृष्टि का आरम्भ होता है। 'पंचभूत का तांडव नर्तन' ही 'कामायनी' का प्रलय है।

पात्र

जलप्लावन की मूल कथा ब्राह्मणों से लेकर प्रसादजी ने पात्रों की पौराणिक रूप-रेखा भी वहीं से ग्रहण की। चरित्रों को उदात्त स्वरूप प्रदान करने के लिए उन्होंने जलप्लावन से पूर्व के ग्रन्थों का सहारा लिया। मनु के ऋषि रूप, श्रद्धा की मातृत्व कल्पना तथा इड़ा के बुद्धिवाद की प्रेरणा ऋग्वेद से ली गयी है। चरित्रों का निर्माण अधिक व्यापक क्षेत्र पर हुआ है। कथा-विकास में वे पौराणिक पुरुष की भाँति प्रतीत होते हैं पर प्रतीक रूप में विशेष मनोवृत्तियों का आभास देते हैं। इसके अतिरिक्त उनका अपना एक विशेष व्यक्तित्व है। इस प्रकार चरित्र-चित्रण में प्राचीन सामग्री, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा काव्य-कल्पना का सुन्दर समन्वय प्रतीत होता है। 'कामायनी' के पात्र केवल पौराणिक बनकर नहीं रह जाते, वे युगों पूर्व होकर भी नवीनतम परिस्थितियों मे चलते दिखाई देते हैं। प्रसाद ने यथार्थ-आदर्श के समन्वय से चरित्र चित्रण किया। अनेक स्थलों पर बिखरी हुई पात्रो की रूपरेखा में कवि ने कल्पना का सहारा लिया और उन्हें मनवांछित व्यक्तित्व दिया।

मनु

'कामायनी' में मनु के अनेक रूप हैं। आरम्भ में वे एक तपस्वी के रूप में चित्रित हैं। वे देवताओं के वंशज हैं, किन्तु देवत्व का अधिक मोह नही करते। उसकी अपूर्णता जान लेने के कारण वे उस वैभव-विलास में अधिक आस्था नहीं रखते। जलप्लावन के पश्चात् शेष रह जानेवाला यह केवल 'आदिपुरुष' नहीं है। वह विशिष्ट मानव अवश्य है जो प्रलय मे भी जीवित रहता है। 'चिन्ता' का मनु 'आशा' में यज्ञ करना आरम्भ करता है। वह अग्निहोत्र का अवशिष्ट अन्न भी कही दूर पर रख आता था। तपस्या मे निमग्न मनु के हृदय में अनेक आकाक्षाएँ उदित होती हैं। उनमें एक से अनेक होने की भावना का संचार भी होता है। इसी के पश्चात् उनका श्रद्धा से मिलन होता है। मनु सौन्दर्य पर रीझ उठते हैं। 'काम' और 'वासना' में उनके साधारण मानव-स्वरूप के दर्शन होते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप. रस, गंध से पूर्ण मधुपान उनकी चेतना को शिथिल कर देता है। जीवन का उपभोग करने की कामना बलवती होती है। स्नेह पर एकाधिकार के कारण मनु के हृदय में ईर्ष्या का उदय होता है। मनु हिंसक यजमान हो जाते हैं जो वैदिक कर्मकांडी का विकृत रूप है। वे पशुबलि और हिंसा करते हैं तथा आखेट मे व्यस्त रहते हैं। किलात और आकुलि उन्हें पथ-भ्रष्ट करते हैं। यहीं से मनु का पतन आरम्भ होता है। वे घोर व्यक्तिवादी होकर कहते हैं :

> यह जीवन का वरदान मुझे
> दे दो रानी अपना दुलार

केवल मेरी ही चिन्ता का
तव चित्त वहन कर रहे भार।

प्रेम के विस्तार को विभाजन समझनेवाले मनु ईर्ष्या से जल उठते हैं। वे नए सुख की खोज में निकल पड़ते हैं। 'इड़ा' सर्ग के आरम्भ में पश्चात्ताप करते हुए मनु अन्त में बुद्धिवाद को अपना लेते हैं। यहीं इड़ा उन्हें सारस्वत प्रदेश का प्रजापति बना देती है, पर इस रूप में मनु अधिक सफल नहीं होते। विज्ञानवाद और भौतिकता के आधार पर नवनिर्माण तथा शासन-व्यवस्था करनेवाले मनु जनता को सन्तुष्ट नहीं कर पाते। वह सम्पन्न नगरी केवल भौतिक दृष्टि से ही विकसित है, उसमें प्रजा को आध्यात्मिक तुष्टि नहीं है। अतिचारी प्रजापति के विरुद्ध वह विद्रोह करती है। 'स्वप्न' की यह स्थिति 'संघर्ष' में अधिक स्पष्ट हो गयी। प्रजापति मनु नियामक होकर भी नियम नहीं मानते। प्रजा से संघर्ष में वे पराजित हुए। 'निर्वेद' में वे पुनः श्रद्धा को स्वीकारते हैं, पर इस बार रूप की अपेक्षा गुण की ओर अधिक आकृष्ट हुए। 'दर्शन' और 'रहस्य' के मनु उस जिज्ञासु की भाँति हैं जो श्रद्धा की सहायता से जीवन का सत्य जानना चाहते हैं। 'आनन्द' में मनु लगभग एक ऋषि रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने सारस्वत नगरवासियों को जीवन का सत्य बताया। प्रलय के विक्षुब्ध तपस्वी मनु श्रद्धा की प्रेरणा से आनन्द के प्रचारक बनते हैं।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मनु जलप्लावन में बच रहनेवाले व्यक्ति हैं, जिन्होंने इड़ा के संयोग से सृष्टि का निर्माण किया। वे 'मनोरवसर्पण' स्थान पर उतरे जहाँ उन्होंने पाकयज्ञ आरम्भ किया, यहीं उन्हें इड़ा मिली।[23] इस कथा का समर्थन कालान्तर में निर्मित पुराण-कथाएँ भी करती हैं। शतपथ के "श्रद्धादेवो वै मनुः" पुराणों में विवस्वत हो जाते हैं। देवी भागवत (10/10/1); श्रीमद्भागवत (9/1/11); शिवपुराण (उमा संहिता 25/4); हरिवंश पुराण (9/8); ब्रह्मवैवर्त (प्रकृति खंड 54/63) आदि में वे 'श्रद्धादेव' रूप में प्रतिष्ठित हैं। शतपथ के मनु का स्पष्ट रूप नहीं प्राप्त होता किन्तु पुराणों के मनु सप्तम मन्वन्तर तथा सूर्यपुत्र हैं। वंश-परम्परा पर दृष्टि डालने से मनु-श्रद्धा के कई पुत्रों की सूची प्राप्त होती है। श्रद्धादेव मनु के दस पुत्र इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करुषथ, नरिष्यंत, पृषध्र, नाभाग, कवि आदि का जन्म भागवत में प्राप्त है। प्रसाद की दृष्टि सम्भवतः केवल इक्ष्वाकु पर रही। भारत के प्रसिद्ध इक्ष्वाकु वंश से उसका सम्बन्ध है। 'कामायनी' का आरम्भिक रूप इन्हीं पौराणिक गाथाओं से प्रभावित है। मनु को वेदों में भी 'प्रथम अग्निहोत्र' करनेवाला कहा गया है : योभ्यो होत्रां···। इन्हीं मनु के द्वारा अनेक अन्य यज्ञ हुए। वे जड़-चेतन सृष्टि के नियामक भी हैं। 'कामायनी' के मनु तप करने के साथ ही विश्वदेव, विराट, सविता के प्रति एक जिज्ञासा भी रखते हैं। आसपास बिखरी हुई प्राकृतिक विभूति उनमें कुतूहल का संचार करती है। उनके मन में उठनेवाले प्रश्न में देवत्व की अपूर्णता से प्राप्त एक नवीन ज्ञान है। उनकी जिज्ञासा है कि :

वरुण आदि सब घूम रहे हैं
किसके शासन में अम्लान।

सम्भवतः किसी युग में इन प्रकृति शक्तियों के नियामक का रहस्यबोध न होने के कारण, इन्हीं को देवता रूप में स्वीकार किया गया। समस्त प्रकृति ही उपासना का विषय बन गयी। इन्द्र, वरुण, अग्नि, सूर्य आदि का पूजन होने लगा। मनु 'अनन्त रमणीय' को देखकर जान जाते हैं कि कोई विराट, विश्वदेव है। प्रसाद के इस विराट का जिज्ञासु मनु ऋग्वेद के उपासकों के अधिक समीप है। ऋग्वेद में प्रकृति की उपासना में अनेक ऋचाएँ प्राप्त हैं। एक स्थल पर कहा गया है : हिरण्यगर्भ···(10/121/1)। आगे की पंक्तियों में इसी 'कस्मै देवाय हविषा विधेय' की पुनरावृत्ति मिलती है। अन्य वैदिक ऋचाओं में भी देवताओं की सामूहिक उपासना का स्वर प्राप्त होता है। 'कामायनी' का मनु वैदिक मनु की भाँति यज्ञ करता है। ग्रिफ़िथ ने ऋग्वेद के अनुवाद में उन्हें 'मानवता का पिता' स्वीकार किया।[24] श्रद्धा मनु के जीवन में आकर उन्हें इस पद पर प्रतिष्ठित कर देती है। बाद में मनु का हिंसक स्वरूप सम्मुख आता है। शतपथ ब्राह्मण में मनु किलात और आकुलि के साथ हिंसात्मक प्रवृत्तियों में उन्मुख होते हैं। श्रद्धा ने मनु की आसुरी वृत्तियों को रोकने का प्रयास भी किया। इस प्रकार देव-दानव-संघर्ष का एक सांकेतिक रूप मिल जाता है जो भारतीय ग्रन्थों में अनेक रूपों में वर्णित है।

'ईर्ष्या' सर्ग में मनु श्रद्धा का परित्याग कर चल देते हैं और सारस्वत प्रदेश पहुँचते हैं। इड़ा उन्हें प्रजापति बना देती है जो प्राचीन काल में प्रजा का नियमन करता था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मनु प्रजापति हैं। पुराणों में भी उन्हें प्रजापति कहा गया। 'मनुस्मृति' में आकर उनकी पूर्ण प्रतिष्ठा हुई। वे समाज में शान्ति-व्यवस्था स्थापित करते हैं। उन्होंने धर्म का प्रणयन किया। मनुस्मृति में पूर्ण राजव्यवस्था का वर्णन मिलता है। विवस्वान मनु प्रजापति बनकर सब संचालन करते हैं। यद्यपि ऋग्वेद में प्रजापति का उल्लेख है, किन्तु प्रसाद की राजनीतिक रूपरेखा मनुस्मृति के समीप है। 'कामायनी' में भौतिक हलचल से त्रस्त देश में मनु नवीन व्यवस्था स्थापित करते हैं। महाभारत के शान्ति-पर्व में मनु को यही उत्तरदायित्व सौंपा गया था। मनु को प्रजापति रूप में चित्रित कर कवि ने आधुनिक समस्याओं पर विचार किया। इसी कारण मनुस्मृति का 'सर्वतेजमयो नृपः' राजभक्ति पाने में सफल होता है, पर सारस्वत प्रदेश का प्रजापति नहीं। कथा रूप में 'कामायनी' का प्रजापति शतपथ ब्राह्मण की भाँति है, किन्तु अपने गुणधर्म में वह मनुस्मृति के समीप होकर भी कवि की कल्पना से समन्वित है। प्रजापति यहाँ अतिचारी हो जाता है जिसके विरुद्ध प्रजा ने विद्रोह किया। इड़ा बारम्बार प्रजापति को समझाती है पर वे नहीं मानते। अन्त में मात्र भौतिकवाद पर अवलम्बित मनु का प्रजातंत्र ध्वस्त हो जाता है।

मनु का अन्तिम स्वरूप ऋषि के अधिक समीप है। आरम्भ का वैदिक रूप

पुनः प्रतिष्ठित होता है। 'चिन्ता' के जिज्ञासु मनु 'आनन्द' में स्वयम् सारस्वत नगरनिवासियों को जीवन-दर्शन समझाते हैं। वेदों में मनु ऋषि हैं। वे आनन्द मार्ग का पथ-प्रदर्शन करते हैं। उनसे प्रार्थना की गयी और ऋषि इसका उद्धरण देते हैं कि मनु पर विश्वदेव ने कृपा की। यही नहीं, उन्होंने मनु को अपना पिता भी स्वीकार किया और उन्हीं का अनुसरण करने की कामना प्रकट की। ऋषिवर्ग मनु को आदर्श रूप में स्वीकार करता है। वे ब्रह्म तक जाने का मार्ग जानते हैं। वेदों में वर्णित मनु का यह उदात्त स्वरूप पौराणिक गाथाओं में भी प्राप्त होता है। कथा के कारण वे यहाँ केवल ऋषि नहीं रहते वरन् अन्य लौकिक गुणों से भी समन्वित हैं। 'कामायनी' में मनु अपने अन्तिम रूप में अद्वैत भावना तथा आनन्दवाद के प्रतिष्ठापक दिखाई देते हैं। सारस्वत निवासी भावी मानवता के रूप में उन्हीं को आदर्श स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार आनन्दवादी, आत्मवादी मनु वैदिक ऋषि की भाँति स्थान पाते हैं। मनु के विभिन्न रूपो के निर्माण में प्रसाद ने यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री का उपयोग किया। वह साधारण मानव, प्रजापति, प्रेमी, हिंसक, ऋषि सभी कुछ हैं। अन्त में उनका उदात्तीकरण हुआ है। प्रसाद ने मनु के चरित्र मे प्राचीन और नवीन का संयोजन किया है। वे आधुनिक मानव भी है।

श्रद्धा

श्रद्धा ही कामायनी है। आदि से अन्त तक वह मनु का पथ-प्रदर्शन करती है। बिना उसके जैसे मनु का अस्तित्व नही। वह शैवदर्शन की उस 'माया' की भाँति है जो आत्मा को शक्ति पदान करती है। मनु और श्रद्धा का सम्बन्ध ऋग्वेद में पति-पत्नी रूप में मिल जाता है।[25] 'कामगोत्रजा श्रद्धानामर्षिका' के अनुसार श्रद्धा कामायनी भी है; वह काम गोत्र की है। पुराणों मे श्रद्धा से काम की उत्पत्ति मानी गयी। विष्णु, वायु, मार्कण्डेय आदि मे इसका उल्लेख है। 'श्रद्धा या आत्मजः कामो दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः' आदि के अनुसार काम की उत्पत्ति श्रद्धा द्वारा हुई।[26] इस अंतर्विरोध से काम के व्यापक महत्व का आभास मिलता है। काम की परम्परा संभवतः इतनी विस्तृत होगी कि उसमें इस प्रकार की स्थिति हो सकती है। श्रद्धा की वश परम्परा मे कई सतानों का उल्लेख प्राप्त होता है। प्रसाद ने श्रद्धा के कामायनी रूप को ग्रहण किया। शतपथ ब्राह्मण के 'श्रद्धादेवो वै मनुः' का स्वरूप भागवत-पुराण में भी प्राप्त है। प्रसाद ने श्रद्धा के पौराणिक स्वरूप की अपेक्षा उसके गुणों पर अधिक ध्यान दिया। वह काव्य का सर्वोत्तम चरित्र है और समस्त कल्पना उस पर आश्रित है। ऋग्वेद में श्रद्धा की भावमूलक व्याख्या है :

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः (10/152/2)

श्रद्धा की स्तुति अन्यत्र भी मिलती है। वह सूर्य की पुत्री रूप मे ऋग्वेद में

प्रतिष्ठित है। उपनिषदों का दर्शन श्रद्धा पर अवलम्बित है। छान्दोग्योपनिषद् 'आस्तिक बुद्धि' कहकर उसे जीवन के लिए आवश्यक मानता है। भारतीय दर्शन और विचारधारा में श्रद्धा उस भावना के रूप में स्थान प्राप्त करती है जिसके बिना आनन्द की प्राप्ति सम्भव नहीं। कथायोजना में प्रसाद ने इसी आदर्श की पूर्ति के लिए उसके भावात्मक पक्ष को प्रधानता दी। 'कामायनी' में श्रद्धा अमृतधाम, सर्वमंगले आदि उपाधियों से विभूषित है। कवि ने इस निर्माण में दर्शन की भी सहायता ली है। वेदों मे श्रद्धा 'ऋषिका' ही है। उपनिषद् उसे 'आस्तिक बुद्धि' की मानते हैं। शैवदर्शन उसमे मातृत्व की कल्पना करता है। गीता ने उसके तीन विभाजन किए। श्रद्धा केवल दर्शन का रूपान्तर मात्र नही रह जाती। उसमें नारी सुलभ सौन्दर्य, सुकुमारता तथा वात्सल्य भी है और वह एक सचेतन शक्ति बन गयी है। उसमें श्रद्धा का तत्व अपने सर्वोत्तम स्वरूप में निहित है। 'न्यू टेस्टामेन्ट' में स्वीकार किया गया है कि मनुष्य श्रद्धा-विश्वास से गतिमान होता है, दृष्टि से नहीं। कवीन्द्र रवीन्द्र ने श्रद्धा की कल्पना उस पक्षी की भाँति की जो प्रकाश का आभास पाकार अन्धकारमय रजनी में भी गाता रहता है। प्रसाद ने श्रद्धा अथवा कामायनी के रूप मे 'शक्तिरूपा' को प्रस्तुत किया। मनु श्रद्धा द्वारा जीवन के आनन्दवाद तक जाता है। श्रद्धा के गुण का एक आभास ब्रह्मवादी के शब्दो मे प्राप्त होता है। वह मणिमाला से कहता है, "माँ, तुम शक्तिरूपा हो, अन्तर्निहित आनन्द की अग्नि प्रज्ज्वलित करो। सब मलिन कर्म उसमे भस्म हो जायेगे। उस आनन्द के समीप पाप आने से डरेगा।"

इडा आदि

इड़ा सारस्वत प्रदेश की रानी है। वह मनु को प्रजापति बनाती है। शतपथ ब्राह्मण की कथा का आंशिक रूप ही प्रसाद ने ग्रहण किया। 'कामायनी' मे वह मनु की 'दुहिता' नही है। उसका जन्म अवशिष्ट अन्न से भी नहीं हुआ। वह जलप्लावन के पश्चात् ही मनु को नहीं प्राप्त होती। कवि ने नैतिकता की दृष्टि से इस कथांश को त्याग दिया। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मनु ने सन्तान की कामना से पूजन-तप आरम्भ किया। जल में घृत, दधि, आभिक्षा आदि की आहुति होने लगी। एक वर्ष पश्चात् एक बाला की उत्पत्ति हुई। उसके चरणों मे घृत था। मार्ग मे उससे मित्र-वरुण की भेंट हुई। उसने स्वयं को मनु की दुहिता कहकर उन दोनों के भाग को नहीं स्वीकार किया। मनु के निकट आकर उसने स्वयम् को दुहिता कहा। अनन्तर मनु-इड़ा से सृष्टि का विकास हुआ। पुराणो में इड़ा की उत्पत्ति भी उसी प्रकार हुई, किन्तु यहाँ मनु ने पुत्र की इच्छा से मित्र-वरुण के अंश की आहुति यज्ञ में दी। इड़ा ने मित्र-वरुण की कन्या कहकर बुध से सम्बन्ध किया, उसी से पुरुरवा हुआ। वही सुद्युम्न बन गयी। श्रीमद्भागवत (9/1); हरिवंश (10), शिव (उमासंहिता, 36), ब्रह्मपुराण (7) आदि में यह कथा प्राप्त है। 'कामायनी' में स्वाभाविक रीति से मनु मलयाचल की

बाला के सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होते हैं। शतपथ ब्राह्मण में मनु सुन्दरी दुहिता को देखकर आलिंगन करने लगे थे; तभी रुद्र ने तृतीय नेत्र खोला था। 'कामायनी' में 'आत्मजा प्रजा' के आलिंगन के करण रुद्र हुंकार उठे। 'स्वप्न' में रुद्र का क्रोध दिखाई देता है, किन्तु 'संघर्ष' में समस्त प्रजा अपनी रानी पर अत्याचार होते देखकर विद्रोह करती है।

शतपथ ब्राह्मण में केवल देवता ही रुष्ट हुए। 'कामायनी' की प्रजा के विद्रोह का राजनीतिक कारण भी है। मनु ने यंत्रों से उनकी प्रकृत शक्ति छीनकर, शोषण से उनके जीवन को जर्जर कर दिया था। आगे चलकर प्रसाद ने इड़ा को करुणा से मंडित किया। वह श्रद्धा के समक्ष स्वयं को अपराधी मान लेती है। इड़ा इस दृष्टि से शतपथ के निकट है। वहाँ इड़ा और श्रद्धा लगभग बहिन के समान हैं। बुद्धि के प्रतिनिधि रूप में इड़ा का चित्रण करने की प्रेरणा प्रसाद को 'इड़ामकृण्वन्मनुष्यस्य शासनीम्' आदि ऋग्वैदिक मंत्रों से प्राप्त हुई। 'इड़ा शब्द की व्युत्पत्ति से बुद्धि, वाणी आदि का आभास मिलता है। कोषग्रन्थों में उसका सम्वन्ध विद्या, बुद्धि से स्थापित हो जाता है।' वंश-परम्परा के अनुसार बुद्धि अथवा इडा पुराणों में श्रद्धा की भगिनी है। दंपति स्वायंभुव तथा शतरूप से चार सन्तानें हुईं। कन्या प्रसूति ने दक्ष से परिणय किया, उनसे चौबीस कन्याएँ हुईं। श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, मेधा, पुष्टि, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और कीर्ति तेरह कन्याओं से धर्म ने विवाह किया। धर्म ने बुद्धि से बोध नामक बालक को जन्म दिया। इस कथा का वर्णन विष्णु, वायु, कूर्म, मार्कण्डेय आदि पुराणों में मिल जाता है। सारस्वत प्रदेश की रानी रूप में इड़ा का परिचय प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त नहीं। वेदों में उसका अन्य रूप मिलता है।[27] कामायनी के मनु बुद्धिवाद को अपनाकर सारस्वत प्रदेश के प्रजापति हुए। 'बुद्धि का विकास, राज्य-स्थापन इत्यादि इडा के प्रभाव से मनु ने किया।' प्रसाद ने इडा के रूप की कल्पना इसी बुद्धिवाद के आधार पर की। 'बिखरी अलकें ज्यों तर्क-जाल' से उस बुद्धिमयी का चित्र प्रस्तुत होता है :

वह विश्व मुकुट-सा उज्ज्वलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल
... ...
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान।

मनु-इड़ा-संघर्ष की प्रेरणा शतपथ में वर्णित वाक् तथा मन के वाद-विवाद से प्राप्त हुई। वे दोनों ही अपने महत्व की स्थापना का प्रयत्न करते हैं।[28] कवि ने इस विवाद को काव्यात्मक रूप प्रदान किया। त्रिबली, त्रिगुण तरंगमयी का स्पष्ट उल्लेख मूल ग्रंथों में उपलब्ध नहीं। ऋग्वेद में सरस्वती, इड़ा, भारती का वर्णन एक साथ हुआ है। वे तीनों ही देवियाँ हैं। कवि की इड़ा में इनका समन्वय होता है। नारी के सौन्दर्य की चर्चा करते समय प्राचीन कवियों ने उसके शरीर में 'तीन बल' का

वर्णन किया है। इस 'चचल मलयाचल की बाला' के प्रति मनु का आकर्षण था। इडा के चरित्र-निर्माण मे प्रसाद को कल्पना का अवलम्ब ग्रहण करना पडा।

श्रद्धा-मनु के सम्बन्ध का सामीप्य विद्वान् यमी-यम कथा से भी स्थापित करते हैं। उनके अनुसार यम-यमी का सम्बन्ध लगभग 'कामायनी' के मनु-श्रद्धा की भाँति है। सभव है अनेक प्राचीन ग्रथो मे बिखरी हुई कथा मे तारतम्य स्थापित करने के लिए प्रसाद ने इससे भी परोक्ष प्रेरणा प्राप्त की हो। मनु और यम दोनो ही विवस्वान पुत्र, ऋषि, प्रथम यज्ञकर्ता, मानव के पिता, प्रथम मनुष्य आदि रूपो मे प्रतिष्ठित हैं। उनमे दो-चार विभेद भी हैं। श्रद्धा और यमी दोनो सूर्य-कुमारी है। घटना की दृष्टि से भी 'कामायनी' के कई वर्णन यम-यमी कथा क निकट प्रतीत होते हैं। स्वयम् प्रसाद ने 'आमुख' मे कोई सकेत नही किया, इस कारण दोनो कथाओ मे सामीप्य स्थापित करना सम्भव नही। इसी प्रकार पुरुरवा-उर्वशी की कथा को इडा-मनु के निकट रखना भी कठिन है। प्रसाद ने सम्बन्ध-निर्वाह के लिए प्राचीन कथा का अवलम्ब अवश्य ग्रहण किया, किन्तु उसे अधिक-से-अधिक मानवीय बनाने का प्रयत्न किया। इसी कारण इडा और कुमार क सम्बन्ध अधिक स्पष्ट न हो सके। पौराणिक प्रमाण भी इस विषय मे मौन हैं। प्राचीन आलेखो मे इडा और श्रद्धा भगिनी रूप मे चित्रित हैं। 'कामायनी' मे वे एक-दूसर से विरोधी प्रकृति की है। 'दर्शन' सर्ग मे उनका पारस्परिक सद्भाव बढ जाता है। कुमार अथवा मानव को भावी मानवता के प्रथम प्रसून रूप मे कवि ने स्थान दिया है। ऋग्वेद म नाभानेदीष्ठ अथवा मानव ही मनु का पुत्र है।[29] मनु की अनक सन्तानो मे 'कामायनी' मे केवल एक को ग्रहण किया गया। मनु का पुत्र मानव तथा अन्त मे मानवता का विकास एक रूपक रूप मे सार्थक है।

'कामायनी' की कथा याजना का आधार भारतीय ग्रन्था मे बिखरी हुई सामग्री है। 'आमुख' मे शतपथ ब्राह्मण ऋग्वद, छादोग्य उपनिषद् आदि का उल्लेख स्वय कवि ने किया है। इसके अतिरिक्त अन्य प्राचीन ग्रन्थो मे इस कथा से सम्बन्धित घटनाएँ प्राप्त होती है। कवि ने वास्तव मे एक बिखरी हुई सामग्री का प्रयोग किया। पात्रो की प्राचीनता जीवित रखन के साथ ही उसे उनमे नवीन योजना तथा प्राण-प्रतिष्ठा भी करनी थी। सजीवता की रक्षा के लिए प्रसाद ने उनमे भावो को सगृहीत कर दिया। उनकी व्यक्तिगत चारित्रिक विशेषताएँ उन्हे प्रतिनिधित्व प्रदान करती हैं। 'कामायनी' एक सुन्दर रूपक के रूप मे भी प्रस्तुत हो सकती है। मुन मन का प्रतीक है; श्रद्धा उसका हृदय और इडा बुद्धि पक्ष है। श्रद्धा का वास्तविक मूल्य न जाननेवाला मन इधर-उधर भटकता है। अन्त मे इसी के द्वारा उसे आनन्द-प्राप्ति होती है।

'कामायनी' की कथा-योजना इस प्रकार की है कि उसको कई रूपो मे प्रस्तुत किया जा सकता है। वह आदि मानवता का विकास है। एक मनोवैज्ञानिक रूपक

की दृष्टि से उसमें मनोविकारों की क्रमिक व्यवस्था भी प्राप्त हो सकती है। मानवता के इतिहास में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। मनु का अन्तर्द्वन्द्व आधुनिक मानव का संघर्ष-सा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त भौतिकवाद और बुद्धिवाद के द्वारा जीवन में आनेवाली अनेक विभीषिकाएँ काव्य में चित्रित हुई हैं। 'कामायनी' कवि की अन्यतम साधना का परिणाम है। उसमें एक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक परम्परा को बाँधने का प्रयत्न प्रसाद ने किया है। महान् काव्यों की कथा-योजना में घटनाओं को प्रधानता मिलती है। कालिदास का 'रघुवंश' इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु से लेकर अग्निवर्ण तक की दीर्घ परम्परा का समावेश उन्होंने किया। पाश्चात्य काव्यों में भी वस्तु अथवा सामग्री अधिक रहती है। दान्ते की डिवाइन कामेडी वर्णन की दृष्टि से कवि की महान् वर्णनात्मक शक्ति की परिचायक है। 'कामायनी' की घटना इतनी विस्तृत नहीं, वह इंगितों के द्वारा आगे बढ़ती है और उसमें दीर्घता की अपेक्षा गाम्भीर्य अधिक है। 'रघुवंश' यदि एक विस्तृत राजपथ है, तो कामायनी एक मनोरम वीथी। राजपथ के सौन्दर्य का परिचय दूर तक चले जाने से प्राप्त हो जाता है, किन्तु वीथी की सुकुमार शोभा ठहर-ठहरकर देखनी पड़ती है, तब जी भरता है।

संदर्भ

1. जे. जाली ' रेडियो एक्टिवटी एण्ड सर्फेस हिस्ट्री ऑफ़ अर्थ, पृ. 2
2 का. ना प्र. स. . कोशोत्सव स्मारक संग्रह, 'प्राचीन आर्यावर्त और उसका प्रथम सम्राट' लेख
3. डी. एन. वाडिया : जियालार्जी ऑफ़ इण्डिया, पृ.224
4. ज़ाइनर : डेटिंग द पास्ट, पृ. 334
5. आर. डी. रानाडे : ए कान्स्ट्रक्टिव सर्वे ऑफ़ उपनिषदिक फ़िलासफ़ी, पृ. 77
6. वारेन : पैराडाइज़ फ़ाउण्ड, 5/5, पृ. 250
7. राबर्ट ओ. बेलोन : बाइविल ऑफ़ द वर्ल्ड, पृ. 649
8 द इपिक ऑफ़ गिलगमेश : केन्टो 11
9. द बाइबिल ऑफ़ द वर्ल्ड (सं.) : पृ. 628
10. जेन्डर (अनु.) : सांग वेनिडाड, पृ. 208
11. अविनाशचन्द्र दास : ऋग्वेदिक इण्डिया, पृ. 560
12. के. सी. पाण्डे : इण्डियन एस्थेटिक्स, पृ. 345
13. ऋग्वेद : 1/41/8. 7/86/6
14. शतपथ ब्राह्मण : 1/8/1/5-7
15. का. ना. प्र. स. : कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ. 174
16. श्वेताश्वतरोपनिषद् : 3/2

17. फतेहसिंह : कामायनी-सौन्दर्य, पृ. 159
18. भागवत पुराण : 4/1/49. 50
19 त्रिपुरारहस्य : ज्ञानखण्ड, 17/1
20. वार्सफ़ोल्ड : जजमेन्ट इन लिटरेचर, पृ 67
21. राधाकृष्णन · इण्डियन फ़िलासफ़ी, खण्ड 2, पृ. 726
22. वेदान्तसूत्र : शांकरभाष्य, 407
23. शतपथ ब्राह्मण : 1/8/1
24. द हिम्स ऑफ़ ऋग्वेद (सं.) : खण्ड 1, पृ. 61
25. ऋग्वेद 10/11/151
26. तैत्तरीय ब्राह्मण · 2/8/8/8
27 ऋग्वेद · 8/11/4
28 शतपथ ब्राह्मण 4/5/1
29 द हिम्स ऑफ़ ऋग्वेद (स) खण्ड 2, पृ 467

चिन्तन पक्ष

प्रसादजी मननशील रचनाकार हैं और उनका गम्भीर अध्ययन काव्य में आभासित होता है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों से उन्होंने 'कामायनी' कथा की प्रेरणा प्राप्त की। इसके अतिरिक्त उसके दार्शनिक निरूपण में भारतीय दर्शन का योग है। काव्य में चिन्तन पक्ष जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है। आदिमानव के उत्थान-पतन का चित्रण करते समय कवि ने उसके द्वारा अपने चिन्नत को प्रस्फुटित किया। चिन्तन कवि के मनन का परिणाम होता है और वह उसके मस्तिष्क से अधिक सम्बन्ध रखता है। भावुकता और बौद्धिकता के दोनों पक्षों का समन्वय कर कवि काव्य-रचना करता है। उसका हृदय भावना की ओर जाता है किन्तु बुद्धि की प्रवृत्ति अन्वेषण की ओर अधिक रहती है। भाव और चिन्तन पर विशेष जोर देते हुए कॉलरिज ने कहा था, 'कवि के हृदय और मस्तिष्क में निकटतम समन्वय तथा प्रकृति की विशाल विभूति से सामीप्य होना चाहिए।' कवि की परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कविकर्म में कई वस्तुओं का समाहार है। कवि अपने अध्ययन द्वारा इस दृष्टिकोण का प्रसार करता है। यो तो प्रत्येक समर्थ कवि का दर्शन होता है किन्तु अनुभवी कलाकार चिन्तन के क्षेत्र में आगे बढ़ जाता है।

काव्य में किसी ज्ञानराशि को समाविष्ट करना किसी प्रौढ़ कुशल कलाकार का ही कार्य है। अन्य व्यक्तियों की भाँति उसे सिद्धान्त-प्रतिपादन, विचार-प्रदर्शन का अवसर अधिक नही प्राप्त होता। वह परिव्राजक, उपदेशक नहीं बन सकता। उपन्यास के लम्बे वक्तव्य तथा नाटक के कथोपकथन का अवलम्ब उसे प्राप्त नहीं। उसे सूक्ष्म, सांकेतिक शैली से कार्य करना पड़ता है और कल्पना के आवरण में चिन्तन को रखना पड़ता है। भावना के आधार पर सृजन करनेवाले कवि को काव्य में स्थायित्व लाने के लिए चिन्तन की आवश्यकता होती है। वर्ड्स्वर्थ के अनुसार कवि इस अवसर पर शिक्षक हो जाता है। चिन्तन भावना का अधिक बौद्धिक रूप है। ध्यान रखने की बात यह कि बौद्धिक प्रवृत्ति से पूर्ण चिन्तन कहीं मूल भावों पर आरोपित न हो जाय, अन्यथा कवि उपदेशक हो जायगा। सांकेतिक एवं सूक्ष्म शैली का प्रयोग करने के अतिरिक्त कवि को ध्वनि और लक्षणा का भी अवलम्ब ग्रहण

करना पड़ता है। काव्य में लक्षणा-ध्वनि और नाद-सौन्दर्य का विशेष महत्त्व है। साधारण लेखक जिस आशय की अभिव्यक्ति अभिधा से करता है, कुशल कलाकार उसी के लिए लक्षणा-व्यंजना का प्रयोग करता है। जीवन-जगत से प्रेरणा ग्रहण करने वाला कवि अपने चिन्तन के द्वारा एक प्रकार का प्रतिदान करता है। वह संसार से प्रेरणा प्राप्त करता है, अन्त में काव्य के चिन्तन से उसे एक नवीन आदर्श लौटा देता है। कवि और जगत का यह विनिमय चिन्तन द्वारा होता है। रवीन्द्र के शब्दों में : "भाव को अपना बनाकर सर्वसाधारण का बना देना—यही साहित्य है, यही ललित कला है।"[1] जिस कवि का चिन्तन जितना प्रौढ़ और विस्तृत होता है वह उतना ही अधिक दीर्घजीवी होता है।

प्रसादजी अध्ययनशील व्यक्ति थे । 'कामायनी' का कथानक स्वयं इस सत्य की पुष्टि करता है। उन्होंने इसकी कथा-योजना में वेद, पुराण, ब्राह्मण आदि कई प्राचीन ग्रंथों की सहायता ली। अत्यन्त प्रसिद्ध कथा को नवीन रूप प्रदान करने में उन्होंने चिन्तन-पक्ष को प्रौढ़ बनाया है। जलप्लावन और मानवता के इतिहास को दृष्टि में रखकर जिन ग्रंथों का निर्माण विश्वसाहित्य में हुआ, उनमें से अधिकांश धर्म-इतिहास आदि की कोटि में आ जाते हैं। इस इतिहास-प्रसिद्ध घटना का काव्यात्मक संस्करण 'कामायनी' ने प्रस्तुत किया। केवल ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत कर देना कवि का कर्म नहीं है, उसका पर्यवेक्षण तथा भावी मानवता के लिए संदेश भी प्रसाद का प्रयोजन है। मानव के आदि रूप को लेकर उसका 'मनोवैज्ञानिक इतिहास' प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कुछ समस्याओं को उठाया है और उसका समाधान भी किया है। इस चिन्तन में प्राचीन भारतीय दर्शन से लेकर आधुनिक मनोविज्ञान तक आ जाते हैं। कवि ने पात्रों को मांसलता प्रदान करने का प्रयत्न किया। प्राचीनतम व्यक्तियों के द्वारा उसे अपने युग का दिग्दर्शन भी कराना था। उन्होंने एक महान् कलाकार की भाँति युगों की बिखरी हुई सामग्री को एक सूत्र में बाँधा। कथा-योजना की इस क्षमता के साथ प्रसाद को चिन्तन का बल प्राप्त था। नाटकों में इतिहास के भग्नावशेषों पर निर्मित एक नवीन चिन्तन देखा जा सकता है। 'कामायनी' में भी इतिहास के द्वारा कवि ने चिन्तन-पक्ष का निर्माण किया। स्वयं अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र में इतिहासकार और कवि का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा कि, "काव्य इतिहास की अपेक्षा अधिक दार्शनिक तथा गम्भीर होता है। काव्य सार्वभौमिक वस्तु को ग्रहण करता है, इतिहास विशेषोन्मुख होता है।" प्रसाद भारतीय इतिहास से सांस्कृतिक-दार्शनिक प्रवृत्तियों का ग्रहण अधिक करते हैं।

देवत्व और दानवत्व

कामायनी मानवता के रूपक का चित्रण करती है। उसके केन्द्र में मनुष्य है। आरम्भ से अन्त तक मनु रंगमंच पर दिखाई देता है। स्वयं कवि ने कहा है :

चेतना का सुन्दर इतिहास
अखिल मानव भावों का सत्य
विश्व के हृदय पटल पर दिव्य
अक्षरो से अकित हो नित्य

मानवता की प्रतिष्ठा कवि ने एक क्रमिक विकास द्वारा की है। आरम्भ मे देवसृष्टि के विनाश का चित्र है। देवताओ की रूपरेखा प्राचीन भारतीय ग्रथो मे अनेक रूपो मे प्राप्त है। सृष्टि का विभाजन ही देव-दानव के आधार पर किया गया। इन्द्र देवताओ के सम्राट् माने गये तथा समय-समय पर अनेक असुरो ने अपने पक्ष का प्रतिनिधित्व किया। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर देवताओ का सर्वप्रथम रूप ऋग्वेद मे प्राप्त होता है। उनके अपार बल के सम्मुख दानव एक क्षण भी नही ठहर पाते। द्यावापृथ्वी भी उनसे परास्त है, पृथ्वी पर कम्पन मच जाता है (ऋ 2/12/13)। यह समग्र विश्व देवेन्द्र के अधिकार मे है (ऋ. 3/30/5)। देवराज सुवर्ण आभूषण पहिनकर आकाश मे नक्षत्र की भाँति प्रकाशित है (ऋ. 2/34/2)। देवताओ का यह शौर्य और पराक्रम अपनी सीमा का अतिक्रमण भी कर जाता है। स्वय वेदो मे इस उच्छृखनता के चिम्न प्राप्त होते है। देवतागण निर्दयतापूर्वक शत्रुओ का रक्तपात करते है (ऋ. 1/51/5)।

वैदिक युग मे ही देवताओ के महान् आदर्श शिथिल होते दिखाई देते है। पुराणो मे आकर देव-दानव-सघर्ष ने प्रबल रूप धारण किया। यत्र-तत्र बिखरी हुई कथाएँ प्रमाणित करती हे कि देव-दानव-सघर्ष का कारण दोनो की अधिकार-लिप्सा थी। कदाचित इस सघर्ष के मूल मे दो सम्कृतियो, जीवन-धाराओ या जीवन-दृष्टियो का द्वन्द्व है। देवताओ की बढती हुई भोतिक कामनाआ की चर्चा पुराणो मे अनेक स्थनो पर बिखरी हुई है। ब्राह्मण ग्रन्था म भी देवत्व का स्वरूप अधिक निष्कलक नही कहा जा सकता। देवो के गन्धर्व वर्ग का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। उसके अन्तर्गत अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, आदित्य आदि आ जाते हे (श ब्रा. 9/4/1/7, 8 आदि)। ये गन्र्धव, आदित्य, वरुण आदि की प्रजा है तथा अत्यन्त योवनमय एव सुन्दर है। गन्र्धव-लोक की कल्पना देवताओ के निवासस्थान के समीप की गयी है। ये लोग रूप के उपामक है तथा अप्सरा भी उनके साथ रहती है।[2] देवताओ की विलासिता मे उनके पेय सोम, मधु, मद आदि को प्रमुख स्थान प्राप्त है। वेदो मे प्रयुक्त 'सधमादो' शब्द से भी उनके सामूहिक आमोद प्रमोद का आभास मिलता है। इन्द्र के उदर मे तो सोम के लिए सिन्धु के समान एक स्थान की कल्पना की गयी (ऋ. 1/30/3),देवताओ का स्वरूप क्रमशः विकृत होता हुआ प्रतीत होता है। वेदो मे देवताओ को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है और इसी कारण उनकी प्रशसा की गयी। वहाँ उनके कई रूप है पर ब्राह्मण ग्रन्थो मे हिसा, सुरा आदि का उल्लेख मिलता है।[3]

देवताओं की भाँति दानवों की भी चर्चा भारतीय ग्रन्थों में प्राप्त है। नमुचिसंहार अथवा वृत्रवध के अतिरिक्त अन्य घटनाएँ वेद, ब्राह्मण, पुराण में मिलती हैं। ऋग्वेद में यद्यपि देवताओं के भोग-विलास के संकेत दिखाई देते हैं किन्तु सुरापान, क्रोध, पाँसा खेलना आदि पाप समझा जाता है (ऋ 7/86/6)। ऋग्वेद का पाकयज्ञ अन्न से अधिक सम्बन्धित है। उसमें हिंसा का स्थान कम है। मनु ने 'कामायनी' के आरम्भ में यही पाकयज्ञ किया था, जो ऋषियों के अनुकूल है। उसी का अवशिष्ट अन्न दूर बहकर जाया करता था। किलात, आकुलि के आने पर मनु ने पशुबलि आरम्भ की। इस समय देवताओं के वंशज मनु असुरों के निकट सम्पर्क में आने के कारण हिंसा की ओर प्रवृत्त होते हैं। ऋग्वेद में जिन वस्तुओं की निन्दा की गयी है, उनमें सुरा का समर्थन उशिज् के पुत्र कक्षीवान् ऋषि करते हैं। उनकी वंश-परम्परा में सभी व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में आसुरी वृत्तियों का वर्णन करते हैं। मेक्डानल के अनुसार अश्विन देवता को सुरापान के कारण देवताओं ने उचित स्थान से वंचित किया।[4] दानवों की मुख्य प्रवृत्तियाँ हिंसा, पशुवलि तथा भौतिक सुख की कामना आदि हैं।

देव-दानव-संघर्ष एक सांस्कृतिक रूप में हुआ। अधिकांश विद्वानों का विचार है कि भारत में आर्यो-अनार्यों का युद्ध देवासुर-संग्राम से सम्बन्ध रखता है। असुरों के सम्पर्क में आने के कारण सम्भवतः देवताओं की रूपरेखा में किंचित् परिवर्तन हुए, अन्यथा उसके पूर्व ऋग्वेद में उनका पवित्र और उदात्त स्वरूप ही प्राप्त होता है। उशना, कक्षीवत्, वसुक आदि असुर-पुरोहितों ने मांसभक्षण, पशुवलि, सुरापान आदि की प्रशंसा की। देवताओं में आसुरी वृत्तियों के आने से उनका नैतिक धरातल नीचा हो गया। उन्होंने स्वयं अपने परिष्कार का प्रयत्न किया। 'अन्नंपशवः' आदि से भी स्पष्ट है कि वैदिक युग के पाकयज्ञ मे जो पशुबलि होने लगी थी, उसी की पुनर्स्थापना का प्रयास हुआ। 'अशिव इव वाड्एष भक्षो यत्सुरा ब्राह्मणस्य' में सुरापान की निन्दा की गयी। देवता, दानव तथा उनके संघर्ष के विषय में प्राचीन भारतीय ग्रन्थो में पर्याप्त सामग्री है। पुराणों में इस विषय ने कथा का रूप ग्रहण किया। किन्तु इस ऐतिहासिक विवेचन के अतिरिक्त देव-दानव-संघर्ष का दार्शनिक पक्ष भी है। उपनिषदों में इस संघर्ष पर विस्तार से विचार किया गया। इस प्रकार देवासुर विषय का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक स्वरूप दिखाई देता है।

'कामायनी' में देव-दानव-समस्या आरम्भ से ही दिखाई देती है। देवताओं का उच्छृंखल और अपूर्ण रूप कवि ने चित्रित किया है। देव-सृष्टि के विनाश का कारण मनु अत्यधिक भोग-विलास बताते हैं। 'देव-दम्भ' के कारण समस्त वैभव विलीन हो गया। देवता उन्मत्त विलास में मग्न थे। सुर-बालाओं का शृंगार होता था। वासना की सरिता बहती थी। क्रमशः शान्त होनेवाले प्रलय को देखकर मनु उस देव-सृष्टि का चित्र प्रस्तुत करता है। 'चिन्ता' सर्ग में देवताओं का विकृत रूप दिखाई देता है। वह एक प्रकार की अतृप्ति थी। मधुमय चुम्बन और देवकामिनी के साथ पशुयज्ञ

की भी चर्चा है। देवताओं का यह विलासी चित्र प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के उस रूप के अधिक समीप है जब देवताओं का सम्पर्क दानवों से हो चला था। धीरे-धीरे उनमें भी आसुरी वृत्तियों का प्रवेश होने लगा। 'कामायनी' में किलात और आकुलि मनु को पथभ्रष्ट करते हैं जिसका वर्णन शतपथ ब्राह्मण में है। मनु वास्तव में देवताओं के ही वंशज हैं किन्तु मानवता का विकास करते हैं। वे देवयोनि की दुर्बलताओं की याद करके काँप उठते हैं। देवताओं की अपूर्णता के साथ दानवों की भौतिक लिप्सा की ओर भी 'कामायनी' में संकेत किया गया है। किलात-आकुलि नामक असुर-पुरोहित मनु को हिंसक कर्म में नियोजित करते हैं। मनु पाकयज्ञ के स्थान पर पशुयज्ञ आरम्भ कर देते हैं। ये ही किलात और आकुलि मनु के विरुद्ध विद्रोह करनेवाली प्रजा का नेतृत्व करते हैं। मनु उसी अवसर पर कहते हैं कि इन दोनों को मैने अपना समझकर अपनाया था और ये ही उत्पात मचा रहे हैं। श्रद्धा एक वैदिक ऋषि की भाँति मनु के ऊपर होनेवाले असुरों के सांस्कृतिक प्रभुत्व को समाप्त करने का प्रयत्न करती है। मनु जब हिंसक यजमान हो जाते हैं तो वह उन्हें पथभ्रष्ट होने से रोकती है। श्रद्धा कहती है कि अपने सुख को विस्तृत कर सभी को सुखी बनाओ। इस प्रकार पौराणिक देवासुर-कथानक का एक लघु संस्करण 'कामायनी' में मिल जाता है। कवि ने देवताओ की अपूर्णता तथा दानवों की भौतिक लिप्सा के ऊपर मानव की प्रतिष्ठा की है। देव-दानव दोनों अपूर्ण थे :

> था एक पूजता देह दीन
> दूसरा अपूर्ण अहंता में अपने को समझ रहा प्रवीन
> दोनों का हठ था दुर्निवार दोनों ही थे विश्वासहीन

'कामायनी' में देव-दानव के सास्कृतिक-दार्शनिक पक्ष का ग्रहण अधिक है। कवि का कहना है कि देव-दानव दोनों अपूर्ण हैं। इन दोनों से ऊपर उठी हुई मानवता का चित्रण ही 'कामायनी' का मुख्य विषय है। स्वय आदिपुरुष मनु 'सुरश्मशान' में साधना करते है। वे बारम्बार उस उच्छृंखल भोग-विलास की ओर संकेत करते है। कवि ने मनु को भावी मानवता के प्रतिष्ठापक रूप मे चित्रित किया है। मानवता के कल्याण के लिए देवत्व के प्रति उतना आग्रह नहीं, जितना एक स्वस्थ जीवन-दर्शन का। दार्शनिक दृष्टि से मनुष्य के अन्तरतम मे द्वन्द्व चलता रहता है। दैवी और आसुरी वृत्तियाँ निरन्तर संघर्ष करती हैं। देव और असुर एक ही प्रजापति की सन्तान हैं।[5] इसके लाक्षणिक अर्थ से भी मानव में दोनों वृत्तियों का समावेश है।

मन की कोई अवचेतन शक्ति उसे नीचे की ओर ले जाती है। मानव के अन्तर-प्रदेश का यह संघर्ष सदा गतिमान रहता है। मनु मानव और मन के ही प्रतिरूप हैं। उनके हृदय में मानसिक झंझावात चलता रहता है। देवताओं का पतन तथा असुर पुरोहित का आना तो केवल एक कथागत क्रम है, किन्तु विश्लेषण से स्पष्ट होता

है कि आदिपुरुष जीवन-भर अपनी चेतना से युद्ध करता रहा। उसका जीवन मानसिक उथल-पुथल का एक केन्द्रीभूत स्वरूप है। मानव के मन में उठनेवाली भावनाएँ उसमें मिलती हैं। उसका रूप कभी-कभी तो क्षण-क्षण में परिवर्तित होता है। केवल मनु ही नहीं, कवि प्रसाद के अधिकांश पात्र इसी मानसिक झंझावात को लेकर चलते हैं। मानव का स्वाभाविक रूप ही कवि ने लिया है और मन का विश्लेषण उनके साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्वर है। केवल भौतिक धरातल पर ही नही, किन्तु उनकी दृष्टि जीवन की पूर्ण इकाई पर है। जीवन-भर शत्रुओं से युद्ध करनेवाला राष्ट्रसेवी स्कन्दगुप्त अपने प्रेम में पराजित हुआ। स्वय चाणक्य ने सुवासिनी से प्रेम किया था। 'ध्रुवस्वामिनी' में कोमा कहती है कि 'मनुष्य के हृदय में देवता को हटाकर राक्षस कहाँ से घुस आता है।' इस प्रकार का अंतःसंघर्ष मनु के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

देव-दानव के मानसिक संघर्ष की प्रहेलिका भारतीय दर्शन की भी प्रमुख समस्या रही है। मानव स्वयं पाप नहीं करना चाहता। अनेक प्रकार के आकर्षण उसे अवनति की ओर ले जाते हैं। मानव की चेतना और ज्ञान उनसे संघर्ष करते हैं। उपनिषदों में देवों-दानवों की वृत्तियों के विश्लेषण में लम्बे-लम्बे वाद-विवाद मिलते हैं। आत्मा पर सविस्तार विचार करनेवाले उपनिषद् उसका सूक्ष्मतम रूप प्रस्तुत करते हैं। मैत्रेयी उपनिषद् में उसे शारीरिक रथ का सारथी कहा गया है (2/3)। आत्मा का निर्विकार और तटस्थ रूप उसे सर्वोपरि और सर्वव्यापी रूप प्रदान करता है। कठोपनिषद् के अनुसार इस सर्वशक्तिमयी आत्मा की शक्ति का आभास मात्र मिलते ही मानव का दुख विलीन हो जाता है (1/2/21)। मनु का प्रयत्न आत्मोपलब्धि या स्वयं को पहचानने के लिए है। उपनिषद् आदि का दार्शनिक आधार ग्रहण करते हुए मनु के मन मे चेतन और जड का संघर्ष प्रदर्शित किया गया है। आत्मा के अन्तर्गत दिति-अदिति, अन्धकार-प्रकाश आते है। मनु का वास्तविक चेतन ही श्रद्धा है। मांडूक्य उपनिषद् चेतना के चार चरण वैश्वानर, तजम, प्रज्ञा और ओ३म् मानता है। प्रसादजी ने मानव का अकन करने के लिए स्वाभाविक रूपरेखा का अधिक ध्यान रक्खा है। उपनिषद् आत्मा को एक सत्ता के रूप मे देखते है जो शरीर पर अधिकार रखता है। इस दृष्टि से श्रद्धा के उदात्त चरित्र को ही यह स्थान प्राप्त हो सकता है। वह मन की चेतना है, जो मनु अथवा मन को ऊपर उठाना चाहती है। वह देव-दानव संघर्ष से ऊपर उठकर एक नया सामंजस्य स्थापित करनेवाली है। यो संघर्ष तो कभी मरता नही :

देवों की विजय दानवों की
हारों का होता युद्ध रहा
सघर्ष सदा उर अन्तर में
जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा।

आधुनिक मनोवविज्ञान व्यक्ति को इच्छा का केन्द्र मानता है। इच्छा के साथ भावना का उदय और अन्त होता है। एक ओर मनु का चरित्र यदि मनोविज्ञान से प्रभावित है तो श्रद्धा आत्मा के अधिक समीप है। इस प्रकार प्रसादजी की दृष्टि देव, दानव से भिन्न मानव पर थी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने देवत्व और दानवत्व दोनों की अपूर्णता दिखलाई है। मानव ही पूर्ण है और यही 'कामायनी' की मानववादी दृष्टि है।

मानववादी दृष्टि

मानव की रूपरेखा निर्धारित करने में कवि ने कल्पना का आश्रय ग्रहण किया। उसमें जीवनानुभव और चिन्तन का सम्मिलन हो गया है। सर्वप्रथम ध्वस्त देवत्व पर मानवता की स्थापना है। नई मानवता देवताओं के भोग-विलास का परित्याग कर चुकी है। मनु आरम्भ में पाकयज्ञ करने का आयोजन करते हैं। उनकी यह क्रिया देवताओं से भिन्न है। पाकयज्ञ की कामना में तप की भावना अधिक है :

> जलने लगा निरन्तर उनका अग्निहोत्र सागर के तीर
> मनु ने तप मे जीवन अपना किया समर्पण होकर धीर।

इस अवसर पर जो 'सुर संस्कृति' सजग होती है, उसमें कर्ममयी शीतल छाया है। मनु के अन्तर में जिज्ञासा का उदय होता है कि जैसे हम बचे हुए हैं, क्या आश्चर्य कि 'कोई और भी अपनी जीवनलीला रचे हो।' इसी आशा से वे अग्निहोत्र का अवशिष्ट अन्न कहीं दूर पर रख आते थे कि इससे कोई अपरिचित तृप्त होगा। मनु के मन में एकान्त के कारण जिन मानसिक वृत्तियों का उदय होता है उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मन के रहस्यों का उद्घाटन करता है। 'कामायनी' मानवता के उस विकास की शैली है जिसमें उठती-गिरती मानवता निरन्तर गतिमान रहती है। मानव का अन्तःविश्लेषण करते हुए प्रसादजी ने उसमें अनेक भावनाओं को चित्रित किया। निर्जन में मनु के मन में विचार आते-जाते है। वह कहता है :

> कब तक और अकेले कह दो हे मेरे जीवन बोलो
> किसे सुनाऊँ कथा कहो मत, अपनी निधि न व्यर्थ खोलो।

'एकोऽहं बहुस्याम' भावना किंचित् मनोवैज्ञानिक रीति से इन पंक्तियों में प्रस्फुटित हुई है। श्रद्धा के आगमन के साथ मनु की प्रवृत्तियों में परिवर्तन होता है। वह मनु की जड़ता समाप्त कर देती है। उन्हें दया, माया, ममता, मधुरिमा और अगाध विश्वास से स्नेहप्लावित कर देती है। सहानुभूति और संबल पाकर मनु कर्म की ओर प्रवृत्त होते हैं। श्रद्धा मनु में एक नवीन भावना को जन्म देती है। उसकी

इच्छा है : 'मानवता विजयिनी हो।' प्रसादजी अन्त में मानवता की ही विजय घोषित करते हैं। पूर्ण मानव का चरित्रांकन उनका प्रतिपाद्य है। नारी के आगमन के पश्चात् मानव के मन में काम-वासना का उदय होता है। भोग-विलास की लिप्सा में वह एक बार पुनः पथभ्रष्ट हो जाता है। आस-पास बिखरी हुई प्रकृति की विभूति से सन्तुष्ट न रहनेवाला प्राणी पशुओं की हत्या आरम्भ कर देता है। उसकी इस अतृप्ति को आसुरी वृत्तियाँ, भौतिक आकर्षण और भी अधिक उद्दीप्त करते हैं। पशुओं का आखेट करनेवाला मनु हिंसा में बद्ध हो जाता है। श्रद्धा मानव-मन की वह चेतन शक्ति है जो उसे पतन से रोकने का प्रयत्न करती है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' का कथन है : "पाप पंक में लिप्त मनुष्य की मुक्ति कठिन है। मनुष्य जब एक बार पाप के नागपाश में फँसता है तब वह उसी में और भी लिपटता जाता है। उसी के गाढ़े आलिंगन, भयानक परिरंभण में सुखी होने लगता है। पापों की शृंखला बन जाती है। उसी के नये-नये रूपों पर आसक्त होना पड़ता है।" एक साधारण-सी लिप्सा मनु के सुन्दर रूप को विकृत कर देती है। यह स्थिति बिगड़ती चली जाती है। उनका दृष्टिकोण संकुचित हो जाता है। वे श्रद्धा अथवा अपनी चेतना का ही परित्याग कर देते हैं। मनु बुद्धिवाद से जीवन की प्रहेलिका को सलुझाना चाहता है। अनेक भौतिक उपकरण तथा विनाश की सामग्री जुटाकर वह हृदय पर बुद्धि का शासन स्थापित करता है।

मनु की परिवर्तित दिशा के चित्रण में प्रसादजी को आधुनिक अनियंत्रित बुद्धिवाद से उत्तेजना प्राप्त हुई। बुद्धिवाद की प्रतीक इड़ा समृद्धिशाली राज्य की अधिष्ठात्री है। वह पश्चाताप से भरे मनु को राज्य-संचालन का भार सौंप देती है। भौतिक दृष्टि से मनु सम्पन्न हो जाता है। अनेक प्रकार के सुख-साधन एकत्र हो जाते हैं, किन्तु स्वयं उसकी अतृप्ति अब भी बनी हुई है। इस सुप्त वासना का जागरण भयावह है। मनु स्वयं बुद्धि पर शासन करना चाहता है। बुद्धिवाद से निर्मित समस्त प्रजा इस अवसर पर विद्रोह करती है। श्रद्धा के आगमन के साथ मनु में एक नवीन आशा का उदय होता है। पश्चात्ताप से क्षुब्ध वह पुनः अपने मानसिक झंझावात में भाग खड़ा होता है। किन्तु चेतन श्रद्धा पुनः मनु को खोज लेती है। अन्त में यह चेतन शक्ति, आत्मा उन्हें जीवन की पूर्णता से परिचित कराती है। मानव-जीवन की सर्वसम्पन्नता कामायनी का लक्ष्य है। प्रसादजी मानवता को सर्वोपरि मानते हैं। उन्होंने मानव की बहुमुखी शक्तियों को संगृहीत और समन्वित करके उसे आनन्द दिया। इस विषय में 'स्वर्ग के खंडहर' कहानी में उनका स्पष्ट मत है कि "पृथ्वी का गौरव स्वर्ग बन जाने से नष्ट हो जायगा। इसकी स्वाभाविकता साधारण स्थिति में ही रह सकती है। पृथ्वी को केवल वसुन्धरा होकर मानव जाति के लिए जीने दो। अपनी आकांक्षा के कल्पित स्वर्ग के लिए, क्षुद्र स्वार्थ के लिए, इस महती को, इस धरती को नरक न बनाओ, जिसमें देवता बनने के प्रलोभन में पड़कर मनुष्य राक्षस

न बन जाये।" मानवत्व की प्रतिष्ठा में प्रसाद ने उसे देवत्व से भी उच्च बना दिया। 'कामायनी' में मानव के यथार्थ स्वरूप को आदर्श से समन्वित किया गया है। वह भौतिक-आन्तरिक दोनों दृष्टियो से सम्पन्न होगा। कवि ने जीवन की सम्पूर्ण इकाई को लेकर विचार किया। मानव को पूर्ण बनाने के लिए स्वयं श्रद्धा भी उसे बुद्धिवादी इडा के पास छोड़ जाती है। किन्तु इस बुद्धि का अपनी सीमा का उल्लंघन करना अनुचित है। श्रद्धा वह संतुलन-शक्ति है जो मानव को पूर्ण बनाती है। मन, मनु और मानव की पूर्णता उन्हे आनन्द तक ले जाती है।

मनु और श्रद्धा

मानव मन के दो पक्ष है, हृदय और बुद्धि। हृदय की प्रतीक श्रद्धा है, बुद्धि का प्रतिनिधित्व इडा करती है। आरम्भ मे श्रद्धा, तदनन्तर इड़ा का प्रवेश होता है। दर्शन के अनुसार पिडांड मे अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द पंचकोश हैं। इनके उपविभाग भी किये गये हैं। आनन्दमय कोश को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है क्योंकि यही पर शक्ति-शिव, माया-ब्रह्म, प्रकृति-पुरुष की अद्वैतावस्था रहती है। विज्ञानमय कोश द्वैत का परिचायक है। इसमे शक्ति-शिव अथवा माया-ब्रह्म एक-दूसरे से पृथक हो जाते है। मनोमय कोश से अन्नमय कोश तक मन मननशील रहता है। आनन्दमय कोश तक मन अथवा मनु को श्रद्धा के अवलम्बन द्वारा पहुँचा देना प्रसाद का लक्ष्य है :

> स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
> इच्छा, ज्ञान, क्रिया मिल लय थे
> दिव्य अनाहत पर निनाद मे
> श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे !

'चिन्ता' सर्ग के मनु की प्रतिष्ठा कवि ने 'एक तत्व की ही प्रधानता' के वातावरण मे की है। आसुरी वृत्तियो के उदय के साथ मनु मै और तुम के पाश मे आ जाते हैं। इडा इस भेदक बुद्धि को और भी बढा देती है। इसका भयकर परिणाम संघर्ष होता है। अन्त मे श्रद्धा ही पुनः समन्वय प्रस्तुत करती है। श्रद्धा हृदय अथवा मन की सात्विकी प्रवृत्ति है, जो जीवन को कल्याण की ओर ले जाती है। बिना श्रद्धा और विश्वास के मानव पग-पग पर सन्देह करेगा। श्रद्धा के ऐतिहासिक और दार्शनिक विवेचन से भी स्पष्ट है कि जीवन में उसका महत्त्व असदिग्ध है। ऋग्वेद संहिता के दशम मंडल के एकादश अनुवाक् का एक सौ इक्यावनवाँ सूक्त श्रद्धा को ऋषि रूप में प्रतिष्ठित करता है। इस मंत्र के 'श्रद्धा' शब्द का भाष्य सायणाचार्य ने 'पुरुषगतो अभिलाषविशेषः श्रद्धा' (मानव की विशेष अभिलाषा) किया है। वेदों में श्रद्धा को उच्च स्थान प्राप्त है। ब्राह्मण ग्रन्थ भी इसका समर्थन करते हैं। स्वयं शतपथ ब्राह्मण

में श्रद्धा सर्वगुण-सम्पन्न है। कालान्तर के भागवत, विष्णु, मत्स्य, मार्कण्डेय आदि पुराणों के आख्यानों में भी इसकी पुनरावृत्ति मिलती है। शैवग्रन्थों में भी श्रद्धा की महिमा है। 'त्रिपुरारहस्य' कहता है :

> श्रद्धा हि जगतां धात्री श्रद्धा सर्वस्व जीवनम्।
> अश्रद्धा मातृविषये बालो जीवेत् कथ वद्।
>
> —ज्ञानखण्ड, अध्याय 7, श्लोक 7

श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के आरम्भ में अर्जुन कृष्ण से प्रश्न करते हैं : हे कृष्ण, जो व्यक्ति श्रद्धासहित, शास्त्र वर्णित विधि का परित्याग कर, यजन करते हैं, उनकी निष्ठा अथवा मनस्थिति किस प्रकार की है ? कृष्ण ने उत्तर दिया : स्वभावतः प्राणी की श्रद्धा सात्विक, राजस, तामस तीन प्रकार की होती है। सभी की श्रद्धा अपने सत्व तथा प्रकृति के अनुरूप हुआ करती है। पुरुष श्रद्धामय है। श्रद्धा के अनुसार ही वह निर्मित होता है। 'श्रद्धा' शब्द का विश्लेषण उसे गौरवान्वित स्वरूप प्रदान करता है। प्रसाद ने मन में उसकी स्थिति का प्रवेश ऐसे अवसर पर कराया है जब वह जड़ था। मन को श्रद्धा के कारण चेतना मिली। दया, माया, ममता, मधुरिमा और अगाध विश्वास श्रद्धा में वास करते हैं। मन का पथ-प्रदर्शन करनेवाली यह सूक्ष्म वृत्ति स्वयं अपने सात्विक रूप का उद्घाटन करती है। मन जब इसे नहीं पहिचान पाता तभी उसे कष्ट होता है। मनु का मन श्रद्धा के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ रहा, और स्थिति यह रही कि मनु ने स्वयं विचार किया—'सौन्दर्य जलधि से भर लाये, केवल तुम अपना गरल पात्र।'

श्रद्धा वह चेतन शक्ति है जो मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करती है। मन की सुषुप्त शक्ति का जागरण भी उसका लक्ष्य है। मन हिंसक कर्मों में प्रवृत्त होकर पशुबलि आदि से अपनी इन्द्रिय-लिप्सा की पूर्ति करता है, श्रद्धा उसे रोकती है। मन अत्यन्त चंचल है, वह पवन से भी अधिक वेगवान है। श्रद्धा उस पर अपनी सहृदयता से शासन करती है। श्रद्धा के अभाव में विभीषिकाएँ आरम्भ हो जाती हैं। विश्वास उठते ही मन की उच्छृंखलता बढ़ जाती है, वह बिखर जाता है। इन्द्रियाँ इधर-उधर भागने लगती हैं। पतन के साथ ही मन का संघर्ष होता है। वह परास्त होकर पुनः श्रद्धा की ओर जाता है। श्रद्धा उसे आनन्द का दान देती है। 'कामायनी' में मनु अथवा मन का आनन्दवादी पक्ष यही सात्विकी श्रद्धा है। मन संकल्प-विकल्पात्मक है। बुद्धि का कार्य विश्लेषण तथा परीक्षण है। वह मन पर शासन और नियन्त्रण रखती है। किन्तु यदि मन उस पर अधिकार करना चाहता है, तो वह विद्रोह कर देती है। मनु ने स्वयं बुद्धि की अधिष्ठात्री इड़ा का नियामक होना चाहा, इसी कारण संघर्ष हुआ। बुद्धि मन के ऊपर है : 'इन्द्रियाँ बलवान हैं। इनके ऊपर मन है। मन से भी परे बुद्धि है। जो बुद्धि से परे है, वही आत्मा है' (गीता : 3/42)।

ज्ञान बाह्य जगत के बोध का सुन्दर साधन है, किन्तु वह साध्य नहीं बन सकता। जब मस्तिष्क मन पर राज्य करने लगता है, तभी बुद्धि का अतिवाद आरम्भ हो जाता है। मनुष्य का विचार की सीमा तक विवेकी होना उचित है, किन्तु बुद्धिवादी होकर वह तार्किक बन जाता है। आत्मा अथवा सत्य का बोध केवल बुद्धि से नहीं हो सकता। उसके लिए मस्तिष्क ही नहीं, हृदय के भी नेत्र खोलने होंगे। मन के बुद्धि पक्ष का सन्तुलन श्रद्धा द्वारा ही सम्भव है। गीता में कहा गया है कि 'श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं' (4/39)। ज्ञान का शुद्ध स्वरूप समझने के लिए श्रद्धा की अपेक्षा है। श्रद्धा को जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। किन्तु बुद्धि पक्ष की पूर्णतया अवहेलना सम्भव नही। श्रद्धा यदि अन्तर्मुखी वृत्ति है तो इड़ा बहिर्मुखी। अन्तर तथा बाह्य मिलकर ही जीवन को पूर्ण बना सकते हैं। मन की स्वस्थता के लिए भी हृदय और मस्तिष्क दोनों का सहयोग अपेक्षित है। जब तक मानव-मन की द्विधात्मक स्थिति रहती है, वह शान्ति नहीं पाता। मन के दोनों पक्षों में समन्वय आवश्यक है। श्रद्धा और भक्ति का अन्धानुसरण मन को अन्धविश्वासी बना सकता है। इसी कारण सात्विकी श्रद्धा का ग्रहण ही मंगलमय है। विवेक सर्वोपरि है। हृदय की दुर्बलता अनेक बुराइयों का सृजन करती है। मन प्रवृत्तियों का अनुचर हो जाता है क्योंकि : 'मन की परवशता महादुःख'।

हृदय आत्मप्रवंचना और छल करने में भी कुशल है। 'आकाशदीप' की चम्पा कहती है—'जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ ?' शुद्ध आत्मवृत्ति श्रद्धा मन को उचित मार्ग में नियोजित करती है। बुद्धि पक्ष अहभावना का सृजन भी करता है। विकल्पात्मक बुद्धि तर्क-वितर्क करती है। किन्तु इससे तो सत्य की प्राप्ति नहीं होती : 'बुद्धि तर्क के छिद्र हुए थे / हृदय हमारा भर न सका।' अपने अहम् की तृप्ति के लिए मन बुद्धि का आश्रय ग्रहण करता है, किन्तु इससे व्यभिचार बढ़ता है और अन्त में सघर्ष होता है। मनु की यही स्थिति हुई थी। जब तक मन अहंकार में डूबा रहता है, उसे शान्ति नहीं मिलती। बुद्धि, तर्क और विकल्प ज्ञान की उस सीमा तक ही मन की सहायता कर सकते हैं जब तक कि उस पर श्रद्धा अथवा हृदय नियन्त्रण करते रहें। तर्क से सत्य छुई-मुई हो जाता है। उसके स्पर्श मात्र से वह क्षण-भर में मुरझा जाता है। तर्क तो अपना मन निश्चित कर लेता है। बुद्धि सर्वप्रथम सिद्धान्त बना लेती है, अनन्तर उसकी पुष्टि करती है :

सदा समर्थन करती उसकी
तर्कशास्त्र की पीढ़ी
ठीक यही है सत्य यही है
उन्नति सुख की सीढ़ी।

सत्य शब्द गहन होता जाता है। अकेली बुद्धि सत्य का उद्घाटन करने में असमर्थ रहती है। मानव-मन अपनी ही महत्त्वाकांक्षाओं में पराजित होता है। जीवन के प्रति यह विकल्पात्मक, तार्किक, केवल बुद्धिवादी दृष्टिकोण अनुचित है। मन की यह बुद्धि वृत्ति उसकी भौतिक समृद्धि में सहायक हो सकती है, किन्तु सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं। मनु को हिंसात्मक प्रवृत्ति से जो कष्ट हुए उनका कारण अतिशय बुद्धिवाद का अवलम्बन है।

मनोजगत

कामायनी में मन के विश्लेषण की प्रधानता है। मानव-मन का प्रतीक मनु इस चिन्तन का आधार है और उसके माध्यम से मन की स्थिति का उद्घाटन होता है। वास्तव मे मन वह केन्द्रस्थल है जहाँ से प्रत्येक वस्तु का आरम्भ होता है। सब कुछ मन की क्रीडा है। सुख-दुख, आशा-निराशा आदि की अनुभूति उसी पर निर्भर है। अनेकरूपता के कारण मानव-मन एक भीषण प्रहेलिका रहा है। बिबसार के अनुसार, "मानव हृदय में भी एक रहस्य है, एक पहेली है। जिस पर क्रोध से भैरव हुंकार करता है, उसी पर स्नेह का अभिषेक करने के लिए प्रस्तुत रहता है।" आत्मा की विस्तृत विवेचना करनेवाले उपनिषद् उसे महत्त्व देते है। आत्मा निर्विकल्प, शुद्ध और महान् है। आत्मा को एक उच्च धरातल पर ले जाने के पश्चात् मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार आदि की भी कल्पना की गयी। उपनिषदों मे मन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या भी प्रस्तुत की गयी। छान्दोग्य उपनिषद् (6/7) में मन अन्नमय, प्राण जलमय तथा वाक् तेजोमय है। मन में संकल्प, इच्छा आदि की शक्ति रहती है। पंच मकारों में उसे भी एक स्थान प्राप्त है। उसकी चंचल गति के कारण उस पर प्रतिबन्ध की आवश्यकता है। छान्दोग्योपनिषद् में काव्यात्मक रीति से इसका वर्णन है। "डोर में बँधा हुआ पक्षी दिशि-दिशि में भटकता रहता है। अन्यत्र शरण न पाकर अन्त में अपने स्थान को लौट आता है। इसी भाँति मन भी इधर-उधर भटककर अन्त में प्राण का आश्रय ग्रहण करता है (6/8)।"

मन को वश में करने के अनेक उपाय भिन्न-भिन्न दर्शनों मे मिलते हैं। इन्द्रियों से सम्बद्ध, मन पर अधिकार रखने का निवृत्तिमूलक मार्ग योगी-वैरागी अपनाते हैं। पर भावना को दबा देने से फिर वह इच्छा और तदनन्तर कर्म में प्रविष्ट न हो सकेगी। योग द्वारा मन अथवा चित्त की वृत्तियों को रोकने की शिक्षा योग ने दी है (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः)। इस चित्त में मन, बुद्धि और अहंकार भी आ जाते हैं। योग-समाधि की कठिन साधना के अतिरिक्त अन्य निवृत्ति-मार्ग भी हैं। अद्वैतवाद का समर्थन करनेवाले शंकराचार्य माया से मन की रक्षा करने के लिए कहते हैं। बौद्ध-जैन दर्शन व्यावहारिक होते हुए भी प्रवृत्तिमूलक नहीं प्रतीत होते। मन और चित्त को प्रवृत्ति-मार्ग में नियोजित करनेवाले ग्रन्थ वेद, उपनिषद् और शैवतन्त्र हैं।

गीता का कर्मवाद व्यावहारिक और प्रवृत्ति-निवृत्तिमूलक है, पर स्थितिप्रज्ञता का समर्थक। कामायनी में मन को कार्य में नियोजित करने का प्रयत्न किया गया। प्रसाद की दृष्टि प्रवृत्तिमूलक है और वे शैव दर्शन के अधिक समीप हैं। महेश्वर मन की इच्छा से सृष्टि का सृजन करते हैं। सब कुछ मन पर निर्भर है। परमेश्वर की पाँच शक्तियों में से चित् भी एक है। यह चित् शक्ति प्रकाशवान है जिसके द्वारा परमशिव स्वयं प्रकाशित होते रहते हैं। शैव दर्शन शिव की आनन्द शक्ति में विश्वास करता है, तभी तो मन को स्वतन्त्रता देकर कहता है : सर्वत्र आनन्दमय शिव का निवास है, फिर यह मन जायगा भी तो कहाँ ? अन्त में आनन्द में ही व्याप्त होगा। शिव की आनन्द-भावना में श्रद्धा रखनेवाले आनन्दवर्द्धनाचार्य ने मन को अन्तर्मुखी करने की भी व्यवस्था की। मन का दमन उचित नहीं, किन्तु उसे विषयवासना से हटाकर आन्तरिक वृत्तियो की ओर प्रवृत्त करना होगा। जगत ही सत्य है। वह परमशिव का आभास है।[6] प्रसाद ने मन की स्वाभाविक वृत्तियों का चित्रण करते हुए उसे अन्तर्मुखी बनाया। श्रद्धा मनु की जड़ता समाप्त कर कहती है :

एक तुम यह विस्तृत भूखड
    प्रकृति वैभव से भरा अमंद
कर्म का भोग भोग का कर्म
    यही जड का चेतन आनन्द।

श्रद्धा मन को सक्रिय करनेवाली सात्विक वृत्ति है। बुद्धि मन को बाह्य विषय, भौतिक आकर्षण की ओर भी प्रेरित करती है। मन के दार्शनिक विवेचन का आधार मनोवैज्ञानिक भी हो सकता है। 'कामायनी' मे मन का विश्लेषण इसी आधार पर हुआ।

उपनिषद् का मनोविज्ञान चित्त और मन को अत्यन्त सूक्ष्म मानता है। प्रश्नोपनिषद् में दस इन्द्रियो (पॉच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय) की विवेचना है। ये इन्द्रियाँ मन के वश मे है और उसी की इच्छा के अनुसार कार्य करती है। मन इन्द्रियों का स्वामी है, वह उन पर शासन करता है। छान्दोग्योपनिषद् में चित्त की श्रेष्ठता संकल्प द्वारा स्वीकार की गयी। मनुष्य चिन्तन के पश्चात् किसी संकल्प पर पहुँचता है। चित्त ही केन्द्रबिन्दु है जिसके सहारे मानव आगे बढ़ता है। चिन्तन से मानव ब्रह्म को भी पा सकता है (7/5/1)। मानसिक क्रिया-व्यापारों का वर्गीकरण ऐतरेय उपनिषद् में मिलता है। संज्ञानम्, आज्ञानम्, विज्ञानम्, प्रज्ञानम्, मेधा, दृष्टि, धृति, मति, मनीषा, जूति, स्मृति, संकल्प, ऋतु, असु, काम, वश आदि सभी सत्ता का बोध करानेवाले लक्षण हैं। इस मानसिक प्रक्रिया में ऐतरेयोपनिषद् ने अध्यात्म का भी समन्वय किया। मनु मानव को सत्य तक ले जा सकता है, वह सत्य का अन्वेषक है। मन की चेतना का विभाजन माण्डूक्योपनिषद् ने वैस्वानर, तेजस्, प्रज्ञा, ओऽम्

में किया। सर्वोपरि आत्मा की शुद्ध स्थिति तुरीय है और जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति उसकी विभिन्न अवस्थाएँ हैं। उपनिषद् का यह मनोविज्ञान आध्यात्मिकता से समन्वित है। कामायनी में अधिक व्यावहारिक पक्ष का ग्रहण है। अन्तिम चरण दर्शन, रहस्य और आनन्द तक मनु ओऽम् की उस स्थिति को पहुँचते हैं, जहाँ वस्तु आनन्द रूप प्रतीत होती है।

कामायनी में आधुनिक मनोविज्ञान तथा मनोविश्लेषण का भी ग्रहण है। मनोवैज्ञानिक व्यक्ति मन को समस्त क्रिया-व्यापारों का केन्द्र मानता है। इसका अन्तर्विश्लेषण कर मनोविज्ञान अनेक बातों की खोज करता है। मनोविश्लेषण के आधुनिक विद्वान वैज्ञानिक रीति से मानसिक स्थिति का अध्ययन कर किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। इसके लिए वे समस्त परिस्थिति का ज्ञान भी चाहते हैं। मनोविज्ञान विश्लेषण-प्रक्रिया है, जिससे मानव-मन के अध्ययन में सहायता मिलती है।[7] कवि का कार्य इससे अधिक होता है। मन के विश्लेषण के अतिरिक्त उसे अन्य निर्देश भी करने पड़ते है। वह वैज्ञानिक नही हो सकता। क्रोचे ने स्वयम् इस प्रश्न को उठाया है। उसके अनुसार 'कलाकार के लिए, मनोविज्ञान की भाँति किसी व्यवस्था के निर्माण की आवश्यकता नही। वह सीधे ही प्रत्यक्ष रीति से उस मानवीय यथार्थ को ग्रहण कर लेता है, जिसके खडों से मनोविज्ञान की व्यवस्था का सृजन हुआ है। प्रीति करने से पूर्व मनुष्य प्रीति के मनोविज्ञान से परामर्श नहीं करता। वह अपनी इच्छा से प्रीति करने लगता है। मनोविज्ञान की भाँति कलाकार साधारण रूपरेखा से कृति को निर्मित नहीं करता। वह प्रेमियो को उनके विलीन व्यक्तित्व मे उपस्थित करता है। मनोविज्ञान किसी पुस्तक का सूचीपत्र है, तो कला उसका प्रकरण। सूची पुस्तक के अनुसार बनती है जिसकी वह सदा उत्कृष्ट प्रतिनिधि होगी पर पुस्तक सूची के अनुकूल नही बनायी जाती।'

कामायनी का मनोविज्ञान काव्यात्मक स्वरूप मे प्रस्तुत हुआ। प्रत्येक सर्ग का शीर्षक एक मानसिक वृत्ति है। इन वृत्तियो का समावेश क्रमशः मनु, श्रद्धा और इड़ा में दिखाया गया है। पुरुष और नारी के मन में इन भावनाओ का उदय-अस्त होता है। कामायनी की चिन्ता, आशा आदि मानसिक वृत्तियाँ कई रूपो मे सम्मुख हैं। विकास की दृष्टि से वे जन्मजात सस्कार अथवा अन्तर्निहित आरम्भिक भावनाएँ हैं। इन मूल प्रवृत्तियों मे क्रमशः विकास और परिवर्तन होता रहता है। मनोवैज्ञानिक ए. ई. मैन्डर ने मूल प्रवृत्ति को "संस्कारगत तथा शरीर की अन्तर्जात प्रवृत्ति कहा है, जो किसी परिस्थिति में विशेष प्रकार का व्यवहार करती है।" मनु के मन की मूल प्रवृत्तियाँ क्रमशः विकसित होती हैं। चिन्ता भी आनन्द तक पहुँचती है। मानव-मन में उठनेवाली भावनाएँ उसकी मनोवृत्ति का परिचय देती हैं। मनुष्य सर्वप्रथम कोई विचार अपने मन मे ले आता है; तदनन्तर उसे कार्यरूप में परिणत करता है। मन की स्थिति और उसमें उठनेवाली भावनाओं के विषय में आधुनिक मनोविज्ञान में

कई रूप मिलते हैं। इनके विश्लेषण का आधार वैज्ञानिक है। किन्तु एक वर्ग केवल मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का आश्रय ग्रहण कर अपना कार्य करता है। फ़ायड इस वर्ग का प्रतिनिधि विचारक कहा जा सकता है। वृत्तियों और भावनाओं को लेकर इसी कारण मैक्डूगल ने किंचित् भिन्न मत की स्थापना की। स्वयम् फ़्रायड के अनुयायी एडलर और युंग का उनसे थोड़ा मतभेद प्रतीत होता है।

भाव-प्रक्रिया के विषय में लगभग डेकार्ट के समय से विचार होता रहा है। उसके अनन्तर विलियम जेम्स की विचारधारा का अधिक समर्थन हुआ। लेन्ज ने भी इसमें सहयोग दिया। इस कारण यह सिद्धान्त जेम्स लेन्ज के नाम से प्रसिद्ध है। जेम्स के अनुसार भाव इन्द्रियजन्य होते हैं। शारीरिक कार्य-कलाप से भी उनका सम्बन्ध है। शरीर की क्रियाएँ भाव को अनुशासित करती हैं। 'भाव ऐहिक अभिव्यक्ति का परिणाम है, कारण नही।"[8] जेम्स की इस विचारधारा में मैक्डूगल ने कुछ परिवर्तन किये। उसके अनुसार भाव प्रायः आन्तरिक होते हैं। वस्तु और ऐन्द्रिय प्रभाव उसी प्रकार बने रहते हैं, किन्तु भावो की प्रतिक्रिया में परिवर्तन होता है। उनका सम्बन्ध क्रियाशक्ति से भी रहता है। मैक्डूगल ने भाव और नैसर्गिक प्रवृत्ति मे अन्योन्याश्रित सम्बन्ध स्थापित किया। प्रत्येक नैसर्गिक प्रवृत्ति के साथ उसने एक भाव की कल्पना की। कालान्तर मे उसने अपनी विचारधारा मे किचित सुधार किया। उसके 'हारमिक सिद्धान्त' में भावो की एक लम्बी सूची दी हुई है। स्थूल रीति से प्रारम्भिक और माध्यमिक दो भेद भावो के किये गए। 'सामाजिक मनोविज्ञान' में उसने स्थायी भावो से सचारी भावो का भी विकास बताया। मानव-मन का अध्ययन करने में मैक्डूगल ने नैतिकता का भी ध्यान रक्खा। मानव-मन की समग्रता, कार्यशक्ति आदि के आधार पर होर्म सिद्धान्त को गीता के निकट रक्खा जा सकता है। गीता का 'निष्काम कर्म' उसके समीप है। काव्य मे भावग्रहण के विषय में मैक्डूगल की धारणा है कि 'कवि इन भावगत अनुभवों का मूर्त्तीकरण कर उन्हें व्यक्तिगत शक्ति के वाहक रूप मे वर्णन करते है।'[9] भावों के विषय मे फ़्रायड की धारणा इससे भिन्न है। उसने मन के विश्लेषण का आधार दमित वासना तथा सुखेप्सा वृत्ति (प्लेज़र प्रिसिपिल) को बनाया। अचेतन मन की स्थिति को विशेष महत्व देनेवाले फ़्रायड का अन्तश्चेतनावाद अधिक व्यावहारिक है। उसके अनुसार इदम (इड) का सम्बन्ध नैसिर्गक प्रवृत्ति से अधिक है। उसने इसे दो भागो मे विभाजित किया–जिजीविषा (इरोस) और सदीयता (सैडिज्म)। अहं प्रवृत्ति मे यथार्थ सुखेप्सा को दबाता रहता है। वास्तव मे सुखेप्सा का अहं केवल इच्छा कर सकता है, यथार्थ का अहं रक्षा करता है। फ़्रायड का निश्चित विचार है कि "मानसिक संतुलन के बिगड़ने का मूल कारण मानव की आन्तरिक आवश्यकताओ का आग्रह है।"[10] फ़्रायड ने अपने सुखेप्सा सिद्धान्त स आगे बढ़ने का प्रयत्न किया। उसके लिए कविता इच्छा-पूर्ति है। इस प्रकार मनोविज्ञान मे मानव-मन के विश्लेषण का प्रयास विभिन्न रीतियों से हुआ।

भावों मे एक क्रमिक विकास सभी ने स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त नैमर्गिक प्रवृत्ति, भावना, इच्छा आदि अन्य वृत्तियों से भी भावों का सम्बन्ध स्थापित किया गया। एक का प्रभाव अन्य पर किसी-न किसी रूप मे अवश्य पड़ता है।

चिन्ता से आनन्द तक

कामायनी में मानव-मन का विश्लेषण करने में किसी विशेष मनोवेज्ञानिक परम्परा अथवा सिद्धान्त का अनुसरण नहीं किया गया। जीवन के आरम्भ से लेकर अन्त तक मन में उठनेवाले भावां, विचारों और अनुभूतियों का चित्रण करने में कवि ने कल्पना का अधिक आश्रय लिया। सर्गों का नामकरण वृत्तियों के आधार पर है जिनमें एक तारतम्य देखा जा सकता है। कामायनी का आरम्भ चिन्ता से होता है। प्रलय के अनन्तर मनु के सम्मुख समस्याएँ थीं। बारम्बार उन्हें अतीत वैभव की याद आती थी। अब भी उनमें देवताओं के संस्कार जीवित थे। अतीत के चिन्तन के साथ मनु के मन मे भावी चिन्ता की एक क्षीण रेखा भी उठती है। विगत के प्रति एक पश्चात्ताप की भावना है, किन्तु मनु देवत्व के विध्वस पर नवनिर्माण चाहता है। आवश्यकता आविष्कारों की जननी है। अतृप्ति और चिन्ता मानव को गति देते है। ज्ञान-विज्ञान के मूल में चिन्ता है। मनुष्य अधिक-मे-अधिक सुखी रहने की आकाक्षा रखता है। मन की समस्त चेतना चिन्ता करती है। चिन्ता सृष्टि का मूल रहस्य है। जिज्ञासा-कुतूहल भी उसकी सहायता करते हैं। मनु को एक ओर 'उस अतीत और सुख' की चिन्ता है, साथ ही वह एक क्षण के विस्मरण मे भविष्य की कल्पना भी करना चाहता है। भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों उसकी चिन्ता मे निहित हैं। अभाव में चिन्ता का उदय, मधुमय अभिशाप, हृदयाकाश का धूमकेतु आदि मनोवैज्ञानिक सत्यो को कवि ने प्रस्तुत किया है। अन्त में उसके कई नाम लेता है : 'बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिन्ता तेरे हैं कितने नाम।' इनमें से प्रायः सभी ऐतरेय उपनिषद् (3/2) में भी प्राप्त हो जाते हैं।

चिन्ता में चेतनता होती है, किन्तु अधिक सम्बल अथवा शक्ति नहीं। वह सोचने तक सीमित रहती है। मन अतीत की चिन्ता में पश्चात्ताप कर सकता है, उसे प्राप्त करने के लिए व्याकुल होकर अन्त मे दुखी हो सकता है। भविष्य की चिन्ता मन को आशंकाओ से भर देती है, किन्तु चिन्ता स्वतः निस्संबल है। चिन्ता को संबल प्रदान कर जीवन को गतिमान करनेवाली वृत्ति आशा है। आशा विकास और प्रगति का दान देती है। मानव में आस्था का उदय होता है। प्रलय की भीषण स्थिति से भयभीत मनु के मन में आशा का सचार सृष्टि-क्रम को आगे बढ़ाता है। आशा के आगमन के साथ प्राची में उषा स्वर्णिम प्रभा बिखेरती आ जाती है। मनु के मन में हृदय की जिज्ञासा समीप ही बिखरी हुई प्रकृति की विभूति देखने लगती है। आशा के कारण मन में एक साथ अनेक प्रश्न उठते हैं। समस्त

सृजन को चिरन्तन गति प्रदान करनेवाली यह वृत्ति मनु के मन में जीवन के प्रति अनुराग उत्पन्न करती है। यवनिका हट जाती है, प्रकाश दिखाई देने लगता है। मनु पाकयज्ञ करना आरम्भ करते हैं। आशा बलवती होती है और वही आदिपुरुष को गतिमय करती है। वह उनके हृदय में मधुर स्वप्न-सी झिलमिल होकर आयी है। वह प्राणों का समीर है। इस मधुर जागरण के कारण प्रकृति का विकृत रूप मानस-पटल से विलीन हो जाता है। उसका स्थान नित्ययौवना प्रकृति ले लेती है, जिसमें हिमालय भी हँस-हँस पड़ता है। आशा के कारण सुर-संस्कृति सजग हो सकी। मन में आनेवाली आशा की भावना ने क्षुब्ध मनु को साहस दिया, शक्ति प्रदान की। वे सोचने लगे :

मैं हूँ, यह वरदान सदृश क्यो
लगा गूँजने कानों में
मैं भी कहने लगा मैं रहूँ
शाश्वत नभ के गानों में।

चिन्ता और आशा इच्छा के प्रतिरूप हैं, किन्तु मन को भलीभाँति क्रियाशील बनानेवाली वास्तविक वृत्ति श्रद्धा है। श्रद्धा-विश्वास के अभाव मे जीवन क्षण-भर भी नहीं टिक सकता। वह इतनी प्रमुख वृत्ति है कि मन में उसका रहना आवश्यक है। श्रद्धा मनु अथवा मानव का एक पक्ष बनकर आयी है। श्रद्धा जीवन की जड़ता और निष्क्रियता समाप्त कर देती है। वह अपने साथ दया, माया, ममता, मधुरिमा आदि कोमल भावनाएँ ले आती है। वास्तव मे वह एक प्रवृत्तिमूलक आस्थामय वृत्ति है जो निवृत्ति का निषेध करती है। श्रद्धा एक आस्तिक सद्वृत्ति है जो चेतन शक्ति का उदात्त रूप है। मन में उसके प्रविष्ट होने पर इन्द्रियाँ कार्यरत हो जाती हैं। प्राणो की क्रियाशक्ति जाग्रत हो उठती है। केवल विचार और चिन्तन मे ही उलझा रहनेवाला प्राणी कार्य में प्रवृत्त होता है। विस्तृत भूखंड का उपभोग करने की कामना से वह कर्म करता है। श्रद्धा मन की महान और उदात्त शक्ति है, जो उसे कार्य मे नियोजित कर सहयोग देती है। मन शक्तिशाली होकर विजयी बनने की इच्छा करता है। श्रद्धा में चेतना, क्रियाशक्ति केन्द्रित है और वह सामूहिक चेतना का प्रतीक है। मनु के मन की इच्छा को श्रद्धा ने कार्यान्वित किया। वे सृष्टि के निर्माण में नियोजित हुए। श्रद्धा केवल मनु के मन की ही नहीं, किन्तु समस्त मानवता के कल्याण की आधारशिला है। प्रसाद ने इस उदात्त भाव की कल्पना सामाजिक मनोविज्ञान के आधार पर की। श्रद्धा के द्वारा मानव शक्ति-सचय कर मार्ग मे अग्रसर होता है। चंचल मन की स्थिति में स्थायित्व आ जाता है। वह एकाग्रचित्त एवं तल्लीन होकर अपने उद्देश्य-प्राप्ति में प्रयत्नशील रहता है। उपनिषदो में श्रद्धा महान तप है। श्रद्धा सम्पूर्ण काव्य में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करती है। मनु अथवा मन को आनन्द तक वही ले जाती

ले जाती है। श्रद्धासचालित मन ही आनन्दमय है।

श्रद्धा के साथ काम का उदय होता है। यह प्रवृत्तिमूलक भावना कामना का सृजन करती है, उसके भोग के साधन जुटाती है। काम समस्त कामनाओ, इच्छाओ का घनीभूत रूप है। उसका क्षेत्र विस्तृत है। मन की आशा विचार के अधिक समीप है, किन्तु काम एक व्यापक धरातल का पकडकर कार्य म अग्रसर होता है। कामायनी मे काम का उदात्त और विस्तृत रूप ही ग्रहण किया गया। स्वय श्रद्धा कामगोत्रजा कामायनी है। काम की कल्पना मे मनोवैज्ञानिक दार्शनिक सम्मिश्रण है, जो वैदिक मनोविज्ञान और दर्शन के अधिक समीप है। 'कामना' नाटक मे भी काम का अधिक उदात्त रूप प्रसाद ने ग्रहण किया। मनोवैज्ञानिक प्रतीको का आधार लेकर उन्होंने उसकी रचना की। कामायनी उसी का काव्यात्मक रूप है। कामना स्वय अपनी परिभाषा करती है, "मै क्या चाहती हूँ। जो कुछ प्राप्त है इसस भी महान। वह चाहे कोई वस्तु हो। हृदय को कोई राक रहा है। कुछ आकाक्षा है, पर क्या है, इसका किसी का विवरण नही देना चाहती। केवल वह पूर्ण हो और वहाँ तक जहाँ तक उसकी सीमा हो, बस।'

काम के कालान्तर मे विकृत हो जानेवाले रूप का ग्रहण कवि ने नही किया। काम के अन्तर्गत प्रेम कामना, इच्छा आदि भाव आते है। काम आनन्द की प्रतिध्वनि है। अथर्ववेद (9/2) मे काम की प्रशसा की गयी। धर्म, अर्थ और मोक्ष के साथ ही काम को भी स्थान प्राप्त है। सोऽकामयत, एकोऽहं बहुस्या प्रजायै' से भी काम का महत्व स्पष्ट है। वह ईश्वर के निष्काम मन म वास करता है। वैदिक काम शैवो के आगमशास्त्र मे आनन्दोपासना का प्रतीक बना। प्रसादजी उसके उदात्त रूप की प्रतिष्ठा 'कामायनी' द्वारा करन म प्रयत्नशील है। उनका इस विषय मे आधुनिक मनोवैज्ञानिको तथा पौराणिक गा आ म मतभेद है। फ्रायड काम अथवा इच्छा का सम्बन्ध यौनभाव से स्थापित करता है। इच्छाएँ दमित होकर कुठाए बन जाती हैं और तदनन्तर उनकी अभिव्यक्ति होती है। इस अतृप्त कामना का उदात्तीकरण कवि कर लेता है। इसी प्रकार मेक ड्गल भी इच्छा स पश्चात्ताप दुख निराशा आदि का ग्रहण करता है। कामायनी का काम वैदिक विचारणा से प्रभावित है, जो मन का आनन्दमय करता है। मनु अथवा मन मे काम के प्रवेश के साथ ही मधुमय वसन्त' छा गया, उसे ज्ञात हो गया कि

> यह नीड मनोहर कृतियो का
> यह विश्व कर्म रगस्थल है

'काम' सर्ग मे मनु के मन का काम अपने विकृत रूप पर भी विचार करता है। देवताओ का सहचर बनकर वह केवल विनोद का साधन बना रहा। इसी कारण काम अनादि वासना मे परिणत हो गया। काम मानव की प्रगति बनने की कामना

करता है। उसकी मूल शक्ति प्रेमकला है। मनु अपने काम के वास्तविक रूप को भूल जाते हैं। पथभ्रष्ट हो जाते हैं। इस समय काम की वही अवस्था हो जाती है, जो वैदिक युग के पश्चात् हुई थी। इसी कारण शंकर ने स्वयं कामदेव को भस्म कर दिया था। गीता में भी काम की निन्दा की गयी। 'कामसूत्र' की रचना 'काम' के अवमूल्यित रूप का प्रतीक है। मनु ने काम के वास्तविक रूप को नहीं समझा और उन्होंने संकुचित अर्थ ग्रहण किया। इसी कारण मन में वासना का उदय हुआ जो इन्द्रिय की भोग-लिप्सा तथा विषय-तृप्ति की कामना करती है। मनु का मन स्वयं कामी हो जाता है। वासना मन को विकृत कर देती है। मनु का मन ग्लानि से भर जाता है। इस स्थिति का वर्णन कवि ने सांकेतिक प्रणाली से ही किया है :

छूटतीं चिनगारियाँ उत्तेजना उद्भ्रान्त
धधकती ज्वाला मधुर था वक्ष विकल अशान्त।
वात-चक्र समान कुछ था बाँधता आवेश
धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय में था लेश।

लज्जा एक अत्यन्त सूक्ष्म वृत्ति है जो संकेत और छाया बनकर रह जाती है। पश्चात्ताप और लज्जा भाव एक-दूसरे के पर्याप्त निकट हैं। किसी कुकर्म के पश्चात् चेतना विचित्र ग्लानि और पश्चात्ताप से भर जाती है। पर लज्जा में संकोच का अंश अधिक है। वह स्वच्छन्दता पर एक झीना प्रतिबन्ध लगाती है। यह सूक्ष्म भावना मन मे प्रविष्ट होकर प्रत्यक्ष को भी स्वप्न करने लगती है। वह हृदय की परवशता बनकर सारी स्वतत्रता छीन लेती है। छाया-प्रतिमा की भाँति वह धूमिल वर्णों से निर्मित है। लज्जा सौन्दर्य की रक्षा करती है, वह नारी का आभूषण है। नारी और उसके अन्तर मं उठनेवाली लज्जा की सूक्ष्म भावना के पारस्परिक वार्तालाप द्वारा कवि ने नारी-पुरुष की समस्या पर भी विचार किया। अपनी सहृदयता से नारी पुरुष को वशीभूत कर सकती है। लज्जा श्रद्धा के मन मे उदित होकर उसे गौरव सिखाती है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुमार लज्जा की भावना का उदय हीनता के कारण होता है। श्रद्धा में इस ममय आत्मसमर्पण की भावना अधिक है, जो मैकडूगल के अनुसार केवल हीनता का ही प्रतिरूप नहीं है। उसमें नम्रता, सामीप्य, स्नेह आदि की भावना भी आ जाती हे।[11] लज्जा के सूक्ष्म भावों का चित्रण कवि ने आरम्भ में ही किया है। यह आन्तरिक वृत्ति नारी के मन का पथ प्रशस्त करती है। अपना परिचय देते हुए कहती है .

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ
मैं शालीनता सिखाती हूँ
मतवाली सुन्दरता पग में
नूपुर-सी लिपट मनाती हूँ।

वासना से नारी में लज्जा और पुरुष में कर्म की प्रवृत्ति का उदय होता है। काम का संकुचित रूप ग्रहण करने के कारण मनु वासना में लिप्त हो जाता है। इसी दृष्टि-भेद के कारण कर्म का भी वास्तविक रूप उसके सम्मुख नहीं आता। वासना अतृप्ति का ही एक अन्य रूप है, क्योंकि सदा उसकी तृप्ति सम्भव नहीं। इसी कारण मनु का मन हिंसात्मक कर्म में संलग्न होता है। किलात, आकुलि नामक दो अन्य पतनोन्मुख वृत्तियाँ उसे और भी नीचे ले जाती हैं। मनु की रक्त-पिपासा जाग्रत हो जाती है। वासना का कोई अन्त नहीं, उसकी वृद्धि होती रहती है। मनु पशुबलि से इंद्रियतृप्ति करना चाहते हैं, किन्तु सोम अतृप्त वासना को बढ़ाता रहता है। जीवन के प्रत्येक सुख को तृप्त करने की कामना से कर्म करनेवाला व्यक्ति कुवृत्तियों के पाश में फँस जाता है। मनु सोम के द्वारा प्राण के रिक्त अंश को मादकता से भर लेना चाहते हैं। वे कर्म का भी संकुचित अर्थ ग्रहण करते हैं। मनु के मन की चेतना-श्रद्धा उनकी वृत्तियों को देखकर उन्हें कर्म का व्यापक रूप समझाती हैं। सुख को सीमित कर लेना ही दुख है। कवि का आग्रह कर्म के व्यापक रूप तथा उसके आनन्दमय स्वरूप के प्रति अधिक है। कर्म में प्रवृत्ति अनिवार्य है किन्तु उसका क्षेत्र व्यापक और उदात्त होना चाहिए। मन संकुचित वृत्ति के कारण उसके सुन्दर स्वरूप का ग्रहण नहीं कर पाता। कर्म विस्तृत होना चाहिए जिससे व्यक्तित्व का उचित विकास हो सके। उसमें व्यष्टि के स्थान पर समष्टि का आग्रह हो। मनु के व्यक्तित्व का विकास संकुचित दृष्टि के कारण उचित रीति से नहीं हो पाता।

काम, वासना, कर्म का अन्तिम विकृत रूप ईर्ष्या में घनीभूत होकर प्रस्तुत होता है। ईर्ष्या की उत्पत्ति अभाव और हीनता के कारण होती है। संकीर्ण मनोवृत्ति उसका सृजन करती है। प्रतियोगिता में स्वयं को अशक्त समझनेवाला व्यक्ति अपनी हीनभावना से क्षुब्ध, निराश होकर ईर्ष्यालू बन जाता है। उसका अहं जाग्रत होकर आत्मकेन्द्रित बनता है। उसकी सीमाएँ निश्चित हो जाती हैं। दूसरों के प्रति व्यक्ति असहिष्णु और अनुदार हो जाता है। मार्ग में जाता हुआ अभावग्रस्त, अशक्त व्यक्ति आगे बढ़नेवाले पथिक के साथ नहीं चल पाता। अपनी हीनता से विवश होकर वह पथिक को हानि पहुँचाने का प्रयत्न करता है। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि भाव अन्य को सुखी नहीं देख सकते। मनुष्य मन पर से नियंत्रण और अधिकार खो बैठता है। श्रद्धा चेतन शक्ति के होते हुए भी ईर्ष्या के कारण मनु को अभाव प्रतीत होता है। चेतना के नियंत्रण और प्रदर्शन को वे बन्धन समझने लगे। जीवन-संघर्ष की उनकी भावना भी संकीर्ण मनोवृत्ति की परिचायक है। अभी मनु के पिछले संस्कार पूर्णतया विलीन नहीं हो सके। देवत्व सुख की याद आने पर वे जीवन में भोग-विलास की तृप्ति की कामना करने लगते हैं। ईर्ष्या के वशीभूत होकर वे अपनी भावी सन्तान से द्वेष करने लगते हैं। प्रेम की व्यापकता को वे विभाजन समझ बैठे। उनका अन्तर्मन ईर्ष्या से जल उठता है। वे 'ज्वलनशील अन्तर' लेकर श्रद्धा को छोड़कर चल देते हैं। कवि ने संकीर्ण

दृष्टि की परिणति ही प्रस्तुत कर दी है। ईर्ष्या से मनु कहते हैं :

यह जलन नहीं सह सकता मैं
चाहिए मुझे मेरा ममत्व
इस पंचभूत की रचना में
मैं रमण करूँ बन एक तत्व।

मानव-मन अतृप्ति, अभाव, असन्तोष का परितोष बुद्धि से करना चाहता है। तर्क अथवा बुद्धि-विश्लेषण के द्वारा हृदय की कोमल भावनाओं पर शासन होता है। मनु बुद्धि द्वारा अपनी तृप्ति का प्रयत्न करता है। जब बुद्धि मन का संचालन आरम्भ कर देती है तब भावनाएँ स्वतन्त्र नहीं रह सकतीं। यहीं मन और बुद्धि में द्वन्द्व की संभावना रहती है। विज्ञान से सम्बन्धित आधुनिक बुद्धिवादी विकास की एक साधारण रूपरेखा प्रसादजी ने प्रस्तुत की है। सारस्वत प्रदेश बौद्धिक विकास, भौतिक उत्कर्ष का प्रतीक है, किन्तु अब भी उसमें अभाव है। बुद्धि की प्रतिनिधि इड़ा के रूप-वर्णन से कवि ने बुद्धि के गुणों का अंकन भी किया है। एक विचित्र अतृप्ति और क्षोभ की स्थिति में ही मन बुद्धि के अतिरंजित अनुशासन को स्वीकार करता है। अतृप्त मनु ने इड़ा से पूछा : 'हे देवि बता दो जीवन का क्या सहज मोल।' इड़ा उन्हें बुद्धिवाद अपनाने के लिए कहती है। मनु के अन्तर का काम जाग्रत होकर चेतना के वास्तविक स्वरूप का बोध कराता है। भावी आशकाओं से मन बोझिल हो जाता है। मानसिक द्वन्द्व पर बुद्धि आवरण डाल देती है। चिरन्तन सत्य तर्कजाल में विलीन हो जाता है, किन्तु उसका अन्त नही होता। हृदय की भावनाएँ मरती नही, दबकर रह जाती हैं। मनु के मन की चंचल स्थिति सँभल न सकी। समस्त भावनाएँ अब भी भस्मावृत चिनगारी की भाँति मन में ही हैं। केवल बुद्धिवादी दृष्टि पर पनपी भौतिक सभ्यता अपूर्ण है।

स्वप्न की कल्पना कथानक को गति देने के लिए की गयी। इनके निर्माण में दर्शन और मनोविज्ञान का सम्मिश्रण है। शरीर-विज्ञान के अनुसार निद्रा अथवा स्वप्न का कारण अधिक परिश्रम भी है। वृहदारण्यक उपनिषद् का कथन है कि आकाश में श्येन-सुपर्ण सब ओर उड़कर अन्त मे शिथिल हो जाता है। तभी वह पंख फैलाकर नीड़ को जाता है, जहाँ सो जाने पर वह किसी भोग की कामना नही करता (4/3/9)। प्रसाद की कल्पना है :

नील गगन में उड़ती उड़ती विहग बालिका-सी किरनें
स्वप्नलोक को चलीं थकी-सी नींद सेज पर जा गिरने।

निद्रा और स्वप्न के दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक विवेचन में उपनिषद् आध्यात्मिक भावना का आरोप करते हैं। स्वप्न वास्तव में पूर्ण चेतन और अचेतन

के मध्य की सी स्थिति है। मानव-मन कल्पना, सत्य दोनो का आनन्द लेता है। 'कामायनी' का स्वप्न जाग्रत स्वप्न की भाँति है। श्रद्धा एक प्रकार का दिवास्वप्न देखना आरम्भ करती है, जिसमे उसके अन्तर की जिज्ञासा उदित होकर अनेक प्रश्न करती है। एकाकिनी बिरहिनि सध्या की धूमिल छाया मे एक विचित्र विस्मरण की अवस्था मे सम्पूर्ण कथा पर विचार करती है। वह स्वय अपने अन्तर्मन मे बाते करती है। रजनी क आगमन के साथ उसका जाग्रत दिवास्वप्न सुषुप्ति अथवा निद्रा की अवस्था मे चला जाता है। तभी वह मनु और इडा के क्रिया-व्यापार का देखती है। मनु ओर प्रजा का द्वन्द्व भी उमे दिखाई देता हे। उसके स्वप्न का अन्त हाता है :

श्रद्धा कॉप उठी सपने मे, सहसा उसकी ऑख खुली
यह क्या देखा मैंने, कैसे वह इतना हो गया छली।

इस प्रकार स्वप्न का जाग्रत और सुषुप्त रूप सम्मुख आता है। फ्रायड के स्वप्न-मनोविज्ञान को कवि की जाग्रत कल्पना ने सम्बन्धित किया। फ्रायड के अनुसार व्यक्त स्वप्न विषय (मेनिफेस्ट कन्टेन्ट) के मूल मे कोई अव्यक्त स्वप्न विषय (लेटेन्ट कन्टेन्ट) रहता हे जो स्वप्न की वास्तविक वस्तु हे। अव्यक्त स्वप्न विषय मे कोई कुठा होती है, जिसका निर्माण अचेतन मन द्वारा होता है। यह कुठा ही वास्तविक अथवा प्रत्यक्ष रूप स प्रकाशित होकर अभिलाषा पूर्ति (विश फुलफिलमेन्ट) करती है। स्वप्न के अनेक कारण बताकर फ्रायड ने दिवास्वप्न, कवि की कल्पना आदि को मानसिक क्रिया कलाप क अतर्गत स्थान दिया। कुठाओ का उदात्तीकरण (सब्लिमेशन) कला मे प्रक्षेपित होता है। फ्रायड बालक और कवि की कल्पना की तुलना भी करता है।[12]

प्रसाद की स्वप्न-कल्पना अतृप्त इच्छा अथवा कुठा नही है, वह कथानक को आगे ले जाने का एक क्रम है। दार्शनिक विवेचन से मनु के मन की चेतन शक्ति श्रद्धा जागरूक रहती है। उमे सम्पूर्ण परिस्थितियो का ज्ञान रहता है। अचेतन मन मे होनेवाले क्रिया-व्यापार चेतन शक्ति के सम्मुख स्पष्ट होते है। अपनी सकुचित दृष्टि के कारण मनु के मन ने अपनी ही चेतन शक्ति को भुला दिया, किन्तु वह जागरूक होकर प्रत्येक वस्तु का निरीक्षण कर रही है। जाग्रत स्वप्न, कल्पना और निद्रा से कवि ने उसका निर्माण किया जिसमे किसी विशेष सिद्धान्त की अपेक्षा उसकी स्वच्छन्द कल्पना का योग अधिक है।

काम, वासना, कर्म, ईर्ष्या, अनुचित ग्रहण तथा बुद्धि का अतिवाद सघर्ष का सृजन करते है। सघर्ष विरोधी शक्तियो मे होता है। प्रकृति-पुरुष, देव-दानव, हृदय-बुद्धि के पारस्परिक द्वन्द्व के मूल मे यही भावना सन्निहित है। प्रकृति के साथ सघर्ष करके स्वय देवता पराजित हो चुके थे। प्रकृति दुर्जेय है, उस पर विजय सम्भव

नहीं। मनु के मन का व्यभिचार बढ़ता जाता है। आरम्भ में उन्होने काम का संकीर्ण अर्थ ग्रहण किया। उनकी भोग-लिप्सा जाग्रत हो गयी। वासना और इच्छा की सीमा नहीं, कोई अन्त नही। वासना की वृद्धि होती जाती है। मन शारीरिक सुख मे लीन हो जाता है। हिसा और मिथ्याचार में उसकी प्रवृत्ति होती है। संकीर्णता के कारण वह ईर्ष्यालु भी बनता है। उसकी अहंमन्यता तीव्र हो जाती है। मन अतृप्ति और असन्तोष को बुद्धि के आवरण में रखने का प्रयत्न करता है, किन्तु निष्फल संघर्ष विष का कार्यान्वित स्वरूप है। मन में संगृहीत दुष्प्रवृत्तियाँ अनायास ही विस्फोट रूप मे प्रकट होती है। मनु के मन की अतृप्ति सघर्ष का कारण है। नियामक और प्रजा का यह सघर्ष भौतिक विप्लव है। मनु का मन स्वयं आत्मजा से द्वन्द्व करता है। यह उसके मानसिक, आन्तरिक संघर्ष का प्रतीक है। उनके मन मे द्वयता का उदय विभीषिका का सृजन कर चुका है। कामायनी के सघर्ष मे मन-बुद्धि, प्रकृति-पुरुष, राजा-प्रजा का सघर्ष होता है। मनु स्वय कहता है :

आज शक्ति का खेल खेलने मे आतुर नर
प्रकृति सग संघर्ष निरन्तर अब कैसा डर।

मनु के मन का व्यभिचार इस अवसर पर जाग्रत होकर अबाध अधिकार चाहता है। कल्पना तक तो वह उचित था, किन्तु कार्यान्वित करने के प्रयास मे सघर्ष होता है। प्रजा के रूप म बिखरी हुई शक्ति विद्रोह कर देती है। मनु का मन पराजित होता है। किलात-आकुलि की आसुरी वृत्तियाँ भी इस अवसर पर उपस्थित होती हैं। झझावात समाप्त होने पर शान्ति आती है। मनु के अन्तर की दुष्प्रवृत्ति संघर्ष के पश्चात् शिथिल हो जाती है। उनके मन मे निर्वेद भर आता है। निर्वेद मे खेद, दुख, विराग और पश्चात्ताप की भावना का विचित्र सम्मिश्रण रहता है। इसकी उत्पत्ति आशा-विश्वास के समाप्त होने पर होती है। मन खिन्नता मे भर जाता है। पश्चात्ताप के द्वारा मन अपनी दुर्बलताओं को स्वयं जान जाता है और उसे ग्लानि होती है। परास्त होकर मनु के मन की भी यही स्थिति थी। पतन का समस्त चित्र उनके सम्मुख था। वे अपनी भूल जान गये थे। ग्लानि से भरा मन खोये हुए वैभव को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। मनु को उसकी श्रद्धा चेतना पुनः मिल जाती है। वह स्वयं अपना परिचय देती है। चेतना की इस काव्यात्मक परिभाषा में कवि ने दार्शनिक निर्देश भी किये है। चेतना सरस, सजल, मधुर और विकसित है। श्रद्धा-चेतना ने मनु के जीवन की जड़ता हर ली, एक नये प्रभात का उदय हुआ। मनु का मन गद्‌गद् हो उठता है। चेतना के प्रति वे कृतज्ञता प्रदर्शित करते हैं। उसके वरदान को उनके मन ने स्वीकार किया। मनु कहता है :

हृदय वन रहा था सीपी-सा
तुम स्वाती की बूँद बनीं

मानस शतदल झूम उठा था
तुम उसमे मकरन्द बनी।

मानव-मन की चेतना उसका प्राण है। वह साक्षात् 'अमृत' है। चेतना को अन्तर्मुखी बनाना भी आवश्यक है, अन्यथा मानव की शक्ति क्षीण होती रहती है। किन्तु अभी मनु के मन का झझावात पूर्णतया शान्त न हो सका था। पश्चात्ताप और ग्लानि निराशा का सचार कर रहे थे। वे जीवन के इन्द्रजाल से घबडा उठे और पुनः भाग खडे हुए।

पश्चात्ताप और ग्लानि अन्त मे मनुष्य को उसकी चेतना मे समन्वित भी कर सकते हैं। दार्शनिक शब्दो मे मानव आत्मा का मूल रहस्य जान जाता है। उसके समक्ष शक्ति साकार हो उठती है। उसे आत्मदर्शन हो जाता है। 'दर्शन' के आरम्भ मे ही श्रद्धा जीवन के रहस्य का उद्घाटन अपने पुत्र से करती है। चेतना को प्रत्येक वस्तु का बोध रहता है। वह समृति की समस्या सुलझाती है। चेतना का स्थान सर्वोपरि है। मानव को जीवन की वास्तविकता का दर्शन कराने के पश्चात् श्रद्धा चेतना इडा की बुद्धि को भी समझाती है। इडा अपनी भूल स्वीकार कर लेती है। वह अपनी अकिचनता लेकर चेतना के गौरव के सम्मुख विनत होती है। चेतना बुद्धि को उसकी भी वास्तविक रूपरेखा बताती है। बुद्धि पूर्णतया त्याज्य नही, वह ज्ञान है, किन्तु उसका अतिवाद अनुचित है। चेतना उसका महत्त्व स्थापित कर मानव को उसके हाथो सौप देती है। 'समरसता' का सन्देश लेकर वह पुन अपने मनु के कल्याण के लिए चल पडती है। चेतना का कार्य है, मन का पथ प्रदर्शन। श्रद्धा मनु को पुन. पा लेती है। अन्त मे मनु श्रद्धा-चेतना का वास्तविक रूप जान जाते हैं। वह 'मातृमूर्ति विश्वमित्र' है। श्रद्धा अपनी सम्पूर्ण चेतना से मनु के मन मे जीवन का सत्य दर्शन भरती है। एक युग के पश्चात् मनु को उनकी खोयी हुई चेतना मिली और उन्होने उसके वास्तविक महत्त्व को जाना। मन जब तक अपनी चेतना-शक्ति को नही पहचानता, मृग-मरीचिका मे भटकता रहता है। चेतना प्रत्येक वस्तु का दर्शन मानव-मन को करा देती है और वास्तविक तत्त्व स्पष्ट हो जाता है। जगत-जीवन से लेकर सत्य तक उसके क्षेत्र मे आ जाते हैं। चेतना की सहायता से मन शान्ति का अनुभव करता है। सर्वत्र प्रकाश छा जाता है। मन के समक्ष ज्योत्सना की सरिता प्रवाहित होने लगी। समस्त अन्धकार विलीन हो गया। नटराज स्वयं प्रसन्नता से नृत्य कर उठे। इन सुन्दर चित्रो का दर्शन मन चेतना, विश्वास और श्रद्धा के ही द्वारा कर सकता है।

दर्शन के साथ मन जीवन-रहस्य को जान जाता है। रहस्य का ज्ञान दर्शन का उद्देश्य है। चेतना के सहयोग मे मन आत्मदर्शन करता है। उसकी भ्रान्ति समाप्त हो जाती है। वस्तुएं अपने वास्तविक रूप मे आ जाती है। मन की चचलता समाप्त हो जाती है। वह सुन्दर और शाश्वत का ही ग्रहण करता है। उसका लक्ष्य क्षणिक

तृप्ति के स्थान पर चिरन्तन सत्य की प्राप्ति हो जाता है। रहस्य की अभिव्यजना में मन को केवल भौतिक परितोष ही नहीं होता, वरन् अन्तरतम भी प्रसन्न हो उठता है। चेतना मे सामजस्य लाने की अद्‌भुत क्षमता होती है। रहस्यवाद और मनोविज्ञान के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करते हुए अडरहिल ने लिखा है कि…"रहस्यवादी को यह भली-भॉति ज्ञात होता है कि सामान्य मानव मे आध्यात्मिक भावना उसकी चेतनता के आवरण मे निहित रहती है। इस दृष्टि से वह मनोवेज्ञानिक से भी अधिक वैज्ञानिक है।"[13] प्रसाद की कल्पना मनोविज्ञान के धरातल से ऊपर उठती है। 'रहस्य' के अन्तर्गत उन्होने श्रद्धा के द्वारा जीवन की पूर्णता, उसके शाश्वत मूल्यो के रहस्य का उद्‌घाटन कराया है। चेतना मन को दुर्बलता से लडने की शिक्षा देती है। उमके सहारे मन निरन्तर उच्च भावना की ओर बढ़ता है। भविष्य की आशा उसे निरन्तर गतिमान करती है। श्रद्धा इच्छा, ज्ञान, क्रिया का स्वरूप ममझाती है। ज्ञान और ज्योति से समन्वित चेतना मे ही इसकी शक्ति होती है। इच्छा पाप-पुण्य की जननी है। इमका उदात्तीकरण भाव की मर्वोत्कृष्टता है। इच्छा का सर्वोत्तम रूप ही वैदिक काम है। कर्म अत्यन्त भीषण जगत है। ज्ञान वास्तव मे सामजस्य हेतु है, किन्तु विषमता का प्रमार करता है। अन्त मे श्रद्धा उन्हे समन्वित करती है।

अन्तिम भाव आनन्द है। मन वास्तव मे किसी-न-किमी रूप मे तृप्ति और परितोष के लिए प्रयत्नशील रहता है। इन सभी का समीकरण आनन्द मे होता है। आनन्द अधिक व्यापक और आध्यात्मिक शब्द है। उसका क्षेत्र मनोवेज्ञानिको के 'सुखेप्सावृत्ति' से अधिक विस्तृत है। आनन्द की उपलब्धि मे यत्नशील मानव अनेक सघर्षों मे गुजरता है, किन्तु अन्त में चेतना की महायता मे उसे उसकी प्राप्ति होती है। आनन्द चिरन्तन आनन्द है। ससार का ममस्त ज्ञान आनन्द के लिए ही प्रयत्नशील है। वह मानव की अनवरत साधना है। मानव मन का प्रतीक मनु अन्त मे जीवन के चरम लक्ष्य को पा जाता है। आनन्द-प्राप्ति के माथ ही समस्त द्वयता और मनोवेज्ञानिक जटिलताएँ समाप्त हो जाती है। मन की शक्तियॉ केन्द्रित होकर कार्य करती है। जीवन की सम्पूर्णता और उमके शाश्वत मूल्यो से ही यह आनन्दवाद निर्मित होता है।

आनन्द के निर्माण मे प्रसादजी ने शैव दर्शन का अधिक आश्रय लिया। शैवग्रन्थो के अनुसार शिव आनन्दरूप है। इसका मनोवैज्ञानिक आधार है, मसार मे अपने व्यक्तित्व का अधिकाधिक प्रसार। आनन्द की प्राप्ति भावनाओ के मिश्रण से होती है। अनेक मानसिक क्रिया-व्यापार सम्मिलित रूप से उमका सृजन करते है। उसकी प्रक्रिया एकाकी नही, सम्मिलित है। मनु आनन्द-प्राप्ति के नाना उपाय इडा और सारस्वत नगर-निवासियो को बताते है। भेद-भाव का विस्मरण, समृति की मेवा, पूर्ण काम आदि मिलकर मन को आनन्द देते है। अन्त मे मनु के मन मे शुद्ध, शाश्वत

चेतना व्याप्त हो जाती है। केवल मनु ही नहीं, समस्त मानवता आनन्द से भर जाती है।

मानव-मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, उसकी प्रकृतियों का सूक्ष्म निरीक्षण करने में कवि ने आधुनिक मनोविज्ञान और भारतीय दर्शन से निकटता स्थापित की। मानवीय भावों के साथ आध्यात्मिक निरूपण भी उनका लक्ष्य है। 'कामायनी' में मन के भावों में एक तारतम्य प्रतीत होता है। आधुनिक मनोविज्ञान भी इससे सहमत है। उसके अनुसार मानसिक क्रिया क्रमिक रीति से होती है। एक भाव का सम्बन्ध अन्य से रहता है। मानव-मन के मानसिक झंझावात की एक रूपरेखा कवि ने प्रस्तुत की है। मनु तथा श्रद्धा साधारण पुरुष-नारी की भाँति प्रतीत होते हैं। किन्तु दार्शनिक समन्वय के कारण श्रद्धा अधिक आदर्शमयी हो गयी है। उसमें भारतीय आत्मा तथा पाश्चात्य चेतना का समन्वय है। अपने नारी रूप में श्रद्धा कोमल भावनाओं की प्रतीक है। वह मनु पर ममता रखती है, सदा उसके हित की कामना करती है। मैकडूगल भी इसे स्वीकार करता है कि कोमल हृदय की नारियाँ शीघ्र सहानुभूति और दया प्रदर्शित करने लगती हैं।[14] भावनाओं के चित्रण मे मूल भावना के साथ कवि ने उससे सम्बन्धित अन्य भावनाओ को भी लिया है। चिन्ता के साथ विस्मरण, जड़ता आदि का वर्णन है। आशा में जिज्ञासा, कुतूहल, अनुराग, आकांक्षा का समावेश है। श्रद्धा के गुण दया, माया, ममता, समर्पण, विश्वास आदि आ गये हैं। काम, कर्म के व्यापक और संकुचित दोनों रूप चित्रित हैं। ईर्ष्या में हीनता की भावना, द्वेष और प्रपीड़न की भी चर्चा है। लज्जा की सूक्ष्म भावना में संकोच, संकेत को स्थान मिला। स्वप्न, निर्वेद की धूमिल भावनाएँ छाया-खण्डों की भाँति अंकित हैं। उच्चतर भाव दर्शन, रहस्य, आनन्द शाश्वत उपादानों से निर्मित हैं। इस प्रकार मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास-सा प्रस्तुत हो जाता है।

मन का विश्लेषण करने के अतिरिक्त प्रसाद ने उसमें सामाजिक मनोविज्ञान का भी समावेश किया है। सारस्वत प्रदेश की स्थिति उससे प्रभावित प्रतीत होती है। समस्त प्रजा एक साथ मनु के विरुद्ध विद्रोह कर देती है। एक क्षण के लिए वह अपने नियामक का भी ध्यान नहीं रखती। इसका कारण स्वयं राजा का एकांगी शासन है। सारस्वत प्रदेश केवल भौतिक दृष्टि से ही सम्पन्न है, उसे नीति की शिक्षा नहीं दी गयी, अन्यथा राजा के प्रति प्रजा विप्लव कैसे करती। अन्त में भी समस्त नगर निवासी सामूहिक मनोविज्ञान से प्रभावित हैं। मानवता का विकास होने के कारण 'कामायनी' में मानव-विज्ञान के चिह्न वर्तमान हैं। वनजीवी मनु नगर में आकर विशाल भवनों का निर्माण करता है। उसके साधन निरन्तर बढ़ते जाते हैं। इधर-उधर बिखरे रहनेवाले समुदाय अन्त में समाज का निर्माण करते हैं।

'संघर्ष' सर्ग का भौतिक विकास वर्तमान सभ्यता का चित्रण है। यज्ञ तथा आखेट करने आदि की स्थिति से मनु नागरिक सभ्यता तक पहुँचते हैं। अन्त में ज्ञान

की वृद्धि दर्शन, अध्यात्म का निर्माण करती है। श्रद्धा नील परिधान धारण किये थी, किन्तु इड़ा के चरणों में नूपुर थे, वह आलोक वसन पहने थी। क्रमिक विकास में मानव-विज्ञान के केवल संकेत मात्र प्राप्त होते हैं। विद्वान स्वीकारते हैं कि सभ्यता का क्रमिक विकास होता है।[15] 'कामायनी' भी इस ओर इंगित करती है। श्रद्धा अपने भावी पुत्र के लिए वेतसी-लता का झूला डालती है। उसने 'कुटीर' का निर्माण किया। 'कामायनी' में मानवता की विकास-रेखाएँ हैं। मातृ-सत्ता-युग के अनन्तर पितृ-सत्ता-युग आता है। मनु का आरम्भिक व्यक्तिवाद अन्त में सार्वभौमिक भावना में परिणत होता है। प्रारम्भ की भावनाएँ आदिम मानव में भी विद्यमान थीं, किन्तु अन्तिम भाग की उच्चतर भावनाएँ सभ्यता के विकास के साथ ही उसने सीखीं। वन में रहनेवाले आदिम मानव को भी अपनी चिन्ता रहती थी, किन्तु जीवन में गतिशील प्रयास आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की देन है। बर्बरता और सभ्यता के मध्य एक विभेदक रेखा खीच देना सम्भव नहीं, किन्तु क्रमिक विकास द्वारा उनमें परिवर्तन और अन्तर देखा जा सकता है। आर्थर कीथ ने निरन्तर गतिमान सभ्यता को एक मिश्रण की स्थिति में स्वीकार किया है।[16] कामायनी मानव-विज्ञान की दृष्टि से विकास की इन रेखाओ का प्रतिपादन करती है।

समन्वय और समरसता

दार्शनिक दृष्टि से 'कामायनी' एक प्रौढ़ कृति है। इसके पूर्व गीतों का आश्रय लेने के कारण प्रसाद अपने चिन्तन पक्ष का प्रतिपादन बिखरे हुए रूप मे ही कर सके। यहाँ उन्हें काव्य मे प्रथम बार पर्याप्त अवसर मिला। एक व्यापक आधार के कारण वे दार्शनिक सत्य का निरूपण कर सके। 'कामायनी' के कवि ने सर्वत्र सामंजस्य पर दृष्टि रक्खी है। यह सामजस्य अथवा मिलन प्रत्यभिज्ञादर्शन के समरसता सिद्धान्त का समीपी है। विरोधी शक्तियो को केन्द्रित कर उनमें सम्मिलन स्थापित करना उसका लक्ष्य है। अध्यात्म के क्षेत्र का प्रमुख संघर्ष प्रकृति और पुरुष का है। इसी कारण देवत्व का विध्वंस हुआ था। मनु इससे अपनी रक्षा करना चाहते हैं किन्तु अन्त में भौतिक उन्नति के लिए वे क्षण-भर प्रकृति पर शासन कर लेते हैं। वैज्ञानिक यन्त्रो से प्रकृति पर अनुशासन करते हैं। साख्य दर्शन में प्रकृति-पुरुष की समस्या पर विशेष प्रकाश डाला गया। सांख्यकारिका 10, 11 के अनुसार सत, तम, रज गुणों में साम्यावस्थारूप प्रकृति कारणरहित नित्य, व्यापक, निष्क्रिय, एकाकी, निराश्रित, निरवयव, स्वतंत्र, विवेकरहित, सामान्य, अचेतन और प्रसवधर्मिणी है। इसके विपरीत पुरुष त्रिगुणातीत, विवेकी, विशेष, चेतन, अविकारी तथा नित्य है। प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही सृष्टि का सृजन होता है।[17] विरोधी शक्तियाँ मिलकर एक-दूसरे की पूर्ति करती हैं। सांख्य दर्शन (गौड़पाद) अन्धे और लँगडे का उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसमें वे मिलकर कार्य करते हैं। 'कामायनी'

के अन्त में प्रकृति-पुरुष का संघर्ष समाप्त हो जाता है। प्रकृति का अणु-अणु समस्त नागरिकों को आह्लादित कर देता है। कैलास तथा मानसरोवर आनन्द के भण्डार बन जाते हैं।

समन्वय के अधिक व्यावहारिक पक्ष में नारी-पुरुष आते हैं। श्रद्धा और इड़ा दोनों मनु को अपनी सहानुभूति देती हैं। श्रद्धा ने उन्हे हृदय दान दे दिया था। उनकी जड़ता उसने हर ली। प्रलयकालीन क्षुब्ध मनु को सृष्टि में नियोजित करने का श्रेय श्रद्धा को ही है। सम्पूर्ण कथानक में उसका स्थान सर्वोपरि है। जीवन में आनन्द लाने का श्रेय भी उसे है। वास्तव में श्रद्धा के अभाव मे मनु का जीवन शून्य-सा रह जाता है। उसका समर्पण त्यागमय है। इड़ा भी कम त्याग नही करती। जब मनु को कही शरण न थी तब उसने उन्हे आश्रय दिया। क्षुब्ध मनु को राज्य का नियामक बना दिया। किन्तु मनु नारी के वास्तविक मूल्य और स्नेह को नही समझ पाते :

> तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की
> समरसता ही सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।

कोमल नारी पुरुष के कठोर हृदय पर केवल अपनी सहृदयता से ही शासन कर सकती है। कौमार्य प्रतिमा नारी 'कामायनी' मे पुरुष को समर्पण करती दिखायी देती है। श्रद्धा अपने मनु को 'सरिता, मरु, नग, कुंज, गली' में खोज लेने के लिए विकल है। किन्तु मनु भी उसे एक बार पाकर भयावने अन्धकार में फिर खो नही देना चाहते। वे अन्त में अपनी समस्त भावनाएँ उसे समर्पित करते हैं। नारी-पुरुष की समस्या का समाधान कवि ने दोनों के स्नेहपूर्ण मिलन में कराया है। श्रद्धा-मनु मिलकर आनन्द तक जा सकते है। वास्तव में नारी-पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं। 'वासना' सर्ग के आरम्भ मे उन्हें गृहपति-अतिथि, प्रश्न-उत्तर सिन्धु-लहर, प्रभात-किरण, आकाश-घनश्याम के सुन्दर प्रतीको मे चित्रित किया गया है। नारी-पुरुष की चिरन्तन समस्या को प्रसादजी ने आदर्शवादी रीति से सुलझाया है। स्वय मनु नारी को अनेक विशेषणो से समन्वित करते हैं। अपने त्याग-बलिदान से ही नारी माया-ममता का बल तथा शान्तिमयी शीतल छाया होती है। कवि की दृष्टि मे नारी-पुरुष का संगम ही जीवन का सुख है।

कामायनी में एक समस्या राजा-प्रजा, अधिकारी-अधिकृत, शासक-शासित, व्यक्ति-समाज की भी है। मनु का अपनी आत्मजा प्रजा से सघर्ष हुआ। स्वयं जनता उनके विरुद्ध विद्रोह कर उठी। इसके मूल में सहयोगिता का अभाव है। मनु ने प्रजा के लिए नियम बनाये थे किन्तु नियामक होकर वे स्वयं उनका पालन करने को तत्पर न थे। वे अत्याचारी और व्यभिचारी हो गये। मनु वास्तविक राजा भी न थे। राष्ट्र-स्वामिनी तो इड़ा थी। वे केवल एक मंत्री की भाँति थे। रानी पर अधिकार करने के अतिरिक्त उन्होंने प्रजा की भी चिन्ता न की। प्रजा ने विद्रोह किया। संघर्ष

में मनु आहत हुए। इड़ा के द्वारा कवि ने शासक-शासित के सुन्दर सम्बन्ध की व्याख्या की है :

लोक सुखी हो आश्रय ले यदि उस छाया में
प्राण सदृश तो रमो राष्ट्र की इस काया में।

मन में बुद्धि-हृदय की भाँति सुख-दुख, आशा-निराशा का अनवरत संघर्ष चला करता है। व्यक्ति थोड़े-से दुख में निराश हो उठता है। साधारण-सा क्षणिक सुख उन्मत्त कर देता है। सुख-दुख तो एक ही जीवन के दो अंग हैं। मानव-जीवन की सफलता दोनों का भार वहन करने में है। सुख-दुख से लड़ता-भिड़ता मनु अन्त में आनन्द तक पहुँचता है। श्रद्धा ने अपने प्रथम परिचय में निराश आदिपुरुष को सुख-दुख का रहस्य समझाया था : 'दुख की रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही सुख का नवल प्रभात विकसित हो जाता है। अभिशाप के आवरण में वरदान छिपे रहते हैं। दुख से ही सुख का विकास होता है।' अपने सुखों की तृप्ति में ही मग्न रहनेवाले मनु की वासना बढ़ती जाती है और अन्त मे उसे कष्ट होता है। श्रद्धा अधिक तटस्थ है। सुख-दुख जीवन का शृंगार करते हैं। इसी प्रकार कर्म और भोग का समन्वय भी आवश्यक है। केवल भोग की कामना करनेवाला व्यक्ति प्रगति नहीं कर सकता। इच्छा-पूर्ति के लिए कर्म की अपेक्षा होती है। भोग-कर्म और जड़-चेतन को एक साथ प्रसाद ने लिया है।

'कामायनी' का लक्ष्य जीवन में सामंजस्य का प्रयास है। विरोधी शक्तियों के संगम से ही सुख की प्राप्ति सम्भव है। जब परस्पर विरोधी तत्त्व एक ही केन्द्रविन्दु पर आकर किसी कार्य में नियोजित होते हैं तभी सुख-शान्ति का सृजन होता है, अन्यथा विरोधी शक्तियाँ एक दूसरे से संघर्ष कर अपनी शक्ति क्षीण किया करती है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सामंजस्य तथा संतुलन की अपेक्षा है। मानव का प्रतीक मनु इस समन्वय-दृष्टि से वंचित होने के कारण अनेक कष्ट भोगता है। उसके बुद्धि-हृदय आपस मे संघर्ष करते है। यह द्वन्द्व तब तक चलता रहता है जब तक श्रद्धा जीवन में समन्वय नहीं ला देती। काम के अभिशाप में यही विरोध की भावना है :

मस्तिष्क हृदय के हो विरुद्ध दोनों में हो सद्भाव नहीं
वह चलने को जब कहे कहीं, तब हृदय विकल चल जाय कहीं।

भारतीय दर्शन समन्वयवादी रहा है। उपनिषदों की अद्वैत भावना द्वयता को समाप्त कर देती है। आत्मा-परमात्मा की छाया है। आत्मा-परमात्मा का मिलन ही आनन्द है। 'आत्मानन्द' के द्वारा उपनिषद् आत्मा और आनन्द में अधिक भेद स्वीकार नहीं करते। वृहदारण्यक एक दृष्टान्त के द्वारा अद्वैत से प्राप्त सुख की रूपरेखा प्रस्तुत

करता है। उसका कथन है कि प्रिया से आलिगन कर पुरुष किसी भी वाह्य अथवा आन्तरिक वस्तु को नहीं जानता। परमात्मा से मिलन होने पर जीवन की यही स्थिति हो जाती है। ब्रह्मसूत्र का वेदान्त दर्शन भी अद्वैत का प्रतिपादन करता है। शंकर माया को मिथ्या मानकर अद्वैत का समर्थन करते हैं। तत्-त्वं, ब्रह्म-जीव का समन्वय आवश्यक है। सच्चिदानन्द में सत्, चित्, आनन्द का लय हो जाता है। आत्मा में विश्वास न करनेवाला बौद्ध दर्शन भी मध्यमप्रतिपदा मार्ग का अनुसरण करता है। भोग-विराग की अन्तिम सीमाएँ अकल्याणकारिणी हैं। अन्तों के मध्य में रहना ही सम्यकृता है। दो पारस्परिक भिक्षुओ का सवाद इस मत की स्थापना करता है। 'संसार का परित्याग कर निवृत्ति मार्ग पर चलनेवाले प्रव्रजित के लिए दोनों सीमाओं का सेवन ही अधिक श्रेयस्कर है। मानव के उद्धार का मार्ग दो अन्तों का त्याग कर मध्यमार्ग है।' बुद्ध ने इसी का प्रतिपादन किया। यह चित्त को शान्ति, सम्यक ज्ञान प्रदान करता है। इमी मे निर्वाण निहित है। इस प्रकार तार्किक बौद्ध दर्शन भी जीवन में 'सौमनस्य' का पक्षपाती हे। नागार्जुन के दर्शन को डॉ. राधाकृष्णन् उपनिषदों की अद्वैत भावना के समीप रखते हैं।[18] साख्य दर्शन सत, रज, तम में समन्वय स्थापित करता है। आधुनिक दार्शनिक एव मनोवैज्ञानिक भी जीवन मे सामंजस्य को महत्त्व देते हैं। सामजस्य की इस भावना मे समस्त विरोध को समाप्त कर नवनिर्माण की कल्पना है।

शैव दर्शन के समरसता-सिद्धान्त ने सामजस्य पर विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की। शैव चिन्तक समग्र दृष्टि को शिव का प्रसाद मानते हैं। शिव को सर्वोपरि सना स्वीकार करनेवाला भक्त उमी के सामजस्य की कामना करता है। शिव की शक्ति से विश्व का निर्माण होता है। ससार शक्ति का ही उन्मेष है। शक्ति और शिव एक दूसरे में निहित रहते हैं। शक्ति अन्तर्मुखी होकर शिव बन जाती है, शिव बहिर्मुख होकर शक्ति बनता है। शिव और शक्ति मे क्रमशः एक की प्रधानता और अन्य की न्यूनता रहती है। शिव शक्ति के सामरस्य की दशा 'परमशिव' है। शैव दर्शन की विभिन्न शाखाओ ने इसी को अनेक रूपों मे ग्रहण किया।[19] प्रत्यभिज्ञादर्शन का शिव-शक्ति तत्त्व त्रिपुरामत में कामेश्वर-कामेश्वरी का रूप प्राप्त करता है जो 'त्रिपुरासुन्दरी' के सामंजस्य में परिवर्तित हो जाता है। शैव दर्शन में ज्ञान-भक्ति का सुन्दर सम्मिश्रण है। शुष्क ज्ञान मार्ग और सरस भक्ति दोनो का ही समन्वय यहाँ प्रस्तुत हुआ। 'बोधसार' में नरहरि का कथन है : ज्ञान के पूर्व द्वयता का मोह उत्पन्न होता है। ज्ञान के प्रकाश से द्वैत की कल्पना भक्त बुद्धि द्वारा करता है। यह कल्पित द्वैत अद्वैत से भी सुन्दर है। समरसता के आने पर द्वयता अमृत के समान आनन्ददायिनी हो जाती है। जीव-परमात्मा का मुधर मिलन दम्पति-संयोग की भाँति सुखकर होता है। समरसता उसका अलौकिक रूप है। प्रत्यभिज्ञा के अनुसार विश्व-निर्माण की इच्छा से परमेश्वर अपने शिव और शक्ति दो रूप बना लेता है। शिव ज्योति है, शक्ति विमर्श। शिव

के अहं तथा शक्ति के इदं का मिलन ही सामरस्य है। समरसता की स्थिति में समस्त द्वयता समाप्त हो जाती है। अस्ति-नास्ति का भेद विलीन हो जाता है। समरसता के अभाव में विनाश और प्रलय होता है। शैव दर्शन शिवभक्ति के समन्वय में ही सुख मानता है। शिव चित् रूप होकर भी जड़ है। शक्ति के अभाव में उसे प्रकाश का बोध नहीं होता। उसमें चेतना भरने का कार्य शक्ति करती है। आगमशास्त्रों में इसकी चर्चा है :

न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः
नानयोरन्तरं किंचित् चन्द्रचंद्रिकयोरिव।

उपनिषद् का अद्वैतवाद शैव दर्शन में आकर अधिक सरस हो गया। उसकी समरसता में भक्ति-भावना का भी समन्वय हुआ। दक्षिण तथा काश्मीर में प्रसरित होनेवाली शैवों की दो विभिन्न शाखाएँ क्रमशः ज्ञान और भक्ति का अधिक आग्रह करती हैं। आणव एक विभेदक वस्तु है और उससे मुक्ति पाना शैवागम के अनुसार नितान्त आवश्यक है। आणव से मानव दुष्कर्म में प्रवृत्त होता है, अनेक भेद हो जाते हैं। इससे मुक्ति मिलते ही सर्वत्र एकरूपता, समरसता दिखायी देने लगती है। समरसता का प्रतिपादन करनेवाला शैव दर्शन सुख-दुख, पाप-पुण्य मे कोई मौलिक अन्तर नहीं स्वीकार करता। सुख-दुख केवल अनुकूलवेदनीय तथा प्रतिकूलवेदनीय है। भेदक दृष्टि न रखकर सामजस्य में विश्वास करने के कारण ही शिव अमृत-विष दोनों को एक साथ धारण करते हैं। वाम पाश में सदा विद्यमान होकर भी पार्वती शिव की निर्विकल्पता नहीं समाप्त करतीं। शैव-दर्शन की समरसता में अद्वैत भावना का सरस प्रतिपादन हुआ। समरसता से लोक-कल्याण भी सम्भव है। इस समरसता का प्रतीक शिव का नाट्य है, वे नटराज हैं।

शैव दर्शन से प्रभावित होते हुए भी 'कामायनी' की समरसता अधिक व्यावहारिक है। उसमें केवल धार्मिक, दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक पक्ष का ही ग्रहण नहीं'; वह जीवन की कुछ समस्याओं का समाहार कर लेती है। अन्त मे समस्त विरोधी शक्तियाँ समन्वित होकर कार्य में नियोजित होती हैं। संघर्ष का अन्त होता है, भेदभाव समाप्त हो जाते हैं। प्रसाद की समरसता-कल्पना पर्याप्त व्यापक है। उसमे व्यक्ति के अन्तर्तम से लेकर विश्व तक के संघर्ष को समाप्त करने का प्रयास है। कवि ने जीवन को सम्पूर्ण इकाई के रूप में ग्रहण किया है, अन्तर-वाह्य दोनों उसी के रूप हैं। 'कामायनी' के आरम्भ का मनु अपनी आन्तरिक मानसिक विषमताओं से पीड़ित है। उसने देवता रहकर जीवन के समस्त सुख-विलास भोगे थे। अनायास ही प्रलय आया और वह वैभव-ऐश्वर्य विलीन हो गया। तभी मनु को उसकी क्षणभंगुर अपूर्णता का आभास मिला। अतीत का सुख और वर्तमान का दुख मिलकर मनु के मन में आन्तरिक द्वन्द्व का सृजन करते हैं। उनमं विचित्र जड़ता आ जाती है। श्रद्धा इस

अवसर पर जीवन मे सामंजस्य लाने के लिए कहती है। दुख के अनन्तर सुख आता है, अन्धकार के पश्चात् प्रकाश होता है। विरोधो मे समन्वय करती हुई वह कहती है :

नित्य समरसता का अधिकार
उमड़ता कारण जलधि समान
व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुख मणि गण द्युतिमान।

श्रद्धा शक्ति के बिखरे हुए विद्युत्कणों में समन्वय करने का सन्देश देती है। इस सामरस्य का ग्रहण न करने के कारण मनु का मन पथभ्रष्ट हो जाता है। 'वासना' में नारी-पुरुष का मिलन केवल भौतिक एवं वाह्य था। वह समरसता का निम्न रूप है। उन दोनों का सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रसाद ने 'लज्जा' सर्ग में 'सन्धिपत्र' की कल्पना की है। समरसता का सर्वोत्कृष्ट रूप कवि ने इच्छा, ज्ञान, क्रिया के समन्वय द्वारा प्रस्तुत किया है। ये तीनों ही विरोधी शक्तियाँ समरस होकर कल्याणकारिणी बनती हैं। मन की द्वयता समाप्त हो जाती है। जब तक मानव संसार और स्वय में भेद रखता है, उसे कष्ट होते हैं। संसार में स्वयं और स्वयं में संसार की कल्पना ही श्रेयस्कर है। मन के अन्तर का काम स्वयं समरसता की आवश्यकता स्वीकार करता है : 'समरसता ही सम्बन्ध बनी, अधिकार और अधिकारी की।'

अन्तर्जगत में हृदय-बुद्धि का समन्वय अपेक्षित है। सुख-दुख के प्रति एक तटस्थ दृष्टिकोण की आवश्यकता है। समरसता का प्रतीक शिव हैं जो निर्विकल्प रहते हैं। प्रसाद की धारणा है कि मन में समरसता, सामंजस्य और संतुलन स्थापित करने से वाह्य जगत में सम्मिलन स्थापित हो जायगा। मन सर्वोपरि है। वही प्रत्येक वस्तु ग्रहण करता है। मन के सन्तुलन से वाह्य वस्तुएँ समरस हो जाएँगी। इसी कारण कवि ने मनोवैज्ञानिक आधार पर मन मे सामजस्य स्थापित कराने का प्रयत्न किया। वाह्य जगत में आकर प्रसाद समरसता के विषय में अधिक आधुनिक और व्यावहारिक हो गये हैं। उन्होंने जीवन की भौतिक समस्याओं को भी लिया। शासक शासित, पुरुष-नारी, व्यक्ति-समाज में भी सामंजस्य आवश्यक है। सारस्वत प्रदेश की भौतिक उन्नति का वास्तविक कारण 'सहयोग भावना' थी। आर्थिक और राजनीतिक विषमताओं का भी अन्त आवश्यक है। वैज्ञानिक तथा प्राकृतिक शक्ति का समन्वय मानव को अधिक सुखी बना सकेगा। बुद्धि की प्रतिनिधि इड़ा भी 'शीतल सौमनस्य' बिखराती है। समरसता के अभाव में राजा-प्रजा का संघर्ष होता है। दैनिक कार्य से लेकर सार्वभौमिक जगत तक एक सामंजस्य की आवश्यकता है। श्रद्धा संसार में 'तल्लीनपूर्ण राग की छाया' पा जाती है। इड़ा के समीप अपने पुत्र को छोड़ते हुए भी वह समरसता के प्रचार की शिक्षा देती है। यह उसका सार्वभौमिक स्वरूप है।

आध्यात्मिक जगत में समरसता की कल्पना 'कामायनी' में शैवदर्शन के अधिक निकट है। इस समरसता का मूलाधार श्रद्धा है। मानसिक जगत की विषमता को समाप्त करनेवाली यह सात्विक वृत्ति मन को उच्चतम भावभूमि पर ले जाती है। 'समतल' पर ही वह समरसता की स्थापना करती है। इच्छा, ज्ञान, क्रिया तीनों की शक्ति सामंजस्य के अभाव में क्षीण होती रहती है। इच्छा, मन, ज्ञान, मस्तिष्क तथा क्रिया इन्द्रिय के व्यापार हैं। इनमें सामंजस्य ही जीवन की पूर्णता है। इनके अभाव में वह एकांगी हो जायगा। श्रद्धा इच्छा, ज्ञान, कर्म का जब अलग-अलग वर्णन करती है, तो वे विचित्र प्रतीत होते हैं। इच्छा से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का सम्बन्ध है। ज्ञान की वृद्धि अनेक भेदों के कारण बनती है। कर्म में सतत् संघर्ष है। यह समरसता के अभाव के ही कारण है :

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।

इन तीनों के मिलते ही दिव्य प्रकाश छा जाता है। शैव दर्शन के अनुसार शंकरजी ने त्रिपुर-दाह किया था। प्रसाद की इच्छा, ज्ञान, क्रिया के समन्वय की कल्पना इसी के निकट है। चेतन कल्याणमयी श्रद्धा अपनी स्मित से उनमें समन्वय स्थापित करती है। इसके पश्चात् मनु स्वयं समरसता का प्रचार करने लगते हैं। सारस्वत प्रदेश के निवासियों को उपदेश देते समय वे द्वयता को ही विस्मृति बताते हैं। इस अवसर पर प्रसाद की समरसता के कई रूप प्रस्तुत होते हैं। मनु आन्तरिक, सामाजिक, आध्यात्मिक आदि क्षेत्रों में समन्वय कर लेते हैं। 'कामायनी' की समरसता एक व्यापक भूमि पर प्रतिष्ठित है। उसमें शैव दर्शन की समरसता, मनावैज्ञानिकों के सन्तुलन तथा अन्य दार्शनिकों के सामंजस्य का सम्मिलन-सा प्रस्तुत हुआ है। 'कामायनी' सर्वत्र समरसता का प्रचार करती दिखायी देती है। एक ओर यदि वह आध्यात्मिक जगत मे मानव को ले जाना चाहती है, तो साथ ही वर्तमान विषमता को समाप्त करने का प्रयास भी करती है। अन्तिम तीन सर्ग दर्शन, रहस्य, आनन्द समरसता से परिपूर्ण हैं। प्रसाद की समरसता की आधारशिला श्रद्धा है। श्रद्धा कोमल भावनाओं का प्रतीक होने के कारण समन्वय की अद्भुत क्षमता से समन्वित है। अपने नाटक 'एक घूँट' में भी समरसता तथा समन्वय पर प्रसाद ने विचार किया। आनन्द जीवन में इसी सामंजस्य का पक्षपाती है। समरसता प्रसाद-साहित्य का मूल स्वर है। 'कामायनी' का अन्त इसी समरसता की प्रतिष्ठा से होता है :

समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था।

समरसता से आनन्द की सृष्टि होती है। जब द्वयता, संघर्ष, विषमता समाप्त हो जाते हैं तब सुख-शान्ति में सन्देह कैसा ? जीवन का लक्ष्य ही आनन्द है। संसार के सभी ज्ञान-विज्ञान उसी की खोज मे लगे हुए हैं। साहित्य और दर्शन का यह प्रयास एक दूसरे के अधिक समीप दिखाई देता है। साहित्य का रस दर्शन का आनन्द है। साहित्यिक रस-निष्पत्ति के द्वारा वही कार्य करता है जो दार्शनिक आनन्दसृजन से। आनन्द तक जाने के विभिन्न मार्ग दार्शनिकों नै बताये हैं। किन्तु 'आनन्द' शब्द का प्रयोग शैवदर्शन में बहुलता से प्राप्त होता है। इसके पूर्व भी वेदान्तवादियों ने सत्, चित्, आनन्द की कल्पना की थी। रजस, तमस के स्थान पर जब सत्व गुण की प्रधानता हो जाती है, तब आनन्द का आविर्भाव होता है। इस आनन्द की उपलब्धि व्यक्तिवाद के विनाश द्वारा ही सम्भव है।

अद्वैत अथवा समरसता के आधार पर आगमों ने अपने आनन्दवाद की स्थापना की। स्पन्दशास्त्र के अनुसार जगत में सर्वत्र, प्रत्येक काल में आनन्द व्याप्त रहता है। यह आनन्द परमशिव का ही एक रूप है। जब शिव सार्वकालिक, सर्वत्र विद्यमान है तो फिर आनन्द का अस्तित्व भी होगा ही। तैत्तरीय उपनिषद् का 'अयमात्मा परमानन्दः' इन आगमों मे आकर पूर्ण विकसित हुआ। इसमें उन्होंने काम, प्रेम और सौन्दर्य-भावना का समन्वय कर लिया। इसी कारण शैवागम की आनन्द-कल्पना जीवन के निकट आकर व्यावहारिक हो गयी। मन पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता न रह गयी, क्योकि सर्वत्र आनन्दराशि ही बिखरी हुई है। ससार से किसी प्रकार के वैराग्य की आवश्यकता नहीं। जीवन स्वयं शिव का प्रसाद होने के कारण आनन्दरूप है। परमेश्वर की पॉच शक्तियों मे आनन्द भी एक है। वह स्वय प्रेम और आनन्द के कारण सृष्टि का निर्माण करता है। वीर शैवमत के अनुसार जगत सत्य है। शंकर की भाँति वे उसे मिथ्या नही मानते। 'सच्चिदानन्द परमशिव' ही सर्वोपरि है। सौन्दर्यलहरी का कथन है :

> त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
> चिदानन्दाकारं शिव युवति भावने विभृषे ! (35)

शैवदर्शन की दोनों प्रमुख शाखाएँ आनन्द की प्रतिष्ठा करती हैं। शैव आत्मा और शाक्त जगत को प्रधानता देकर शिव में लीन होने का उपदेश देते हैं। शैव दर्शन की आनन्द-कल्पना में अन्य सरस भावनाओं का भी समन्वय होने के कारण, उसे साहित्य में स्थान मिला। आनन्दवर्द्धनाचार्य, अभिनवगुप्त आदि ने आनन्द से रस का भी सम्बन्ध स्थापित किया। धर्म और दर्शन का आनन्दवाद साहित्य में आकर जीवन के निकट हो गया। आचार्य अभिनवगुप्त ने इस समन्वय का विशेष प्रयास किया। उनकी सौन्दर्य-सम्बन्धी धारणा आनन्द और रस के सुन्दर समन्वय पर आश्रित है।[20]

आनन्द के प्रतिपादन में समन्वय दृष्टि रक्खी गयी। समरसता ही आनन्द है। इस प्रकार आनन्दवाद में एक साथ अनेक समस्याओं का समाहार प्रस्तुत किया गया। आन्तरिक जीवन में यदि उससे आत्मतोष मिला तो वाह्य जगत में समता आयी। आनन्दवाद की दृष्टि विशुद्ध भावमूलक है। उसमें अन्य तार्किक और बौद्धिक दर्शनों का अधिक आग्रह नहीं। उसकी प्राप्ति अन्तर तथा शिव के अनुग्रह से ही होती है; अन्य उपाय व्यर्थ हैं। आनन्द प्राप्ति की साधना-प्रणाली में आनन्दमय कार्यों का समावेश है। आनन्दवाद की यह शैव विचारधारा भारतीय दर्शन और साहित्य-क्षेत्र में अपनी समन्वय दृष्टि के कारण एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करती है।

'कामायनी' अन्त में आनन्द की प्रतिष्ठा करतीं है। काव्य और दर्शन दोनों का यही प्रयोजन है। आनन्द की कल्पना में प्रसाद का अपना चिन्तन भी निहित है। उपनिषद् की अद्वैत भावना से लेकर आधुनिक भौतिक सुख तक की कल्पना का इतिहास उनके सम्मुख था। समाज की बदलती हुई परम्परा के प्रकाश में उन्होंने उसका उपयोग किया। वीसवीं शताब्दी में प्रसाद के सामने अन्य विषमताएँ और समस्याएँ थीं। इन परिस्थितियों पर उन्होंने एक साथ विचार किया। इनका उत्तर समरसता तथा आनन्द से देने के कारण उसमें अनेक तत्त्वों का समावेश हो गया। इस विषय में कवि ने स्वयं स्वीकार किया है, "शैवों का अद्वैतवाद और उनका सामरस्यवाला रहस्य सम्प्रदाय, वैष्णवों का माधुर्य भाव और उनके प्रेम का रहस्य तथा काम कला की सौन्दर्य उपासना आदि का उद्‌गम वेदों और उपनिषदों की वे साधना प्रणालियाँ हैं, जिनका उन्होंने समय-समय पर अपने सघों में प्रचार किया। प्राचीन आर्य लोग सदैव से अपने क्रियाकलाप में आनन्द, उल्लास और प्रमोद के उपासक रहे, और आज के भी अन्यदेशीय तरुण आर्य संघ आनन्द के मूल संस्कार से संस्कृत और दीक्षित हैं। आनन्द भावना, प्रिय कल्पना और प्रमोद हमारी व्यवहार्य वस्तु थी।"[21] 'कामायनी' में उन्होंने इस भूली हुई परम्परा का प्रतिपादन किया। उसकी रूपरेखा का निर्माण उन्होंने इतनी कुशलता से किया कि बदलती हुई परिस्थिति से भी उसका संयोग हो गया।

आनन्द के प्रतिपादन में श्रद्धा को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया। कोमल भावनाओं से भरी हुई यह चेतन शक्तिरूपा नारी आदिपुरुष को आनन्द तक ले जाती है। यह आनन्द मन से लेकर विश्व तक प्रसारित किया गया। आध्यात्मिक दृष्टि से 'कामायनी' की परिसमाप्ति कैलास पर्वत की मनोहर उपत्यका में होती है, जहाँ आनन्द स्रोत बहता रहता है। वहाँ कोई भी शापित अथवा तापित नहीं रहता, तुलसी के रामराज्य की तरह। वास्तव में उस स्थल पर मनु एक ऋषि-रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। समस्त सारस्वत प्रदेश की प्रजा उनके दर्शन मात्र से उल्लसित हो उठती है। यह एक प्रकार का चामत्कारिक प्रभाव है। मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में चेतन शक्ति श्रद्धा मनु के मन में समन्वय स्थापित कर उसे अनेक विषमताओं से बचा लेती है।

मानसिक उलझनें समाप्त होने पर ही शान्ति प्राप्त हो सकती है। आन्तरिक तृप्ति के लिए सद्वृत्तियों का भी परित्याग नहीं किया गया। व्यक्ति, परिवार, समाज, देश, संसार सभी को आनन्द का दान देना श्रद्धा का उद्देश्य है। मनु के व्यक्तिगत पाश में बँधकर वह आनन्द को सीमित नहीं कर देती। उसकी आनन्द-कल्पना असीम, अनन्त है। 'कामायनी' का आनन्द ऋषि, साधक अथवा वैरागी की सम्पत्ति नहीं है। कर्म से मानव उसकी प्राप्ति कर सकता है, वन मे जाने की आवश्यकता नहीं। कवि निवृत्ति-मार्ग का पक्षपाती नहीं है। जीवन के प्रति अडिग आस्था,सार्थक कर्म, सत्काम, सत्य का ग्रहण आनन्द-प्राप्ति के साधन हैं। प्रेम स्वयं आनन्द है। प्रेम का व्यापक और उदात्त रूप ही श्रद्धा है। वह सभी से प्रेम करती है, इसी की शिक्षा देती है। स्वयं अपनी चेतना से लेकर सर्व संसार तक का प्रेम उसका लक्ष्य है। आनन्द को व्यापकत्व प्रदान करने के लिए 'कामायनी' के कवि ने कर्म, काम का विशद निरूपण किया। श्रद्धा के कर्म में पशु-पक्षी, मानव के प्रेम से लेकर जनसेवा तक आ जाते है। 'प्रेम-पथिक' का विकसित रूप यह श्रद्धामय प्रेममूलक आनन्दवाद है। व्यावहारिकता को प्रमुखता देने के कारण 'कामायनी' के आनन्दवाद में आशा और जागृति का सन्देश है। कवि कर्म का सन्देश देता है :

यह नीड़ मनोहर कृतियों का
यह विश्व कर्म रंगस्थल है।
है परम्परा लग रही यहाँ
ठहरा जिसमें जितना बल है।

व्यावहारिक जगत में जहाँ 'कामायनी' का आनन्द मनु के निकट सारस्वत नगर निवासियों का आगमन है, वहीं आध्यात्मिक क्षेत्र में शिव का नृत्य उसका आभास देता है। इस अवसर पर मनु, मन समाज का पूर्ण परितोष होता है। उच्च भावभूमि के कारण अपने अन्तिम रूप में वह रहस्यमय भी बनता है। रहस्यवादी इसे तन्मयता अथवा अभेद की स्थिति कहते हैं। उस समय एक विचित्र अवस्था होती है जिसका वर्णन सम्भव नहीं, केवल अनुभव किया जा सकता है। रहस्यवादी इस चिरन्तन आनन्द के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहते हैं। शिव का नृत्य इसी स्थिति का प्रतीक है। वास्तविक जगत में मानव चतुर्दिक तृप्ति की कामना करता है। अन्तर्मन की भूख और प्यास से लेकर पेट की ज्वाला तक वह शान्त करना चाहता है। आधुनिक युग में कवि का यही समन्वय प्रयास है। भौतिक तृप्ति, आध्यात्मिक उन्नति सभी आनन्द की इस रूपरेखा में समाविष्ट होते हैं। 'कामायनी' के पात्र अपने सुख-परितोष के लिए इधर-उधर भटकते दिखाई देते हैं। वे आन्तरिक तृप्ति चाहते हैं। जो आनन्द-पथ श्रद्धा सभी को दिखाती है, उस पर वह स्वयं निरन्तर चलती रहती है। आनन्द की उपलब्धि कर्म द्वारा होती है, केवल ज्ञान अथवा चिन्तन से नहीं। ये उसी के

सहयोगी हैं। इसी कारण ज्ञान, इच्छा, कर्म का समन्वय ही आनन्द का स्रष्टा है। कवि की आनन्द-कल्पना सार्वभौमिक स्नेह तथा विश्वबन्धुत्व पर अवलम्बित है। केवल अपने लिए मोक्ष की कामना करके आनन्द प्राप्ति कर लेने की प्रणाली से उनका व्यावहारिक आनन्दवाद काफ़ी आगे है। यहाँ मानव और मानवता ही सर्वोपरि हैं। मानव से वे 'भूमा' को अपनाने के लिए कहते हैं। सुख दो प्रकार के होते हैं, अल्प तथा बहुल। अल्प संकुचित और संकीर्ण होता है, इस कारण उसका ग्रहण कष्टकर होता है। भूमा ही वास्तविक सुख है। व्यक्ति का समष्टि में पर्यसवान होना आवश्यक है। छान्दोग्य में भूमा के विषय में कहा गया "भूमा ही सुख है। अल्प में सुख नहीं। भूमा ही अमृत है। अल्प मर्त्य है। भूमा आत्मा की भाँति सर्वत्र व्याप्त है (7/23)।" सनतकुमार ने 'भूमा' की इस परिभाषा को नारद से कहा। 'भूमा' संसार को एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में देखने का ही प्रयत्न है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इसके समीप है। 'चन्द्रगुप्त' का दाण्डयायन आत्मदर्शन के कारण किसी बलवान की इच्छा की क्रीड़ाकन्दुक नहीं बन सकता। उसे भूमा के सुख और महत्ता का आभास हो चुका है। 'भूमा' को कवि ने आनन्द का एक चरण माना है। भूमा के अन्तर्गत आत्मतृप्ति, परतृप्ति दोनो आ जाते है। मन को किसी भी कार्य के निए शक्ति की आवश्यकता होती है। इस आन्तरिक शक्ति के कारण अह का प्राधान्य न हो जाये, इसी हेतु व्यापक दृष्टि, सर्वग्रहण भी अपेक्षित है। श्रद्धा 'भूमा' के विषय मे कहती है :

विषमता की पीडा से व्यस्त
हो रहा स्पन्दित विश्व महान
यही दुख सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।

नियति का रूप

चिन्तन के दार्शनिक क्षेत्र में 'कामायनी' में नियति को भी स्थान प्राप्त है। 'आँसू' की अभिशापमय नियति यहाँ आकर अधिक व्यापक हो जाती है। इसके पूर्व वह निर्मोही तथा निष्ठुर थी। वियोगकाव्य के अनुरूप कवि ने उसका चित्रण किया था। जीवन के आरम्भ में प्राप्त होनेवाले अनेक उत्थान-पतन के दृश्यों में क्रमशः तटस्थता आती गयी। दार्शनिक मनन ने उसमें किंचित् परिवर्तन किये। नियति के विषय में उनकी व्यक्तिगत अनुभूति दर्शन से मिलकर एक अन्य रूप में प्रस्तुत हुई। 'कामायनी' में जलप्लावन के समाप्त होते ही कवि नियति की सूचना देता है :

उस एकात नियति शासन में
चले विवश धीरे-धीरे

नियति मनु को कार्य में नियोजित करती है। इस प्रकार वह एक सत्ता है, जो शासन करती है। इसके पूर्व देवसृष्टि का विनाश भी नियति की प्रेरणा से हुआ था। नियति शब्द का प्रयोग शैवदर्शन मे हुआ। कला, विद्या, राग, काल, नियति पाँच कंचुक हैं, जो जीव को आवृत कर लेते हैं। नियति प्रत्येक वस्तु का नियमन करती है।[22] व्यक्ति के कार्यों पर वह एक प्रकार का प्रतिवन्ध लगा देती है। आगम की नियति शक्तिशालिनी है। कामायनी मे इसका ग्रहण उस चेतन शक्ति के रूप में किया गया जिसके सम्मुख मानव विवश हो जाता है। मानव केवल अपने कर्म पर विश्वास कर सकता है, उसके परिणाम पर नहीं। साधारण भाग्य, कर्म अथवा प्रारब्ध एक विचित्र प्रकार की जडता ला देते हैं, किन्तु सुख-दुख दोनों का ही दान देनेवाली 'कामायनी' की नियति जीवन को गतिमान करती है। वह मनुष्य की उच्छृंखलता पर एक प्रकार का अनुशासन और प्रतिवन्ध है। उसका सम्बन्ध प्रकृति से है। प्रकृति की सचेतन अभिव्यक्ति इसी रूप मं होती है। ससार का समस्त क्रिया-व्यापार नियति के द्वारा चलता है। वह व्यक्तिगत नही, समष्टिगत है। नियति केवल मनु का जीवन ही परिचालित नहीं करती, वरन् समग्र समार उसी सं नियन्त्रित है : 'नियति चलाती कर्मचक्र यह…' (कामायनी, 'रहस्य' सर्ग)।

अपना जीवन नियति को सौप कर मनुष्य का निष्क्रिय हो जाना अनुचित है। किन्तु नियति से निरन्तर संघर्ष करना भी उचित नहीं। वह गतिशील चेतना की भाँति स्वयं अपना कार्य करती है। मनु के उत्थान-पतन के पीछे उसकी नियति है। मनु और श्रद्धा का मिलन उसी पर अवलम्बित है : 'दो अपरिचित से नियति अब चाहती थी मेल।' चिन्ता के विषाक्त वातावरण से लेकर आनन्द के चरम लक्ष्य तक इस नियति का कार्यकलाप चलता रहता है। साधारण भाग्यवादी स्वय को अदृश्य शक्ति के हाथों सौंप देता है, किन्तु नियतिवादी कार्यरत रहकर उसके परिणाम की कामना नहीं करता। वह पूर्वजन्म के कर्मो का फल स्वीकार कर निराश नहीं होता और न भाग्य से भिक्षा ही माँगता है। 'कामायनी' की नियति समरसता और आनन्द में सहयोग प्रदान करने वाली वस्तु है। उसके दान को स्वीकार करना ही होगा। ऋषि जगत्कारु का कथन है कि "कर्मफल तो स्वयं समीप आते हैं, उनसे भागकर कोई बच नहीं सकता।" प्रसाद की नियति और कर्म मे सामीप्य है। देवताओं की उच्छृंखलता को नियति ने प्रलय का शाप दिया। मनु और श्रद्धा का मिलन मानवता के लिए अनिवार्य था। नियति ने मनु की सकीर्ण मनोवृत्ति के कारण उसे संघर्ष का अभिशाप दिया। अन्त मे नियति सामरस्य ले आयी। इस प्रकार प्रकृति का क्रिया-व्यापार नियति के द्वारा चलता है।

सामयिक प्रश्न

जीवन की सामयिक समस्याओं को भी 'कामायनी' में परोक्ष स्थान प्राप्त है। दार्शनिक

क्षेत्र में कवि मानव-मन को आध्यात्मिकता तक ले जाने का प्रयत्न करता है। किन्तु उसकी भौतिक आवश्यकताओं का भी उसने बहिष्कार नहीं किया। जीवन के यथार्थ को तिलांजलि नहीं दी जा सकती। मानवता के विकास के साथ-साथ उसकी समस्याएँ बढ़ती जाती हैं। श्रद्धा के प्रवेश ने नारी-पुरुष के संयोग से होनेवाली समस्याओं का सृजन किया। श्रद्धा के कुतूहल का ध्यान कर मनु ने यज्ञ आरम्भ किया। इसी के अनन्तर आनेवाले शिशु के लिए कामायनी काले ऊन की पट्टियाँ तथा छोटा-सा कुटीर बना लेती है। तकली भी चलने लगती है। ये बढ़ती हुई आवश्यकताएँ उस समय अनेक हो जाती हैं जब 'कामायनी' की मानव-सभ्यता नगर में पहुँचती है।

सारस्वत प्रदेश आधुनिक राज्य-कल्पना का चित्र है। बुद्धिवाद की प्रतिनिधि इड़ा को उसके निर्माण का श्रेय प्राप्त है। मनु परामर्शदाता के रूप में स्थान पाते हैं। नगर का वर्णन करते हुए कवि ने वैज्ञानिक उत्कर्ष को उसका श्रेय दिया है। 'स्वप्न' में श्रद्धा देखती है, 'मनु के नगर में दृढ़ प्राचीर और मन्दिर हैं। वर्षा, धूप, शिशिर, छाया सभी से मानव अपनी रक्षा कर सकता है। धातु गलाकर नये आभूषण बनते हैं। ज्ञान-व्यवसाय की वृद्धि हो रही है।' इसी अवसर पर प्रजा प्रजापति के विरुद्ध विद्रोह कर देती है। 'संघर्ष' में यह विप्लव भयंकर रूप धारण कर लेता है। राजनीतिक समस्याओं के प्रतिपादन में प्रसाद ने आदर्श-यथार्थ का समन्वय किया। विज्ञान और बुद्धि के अतिवाद का भीषण परिणाम दिखाकर उन्होंने एक नये सास्कृतिक विचार की स्थापना की। सारस्वत नगर की प्रजा भौतिक दृष्टि से अवश्य सम्पन्न थी, किन्तु राजा ने उन्हे कर्त्तव्य और अधिकार का बोध नहीं कराया था। उसे एक सांस्कृतिक चेतना की अपेक्षा थी। प्रजा का विद्रोह इसी के अभाव में हुआ। वह कहती है :

प्रकृत शक्ति तुमने यंत्रों से सबकी छीनी
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी।

राजनीतिक समम्याओं के निराकरण के लिए 'कामायनी' में एक आदर्श प्रजातत्र की कल्पना की गयी है। 'इड़ा' सर्ग के अन्तर्गत काम ने मनु के प्रजातंत्र को शाप दिया था कि उसमें कोलाहल, कलह हो। उसके कथन द्वारा कवि ने आधुनिक विभीषिका का चित्र प्रस्तुत किया। 'स्वप्न' और 'संघर्ष' में वही साकार हो उठा। 'कामायनी' के अनुसार देवताओं की वैभवपूर्ण अमरावती सुखी न थी। भौतिक सुख से सम्पन्न सारस्वत प्रदेश में भी शान्ति न थी। एक ओर यदि भोग-विलास की प्रधानता थी, तो अन्य वर्ग यान्त्रिक जीवन व्यतीत कर रहे थे।

'कामायनी' की प्रजातन्त्र-कल्पना सम्पूर्ण मानवता को लेकर की गयी। उसका धरातल सार्वभौमिक है। कवि ने संघर्ष केवल सारस्वत प्रदेश में ही दिखाया, किन्तु आदर्श राज्य की स्थापना में समग्र मानवता को लिया। राज्य में सर्वप्रथम समस्या

व्यक्ति और समाज की है। व्यक्ति समाज का ही एक अंग है। वह सामाजिक प्राणी होने के कारण उससे विलग नहीं रह सकता। स्थूल दृष्टि से समाज अत्यन्त विशाल होता है, किन्तु व्यक्ति भी नगण्य नही कहा जा सकता, क्योंकि उसी से समाज का अस्तित्व है। मनु समाज का एक प्राणी है, जो अपने बुद्धि-बल से नियामक बन गया। वह समस्त समाज की अवहेलना कर इड़ा के साथ व्यभिचार करना चाहता है। समाज इसे कदापि नहीं सहन कर सकता। सम्पूर्ण समाज ने एक व्यक्ति को अपनी सेवा और निष्ठा दी थी। व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह समाज का ध्यान रक्खे। अधिकार और कर्त्तव्य को साथ-साथ चलना चाहिए। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सम्पूर्ण समाज का अहित उचित नहीं। उसी प्रकार समाज भी व्यक्ति को नगण्य समझकर समाप्त नहीं कर सकता। 'कामायनी' में व्यक्ति और समाज एक-दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक उन्नति के साथ समाज का भी हित करता रहे, यही उसका स्वर है। मनु अन्त में आध्यात्मिक दृष्टि से ऋषित्व प्राप्त करते है, साथ ही सामाजिक कल्याण के लिए भावी मानवता को सदेश देते है। श्रद्धा व्यक्ति और समाज दोनों को लेकर चलती है। मनु को खोजने के लिए जाते हुए भी वह इड़ा और मानव को राष्ट्रहित तथा समरसता-प्रचार का सन्देश दे जाती है। व्यक्ति और समाज में वह समन्वय स्थापित करती है। शासक-शासित की समस्या राजनीतिक है। मनु नियामक होकर भी नियम नही मानना चाहते थे और स्वय को 'चिर स्वतन्त्र' कहते थे। उनका शासन निरंकुश होता जा रहा था। इसी कारण विप्लव हुआ। इड़ा राष्ट्र की काया में प्राण की भाँति रम जाने के लिए कहती है। श्रद्धा मानव-इड़ा को जनसेवा की शिक्षा देती है :

> तुम दोनो देखो राष्ट्र नीति
> शासक बन फैलाओ न भीति।

अन्त में मनु के निकट स्वय प्रजा पहुँचती है, मानो अयोध्यानिवासी राम के पास वन में गये हों। राजनीतिक रूप मे मनु प्रजापति हैं। प्रसाद की प्रेरणा 'मनुस्मृति' प्रतीत होती है। वहाँ मनु नियामक तथा नीति के विधायक है। कामायनी की राजनीतिक धारणा मनुस्मृति के मनु को प्रमुख पात्र बनाकर भी नवीन समस्याओं को लेती है। समग्र मानवता को अपना विषय बनाने के कारण कवि की कल्पना सार्वभौमिकता को ग्रहण करती है। मनु स्वय अपनी भूल स्वीकार करता है कि सम्पूर्ण देश बसाकर भी मेरा मानस प्रदेश सूना है। संसार के सतत् संघर्ष के समाधान में कवि आदर्शवादी है। वह गाधीवाद से भी प्रभावित है। गांधी की अहिंसा, सत्य का प्रयोग राजनीतिक के साथ ही आध्यात्मिक हैं। वे वास्तव में पूर्ण मानवीय हैं और उस समय की कल्पना करते है, जब ईश्वर का ही नियम होगा, मानवता को किसी शासन की आवश्यकता न होगी।[23] कामायनी की पंक्तियाँ हैं :

जीवन का कोमल तंतु बढ़े
तेरी ही मंजुलता समान
चिर नग्न प्राण उनमें लिपटें
सुन्दरता का कुछ बढ़े मान।
किरणो-सी तू बुन दे उज्ज्वल
मेरे मधु जीवन का प्रभात
जिसमें निर्वसना प्रकृति सरल
ढँक ले प्रकाश से नवल गात।

श्रद्धा के इस तकली-गीत मे गांधीवाद का स्वर है। इसके पूर्व उसने मनु को अहिसा का सन्देश दिया था। वह पशु-पक्षी को भी कष्ट नही देना चाहती। 'कामायनी' का समाजवाद मानवता के कल्याण की कामना करता है। श्रद्धा की तकली और उसी के साथ बुनी जानेवाली ऊन की पट्टियाँ, सर्वोदय की प्रतीक हैं। सारस्वत नगर-निवासियों ने सहयोगिता से देश को वैभवशाली बनाया था। वर्ग और वर्णभेद के कारण मनु के नगर मे वैषम्य बढा। कामायनी वर्ग-सघर्ष का समर्थन नही करती। इस क्षेत्र मे कामायनी युग के सर्वोत्कृष्ट व्यक्तित्व गाधी की अहिसा, स्वावलम्ब से प्रभावित है, साथ ही उसमे कवि के व्यक्तिगत चिन्तन और मनन का भी योग है। उसका मूल स्वर यही है :

शक्ति के विद्युतकण, जो व्यस्त
विकल बिखरे है, हो निरूपाय
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।

कामायनी मे प्रायः मानवता-सम्बन्धी विषयो को लिया गया है। आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, व्यक्तिगत आदि पक्षो पर उसमें विचार है। उसमे जीवन-विकास की आवश्यक वस्तुओं का ग्रहण है। व्यक्तिगत क्षेत्र में मानव की अनुभूतियो का चित्रण कवि ने किया। इनका सम्बन्ध मन से है। मन का अधिकाधिक प्रसार, व्यक्तित्व का सही विकास ही मानव के लिए उचित है। सामाजिक क्षेत्र मे स्त्री-पुरुष की समस्या ली गयी। उनके प्रेम की रूपरेखा भी कवि ने निर्धारित कर दी। उनका स्नेहिल संगम जीवन की सफलता है। वास्तव में नारी एक शक्ति है जो पुरुष को प्राप्त होती है। इड़ा ने बुद्धि और श्रद्धा ने हृदय दिया था, किन्तु मनु कुछ समय तक 'पुरुषत्व मोह' में उनका उचित उपयोग न कर सके। समाज की कुछ आवश्यकताओ पर 'कामायनी' ने विचार किया और राजनीतिक पक्ष को भी ग्रहण किया। राजनीति में प्रचलित वादों का परित्याग कर कवि ने एक व्यापक दृष्टि रक्खी है। आध्यात्मिक दृष्टि से कामायनी का चिन्तन-पक्ष उदात्त और प्रौढ़

है। उसमें दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक विषयों का समाहार है। श्रद्धा, काम, कर्म की सुन्दर परिभाषा की गयी। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में इन शब्दों का ग्रहण अवश्य है, किन्तु आधुनिक परिस्थितियों को विचार में रखकर 'कामायनी' में उनका नवीन स्वरूप निर्धारित किया गया।

जीवन में मूल वस्तु श्रद्धा है। संसार की विषमता के मूल में श्रद्धा का अभाव है। मनुष्य मनुष्य पर विश्वास नहीं करता; स्वार्थ और विषमता की वृद्धि होती जा रही है। श्रद्धा से प्रेम और सहानुभूति का उदय होता है। जीवन को सुखी बनाने के लिए कर्म की नितान्त आवश्यकता है। 'कामायनी' में इस तथ्य का समर्थन है। कर्म के अभाव में जड़ता, निराशा का संचार होता है जो जीवन को जर्जर और पंगु बना देता है। काम की व्यापक परिधि में समग्र जीवन का समावेश हो जाता है। बीच में इस शब्द को संकुचित कर दिया गया था। 'कामायनी' में उसका नव जागरण प्रस्तुत हुआ। समरसता, सौमनस्य, सन्तुलन की जीवन में नितान्त आवश्यकता है। विरोधी शक्तियों का मिलन ही कल्याणकारी हो सकता है। साधारण, व्यक्तिगत विषय से लेकर वृहत् समस्या तक में इसकी आवश्यकता है। समरसता से आनन्द की उत्पत्ति होती है, जिस प्रकार काव्य में स्थायी भाव, मचारी भाव, विभाव, अनुभाव के संयोग से रसनिष्पत्ति। उच्च भाव-भूमि पर मानव को ले जाने के लिए अद्वैत, रहस्य का भी समावेश है। शिव के नृत्य से विषमता की शान्ति होती है। आजीवन युद्ध करता हुआ मानव अन्त में विश्वनियन्ता की प्राप्ति चाहता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में किसी-न-किसी रूप में मुक्ति की प्राप्ति मानव की पिपासा रही है। 'कामायनी' में इसे व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया गया ! मनु अन्त में जिस आनन्द को पाते हैं, उसका रहस्य वे समस्त मानवता को बताते हैं। ज्ञान का सामाजीकरण होता है।

दार्शनिक शब्द

'कामायनी' में यथास्थान प्रसाद ने दार्शनिक शब्दों का प्रयोग किया। उनकी रूपरेखा में उन्होंने आवश्यक परिवर्तन कर उन्हें व्यावहारिक बनाया। इसी कारण प्राचीनतम पौराणिक आख्यान में भी नवीन विषयों का प्रतिपादन किया जा सका। समरसता, आनन्द आदि शैवदर्शन में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों की उन्होंने नयी व्याख्या की। उनकी समरसता आध्यात्मिकता की परिधि से निकलकर व्यक्ति, समाज, राजनीति तक आई। आनन्द भी केवल आध्यात्मिक जगत, रहस्यमय प्रदेश तक सीमित न रहा। दर्शन में प्रयुक्त शब्दों की रूढ़िवादिता उन्होंने समाप्त की। देव-दानव-संघर्ष की पौराणिक गाथाओं से उन्होंने मानस-जगत के संघर्ष की कल्पना की। देवत्व को भी अपूर्ण कहकर 'कामायनी' ने मानवता को प्रतिष्ठित किया। मानव ही सर्वोपरि है। 'भूमा' शब्द प्राचीन ग्रन्थों से ग्रहण किया गया। 'कामायनी' में 'माया' का प्रयोग भी कई स्थानों पर हुआ है। सांख्य दर्शन के अनुसार माया सर्व विभीषिकाओं का मूल

है। वह मानव के उत्कर्ष में बाधक है। वह सदा पुरुष को, प्रकृति बनकर अपने पाश में बाँधती रहती है। शंकर का मत भी इसी के निकट है। इसके विपरीत शैव माया को उस शक्ति के रूप में स्वीकार करता है, जो आणव से आत्मा को मुक्त कर उसे शक्ति प्रदान करती है। वह शाश्वत है तथा इन्द्रिय और ज्ञान द्वारा आत्मा को आणव से युद्ध करने में सहायता देती है। वह चिरन्तन 'पएनिशा' है।[24] 'कामायनी' में श्रद्धा आत्मसमर्पण के समय 'माया' का भी, दया-ममता आदि के साथ ही दान देती है। पर उसका दूसरा रूप भी गृहीत है। श्रद्धा इच्छालोक दिखाकर कहती है : 'माया राज्य यही परिपाटी पाश बिछाकर जीव फँसना'। छलना के रूप में माया का ग्रहण करने के कारण मनु ने इड़ा को 'मायाविनि' कहा था। इस मिथ्या रूप को कवि ने स्वीकार नहीं किया। 'कामायनी' में माया का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ, किन्तु कवि स्वयं उसे एक शक्ति-रूप मानता है :

नारी माया ममता का बल
वह शक्तिमयी छाया शीतल।

'माया' की भाँति ही 'नियति' की कल्पना भी उदात्त भावना की ओर अधिक है। वास्तव में कवि का दृष्टिकोण सृजनात्मक रहा है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की चर्चा भी शैवग्रन्थों मे प्राप्त है। ये पंच विषय 'तन्मात्र' कहलाते हैं जो मायाजन्य तामस वस्तुएँ हैं। मनु इन्हीं से ग्रसित रहता है। 'मधु', 'मधुमय' आदि शब्दों का प्रयोग 'कामायनी' में किसी विशेष सीमित अर्थ में नहीं है। ऋग्वेद में मधु का प्रयोग हुआ है। उसके अनुसार 'वायु मधु वितरित करती है, सरिताओं में मधु प्रवाहित है, समस्त अन्न मधुमय हो। रजनी, प्रातः, धरणी. धूलि, आकाश ये सभी मधुमय हों'।[25] 'कामायनी' मे मधु का ग्रहण सरलता, तरलता, प्रिय वस्तु के रूप मे है। मनु के जीवन में काम का प्रवेश मधुमय वसन्त बनकर आता है। मधु की इस सरस कल्पना से कवि ने मधुमय, मधुरिम, मधुभास, मधुऋतु, माधुरी आदि शब्दों का उपयोग किया। इसके अतिरिक्त अन्य प्राचीन दार्शनिक ग्रन्थो में प्रयुक्त महाचिति, संवेदन आदि अन्य शब्द 'कामायनी' में आये है, जिन पर कवि की कल्पना की छाया है तथा उन्हें इस प्रकार व्यावहारिक बनाने का प्रयास है। 'कामायनी' का चिन्तन कवि के गम्भीर अध्ययन का परिचायक है। उसमें दार्शनिक तथ्यों का समावेश सुन्दर काव्यात्मक रीति से प्राप्त होता है। उपनिषदों के अद्वैत, शैवदर्शन के समरसता-आनन्द, बौद्धों की करुणा आदि की छाया उसमें मिलती है। चिन्तन का क्षेत्र इतना व्यापक है कि जीवन की समस्या पर मौलिक विचार और स्वतन्त्र धारणाएँ सहज सुलभ हैं। चिन्तन-मनन काव्य से एकाकार हो गया है। 'काव्य में दर्शन और दर्शन में काव्य है।' 'कामायनी' का कवि एक ही साथ सफल कवि तथा चिन्तक है, किन्तु उसमें तारतम्य का अभाव भी स्वीकार करना होगा।

संदर्भ

1. रवीन्द्र साहित्य, पृ. 15
2. शतपथ ब्राह्मण : 10/5/2/20
3. राधाकृष्णन : इण्डियन फ़िलासफ़ी, 1, पृ. 72
4. मेकडॉनल : वेदिक माइथॉलोजी, पृ. 52
5. शतपथ ब्राह्मण : 10/1/6/7.8
6. के. सी. पाण्डे : अभिनवगुप्त, पृ. 172
7. स्टाउट : मैनुअल आफ़ साइकोलाजी, पृ. 30
8. विलियम जेम्स : प्रिंसिपिल्स आफ़ साइकोलाजी, खण्ड 2, पृ. 450
9. मैक्डूगल : एन आउटलाइन आफ साइकोलार्जी, पृ. 314
10. फ़्रायड : कलेक्टेड पेपर्स, खण्ड 4
11. मैक्डूगल : एन आउटलाइन आफ़ साइकोलाजी, पृ. 324
12. फ़्रायड : कलेक्टेड पेपर्स : खण्ड 4, पृ. 174
13. अन्डरहिल : मिस्टिसिज़्म, पृ. 53
14. मैक्डूगल : एन आउटलाइन आफ़ साइकोलाजी, पृ. 335
15. टेलर, एन्थ्रोपालोजी, भाग 1, पृ. 15
16. आर्थर कीथ : एसे ऑन ह्यूमन इवोल्यूशन, पृ. 69
17. राधाकृष्णन : इण्डियन फ़िलासफ़ी, भाग 2, पृ. 287
18. राधाकृष्णन : इण्डियन फ़िलासफ़ी, भाग 1, पृ. 644
19. जे. सी. चटर्जी : काश्मीर शैविज्म, पृ 57
20. के. सी. पाण्डे : इण्डियन एस्थेटिक्स, 104
21. प्रसाद : काव्य और कला, पृ. 21
22. तंत्रालोक : 6/160
23. गांधी-नानवायलेन्स इन पीस एण्ड वार, पृ. 225
24. तंत्रालोक : 6/117, 814
25. ऋग्वेद : 1/90

काव्य-संसार

युग और स्थिति के अनुसार विचारधारा में परिवर्तन होता रहा है, किन्तु काव्य के उपादानों में अधिकांश ने किसी-न-किसी रूप में भाव का महत्त्व अवश्य स्वीकार किया। संस्कृत के आचार्यों ने भाव से ही स्थायी भाव, संचारी भाव, विभाव, अनुभाव आदि का निर्माण किया। साहित्यदर्पणकार ने इन्हीं के संयोग को रस की संज्ञा दी। मनोविज्ञान के अनुसार सृष्टि की वस्तुओ का हमारे अन्तःकरण पर प्रभाव (इम्प्रेशन) पड़ता है। भाव, विचार किंचित् गुफित होने के कारण उमी रूप मे बाहर नही आ पाते, उनका दमन (सप्रेशन) होता है। इसी के पश्चात् अभिव्यक्ति (एक्सप्रेशन) का स्थान है। अन्तिम रूप व्यंजना (सजेशन) का है। काव्य-प्रक्रिया में सर्वप्रथम मन में कोई भाव अथवा विचार आता है। 'कल्पना के प्रश्रय द्वारा' उसे शक्ति मिलती है। अन्त में भाषा के द्वारा वह प्रकाशित होता है। अ. ए. हाउसमैन भाव को काव्य और काव्य को भाव कहता है। भाव को कल्पना से काव्य का विषय बनाया जा सकता है। भाव और कल्पना का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। भाव यदि अनुभव के अधिक समीप है, तो कल्पना कृतित्व के। कल्पना के द्वारा कवि भावो का उदात्तीकरण कर उन्हें संयोजित रूप में प्रस्तुत करता है। नयी अर्थ-दीप्ति देता है। भाव का कल्पना द्वारा प्रकाशन करने के लिए भापा-माध्यम की आवश्यकता होती है। उदात्त भावना के प्रतिपादन हेतु भाषा में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। काव्य की भाषा में किसी वस्तु का चित्र प्रस्तुत कर देने की क्षमता होती है, साथ ही उससे अर्थव्यंजना भी होती है। सम्पूर्ण अभिव्यक्ति एक विशिष्ट शैनी द्वारा की जाती है। छन्द आदि का विधान इसी के अन्तर्गत आ जाता है। काव्य की सृजन-प्रक्रिया में भाव का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भाव को विचार, कल्पना, भाषा, शैली द्वारा काव्य में व्यक्त किया जाता है।

काव्य में मूल्यांकन की प्रणालियाँ भी युग के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं। संस्कृत में रस, ध्वनि, वक्रोक्ति, अलंकार, रीति आदि के सम्प्रदायों ने अपने मत की स्थापना की। भरतमुनि ने रस को प्रधानता दी : 'वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्'। भामह ने 'काव्यालंकार' में शब्द-अर्थ का समन्वय कर अलंकार को भी स्थान दिया।

दडी का 'काव्यादर्श' स्फोट का समर्थव है। वामन के अनुसार 'रीतिरात्मा काव्यस्य' ही उचित है। उद्भट अलकारवादी है। आनन्दवर्द्धनाचार्य का 'ध्वन्यालोक' ध्वनि को ही सर्वस्व मानकर चलता है। कुन्तक ने वक्रोक्ति को प्रधानता दी। इस प्रकार भारतीय साहित्यशास्त्र मे काव्य-मूल्याकन की अनेक प्रणालियाँ बिखरी हुई मिलती हैं। किन्तु किसी-न किसी रूप मे काव्य की भावात्मक अथवा रसात्मक सत्ता अवश्य स्वीकार की गयी है। काव्य का लक्ष्य आनन्द है। पश्चिम मे अरस्तू का काव्यशास्त्र पर्याप्त समय तक कविता-मूल्यांकन का प्रतिनिधि-ग्रन्थ रहा। दुःखान्त नाटक को साहित्य का सर्वोत्कृष्ट रूप कहकर उसने होमर का उदाहरण भी सम्मुख रक्खा। अंग्रेजी मे शेक्सपियर के युग तक अरस्तू के आधार पर ही काव्य का मूल्याकन होता रहा। कला कला के लिए और कला जीवन के लिए का द्वन्द्व आरम्भ होने पर सिद्धान्तो मे परिवर्तन हुए। स्वच्छन्दतावादी कवि ने स्वय अपने काव्य की व्याख्या की। शैली ने काव्य को समस्त ज्ञान का भण्डार मानकर कवि को देवदूत की सज्ञा दे डाली। कॉलरिज ने मनोवैज्ञानिक आधार पर काव्य मे हृदय-बुद्धि का समन्वय आवश्यक माना। बढ़ती हुई सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं के साथ ही कविता और जीवन का सम्बन्ध निकट आता गया। राजनीतिक वादो की छाया काव्य पर भी पडी। इस प्रकार काव्य की कसौटियाँ भिन्न भिन्न समय मे परिवर्तित होती रही। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे काफी समय तक सस्कृत के सिद्धान्त ग्रहण किये गये। द्विवेदी-युग मे खडी बोली के प्रवेश के साथ जीवन-दर्शन और नैतिक आदर्शो की ओर अधिक अभिरुचि हुई। छायावाद ने सूक्ष्म मानवीय भावनाओं का ग्रहण किया। रामचन्द्र शुक्ल के 'काव्य मे लोकमगल की साधना' के स्थान पर छायावाद ने 'सत्य, शिव, सुन्दरम्' को अधिक अपनाया। स्वय प्रसाद ने अपना आदर्श आनन्दवादी रक्खा। काव्य को 'आत्मा की सकल्पात्मक मूल अनुभूति' मानकर उन्होंने अनुभूति को प्रधानता दी। उसमे श्रेय प्रेय, आदर्श यथार्थ का समन्वय ही उचित है। उन्होंने रस और आनन्द मे सामीप्य स्थापित किया जीवन का समावेश साधारणीकरण द्वारा होता है। काव्य को व्यापक भूमि पर प्रतिष्ठित कर वे आनन्द को ही उसका उद्देश्य मानते है।

भावभूमि

'कामायनी' का भाव तथा कल्पना-पक्ष कवि के व्यक्तित्व से अनुप्राणित है। कथा को मनोनुकूल निर्मित करने के अतिरिक्त कवि ने विभिन्न भावो का निरूपण तथा वस्तु-वर्णन भी स्वतत्र रूप से किया है। कामायनी मे प्रत्येक सर्ग का शीर्षक एक मनोविकार है। उसके वर्णन मे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के अतिरिक्त रूप-चित्रण तथा गुण-प्रकाशन भी हुआ है। मानसिक वृत्तियो को साकार रूप देने का प्रयत्न यहाँ प्रतीत होता है। प्रलय की दशा मे एकाकी पुरुष का चिन्ता-मग्न होना स्वाभाविक है। मनु

उसे सम्बोधित करते हुए अपनी जिज्ञासा से प्रश्न करता है। अन्तर में उठनेवाला यह सूक्ष्म भाव कवि के शब्दों में मूर्तिमान हो गया है। चिन्ता के समस्त गुणों को लेकर कवि ने कहा है : बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिन्ता, तेरे हैं कितने नाम :

हे अभाव की चपल बालिके
 री ललाट की खल लेखा
हरी-भरी सी दौड़ धूप, ओ
जल माया की चल रेखा।

अभाव में चिन्ता का उदय होता है, ललाट पर अनेक रेखाएँ आ जाती हैं। कवि ने उसे 'बहरी' कहकर सम्बोधित किया है। चिन्ता का चित्रण करने के पश्चात् वह मानसिक जगत में उसके प्रभाव का वर्णन करता है। विभिन्न प्रकार के भावो के प्रतिपादन का प्रयत्न 'कामायनी' द्वारा किया गया। चिन्ता, काम, वासना, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, सघर्ष आदि उत्तेजनमय भावों के निरूपण में उसी के अनुरूप प्रखर चित्रो का प्रयोग हुआ। वासना का चित्रण करने मे कवि अधिक सावधान प्रतीत होता है। आरम्भ मे ही वह अनेक उपमाओ द्वारा पुरुष-नारी के संसर्ग की सूचना देता है। 'राग-रंजित चन्द्रिका' सहयोग प्रदान करती है। वासना की परिणति का भी वर्णन अत्यन्त सांकेतिक रीति से किया गया है :

छूटती चिनगारियाँ उत्तेजना उद्भ्रान्त
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशान्त।

कर्म के अन्तर्गत पशुबलि, हिंसा आदि की चर्चा है। वेदी की निर्मम प्रसन्नता, पशु की कातर वाणी, धधकती ज्वाला, रुधिर के छींटे कर्मकाड का परिचय देते है। 'ईर्ष्या' मे मनु का ज्वलनशील अन्तर आवेशमय, उत्तेजनमय हो जाता है। वे एक ही साँस में ईर्ष्या की अभिव्यक्ति करते चले जाते है, कोई विराम नही। इस अवसर पर भावों मे एक अधीरता आ गयी है और इसी आवेश में मनु चल देते हैं। उनके भाव-प्रकाशन मे इस समय कोई तारतम्य नही, केवल उत्तेजनावश वे कहते रहते है। तभी वे नारी के प्रेम की व्यापकता को 'विभाजन' कहते है, स्वय अपने पुत्र से उन्हे ईर्ष्या होती है। बुद्धिवाद के निरूपण में झंझा, विक्षुब्ध, तर्कजाल आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। संघर्ष की भयानक अवस्था के प्रतिपादन मे कवि ने उत्तेजक वक्तव्यो की सहायता ली। कोमल एवं सूक्ष्म भावों के चित्रांकन मे कवि के मधुर भाव जाग्रत होते है। आशा के साथ उषा का उदय, आलोक-रश्मियों का प्रभा विकीर्ण करना नैसर्गिक है। इस जाग्रत भाव के साथ सुर-संस्कृति सजग हो जाती है। जिज्ञासा, कुतूहल अनेक प्रश्न करने लगते हैं। श्रद्धा के निरूपण में कामायनीकार ने उदात्त कल्पनाओं का अवलम्ब लिया। सम्पूर्ण काव्य की पृष्ठभूमि होने के कारण उसे विशेष महत्त्व प्राप्त

है। श्रद्धा का रूपवर्णन उमक गुणा की भी व्यजना करता है। मौन्दर्य के माथ शृनि भी चित्रित हो जाती है

> नित्य यौवन छवि म ही दीप्त
> विश्व की करुण कामना मूर्ति
> स्पर्श के आकर्षण स पूर्ण
> प्रकट करती ज्या जड मे स्फूर्ति।

काम का मरम भाव निरूपण मनाहर कल्पनाआ द्वारा कामायनी मे प्रतिपादित किया गया है। मनु क अन्तरतम म उठता हुआ काम भाव जीवन म मादकता घोल दता है। वमन्त की मधुरता लेकर काम ने प्रवश किया। मन का प्रश्न भाव को मूर्तिमान कर दता है

> जब लीला म तुम मीग्व रह
> कोरक काने म लुक रहना
> तब शिथिल सुरभि म धरणी म
> बिछलन न हुई थी ? सच कहना।

काम की भाँति लज्जा भी अत्यन्त सूक्ष्म भाव है। काम की क्रियाए कभी कभी स्पष्ट भी हो जाती है किन्तु लज्जा की चेष्टा पर एक आवरण रहता है। कोमल किसलय के अचल म छिपी हुई नन्ही कलिका की भाति वह अन्तरतम म प्रविष्ट होती है। गाधूलि वला म किमी के अचल म जलता हुआ स्नह दीपक झिलमिलाता रहना है। कवि न लज्जा को मौन्दर्य की धात्री कहा है। लज्जा की सूक्ष्म भावना कहती है

> मै देवसृष्टि की रनि रानी
> निज पचवाण म वचित हा
> वन आवर्जना मूर्ति दीना
> अपनी अतृप्ति मी मचित हा।

कामायनी के अन्तिम ती सर्गो मे दार्शनिक भावा का निरूपण है। यहाँ इच्छा ज्ञान, कर्म का एक साकार रूप प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक भाव के रूप, गुण का प्रतिपादन हुआ है। माथ ही भाव प्रक्रिया का भी सकेत किया गया है। अनुभूति समन्वित हाने के कारण भाव काव्य मे मूर्तिमान हो गये हैं। केवल भाव प्रतिपादन काव्य की रसात्मक अनुभूति मे अधिक सहयोग नही प्रदान करता। मानसिक तथ्यो की माकारता कवल उनका व्यजित रूप है, कामायनी मे उनका निरूपण अनुभूति के आधार पर भी है। इन स्थायी भावा मे सम्बन्धित अन्य सचारी

भावों का उल्लेख भी किया गया है। चिन्ता अपने साथ शोक, विषाद, करुणा को लेकर चलती है। आशा जागृति, जिज्ञासा, मोह का सृजन करती हैं। श्रद्धा के समस्त उदात्त गुण उसमे निहित है। काम की सरसता और मादकता भी बोल रही है। वासना मे अतृप्ति, उच्छृखलता, मूर्च्छना है। लज्जा का सकोच स्पष्ट है। कर्म लालसा को लेकर चलता है। ईर्ष्या का सकुचित रूप भी आभासित हो जाता है। इडा की बुद्धिवादी प्रवृत्तियाँ उसके साथ है। स्वप्न की मूर्च्छना स्वाभाविक है। सघर्ष का भयानक रूप चित्रित है। निर्वेद की उदासी, जडता भी प्रकट है। अन्तिम तीनो उदात्त भावो के सचारी उसके अनुरूप है। इस प्रकार अन्य भावो का समावेश इन्ही के अन्तर्गत हो गया है। 'कामायनी' में अनेक भावों का एक साथ समावेश काव्य से एकाकार हो गया है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और दार्शनिक निरूपण काव्य के अग हो गये है।

कल्पना और वस्तु

भाव के आधार पर कल्पना काव्य-रचना मे तत्पर होती है। वह अनुभूति को चिरन्तनता प्रदान कर स्थायी रूप मे अगीकार करती है। आई ए रिचर्ड्स कल्पना के अनेक रूपों की चर्चा करते है। काव्य-कल्पना जीवन के अनेक अनुभवो का उदात्तीकरण कर उन्हे आनन्दमय बनाती है।[1] कॉलरिज के विचार मे यह कल्पना कवि की कारयित्री प्रतिभा होती है। 'प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता' के द्वारा कवि अपने सृजन मे सफल होता है। कथानक-योजना से लेकर सूक्ष्म चित्राकन तक की प्रक्रिया मे उसका सहयोग रहता है। उदात्त कल्पना काव्य को महानता प्रदान करती है। इसी कारण आरम्भिक युग के कलाकार इतिहास प्रसिद्ध पौराणिक कथा को काव्य-विषय बनाते थे। कल्पना मे सत्य का समावेश उसमे सवेदनशीलता लाता है और पाठक का उसके साथ तादात्म्य हो जाता है। मानवीय भावो का ग्रहण और अकन दोनो ही क्रियाएँ कवि को करनी पडती है। वह समाज से प्रेरणा लेकर कल्पना मे उसे भव्य बनाकर पुनः लौटा देता है। 'कामायनी' मे कथानक की रूपरेखा का निर्माण प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर हुआ है। यत्र तत्र बिखरी हुई कथा को कल्पना द्वारा कवि ने एकसूत्र मे बाँधा। ऐतिहासिक कथानक म नवीन विषयो का समावेश भी उसने अपनी मौलिक उद्भावनाओ द्वारा किया। मनु के प्राचीनतम आख्यान की पौराणिकता पर कल्पना एक आधुनिक कलवर चढाती है। स्वप्न देखकर श्रद्धा मनु के पास पहुँचती है। मनु निर्वेद के कारण पुनः पलायन करते है। कैलास आश्रम पर सभी का पुनर्मिलन होता है। इन मौलिक कल्पनाओ से 'कामायनी' का कथानक सज्जित है। एक ओर यदि इतिहास की रक्षा हुई तो साथ ही उसे नवीनतम स्वरूप भी प्रदान किया गया। पुरागाथा इतिहास का नया रूप कामायनी में स्पष्ट है। पात्रो की नियोजना मे कल्पना का सहयोग है और मनु, श्रद्धा, इडा अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी रखते हैं। शतपथ ब्राह्मण की कथा के अतिरिक्त ऋग्वेद, पुराण, उपनिषद्

आदि में उनकी व्याख्या है। पर प्रसाद ने अपनी अनुभूति और कल्पना के द्वारा उनका नवनिर्माण किया। युगों पूर्व के पात्रों मे नवीनता आई है। मनु का ऋषित्व, श्रद्धा का देवी रूप सभी मानवीय धरातल पर अकित है। कवि ने उन्हे मानवीय गुणों से सज्जित किया। मानव होकर ही वे समस्त मानवीय सवेदना प्राप्त कर सकते हैं। पुराने पात्रों के मानवीकरण में कवि की महान् कल्पना-शक्ति का परिचय प्राप्त होता है। जीवन के स्वाभाविक उत्थान-पतन में गिरता-पडता मनु स्वय चरम आदर्श तक जाता है। आदि से अन्त तक वह मानव है। श्रद्धा नारी की विभूति से विभूषित है। श्रद्धा का रूप कल्पना की सहायता से सूक्ष्म रूप मे अकित हुआ है :

आह वह मुख ! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हो घनश्याम
अरुण रवि मडल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम।

वस्तु-वर्णन में भाव का स्वरूप प्रस्तुत करने के साथ ही विविध मनोदशाएँ और मानसिक भावनाएँ कामायनी में चित्रित की गया है। सूक्ष्म भावो का चित्राकन करने मे कवि को सफलता प्राप्त हुई है पर स्थूल वस्तु चित्रण म कामायनीकार अधिक नही रमता। इसीलिए विभाव पक्ष का सर्वागीण अकन नही दिखाई देता। लज्जा काम को साकार रूप प्रदान करने मे वस्तु-वर्णन की सर्वोत्कृष्ट कला का प्रयोग किया गया किन्तु 'संघर्ष' का रेखाकन उसी कोशल मे न हो सका। सम्भवतः सौन्दर्यवादी कलाकार को प्रखर भावो की अनुभूति भली भांति नही हो पायी। भाव के साथ अनेक दार्शनिक तथ्यो का भी वर्णन काव्य में आया है। अन्तिम तीन दर्शन प्रधान सर्गों में इसका स्वरूप मिलता है। 'दर्शन' में श्रद्धा मनु का मिलन एक सर्वाग ज्योति का सृजन करता है। सर्वत्र प्रभापुज विकीर्ण होने लगा :

आनन्दपूर्ण ताडव सुन्दर
झरते थे उज्ज्वल श्रम सीकर
बनते तारा, हिमकर, दिनकर
उड रहे धूलि कण मे भूधर।

इच्छा, ज्ञान, कर्म का वर्णन भावमय होकर भी वस्तुसमन्वित है। भाव-रूप मे प्रवृत्तियों के प्रभाव का ही वर्णन कवि ने ग्रहण किया। इच्छा आलिगन की भाँति मधुर प्रेरणा बनकर स्पर्श कर लेती है। वह जीवन की मध्य भूमि है जो रसधारा से सिंचित होती रहती है। क्रिया-व्यापारो के द्वारा कवि उसका चित्र प्रस्तुत करता है। कर्मलोक की अभिव्यक्ति कोलाहल, पीड़ा, विकलता आदि के द्वारा हुई है। आकाक्षा और तीव्र पिपासा उसी के अनुरूप है। ज्ञान अपना परिमित पात्र लेकर बूँद-बूँद वाले

निर्झरों से जीवन का रस माँगता है। त्रिपुर अपने पृथक् रूप मे अभिशापमय हैं। उनका मिलन आनन्द का रूप प्रस्तुत करता है। एक स्वर्णिम ज्वाला स्वप्न, स्वाप सभी को भस्म कर आनन्द का प्रकाश विकीर्ण कर देती है। भाव तथा दार्शनिक वस्तु-वर्णन सूक्ष्म चित्रांकन के आधार पर हुआ है। 'कामायनी' का रूप-वर्णन मानसिक वृत्तियो के प्रकाशन के साथ चलता है। मनु के पौरुषमय रूप को प्रस्तुत करते हुए कवि ने कहा :

अवयव की दृढ़ मास पेशियाँ
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिराएं स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमे सचार।

अन्तर बाह्य के समन्वय से सम्पूर्ण चित्र निर्मित हुआ है। आदिपुरुष की इस भव्य रूपरेखा मे उसका शरीर और मन, दोनो पक्ष आभासित होते हैं। प्रसाद विशेषण अथवा उपमा द्वारा रूपचित्रण करते है। जलप्लावन समाप्त होने पर आशा के उदय के साथ स्वस्थ मनु भी उठे, ज्यों क्षितिज के बीच से कान्त अरुणोदय। श्रद्धा उपमानो के द्वारा मनु को सम्बोधित करती है। साधारण सकेत मे ही परिवर्तन का बोध हो जाता है। काम ने मनु की चेतना को शिथिल कर दिया। 'वासना' मे 'छूटती चिनगारियां' स्थिति का अकन करती है। मृगया से लौटे मनु का चित्र 'शिथिल शरीर' मे प्रस्तुत किया गया है। सघर्ष की अवस्था मे शारीरिक परिवर्तन अधिक नही होता। अन्तिम रूप मे मनु पुनः अपना वास्तविक गुण प्राप्त कर लेते है। लज्जा के रूप वर्णन मे प्रसाद की कला अधिक मुखर हुई है। नखशिख वर्णन-परम्परा का आभास 'आंसू' मे था, किन्तु यहाँ आकर उसका परित्याग कर दिया गया। रूप-वर्णन के साथ उसके गुण का भी आभास देना प्रसाद की कला है। श्रद्धा के सौन्दर्यांकन मे सूक्ष्म कल्पनाओं की योजना मिलती है :

मधु पवन-क्रीडित ज्यों शिशु साल
सुशोभित हो सौरभ-सयुक्त।

नारी की सम्पूर्ण लज्जा लेकर श्रद्धा सम्भवतः अपरिचित मनु से प्रश्न करती है। उसकी वाणी का माधुर्य उसे 'मधुकरी' बनाता है। उसके स्वर-सदेश में मधुरता, स्निग्धता थी। श्रद्धा के मुख से सौरभ विकीर्ण हो रहा था। आदिकवि के प्रथम छन्द 'मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः' की प्रेरणा करुणा थी। श्रद्धा निर्जन के उस तपस्वी पर दयालु हो उठी। उसकी दया ने एक अपरिचित के सम्मुख अपना कंठ खोल दिया। श्रद्धा के प्रथम छन्द की करुणा आदिकवि की कविता के समान थी। प्रथम उपमान की सार्थकता सुन्दर है। उस रूपराशि पर मनु लुट जाता है। उसे

वह सब 'इन्द्रजाल' की भाँति प्रतीत होता है। श्रद्धा के रूपवर्णन में गुणों का आभास देने का प्रयास स्पष्ट है। 'शिशु साल' में श्रद्धा के कौमार्य की अभिव्यंजना होती है। नील परिधान के बीच खुले हुए उसके मृदुल सुकुमार अंग की सुषमा का परिचय देने के लिए अलौकिक उपमान का प्रयोग किया गया है :

खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन-बीच गुलाबी रंग।

गुलाबी रंग का कान्तिमय शरीर विद्युत की सी छटा विकीर्ण कर रहा था। मेघ वन नील परिधान के लिए प्रयुक्त हुआ है। मनु के नयनों का इन्द्रजाल सम्भवतः इसी अपार सौन्दर्य के कारण था। श्रद्धा का मुख पश्चिम के व्योम में घिरती हुई घनमाला में झाँकते हुए अंशुमाली की भाँति था। मुख की कान्ति के लिए अचेत ज्वालामुखी की कल्पना की गयी है। पास ही घिरनेवाले केश छोटे छोटे नील मेघ शावकों की भाँति चन्द्रमा से अमृत भर लेना चाहते थे। सम्पूर्ण रूप वर्णन को चित्र रूप में प्रस्तुत कर कवि उसे अशरीरी बना देता है :

कुसुम कानन अंचल में मन्द
पवन प्रेरित सौरभ साकार
रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आधार।

नवीन उपमानों का प्रयोग कवि ने किया है। बाह्य चित्रण की अपेक्षा उसने आन्तरिक प्रकाशन का अधिक ध्यान रखा। श्रद्धा का अन्य रूप वासना के अन्तर्गत प्राप्त होता है। [illegible] सर्गों के [illegible] शृंगार का अंकन किया गया है :

गिर रही पलकें झुकी थी नासिका की नोक
भ्रूलता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल
खिला पुलक कदम्ब सा था भरा गद्गद बोल।

लज्जा के कारण श्रद्धा का सौन्दर्य छाया की भाँति सूक्ष्म हो जाता है। आन्तरिक वृत्ति का उदय होते ही प्राणों में मादक शिथिलता-सी आने लगती है। मन किसी के चरणों में झुक जाता है। अन्तर कदम्ब की माला की भाँति पुलकित हो उठता है। तरल हँसी स्मित बनकर रह जाती है, केवल नेत्रों में ही वक्रता देखी जा सकती है। रूपवर्णन में लज्जा के साथ होनेवाली वास्तविक मनोदशा का अंकन कवि ने किया है। श्रद्धा स्वयं अपनी स्थिति स्पष्ट कर देती है :

छूने मे हिचक, देखने मे
        पलकें आँखो पर झुकती है
कलरव परिहास भरी गूँजे
        अधरो तक सहसा रुकती हैं।

श्रद्धा के भावी मातृत्व का वर्णन करने मे कामायनी के कवि ने नैतिकता की भी रक्षा की। कालिदास ने 'रघुवश' के तृतीय सर्ग मे रानी सुदक्षिणा का वर्णन किया है : 'गर्भिणी रानी कृशगात हो गयी थी। उन्होने अपने अनेक आभूषण निकाल डाले। सुन्दर मुख लोध्र प्रसून की भाँति पीत हो गया। उनका रूप रजनी के अन्तिम प्रहर की भाँति था, जब केवल दो चार तारिकाएँ ही शेष रह जाती है और चन्द्रमा भी पीत पड जाता है। ग्रीष्मान्त मे प्रथम वर्षा होने से वन के लघु सरो की भूमि सोंधी हो जाती है और गयद उसे जी भर सूंघा करते है।' मिट्टी खाने से रानी सुदक्षिणा का मुख भी सुवासित था। राजा दिलीप एकात मे उसे बार बार सूंघकर भी तृप्त नही होते थे, कालिदास के वर्णन की ऐन्द्रियता का आभास कामायनी मे सरस कल्पना द्वारा सवलित किया गया। प्रसाद ने उसका उदात्त चित्र प्रस्तुत किया

कतकी गर्भ सा पीला मुँह
        आँखो मे आलस भरा स्नेह
कुछ कृशता नई लजीली-सी
        कम्पित लतिका-सी लिये देह।

कालिदास ने सुदक्षिणा के स्तनो का भी वर्णन किया है पर 'कामायनी' मे मातृत्व बोझ से झुके हुए' मात्र कहकर कवि ने सकेत कर दिया। गात की सिकुडन मे उभार भरकर बहती हुई कालिन्दी अथवा स्वर्गगा मे इन्दीवर की पक्ति का होना भी उपमाश्रित रूप वर्णन को मर्यादित रखता है। अन्त मे श्रद्धा को नारी के महान् मातृत्व रूप से विभूषित किया गया 'दुर्भर थी गर्भ मधुर पीडा, झेलती जिसे जननी सलील।' इसी के पश्चात् विरहिणी श्रद्धा का चित्र प्राप्त होता है। वियोग की स्थिति मे नारी का रूप वर्णन साहित्य मे पर्याप्त हुआ है। कामायनी की विरहिणी स्थूल ऊहात्मक रचनाओ मे नही बाँधी गयी। 'आँसू' का सार्वभौमिक वेदना का चित्रकार नारी मे करुण विप्रलम्भ को साकार करता है। श्रद्धा वेदना की प्रत्यक्ष मूर्ति है। सन्ध्या के धूमिल वातावरण की भाँति उसका जीवन है। कुसुम वसुधा पर पडी कामायनी मे अब मकरन्द नही, केवल दो-चार रेखाएँ ही शेष है। प्रकृति के धूमिल चित्रो को कवि विरह व्यजना के लिए प्रयुक्त करता है। प्रभात का शशि, उदास सन्ध्या, मुकुलित शतदल, जलधर की-सी दशा थी उसकी। प्रकृति का धूमिल वातावरण अपने चित्र मे नारी के वियोग को प्रतिध्वनित करता है। उसकी अन्तर्दशा स्पष्ट है :

एक मौन वेदना विजन की, झिल्ली की झनकार नही
जगती की अस्पष्ट उपेक्षा, एक कमक साकार रही
हरित कुंज की छाया-भर थी वसुधा आलिंगन करती
वह छोटी-सी विरह नदी थी जिसका है अब पार नही।

इड़ा को श्रद्धा विरहिणी की 'धुंधली छाया'- सी दिखाई पड़ती है जिसकी वाणी में करुण वेदना थी। उसका शिथिल शरीर, विशृंखल वसन, खुली कवरी वियोग का आभास देते है। वह छिन्न पत्र, मकरन्द लुटी, मुरझाई हुई कली की भाँति थी।

इड़ा का सौन्दर्यांकन अधिक प्रखर रेखाओ से हुआ। बिखरी अलकें तर्कजाल का आभास देती हैं। शशि-खण्ड सा स्पष्ट भाल बौद्धिकता का प्रतीक है। अनुराग और विराग से भरे नेत्र थे उसके। वह प्रभात की भाँति प्रभा विकीर्ण करती हुई आयी। वक्षस्थल पर समस्त ज्ञान-विज्ञान एकत्र था। सम्पूर्ण छविचित्र बुद्धि का स्वरूप प्रस्तुत करता है। मलयाचल की बाला सारस्वत प्रदेश की रानी थी। श्रद्धा और मनु के मिलन के अनन्तर वह 'मन की दबी हुई उमंग लिये' पड़ी रहती है। पश्चात्ताप और क्षोभ के कारण उसका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है :

वह इड़ा मलिन छवि की रेखा
ज्यो राहु ग्रस्त-सी शशि लेखा
जिस पर विषाद की विष रेखा।

मनु और श्रद्धा के निकट जाते हुए इडा गैरिकवसना सन्ध्या की भाँति थी, जिसके सब कलरव शान्त हो चुके थे। अन्तिम वर्णन मानव का है। बालक के स्वाभाविक चापल्य को सीधी सादी रेखाओ मे व्यक्त किया गया, किसी भाव अंकन का अधिक आग्रह उसमे नही है। दुष्यन्त के भरत की भाँति मानवता का प्रतिरूप मानव था। उसके मुख पर अपरिमित तेज था, और आगे चलकर :

केहरि किशोर से अभिनव
अवयव प्रस्फुटित हुए थे
यौवन गम्भीर हुआ था
जिसमे कुछ भाव नये थे।

'कामायनी' के रूप-वर्णन को विशेषता है कि रूप-गुण को प्रस्तुत करने में भावना और कल्पना का समन्वय है। श्रद्धा का उदात्त तथा इडा का बौद्धिक रूप कथानक के अनुरूप हैं। साधारण नारी-पुरुष चित्रण के स्थान पर व्यक्तियो के व्यापक रूप और व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया गया है। परिवर्तित होनेवाले मनोभावो के अनुकूल रूप चित्र उरेहे गये हैं। आरम्भ की सौन्दर्यमयी श्रद्धा विरह में धूमिल हो जाती है।

लज्जा उसकी छवि को छायामय कर देती है। अन्त में उसका नैसर्गिक रूप आता है। रूप-वर्णन में प्रकृति की गुणसम्पन्न उपमाओं को अभिव्यक्ति का साधन बनाया गया है। छवि-प्रकाशन के साथ आन्तरिक अभिव्यक्ति भी होती जाती है। रूप गुण को भी साथ लेकर चलता है।

प्रकृति का स्वरूप

'कामायनी' की प्रकृति प्रायः एक पृष्ठभूमि का कार्य करती है। वातावरण के अनुसार उसका प्रयोग किया गया है। आरम्भ में जलप्लावन और हिमगिरि का वर्णन है। इसी पीठिका पर मनु को प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति को आधार बनाकर कथा को आरम्भ करने की प्रणाली संस्कृत में प्रचलित है। 'कामायनी' उस परम्परा में योग देती है। प्रसाद प्रकृति और मानव में एक तादात्म्य स्थापित करते हैं, इस कारण उनका प्रकृति-चित्रण संश्लिष्ट योजना से पूर्ण रहता है। स्वतन्त्र रूप से 'कामायनी' प्रकृति का वर्णन अधिक नहीं करती। 'आशा' सर्ग में हिमालय का वर्णन पृष्ठभूमि के रूप में हुआ है। रहस्य और आनन्द सर्ग में प्रकृति का स्वतन्त्र रूप अवश्य निखरा है।

प्रकृति और मानव के क्रियाव्यापारों को 'कामायनी' प्रायः एक साथ लेकर चलती है। पात्रों की स्थिति का विश्लेषण प्रकृति के द्वारा हो जाता है। वह मानव की चिर सहचरी बनकर आती है। 'कामायनी' का कवि प्रकृति प्रेमियों की भांति उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर नैसर्गिक रूप का वर्णन नहीं करता। वह प्रकृति के गुण और मानवीय क्रिया व्यापार में एक समन्वय स्थापित करता है। 'कामायनी' के आरम्भ में ही प्रकृति का चित्र मनु के व्यक्तित्व को साथ लेकर चला है। दूर-दूर तक विस्तृत हिम की स्तब्धता मनु के हृदय की भांति थी। इधर-उधर खड़े हुए दो चार देवदारु वृक्ष तपस्वी की भाँति लम्बे थे। प्रकृति उसकी मर्म वेदना और करुणा विकल कहानी कह रही थी। प्रकृति की जड़ता में चेतनता का ही नहीं, वरन् मानवीयता का आरोप भी प्रसाद ने किया। वर्ड्सवर्थ अपनी प्रकृति से वार्तालाप करता है, किन्तु 'कामायनी' की प्रकृति मानव की सहचरी बनकर उसके प्रश्नों पर उत्तर अपनी मौन भाषा में दे जाती है। 'पुरस्कार' कहानी का प्रसंग : "अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का संकेत किया, उस सुषमा को देखने के लिए; परन्तु कोकिल बोल उठा। जैसे उसने अरुण से प्रश्न किया, 'छि:, कुमारी के सोये हुए सौन्दर्य पर दृष्टिपात करने वाले धृष्ट, तुम कौन' ?" 'कामायनी' में प्रकृति का प्रयोग वातावरण के रूप में भी किया गया है। मन में उठती हुई वासना के अवसर पर प्रकृति मादकता से भर जाती है। विधु किरण मधु बरसाती हुई कांप जाती है। पवन मधुभार से पुलकित हो मंथर गति से चला जा रहा है। प्रकृति उन्हें उद्दीप्त करती है। स्थिति के अनुकूल प्रकृति का प्रयोग 'कामायनी' की विशेषता है। शिशिर की निशा भी अलसाई पड़ी थी। कौमुदी

की मधुमय छटा मनु में मादकता घोल रही थी। प्रकृति के ये वर्णन उद्दीपन के रूप में आते है :

मनु निरखने लगे ज्यो-ज्यों यामिनी का रूप,
वह अनन्त प्रगाढ छाया फैलती अपरूप।
बरसता था मदिर कण-सा स्वच्छ सतत अनन्त
मिलन का सगीत होने लगा था श्रीमन्त।

'कामायनी' की प्रकृति काव्य की सहयोगिनी है। मानव की जिज्ञासा, मनोभावना का आभास उसके द्वारा प्राप्त होता है। मनु की अन्तर्निहित जिज्ञासा की अभिव्यक्ति आस पास बिखरी हुई प्रकृति की विभूति मे हो जाती है। विश्वदेव, सविता, सोम, मरुत किसके शासन से परिचालित है ? इस अनन्त, रमणीय, विराट विश्वदेव के प्रति आदिपुरुष की जिज्ञासा है। हिमालय की पृष्ठभूमि 'कुमारसम्भव' की समकक्षता मे प्रस्तुत की जा सकती है। कालिदास ने भारत के इस मुकुट का विस्तृत वर्णन किया है। देवता के समान पूजनीय भारत के उत्तर में स्थित हिमालय प्रदेश मे अनेक क्रिया-व्यापार चलते रहते है। प्रकृति की सम्पूर्ण शोभा से कालिदास ने उसे विभूषित किया है। 'कामायनी' का आरम्भ और अन्त हिमालय की उपत्यका में होते है। प्रलय शान्त होने के पश्चात् हिमगिरि के उत्तुग शिखर पर यज्ञ आरम्भ करने वाले मनु अन्त मे समस्त मानवता का आनन्द का सन्देश देते है। जीवन की समग्रता, महानता का प्रतीक हिमालय भारतीय काव्य मे युगो से वन्दनीय रहा है। 'कामायनी' इस परम्परा का पालन करती है। कालिदास ने 'कुमारसम्भव' मे हिमालय का मानवीकरण कर मेना से उसका परिचय भी करा दिया है। 'कामायनी' का हिमालय आनन्द की पृष्ठभूमि बनकर आया है। प्रसाद का प्रकृति से उस सीमा तक अनुराग नही जो प्रकृति कवियो में प्राप्त होता है। उन्होंने उसका प्रयोग काव्य कला के उदात्तीकरण मे किया। भावनाओं की वाहक, अभिव्यजक होने के अतिरिक्त अप्रस्तुत अलकार के रूप में उसका प्रयोग किया गया। प्रकृति के प्रतीक, रूपक और उपमा अपनी सजीवता की अभिव्यक्ति करते है। श्रद्धा के सौन्दर्य-निरूपण मे प्रकृति के उपादानो ने सहायता की। व्योम मे घिरते हुए घनश्याम नारी के कुन्तल बनकर आये है। किसलय की अरुणिमा हास का परिचायक है। श्रद्धा की समस्त शोभा प्रकृति के रूपकों में साकार हुई है :

उषा की पहिली लेखा कान्त
    माधुरी से भीगी भर मोद
मदभरी जैसे उठे सलज्ज
    भोर की तारक द्युति की गोद।

'कामायनी' के भावमय स्थल प्रकृति के उपादानो से निर्मित है और यह प्रकृति-वर्णन काव्य-कला मे सहायता प्रदान करता है। प्रकृति स्वतन्त्र रूप मे रस-सचार का प्रयत्न नही करती, मानवीय कार्यकलापो के मिलन से ही इसमे मफल होती है। इसके विभिन्न रूपो का ग्रहण भावो को मासलता प्रदान करने के लिए किया गया है। वस्तु-वर्णन को सरस बनाने का श्रेय प्रकृति के इन उपादानो को है। कही-कही कामायनी की प्रकृति अपने रहस्यमय रूप को भी प्रस्तुत करती है। सम्पूर्ण चित्रो के द्वारा बिम्बग्रहण का कार्य कामायनी में प्रकृति ने किया है। एक सौन्दर्यचित्र है :

हो चकित निकल आयी सहसा
जो अपने प्राची के घर मे
उस नवल चन्द्रिका मे बिछले
जो मानस की लहरो पर मे।

कथा और चरित्र-सृष्टि

'कामायनी' की कथा सरल रेखाओ मे निर्मित हुई है। उसके वस्तु विन्यास मे किसी दीर्घ वश परम्परा विस्तृत घटनाक्रम और पात्रो की बहुलता नही मिलती। 'रघुवश की भाँति उसमे अनेक चरित्रो के चित्रण का प्रयत्न नही है। आदिपुरुष के द्वारा मानवता का विकास उसका उद्देश्य है। कामायनीकार का लक्ष्य वर्णनात्मक न होकर सूक्ष्म विश्लेषण की ओर अधिक था। उसने वस्तु विन्यास का प्रयोग प्रबन्धात्मकता लाने के लिए किया। कथावस्तु को आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम मे विभाजित करने की भारतीय प्रणाली है। अरस्तू कथानक की एकता मे समय, स्थान और कार्य का समन्वय मानता है। दु:खान्त नाटको के लिए उसने जिन सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया उनमे इसका विशेष महत्त्व है। उसकी धारणा है कि कथानक की इस एकता का सम्बन्ध नायक के क्रिया-व्यापारो की एकता से नही स्थापित किया जा सकता। कथानक का वर्गीकरण सरल तथा जटिल दो भागो मे उसने किया। 'कामायनी' का कथानक सरल है, उसमे अधिक जटिलता नही। अरस्तू के अनुसार प्रबन्धकाव्य का कथानक दु:खान्त नाटक से अधिक विस्तृत हो सकता है। प्रबन्धकाव्य मे एक सम्पूर्ण क्रिया-व्यापार का आदि, मध्य, अन्त मे विभाजित होना आवश्यक है। 'कामायनी' के वस्तु-विन्यास मे भारतीय कथावस्तु तथा पाश्चात्य दु:खान्त नाटक का समन्वय जैसा है। कथानक का चरमोत्कर्ष दु:खान्त की स्थिति तक चला जाता है। मनु का श्रद्धा से विलग होना इसकी सूचना देता है। श्रद्धा का उन्हे एक बार पाकर पुनः खो देना, इसकी पुष्टि करता है। किन्तु कामायनी की परिसमाप्ति भारतीय रसनिष्पत्ति के अनुकूल हुई है।

संस्कृत काव्य मे अभिशाप कथा की धारा मे परिवर्तन करते दिखाई देते हैं। यूनानी काव्यो मे परिस्थितियां की योजना किसी अदृश्य शक्ति पर अवलम्बित है। 'कामायनी' का कथानक स्वाभाविक गति से चलता है। ईर्ष्या के कारण मनु का श्रद्धा को त्यागकर चल देना मनोवैज्ञानिक है। 'स्वप्न' सर्ग कवि की कल्पना है। इड़ा का अनायास मनु को मिल जाना कथानक को गति देता है। लघु कथानक मे इने-गिने पात्रो के द्वारा अधिक आरोह-अवरोह की आशा नही की जा सकती। चिन्ता, आशा की सुन्दर पृष्ठभूमि पर 'कामायनी' प्रतिष्ठित है। श्रद्धा का आगमन तथा काम, वासना, लज्जा कथानक को गतिमान करते है। 'कर्म' मे आनेवाली विडम्बना का साधारण आभास प्राप्त हो जाता है। 'ईर्ष्या' मे मनु का भाग जाना उसे स्पष्ट कर देता है। कथानक के इस पट-परिवर्तन के साथ ही वातावरण धूमिल पड़ने लगता है। इड़ा का प्रवेश क्षण-भर के लिए एक आशा-रेखा-सा चमककर विलीन हो जाता है। 'स्वप्न' और 'संघर्ष' मे पुनः विषमता आ जाती है। श्रद्धा का आगमन, एक दीर्घ अवकाश के पश्चात् वातावरण को नवीन आलोक से भर देता है। किन्तु मनु का निर्वेद के कारण पलायन, एक बार कथानक को पुनः विशृंखल कर देता है। श्रद्धा, इड़ा, मनु के साथ होने के कारण परिस्थिति पूर्व की भाँति अधिक गम्भीर नही होती। श्रद्धा का मनु को रहस्य समझाना कथानक मे तटस्थता ले आता है। अन्त मे आनन्द की रसनिष्पत्ति होती है।

'कामायनी' का वस्तु-विन्यास अपनी नाटकीयता लेकर प्रस्तुत हुआ। कथोपकथन और संवादो के द्वारा घटनाक्रम आगे बढ़ता है। सूक्ष्म मनोभावो का निरूपण भी संवाद शैली मे हुआ है। कामायनी मे नाटकीयता का समावेश प्रचुर मात्रा मे है। नाटक और काव्य के समन्वय से प्रसाद ने वस्तु-विन्यास का निर्माण किया। नाटक की भाँति कामायनी मे केन्द्रीकरण का प्रयास ही अधिक है। वस्तु मनु के चारो ओर घूमती सी दिखाई देती है। आरम्भ से अन्त तक वह केन्द्रबिन्दु बना रहता है। कामायनी का वस्तु-विन्यास अधिक विस्तृत न होकर भावमय और केन्द्रित है। मनोवैज्ञानिक रीति से कवि ने इसे स्वाभाविक गति प्रदान की।

चरित्र चित्रण को पाश्चात्य समीक्षकों ने अधिक महत्त्व दिया। पात्रो की विशेषताओं के उद्घाटन द्वारा एक उत्कंठा जाग्रत की जाती है। पात्रो को पृथक् व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है और उनके प्रति सहानुभूति जगायी जाती है। पात्र अपने व्यक्तित्व द्वारा स्वय आकर्षण का केन्द्र बनते हैं। शेक्सपियर के पात्रों मे उनकी विशेषताएँ निकाल देने पर शेष ही क्या रहेगा। हेमलेट का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, शायलाक का लोभ, रोमियो-जूलियट का प्रेम, कैसियस का छल सभी विशिष्ट हैं। चरित्र-चित्रण द्वारा नाटककार ने उनमें प्राण-प्रतिष्ठा की है। पश्चिम मे प्रचलित चरित्र-चित्रण की प्रणाली को व्यापक प्रसार प्राप्त हुआ। होमर की हेलेन का सौन्दर्य प्रसिद्ध है। भारत मे चरित्र-सृष्टि रस-सिद्धान्त के अन्तर्गत आती है। सत्-असत् दोनों

प्रकार के पात्र कथा को गति देने में सहायक होते है। राम का अनुकरण और रावण का निषेध एक ही उद्देश्य तक ले जाते हैं। साहित्य के लक्ष्य को रस अथवा आनन्द मान लेने से भारतीय साहित्यशास्त्रियो ने एक व्यापक क्षेत्र को चुना। साधारणीकरण में पात्रो की व्यक्तिगत विशेषताओ को अधिक स्थान नही प्राप्त हो सकता, वे केवल प्रतिनिधित्व कर सकते है। पश्चिम के व्यक्तिवाद से प्रभावित चरित्र-चित्रण तथा भारतीय रस-सिद्धान्त पर स्वय प्रसाद ने विचार किया। उनके अनुसार चरित्र-चित्रण की प्रधानता का रस से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही प्रतीत होता है। भारतीय-दृष्टिकोण रस के लिए चरित्र और व्यक्ति-वैचित्र्यो को रस का साधन मानता है, साध्य नही। रस मे चमत्कार ले आने के लिए इनको बीच का माध्यम सा ही माना गया।[2]

प्रसाद की दृष्टि 'कामायनी' में रस पर भी रही है, यद्यपि उसका चरित्र चित्रण सफल है। पात्रो की पौराणिकता को विर्नान न करते हुए भी कवि ने उन्हे केवल व्यक्तिगत विशेषताओ से समन्वित करने का प्रयास नही किया। पात्र प्रतिनिधि बनकर आये है और उनमे चिन्तन का एक विशेष रूप निहित है। ये मानवीय इकाइयाँ हैं, जिनमे किसी दर्शन का समाहार हुआ। कवि उनके माध्यम मे किसी लक्ष्य तक जाना चाहता है। उनमे चरित्राकन केवल व्यक्तिगत विशेषताओ के रूप में नही किया गया, वरन् उनमें प्रतीक का काम भी लिया गया। मनु-श्रद्धा यदि एक ओर साधारण पुरुष-स्त्री रूप मे आते है, तो साथ ही वे मन हृदय के भी प्रतिरूप है। समग्र पात्रो में इसी कारण एक सार्वभौम चेतना निहित है जो उन्हे देश काल से ऊपर उठा ले जाती है। वे दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित है। उनकी व्यक्तिगत विशेषताएँ, सार्वजनिकता का आभास देती है। केवल थोडे-से पात्रो द्वारा समग्र जीवन की अभिव्यक्ति के लिए उनकी मानसिक स्थिति का विश्लेषण कवि करता है। 'कामायनी' नाटकीय शैली के द्वारा पात्रों का अन्तर्मन खोलती है। श्रद्धा और लज्जा, मनु तथा काम का मानसिक उद्घाटन चरित्र चित्रण की अपेक्षा लक्ष्य-पूर्ति मे अधिक सहयोग प्रदान करता है। परिस्थिति, वातावरण के अनुसार पात्रो के मन मे उठने वाले भाव केवल उनकी व्यक्तिगत मनःस्थिति का प्रकाशन नही करते, उसमे वृहत्तर मानवता का आभास मिलता है। 'कामायनी' के चरित्र-चित्रण मे इतिहास, दर्शन ओर मनोविज्ञान का अवलम्ब कवि ने ग्रहण किया, तथा चरित्रो को एक व्यापक धरातल पर रखकर उनमे चिन्तन को निहित कर दिया। इस प्रकार चरित्र किसी आदर्श तक जाने मे एक माध्यम का कार्य करते हैं।

मनु

'कामायनी' मे कथा मनु के चारो ओर घूमती दिखाई देती है। वे केन्द्रविन्दु प्रतीत होते है। काव्य का आरम्भ और अन्त उन्ही के द्वारा होता है। मनु की चरित्र-सृष्टि में प्रसाद ने यथार्थ को अधिक ग्रहण किया। मनु एक साधारण मानव है जो जीवन

के संघर्षों को झेलता हुआ अन्त में आनन्द तक पहुँचता है। वह वासना, ईर्ष्या की दुर्बलताओं से ग्रसित है, किन्तु आगे बढ़ने की उसकी आकांक्षा नहीं मरती। काव्य में नायक के चरित्र-चित्रण की चली आती हुई परम्परा में प्रायः आदर्श और महान् का ही ग्रहण अधिक हुआ है। संस्कृत के आचार्यों ने नायक को विशेष महत्त्व दिया है। दंडी का 'काव्यादर्श' नायक को चतुर और उदात्त के रूप में रखता है। विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में नायक के लिए किसी सुर, कुलीन क्षत्रिय का होना अनिवार्य माना, जिसमें धीरोदात्त के गुण हों। इसके लिए उसे अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, स्थिर, अहकारहीन होना चाहिए। एक ही वंश के अनेक कुलीन राजाओं के होने पर अधिक नायक भी हो सकते हैं। नायक को अधिकाधिक महान् रूप में चित्रित करने की प्रणाली का 'कामायनी' मे नहीं स्वीकार किया गया। पश्चिम में नायक को शक्तिशाली स्वरूप देने की परम्परा अधिक समय तक न चल सकी। प्रबन्धकाव्य को सार्वभौमिकता प्रदान करने के साथ ही नायक की रूपरेखा में भी परिवर्तन हुए। होमर के नायक में एक साथ प्रेम और युद्ध की भावना निहित है। दान्ते स्वयं अपने काव्य का नायक बनकर प्रस्तुत होता है। बियेट्रिस और वर्जिल को भी उसमे प्रमुख स्थान मिला। प्रबन्धकाव्यो की भाँति नाटकों के नायकत्व मे भी नवीन दृष्टिकोण से कार्य आरम्भ हुआ। पश्चिम में महान काव्य और महान् नाटक के लक्ष्य में अधिक अन्तर नही रक्खा जाता। सोलहवी शताब्दी मे शेक्सपियर ने हेमलेट, रोमियो आदि कई नायकों की कल्पना की। गेटे ने अपने फाउस्ट को नायक का पद प्रदान किया। अपनी समस्त दुर्बलताओ को लेकर फ़ाउस्ट आगे बढ़ता है। जीवन की स्वाभाविक आकाक्षाओं को नाटककार ने उसमें घनीभूत कर दिया है। शापेनहॉर के 'आदर्श मानव' की अपेक्षा वह 'यथार्थ मानव' है पर उसकी भी महानता है। वह मेफ़िस्टाफेल्स से कहता है : 'मेरा जीवन इसी पृथ्वी से आनन्द का दान लेता है। मेरे शोक पर ही सूरज प्रकाशित होता है।'

'कामायनी' का मनु साहित्य में बढ़ती हुई मानवीय भावना से अनुप्राणित है। इस मानवीयता का ग्रहण योरोपीय साहित्य में प्रचुरता से हुआ। केवल आदर्श और महान् का ही नही, किन्तु यथार्थ का चित्रण करना भी आवश्यक समझा गया। समग्र जीवन पर दृष्टि रखनेवाले कलाकारों ने सुख-दुख, आशा-निराशा, उत्थान-पतन को नायक में समन्वित किया, क्योंकि सभी भावनाएँ जीवन का कठोर सत्य हैं। यथार्थ चित्रण के परिणामस्वरूप स्पेन्सर की फ़्येरी क्वीन और गेटे के फ़ाउस्ट के नायक धार्मिक कवियों की भाँति आदर्शवादी न होकर मानवीय और यथार्थ हैं। हिन्दी में छायावाद ने मानवीयता की इस परम्परा को अपनाया, रूमानी ढंग से ही सही। ऐतिहासिक और धार्मिक नायकों का आदर्शवादी स्वरूप श्रद्धा-विश्वास की दृष्टि से उचित हो सकता है किन्तु उनके साथ संघर्षशील मानव का सम्पूर्ण तादात्म्य कठिन है। राम का आदर्श लोकरक्षककारी रूप भक्त को आह्लादित कर सकता है किन्तु

सामान्य व्यक्ति, जो जीवन की कठोरताओ से युद्ध कर रहा हो, सम्भवतः उसमे अपनी भावनाओ को भी खोज पायेगा। छायावाद ने पृथ्वी और मानव को रूमानी ढग से काव्य मे स्थान दिया जिसमे अच्छी-बुरी भावनाओ का समावेश है। जीवन के सत्य का ग्रहण उसने किया जो बदलते हुए युग के अनुरूप है और जिसमे स्वाभाविक उत्थान-पतन समाविष्ट है।

मानवता का प्रतीक मनु आधुनिक सघर्षशील व्यक्ति का प्रतीक है। अपनी आन्तरिक भावनाओ से लेकर जीवन की भौतिक समस्याओ तक वह युद्ध करता है। कई प्रश्न उसके सम्मुख आते है। एक ओर यदि मन मे काम, वासना और ईर्ष्या के भाव उठते है, तो साथ ही वह जीवन की प्रहेलिका को भी सुलझाने मे प्रयत्नशील है। मानव की सम्पूर्ण जिज्ञासा मे वह रहस्यमय ससार को देखता है। आन्तरिक दुर्बलताओ के बावजूद वह ऊपर उठना चाहता है। मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रित मनु का मानसिक द्वन्द्व जीवन का सत्य है। इस दृष्टि मे मनु अपने प्राचीन कलवर मे भी आधुनिक और नवीन है। उसका चित्राकन पश्चिम की यथार्थवादी परम्परा से प्रभावित है। एक दृष्टि से मनु को काव्य का परम उत्तेजित नायक भी कहा जा सकता है, किन्तु प्रसाद ने मानवीकरण के साथ उसका उदात्तीकरण भी किया है। सस्कृत के प्रबन्धकाव्यो मे वाह्य जगत मे देव-दानव सघर्ष का चित्रण किया जाता था। देवो की विजय और दानवो की पराजय दिखाकर आदर्श की स्थापना काव्य मे की गयी है। सस्कृत का यह वाह्य स्वरूप 'कामायनी' के कवि ने अन्तर्मुख कर दिया है। देव-दानव-सघर्ष स्वय मनु के अन्तःप्रदेश मे चल रहा है। गेटे का फाउस्ट कहता है : "मेरे ही वक्षस्थल मे दो आत्माएँ निवास करती है। एक पलायिनी, किन्तु दूसरी सदा जलती रहती है।"[3] मनु के मन मे एक द्वन्द्व है और अन्त मे श्रद्धा के द्वारा उसका समन्वय आनन्द का सृजन करता है। मानव का प्रतिरूप होने के कारण उसमे एक सामान्य व्यक्ति की प्रवृत्तियाँ है। 'चिन्ता' की निराशा से लेकर आनन्द के अन्तिम उद्देश्य तक पहुँचनेवाले मनु का क्रिया-व्यापार मानव के अनुरूप है। नायक मे अतिरजना और अतीन्द्रियता भरने का व्यर्थ प्रयास नही किया गया। प्रलय को देखकर नायक मनु को निराशा होती है। वे अतीत की स्मृतियो मे उलझते है। धीरे-धीरे जीवन की कामना प्रबल होती है। नारी का प्रवेश काम वासना का उदय करता है। ईर्ष्या, सघर्ष आदि की भावनाएँ भी स्वाभाविक है। अन्त मे वह मानव के चरम लक्ष्य आनन्द को पाता है। मानव मन मे उठनेवाले भावो-विचारो का अकन मनु की चरित्र-सृष्टि द्वारा प्रसाद ने किया है। अपने प्रेमी-रूप मे वह रूपासक्त है। श्रद्धा की रूपराशि पर वह प्रथम बार मे ही लुट जाता है। निराश व्यक्ति को साधारण स्नेह-सम्बल मिलते ही नवजीवन प्राप्त होता है। केवल वासना और तृप्ति तक सीमित रह जाने वाला मनु सुख-शान्ति की खोज मे भागता है। किन्तु वास्तविक शान्ति पलायन मे नही, सघर्ष मे है। इडा के रूप पर आकृष्ट होनेवाला मनु अपनी तृप्ति चाहता है।

पराजय उसे वास्तविकता का बोध कराती है। फिर वह श्रद्धा का अनन्य उपासक बन जाता है। उसे अपनी दुर्बलता का ज्ञान होता है। आत्मबोध और पश्चात्ताप उसे उच्च भाव-भूमि पर ले जाने में सहायक होते हैं। इड़ा से वह कहता है : 'देश बसाया पर उजड़ा है सूना मानस देश यहाँ।'

नियामक रूप में मनु एक क्षण के लिए अपना उत्तरदायित्व भूल जाते हैं। उनकी उच्छृंखलता और भौतिक प्रवृत्ति के फलस्वरूप संघर्ष होता है। पौरुष के मद और अहंकार में वे पराजित होते हैं। उनकी आकांक्षाएँ ऊपर उठने की हैं, किन्तु परिस्थितियाँ मार्ग में व्यवधान बनकर आती हैं। कामायनी का मनु स्वर्ग की कामना नहीं करता, वह पृथ्वी पर ही समरसता और आनन्द प्राप्त करता है। देवत्व की अपूर्णता को जान लेनेवाला व्यक्ति अब उस भोग-विलास की कामना नहीं करता। उसके हृदय में जीवन के प्रति आरम्भ से ही जिज्ञासा की भावना थी। उसका मन चिन्ता से भर गया था। मृत्यु की चिर-निद्रा पर उसे आश्चर्य था। चारों ओर बिखरी हुई प्रकृति की विभूति ने उसे असमंजस में डाल दिया। श्रद्धा से प्रथम मिलन के समय वह अत्यधिक निराश था, क्योंकि अपने प्रश्नों का उत्तर नहीं पा रहा था। 'जीवन' ही उसके सम्मुख सबसे बड़ा प्रश्न था। श्रद्धा से जीवन का सत्य जानकर मनु कर्म में प्रवृत्त हुए पर ईर्ष्या के कारण उन्होंने उसका परित्याग किया। इड़ा से भी उन्होंने 'जीवन का मोल' पूछा था। जीवन की प्रहेलिका को सुलझाने मे मनु प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। अपने इस प्रयास में उन्हें अनेक कष्ट हुए और अन्त में उन्होंने श्रद्धा की सहायता से समरसता का महामन्त्र भावी मानवता को बताया। प्राणों की अतृप्ति मनु को दूर तक ले गयी। जीवन के जिस सत्य को उन्होंने कठिन साधना के पश्चात् प्राप्त किया, उसे मानवता के कल्याण में नियोजित कर दिया। नायक की महानता इसी में निहित है कि अन्त में सम्पूर्ण सारस्वत प्रदेश उनके दर्शनार्थ कैलास घाटी पहुँचता है और आनन्दित हो उठता है। उनका अन्तिम रूप भारतीय ऋषि तथा धीरोदात्त नायक की भाँति है।

मनु की चरित्र-सृष्टि में उनके पौराणिक और ऐतिहासिक स्वरूप का भी ध्यान रक्खा गया। वेद-पुराण के मनु ऋषि, यज्ञकर्त्ता, प्रथम मानव के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वे देवता-तुल्य माने गये हैं। वैदिक परम्परा से आगे निकलकर 'मनुस्मृति' में वे एक सफल नियामक रूप में दिखाई देते हैं और प्रजापति बनकर समाज में शांति-व्यवस्था स्थापित करते हैं। शतपथ ब्राह्मण में मनु का हिंसक तथा उच्छृंखल रूप प्राप्त होता है। किलात-आकुलि की प्रेरणा से उन्होंने वहाँ भी हिंसा की। अपनी पुत्री इड़ा पर वे आकृष्ट हो उठे। 'कामायनी' में मनु के ऐतिहासिक स्वरूप की भी रक्षा हुई है। किंचित कल्पना के अतिरिक्त कवि ने उनके अधिकांश रूप को ग्रहण कर लिया। मनु के मन का विश्लेषण तथा उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का निरूपण प्रसाद की कल्पना है जिससे उनका रूप अधिक मानवीय हो गया। 'कामायनी' के

मनु आदर्श की अपेक्षा स्वाभाविक अधिक हैं। तुलसी ने राम के नायकत्व को 'मर्यादापुरुषोत्तम' की संज्ञा दी किन्तु उन्हें अलौकिक रूप में चित्रित किया। वे पुरुष होकर भी दैवी शक्ति से सम्पन्न हैं। उनके ईश्वरीय गुणों के कारण व्यक्ति श्रद्धानत हो जाता है। कालिदास ने दैवी पात्रों में भी मानवीय भावनाओं का आरोप किया। 'कुमारसम्भव' में शिव-पार्वती का अतीन्द्रिय रूप पूर्णतया समाप्त नहीं हो जाता। 'कामायनी' के मनु का नायकत्व मानवीय है। उनके अन्तरतम की भावना कामना-वासना मानव में उठती हैं। उनका अन्तिम लक्ष्य आनन्द भी अधिकांश का उद्देश्य होता है। प्रसाद ने मनु का उदात्तीकरण किया है। श्रेय-प्रेय, आदर्श-यथार्थ के समन्वय से उनकी चरित्र-सृष्टि हुई। अरस्तू के नायक की भाँति मनु में भी क्रिया-शक्ति है जो उन्हें गतिमान करती रहती है। यह शक्ति कभी-कभी अनुचित कार्य में लग जाती है, किन्तु अन्त में समीकरण उचित दिशा में होता है। बिखरी हुई शक्तियाँ आनन्द में नियोजित हो जाती हैं। मनु के चरित्र-निर्माण में प्रसाद की दृष्टि बहुमुखी थी। शेक्सपियर के रोमियो की भाँति वह केवल प्रेमी अथवा रोमांटिक नायक नहीं है और न वह कालिदास का दुष्यन्त ही है। उसके रूप का अंकन करने में प्रसाद की दृष्टि व्यापक रही है। भारतीय परम्परा में प्रकृतिरूपा नारी पुरुष के पीछे भागती है। किन्तु 'कामायनी' का मनु एक सच्चे मानव की भाँति श्रद्धा के प्रति अपनी सम्पूर्ण कृतज्ञता प्रकट करता है। देवि, मंगलमयि आदि सम्बोधन उसके लिए प्रयुक्त करता है और एक बार उसे पाकर पुनः भयावने अन्धकार में खो नहीं देना चाहता। मनु भावुक, जिज्ञासु, अहेरी, यज्ञकर्ता, प्रणयी, विलासी, ईर्ष्यालु, नियामक, योद्धा आदि अनेक रूपों में आते हैं। पूर्ण मानव का चित्रण उनके द्वारा करना 'कामायनी' का लक्ष्य है। मनु की आरम्भिक कामनाओं से स्वाभाविकता का आभास मिलता है। चारो ओर बिखरी हुई जलराशि देखकर उसका मन चिन्ता और शोक से भर जाता है। अभी अभी वह देवत्व का विनाश देख चुका है, उसकी भी याद आ जाती है। जीवन के प्रति मोह होते ही किसी साथी की इच्छा जाग्रत हो जाती है :

कब तक और अकेले ? कह दो
हे मेरे जीवन बोलो ?

मनु की समस्याओं में आधुनिकता है। कई सामयिक प्रश्नों का समाहार उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया। अपने एकाकी जीवन से लेकर पत्नी, कुटुम्ब, राज्य, सृष्टि तक के रूप मनु के सम्मुख आते हैं। एक नेता की भाँति वे सार्वभौमिकता का संदेश अन्त में समस्त सारस्वत निवासियों को देते हैं। स्वाभाविक दुर्बलताओं के साथ ही प्रसाद ने उनमें पौरुष और शक्ति को सन्निहित किया, जिससे वे आकर्षणकेन्द्र बनते हैं। श्रद्धा ने प्रथम परिचय के समय उन्हें 'तरंगों से फेंकी मणि' कहकर सम्बोधित किया था, जो अपनी प्रभा की धारा से निर्जन का अभिषेक कर रहे थे। वह आजीवन

उन्हे निकट रखने का प्रयत्न करती रही। इडा अपनी बुद्धिवादी प्रवृत्तियो के होते हुए भी मनु पर स्नेह रखती है। आकर्षक व्यक्तित्व के अतिरिक्त मनु की महानता का परिचायक है, उनका पश्चात्ताप। यह पश्चात्ताप उन्हे उत्कर्ष की ओर ले जाने मे सहायक हुआ। मनु के व्यक्तित्व निर्माण मे प्रसाद ने एक व्यापक आधार ग्रहण किया। उसका चित्राकन अनेक रेखाओ मे हुआ है। उसके व्यक्तित्व मे समष्टि, सामान्य का निरूपण किया गया। मनु मानव जीवन की पूर्ण इकाई बनकर 'कामायनी' मे प्रस्तुत हुआ है। शक्ति समन्वित होने के कारण जब वह अपने मत का प्रतिपादन करता है, तब उसके सत्य की अवहेलना करना कठिन हो जाता है। ईर्ष्या का उदय होने पर वह श्रद्धा से कहता है

> देखा क्या तुमने कभी नही
> स्वर्गीय सुखो पर प्रलय नृत्य ?
> फिर नाश और चिर निद्रा है
> तब इतना क्यो विश्वास सत्य ?

उसकी दुर्बलताएँ उसे पतित नही बना देती वरन् इन्ही सीढ़ियो पर चढ़कर वह आगे बढ़ता है। 'कामायनी' का मनु आधुनिक मनुष्य है।

श्रद्धा

श्रद्धा की चरित्र सृष्टि नारी के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप मे की गयी है। पौराणिक एव ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय ग्रन्थो मे उसका भव्य और मगलमय रूप प्राप्त होता है। वह ऋषिका भी है। भावमूलक व्याख्या मे वह सात्विकी वृत्ति के रूप मे आती है। काम की पुत्री होने के कारण वह कामायनी नाम से अभिहित है। उसने मनु को जो अपना परिचय दिया, उससे ज्ञात होता है कि वह गन्धर्व देश की निवासिनी है और ललित कलाओ मे उसकी रुचि है। इसी अवसर पर 'हृदय सत्ता के सुन्दर सत्य' को खोजने का उसका कुतूहल भी प्रकट हो जाता है। कामायनी को प्रसाद ने समस्त आन्तरिक गुणो से विभूषित किया। वह उनकी सर्वोपम नारी कल्पना है। तितली का साहस, देवसेना का त्याग, अलका की शक्ति, मधूलिका का प्रेम, मालवती का सौन्दर्य एक साथ श्रद्धा मे आया है। वह आत्मसमर्पण के समय कहती है :

> दया, माया, ममता लो आज
> मधुरिमा लो, अगाध विश्वास
> हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
> तुम्हारे लिए खुला है पास।

एक साथ इतने मानवीय गुणो से समन्वित नारी आदि से अन्त तक मनु का

पथ-प्रदर्शन करती है। दया और ममता के कारण ही दुःखी मनु को उसने आत्मसमर्पण किया था। इस समर्पण में व्यक्तिगत प्रेम की अपेक्षा लोकमंगल, सार्वभौमिक कल्याण की भावना थी। सृष्टि के विकास की भावना से प्रेरित होकर कामायनी ने मनु का वरण किया। मानवता के प्रतीक मनु की जड़ता और निराशा वह हर लेती है। जीवन के जिस जाग्रत आशावाद और कर्म का सन्देश उसने उन्हें दिया वह गीता के कर्मवाद की भाँति प्रतीत होता है। श्रद्धा अपना सर्वस्व समर्पित कर मनु से कहती है :

और यह क्या तुम सुनते नहीं
    विधाता का मंगल वरदान
शक्तिशाली हो विजयी बनो
    विश्व में गूँज रहा जय गान।

सृष्टि और जीवन का रहस्योद्घाटन करते हुए उसने कहा : "केवल तप ही जीवन का सत्य नहीं, वह तो एक करुण, क्षीण, दीन अवसाद मात्र है। नूतनता में ही आनन्द है। प्रकृति के वैभव से परिपूर्ण समस्त भूखंड भोग के लिए है।"

'कामायनी' की श्रद्धा महान् चेतना तथा शक्ति के रूप में प्रस्तुत हुई है। सम्पूर्ण कथानक को वही गतिमान करती है, तथा समस्त सुख और आनन्द का सृजन उसी के द्वारा हुआ। वह मनु को कर्म में नियोजित करके उनकी हिंसात्मक प्रवृत्तियों को रोकने का प्रयत्न करती है। मानवता के आदि पुरुष को उच्च आदर्श की ओर ले जाना उसका लक्ष्य है। अन्त मे अपनी पवित्र निष्ठा के सहारे वह विजय भी प्राप्त करती है। इस सफलता के मूल में निष्काम कर्म तथा त्याग की भावना निहित है। केवल वैयक्तिक सुख और तृप्ति के लिए नहीं, वरन् दया-करुणा से प्रेरित होकर वह कार्य करती है। वह संसृति की बेलि को विकसित, पल्लवित और पुष्पित करने की कामना रखती है। उसके प्रेम में व्यापकत्व अधिक है। पशु-पक्षी तक को वह किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहती। मनु के मन मे इसी कारण ईर्ष्या का उदय होता है कि कामायनी के प्रेम पर उनका एकाधिपत्य नहीं रहा। श्रद्धा अपने व्यक्तित्व का विकास करती चलती है। अन्त में सारस्वत नगर के निवासी उसके अपने हो जाते हैं। इड़ा से किसी प्रकार की ईर्ष्या उसे नहीं होती। यही नहीं, वह स्वयं अपने पुत्र मानव को उसके संरक्षण में छोड़ जाती है।

श्रद्धा के अभाव में मनु का जीवन केवल शून्य रह जाता है। कर्म-मार्ग में मानवता के विकास के लिए नियोजित कर वह किलात-आकुलि से उन्हें बचाने का प्रयत्न करती है। ईर्ष्यावश जब मनु उसे छोड़कर चले जाते हैं, तब वह निराश नहीं होती। एक बार उन्हें पुनः खोजने का प्रयास करती है। सारस्वत प्रदेश में मुमूर्षु मनु को पाकर उसे आह्लाद होता है। मनु जब पुनः अपने मानसिक झंझावात में उसे छोड़कर चल देते हैं, तब भी वह स्वयं पर विश्वास नहीं खोती। तितली की भाँति

उसे अपने प्रेम में आस्था है। मधुबन के चले जाने पर तितली ने शैला से कहा था, "संसार-भर उनको चोर, हत्यारा और डाकू कहे, किन्तु मैं जानती हूँ कि वे ऐसे नहीं हो सकते। इसलिए मैं कभी उनसे घृणा नहीं कर सकती। मेरे जीवन का एक-एक कोना उनके लिए उस स्नेह के लिए सन्तुष्ट है।" कामायनी भी इड़ा से कहती है:

मैं अपने मनु को खोज चली
सरिता मरु नग या कुंज गली
वह भोला इतना नहीं छली
मिल जायेगा, हूँ प्रेम पली।

श्रद्धा की दृष्टि व्यापक है, वह 'सर्वमंगला' है। मनु के व्यक्तिगत प्रेम मे उसका प्रेम साधारण रोमान्टिक कोटि का हो जाता, किन्तु उसका स्नेह आदर्श रूप में अंकित है। मिलन के क्षणो मे केवल भोग विलास की कामना और वियोग में रीतिकालीन नायिका की-सी दशा उसकी नही होती। वियोग-वेला मे भी वह अपनी पराजय मानने को तैयार नही। उसका चरित्र सर्वत्र एक सन्तुलन मे परिव्याप्त है, जो उसे दुःख में भी क्रन्दन स नही भर देता। व्यावहारिक जगत मे वह एक कुशल गृहिणी के रूप में चित्रित है। आनेवाले भावी शिशु के लिए वह बेतसी लता का झूला डाल देती है। उसने सुन्दर कुटीर का निर्माण किया और तकली कात-कातकर ऊनी पट्टियाँ भी बनायीं। 'गृहलक्ष्मी' के इस गृहविधान पर स्वयं मनु आश्चर्यचकित रह जाते है। भारतीय नारी-जीवन की पूर्णता मातृत्व मे है जब वह गृहलक्ष्मी पद को सार्थक करती है। प्रसाद 'कामायनी' की श्रद्धा को अन्त में इसी उदात्त रूप से समन्वित कर देते हे। भावी मानवता का विकास करनेवाला मानव उसी की स्नेह छाया में विकसित होता है। उसका मातृत्व ही उसकी पूर्णता है। मनु स्वयं कहते है :

तुम देवि ! आह कितनी उदार
यह मातृ मूर्ति है निर्विकार।

अपनी वात्सल्य भावना को श्रद्धा पशु-पक्षी तक प्रसरित कर देती है। एक क्षण के लिए भी उसकी मनोवृत्ति सकुचित नही होती। इड़ा मनु सभी उसके कष्ट का कारण होकर भी स्नेह के पात्र बनते हैं। वह इड़ा के वास्तविक मूल्य को जानकर ही उससे राष्ट्रनीति का संचालन करने के लिए कहती है। राजनीति के क्षेत्र में वह शासक बनकर किसी को भी कष्ट न देने के लिए कह जाती है। सम्पूर्ण मानवता के प्रति उसकी समान ममतामयी दृष्टि बनी रहती है। साधारण कुटुम्ब से लेकर राज्य और समग्र सृष्टि तक उसका प्रसार देखा जा सकता है। इच्छा ज्ञान और क्रिया की रूपरेखा समझकर, अन्त में उनका समन्वय कर कामायनी अपने जीवनदर्शन के सर्वोत्कृष्ट रूप को प्रकट करती है। जीवन के चरम उद्देश्य आनन्द का सृजन वही करती है।

आन्तरिक गुणो से विभूषित होने के साथ ही कामायनी अपने शारीरिक सौन्दर्य मे भी अद्वितीय है। उसकी रूपराशि मनु को इन्द्रजाल की भाँति प्रतीत हुई। उसके स्वरो मे भ्रमरी का मधुर गुजन है। वह नित्य नवयौवना है। उसके मुख पर प्रतीची के अस्तगामी अशुमाली का-सा प्रकाश है। प्रसाद ने कामायनी मे सौन्दर्य को साकार कर दिया है! उसकी इस छवि के प्रथम दर्शन मे ही मनु उपासक बन गया। वासना के अवसर पर इसी 'छविभार' से दबकर वह बरबस समर्पण कर देता है। विश्वरानी, सुन्दर नारी, जगत की मान कामायनी उसे सुकुमारता की रम्य मूर्ति प्रतीत होने लगती है। श्रद्धा का रूप यौवन लज्जा के अवसर पर समस्त मृदुता लेकर प्रस्तुत होता है। भारतीय सौन्दर्याकन मे लज्जा का विशेष महत्त्व है। लज्जा नारी के सौन्दर्य का आभूषण है। श्रद्धा के लज्जागत सौन्दर्याकन मे प्रसाद ने कल्पना का सहारा लिया। प्रथम परिचय के समय उसके अधरो पर हास की एक क्षीण रेखा आकर रह जाती है। वासना मे पलके गिर जाती हैं, नासिका की नोक झुक जाती है, मधुर व्रीडा से उसका मन भर जाता है। लज्जा मे कर्ण-कपोल भी ललित हो उठते है। इस अवसर पर स्वय अपनी मनोदशा का चित्रण करती हुई कामायनी कहती है कि 'मेरा अग प्रत्यग रोमाचित हो उठता है। मेरा मन अनायास ढीला हो जाता है। मेरी आँखो मे स्नेह की बूँदे छलक आती है। मै बरबस किसी के बाहुपाशो मे उलझ जाती हू।' लज्जा सौन्दर्य की रक्षा करती है। इतने के अपार सौन्दर्य मे विभूषित होकर भी कामायनी किसी सघर्ष का कारण नही बन जाती। वह साधारण नारी से किचित् भिन्न रूप मे प्रस्तुत की गयी है। उसके चरित्र चित्रण मे प्रसाद की दृष्टि अधिक उदात्त है। लज्जावती नारी की सुन्दरता लेकर भी वह केवल नायिका बनकर नही रह गयी। कामायनी के शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण करते हुए प्रसाद ने उदात्त उपमाओ का प्रयोग किया, जिससे उसका आन्तरिक वैभव प्रकट हो जाता है। उसका रूप कल्याणकारी है :

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करुण कामना मूर्ति
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यो जड मे स्फूर्ति।

समस्त सौन्दर्याकन आलम्बन रूप मे प्रस्तुत हुआ है, केवल मनु की वासना के अवसर पर ही वह उद्दीपन प्रतीत होता है। कामायनी जीवन की सम्पूर्ण शोभा मे समन्वित है। उसके पास अपार 'सौन्दर्य जलधि' है। इसमे केवल अपना गरल पात्र भरने के कारण ही मनु को अनेक कष्ट हुए। आन्तरिक-वाह्य दोनो दृष्टि मे श्रद्धा अत्यन्त सुन्दर है। दया, क्षमा, शील आदि गुण उसे काव्य के सर्वोत्कृष्ट चरित्र रूप मे प्रस्तुत करते है। मनु अन्तिम समय में श्रद्धा की सहायता से उच्च

भावभूमि पर पहुँचते है। वह समस्त कथानक की व्याख्या-सी करती चलती है और अन्त मे आनन्द की प्रतिष्ठा।

कामायनी की चरित्र-सृष्टि मे प्रसाद ने समरसता और आनन्द की रूपरेखा का ध्यान रक्खा है। वास्तव मे श्रद्धा इसी का उदात्त स्वरूप है। जीवन में वह समन्वय और सन्तुलन की दृष्टि लेकर आगे बढ़ती है। एक ओर यदि वह मनु को कर्म का संदेश देती है, तो साथ ही हिंसात्मक कर्मो से रोकती भी है। कर्म के विषय में उसकी धारणा नितान्त व्यापक है। प्राणिमात्र के सुख के लिए कार्य करना ही श्रेयस्कर है। व्यक्तिगत सुख के लिए अन्य को कष्ट देना उचित नही। वह 'बहुजनहिताय, बहुजन-सुखाय' का सिद्धान्त मानती है :

> औरों को हँसते देखो मनु
> हँसो और सुख पाओ
> अपने सुख को विस्तृत कर लो
> सब को सुखी बनाओ।

जिस त्याग और दया का संदेश वह सभी को देती है, उसी का पालन भी जीवन मे उसने किया। आजीवन वह त्याग करती रही। अपने बलिदान से वह दूसरों का हित करती है। सुख दुख, आशा निराशा, जय-पराजय मे सर्वत्र उसकी सन्तुलित दृष्टि रहती है। समरसता उसका मूल मन्त्र है। आनन्दवाद की अधिष्ठात्री रूप मे वह वेदो की 'श्रद्धानाम ऋषिका' के समीप आ जाती है। मानव के पूरक रूप मे वह आधुनिक नारी की भाति प्रतीत होती है। प्रसाद ने कामायनी का चरित्र उदात्त रूप मे प्रस्तुत किया। मनु के मुख से कवि ने इसकी अभिव्यक्ति करायी है। श्रद्धा 'पूर्ण आत्मविश्वासमयी' है। निर्वेद के अवसर पर मनु कृतज्ञता से भर जाते है। वे श्रद्धा से कहते है : "तुमने अपनी मंगलमयी मधुर स्मिति से ही जीवन मे नवरस का संचार किया। तुम्ही ने मुझे स्नेह सिखाया", और :

> हृदय बन रहा था सीपी सा
> तुम स्वाती की बूंद बनी
> मानस शतदल झूम उठा जब
> तुम उसमें मकरन्द बनी।

जीवन के सूखे पतझर मे श्रद्धा ने हरियाली भर दी। उस भगवती की 'पावन मधुधारा' पर अमृत को भी लोभ हो सकता है। उस रम्य सौन्दर्य से जीवन धुल जाता है। श्रद्धा के संगीत में जग-मगल का स्वर है। वह आशा की आलोक-किरण की भाँति है। वह जलद-सी रिमझिम बरसकर मन की वनस्थली को हरा-भरा कर देती है। मनु ने उसी से हँस हँसकर विश्व का खेल खेलना सीखा। प्रसाद ने मानवता के

प्रतीक को कामायनी के चरणों मे नत कर दिया है। मनु कहता है :

कितना है उपकार तुम्हारा
आश्रित मेरा प्रणय हुआ
कितना आभारी हूँ इतना
सवेदनमय हृदय हुआ।

अपार मधु से भरी श्रद्धा के सम्मुख मनु झुक जाते हैं। काव्य का नायक नायिका के आश्रय मे पलता है। जब कामायनी मनु को दूसरी बार खोजने के लिए चलती है तब भी उसके हृदय मे विश्वास है। इस बार श्रद्धा को पाकर मनु उसे 'निर्विकार', 'मातृमूर्ति' और 'सर्वमगले' से सम्बोधित करते हैं। मनु की भाँति इडा भी उसके महत्त्व को स्वीकार कर लेती है। वह क्षमा-याचना करती है। काव्य मे श्रद्धा का व्यक्तित्व सभी के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। वह दान्ते की 'डिवाइन कॉमेडी' की बियेट्रिस की भाँति अपने नैसर्गिक रूप को लेकर प्रस्तुत हुई। श्रद्धा 'कल्याण-भूमि', 'अमृतधाम' है।

अपनी उदात्तता के आधार पर श्रद्धा 'कामायनी' की प्रमुख नायिका रूप मे आयी है, जो नायक को भी अपनी महानता से दबा-सा देती है। उसके व्यक्तित्व के सम्मुख नायक मनु कुछ धूमिल पड जाते है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रद्धा के अभाव मे नायक अधिक समय नही चल पायेगा। उसके जीवन की सुख शान्ति का मूलाधार ही नायिका बन गयी है। कथानक, नायक सभी पर उसके महान् व्यक्तित्व की छाया है। हिन्दी की साहित्यिक परम्परा मे कामायनी का यह उदात्त, महान चित्राकन एक नवीन प्रयोग है। नायक की सहचरी बनकर आनेवाली नायिका मे श्रद्धा का स्वरूप भिन्न है। वह नायक के उदात्त रूप को स्वय पा गयी है। प्रसाद ने श्रद्धा की चरित्र-सृष्टि मे भारतीय मातृत्व कल्पना तथा बौद्ध दर्शन की करुणामयी नारी से भी प्रेरणा ग्रहण की। कवि ने उसे अत्यधिक सम्मान दिया और काव्य का नामकरण भी उसी के नाम पर किया। हृदय की समस्त उदार वृत्तियाँ उसमे सगृहीत है। व्यक्ति-समाज, अह-इद, जड-चेतन का वह समन्वय करती चलती है। स्वय कामगोत्रजा होने के कारण काम का वास्तविक स्वरूप भी वही प्रस्तुत कर सकती है। काम मानव को जीवन-पथ पर अग्रसर करता है। श्रद्धा काम को केवल एक साधारण कामना बनकर नही रह जाने देती, वह जिजीविषा है। जीवन के व्यापकत्व का भोग और कर्म का व्यापक स्वरूप काम है। प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य मे श्रद्धा सर्वोत्कृष्ट रूप में चित्रित हुई है।

इडा

इडा का चित्राकन बुद्धिवादिनी के रूप मे हुआ है। आरम्भ में जो चित्र 'कामायनी'

में प्रस्तुत किया गया, उससे उसके बुद्धिवादी स्वरूप का आभास मिलता है; तर्कजाल की भाँति बिखरी अलकें, शशिखंड-सा स्पष्ट भाल। प्रथम परिचय में ही वह मनु से कहती है कि बुद्धि की बात न मानकर मनुष्य और किसकी शरण जायेगा। सम्पूर्ण ऐश्वर्य से भरी प्रकृति के रहस्यों को खोलकर उसका उपभोग करना ही श्रेयस्कर है। विज्ञान से जड़ता में चेतनता भरी जा सकती है। उसकी बुद्धिजीवी प्रवृत्तियाँ 'चलने की झोंक' में रहती हैं, उन पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं। वह सुन्दर आलोक किरण की भाँति जिधर भी देखती है, तम से बन्द पथ खुल जाते हैं। मनु के नियमन के पीछे उसकी बुद्धि कार्य करती है। सारस्वत प्रदेश की भौतिक समृद्धि उसके मस्तिष्क की उपज है। चारों ओर ज्ञान-विज्ञान का विकास हो रहा है। धातु गलाकर नये आभूषण और अस्त्र बनाये जाते हैं। नवीन साधनों से नगर सम्पन्न होता जाता है। व्यवसाय की वृद्धि हो रही है। सारस्वत प्रदेश वैज्ञानिक सभ्यता का प्रतीक बन गया है। वह स्वयं स्वीकार करती है : 'प्रकृतिसंग संघर्ष सिखाया तुमको मैंने।'

वास्तव में मनु अपने प्रजापति रूप में इड़ा के अनुगामी हैं और समस्त सचालन वह स्वयं करती है। भौतिकता की अतिशयता, विज्ञान के बाहुल्य से ही संघर्ष होता है। इड़ा का बुद्धिवाद स्वयं अपनी अपूर्णता का परिणाम देख लेता है। इसके पूर्व परिचय के समय उसने मनु के सामने स्वीकार किया था कि 'भौतिक हलचल' से ही मेरा प्रदेश चचल हो उठा था। वह मनु को राष्ट्रनीति समझाती है। उसकी बुद्धि परिस्थिति के अनुकूल कार्य करना जानती है। प्रजा भी 'मेरी रानी' कहकर चीत्कार करती है। वह उस पर किये गये अत्याचार को कदापि सहन नहीं कर सकती। बुद्धिवाद से इडा प्रत्येक कार्य सम्पन्न नही कर पाती। वह भौतिक सुख से तो सारस्वत प्रदेश को भर देती है, किन्तु विद्रोह और संघर्ष को रोक देना उसकी सामर्थ्य के बाहर है। विज्ञान एक सुन्दर सेवक है, किन्तु एक अनाचारी, निरंकुश स्वामी ! बुद्धिवाद की अपूर्णता पर मनु कह उठते है : 'देश बसाया पर उजड़ा है, सूना मानस देश यहाँ।' इड़ा सारस्वत प्रदेश की रानी होकर भी मनु के हृदय पर शासन न कर सकी। वह अपने प्रेम से उन पर विजय न प्राप्त कर पायी, उन्हे केवल अपने नगर का संचालक बना सकी। हृदय की भूख-प्यास को शान्त कर देने की शक्ति उसमें नहीं। उसमें बुद्धि पक्ष का प्राबल्य है। वह आसव ढालती चली जाती है, पर प्यास नहीं बुझती। मनु के जीवन की अतृप्ति अन्त में प्रजा से संघर्ष करती है। इड़ा अपनी सीमाओ को नम्रतापूर्वक श्रद्धा के सम्मुख स्वीकार कर लेती है। उसे अपनी अपूर्णता, अज्ञानता का बोध होता है। संघर्ष के पश्चात् वह ग्लानि तथा पश्चात्ताप से भर जाती है। वह अपनी दुर्बलताएँ मान लेती है। अनुशासन और भय की उपासना पर उसे स्वयं क्षोभ होता है। इड़ा अपनी एकांगी बौद्धिक प्रवृत्तियों के होते हुए भी मानवीय गुणों से सम्पन्न है। निराश और उद्विग्न मनु को उसने आश्रय दिया। जीवन की अतृप्ति लेकर भटकनेवाले प्राणी को नगर का स्वामी बना दिया। अन्तिम समय तक वह

उन्हे समझाती है और प्रजापति के कर्त्तव्य बताती है। मनु के प्रति वह सदय रहती है, कहती है :

आह न समझोगे क्या मेरी अच्छी बातें
तुम उत्तेजित होकर अपना प्राप्य न पाते।

इड़ा स्वयं को 'शुभाकांक्षिणी' कहकर मनु को समझाती है और विश्वास करने की प्रार्थना करती है। भीषण रण के समय वह जन-संहार रोक देने के लिए अनुनय-विनय करती है। बुद्धिजीविनी होते हुए भी वह किसी रौद्र रूप मे 'कामायनी' मे नही प्रस्तुत की गयी। संघर्ष के समाप्त होने पर निर्वेद के कारण इड़ा की मानसिक स्थिति सजल हो उठती है। उसे एक-एक कर सभी बात याद आती है कि कैसे उस दिन एक दुखी परदेशी आया था। वह श्रद्धा मानव को देखकर द्रवीभूत हो उठती है। स्नेह और ममत्व से वह श्रद्धा को रोककर उसका दुःख पूछती है। उसे ढाढ़स देती है कि जीवन की लम्बी यात्रा म खोये भी मिल जाते है। जीवन मे कभी न कभी मिलन अवश्य होता है और दुःख की राते भी कट जाती है। श्रद्धा-मनु के मिलन अवसर पर वह सकोच ग्लानि से गड जाती है। मनु के पुन. भाग जाने पर तो वह मलिन छवि की रेखा-सी लगती है, जैसे शशि को राहु ने ग्रस्त कर लिया हो। विषाद मे भरकर वह अपनी पराजय श्रद्धा के सम्मुख स्वीकार करती है। जनपद कल्याणी और सारस्वत प्रदेश की रानी होकर भी वह अपूर्ण है। अवनति का कारण बताते हुए वह कहती है :

मेरे सुविभाजन हुए विषम
टूटते नित्य बन रहे नियम
नाना केन्द्रों मे जलधर सम
घिर हटे, बरसे ये उपलोपम।

वह बारम्बार क्षमा-याचना करती है, क्योंकि उसने सुहाग छीनने की भूल की। वह अपनी अकिचनता लेकर नतमस्तक हो जाती है। इड़ा अपनी बौद्धिकता मे भी 'कामायनी' का उच्छृंखल पात्र नही है। सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में वह निपुण है। राजनीतिक नियामक के रूप मे वह प्रजापति मनु से अधिक सफल हुई। सम्पूर्ण सारस्वत प्रदेश की जनता उसे 'रानी' कहकर पुकारती है, उसे स्नेह करती है और उस पर अत्याचार देखकर विद्रोह कर उठती है। भौतिक उत्कर्ष के साथ ही वह मनु से 'राष्ट्र की काया में प्राण सदृश' रमने के लिए कहती है ताकि समस्त प्रजा स्नेह-छाया में विश्राम कर सके। वह यह भी बता देती है कि नियामक यदि स्वयं नियम न मानेगा तो विनाश हो जाएगा। विवादी स्वरों से समस्त सुख-शान्ति विलीन हो जाती है। राजनीति के क्षेत्र मे इड़ा की सफलता को देखकर श्रद्धा अपने मानव

को उसकी छाया में छोड जाती है। 'तर्कमयी' इड़ा के पास राष्ट्र का भावी नियामक राज्यनीति की शिक्षा प्राप्त करता है। वास्तव में श्रद्धा इड़ा का वास्तविक मूल्याकन करती है। उस 'तर्कमयी के शुचि दुलार' पर विश्वास है, जो उसके पुत्र का समस्त व्यथा-भार हर लेगा। अन्तिम रूप में इडा सारस्वत प्रदेश के निवासियों का नेतृत्व करती दिखायी देती है। गैरिक-वसना सध्या सी नीरव, कोलाहलविहीन इड़ा 'पथ-प्रदर्शिका' बनकर सभी की जिज्ञासा शान्त करती चलती है। वह कहती है कि 'जगती की ज्वाला से विकल एक मनस्वी किसी दिन आया। उसकी अर्द्धांगिनी उसे खोजती हुई आयी और उसी की करुणा ने जगती के ताप को शान्त कर दिया। अब वे दोनों मनु-श्रद्धा समृति की सेवा करते है। वहाँ मन की प्यास बुझ जाती है।' इस प्रकार अपने अन्तिम स्वरूप मे इडा की बुद्धि में श्रद्धा का भी आशिक समावेश हो जाता है। वह जीवन की सुख शान्ति के लिए मनु-श्रद्धा के पथ का अनुसरण करती है। वह व्यर्थ रिक्त जीवन-घट को पीयूष सलिल से भर लेना चाहती है। श्रद्धा-मनु के निकट पहुँचकर वह स्वय को धन्य समझती है। उन दोनो को देखकर मन-ही मन अपने नेत्रो को, सौभाग्य को सराहती है। दिव्य तपोवन मे वह अपना समस्त 'अघ' छुटा लेना चाहती है। इस प्रकार इडा का अन्तिम रूप विनम्र हो गया है। वास्तव मे बुद्धि का अवलम्ब ग्रहण करती हुई भी वह अमानवीय, अर्मानुष तथा निर्मम नही है। बुद्धि रूप मे वह एक शक्ति है जिसका उचित प्रयोग मनु न कर सके। नारी के रूप मे वह करुण, विनम्र तथा क्षमामयी है। वेदो तथा ब्राह्मणग्रन्थों मे वर्णित उसके स्वरूप से चरित्राकन का सामीप्य हो जाता है जिसे प्रसाद ने आधुनिक रूप दिया।

मानव

'कामायनी' का अन्तिम चरित्र मानव है। उसके चारित्रिक विकास का पूर्ण अवसर काव्य मे नही मिला। केवल भावी मानवता के प्रतिनिधि के रूप मे वह आया है। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के भरत सा वह भी एक उत्तराधिकारी है। कालिदास भावी चक्रवर्ती के बल पौरुष का उद्घाटन सिंह क्रीडा से करते है। इस अवसर पर कवि की राष्ट्रीय भावना भी जाग्रत है। प्रसाद ने 'मानव' के चित्राकन मे 'शाकुन्तल' का सहारा लिया है। भारत का भावी शासक सिंह के मुख मे बारम्बार हाथ डालकर उसके दॉत गिनता है।[1] मनु मानवता के जन्मदाता है और मानव उत्तराधिकारी रूप मे ससार का नियमन, सचालन करेगा। आरम्भ मे वह एक चचल शिशु के रूप मे प्रस्तुत होता है। उसकी रुखी अलके, रजधूसर बॉहे हैं। वह माँ कहकर श्रद्धा से लिपट जाता है। श्रद्धा उसे 'पिता का प्रतिनिधि' कहकर पुकारती है। वह चंचल वनचर मृग की भाँति चौकड़ी भरता फिरता है। सरल बाल-स्वभाव के अनुसार कहता है कि माँ मैं रूठूँ और तू मनाये। पिता को पाकर वह अपनी बुद्धि के अनुसार उन्हे जल पिलाने के लिए कहता है, क्योंकि वे प्यासे होगे। मनु उसे अपने जीवन का 'उच्च अंश

कल्याणकला' मानते है। बढ़ता हुआ बालक प्रतिभा-सम्पन्न है। सध्या समय वह माँ से कहता है कि 'इस निर्जन मे क्या सौन्दर्य है ? साँझ हो गयी, अब घर चल।' श्रद्धा की उदासी उसे अच्छी नही लगती। वह कहता है–माँ, मै तेरे पास हूँ, फिर भी तू दुखी क्यो है ? माँ की वेदना से उसे दुख होता है; भोला बालक अपनी जिज्ञासा की शान्ति चाहता है। माँ के विदा लेने पर वह आदर्श पुत्र की भाँति कहता है :

तेरी आज्ञा का कर पालन
वह स्नेह सदा करता लालन
मै मरूँ जिऊँ पर छुटे न प्रण
वरदान बने मेरा जीवन।

मानव के चरित्र निरूपण के दो-चार स्थल ही उसके व्यक्तित्व का परिचय देते है। बालक की चपलता, सारल्य के साथ उसमे आज्ञाकारिता और ममत्व की भावना है। वह मर-जीकर भी अपनी माँ की आज्ञा का पालन करने की बाते करता है। 'आनन्द' तक पहुँचते-पहुंचते मानव यौवन को प्राप्त कर लेता है। इस अवसर पर उसका पौरुष मनु की भाँति प्रतीत होता है। उसके मुख पर 'अपरिमित तेज' था। कवि ने उसके भावी उत्कर्ष की ओर सकेत किया है।

'कामायनी' मे थोडे से पात्रो के द्वारा कथावस्तु का विस्तार किया गया है। चरित्र-चित्रण के लिए उनमे वैयक्तिक विशेषताओं को रखकर रसनिष्पत्ति मे विशेष सहायता नही ली गयी। पात्र अपनी व्यक्तिगत भावनाओ का परित्याग कर अन्त मे एक केन्द्रबिन्दु पर पहुँचते है। यह समीकरण, सामरस्य ही आनन्द का सृजन करता है। कोई चरित्र अन्त मे प्रधानता पाकर सम्पूर्ण कथानक का समाहार नही करता। सभी चरित्र एक स्थल पर एकत्र होकर आनन्द लाभ करते है। बुद्धिजीवनी इडा भी अपने कोरे बुद्धिवाद का परित्याग कर देती है। श्रद्धा इच्छा, ज्ञान, कर्म के समन्वय के पश्चात् मनु को सूत्रधार बना देती है। स्वय मनु अपनी व्यक्तिगत सुख दुख की भावनाओ का परित्याग कर देते है। उनका मानसिक झझावात समाप्त हो जाता है। समस्त सारस्वत प्रदेश के नगर-निवासी उन्हे 'आत्मवत्' प्रतीत होने लगते है। इस प्रकार कवि ने 'कामायनी' का चरित्र-चित्रण जीवन मे आनन्द तक पहुँचने के लिए किया है। अन्तिम रूप मे सभी चरित्रो का कुछ-न-कुछ सहयोग इसमे अवश्य है। यदि श्रद्धा का स्थान सर्वोपरि है, तो इडा की भी पूर्णतया अवहेलना नही की जा सकती। वह भावी नियामक को राष्ट्रनीति की शिक्षा देकर अन्त मे सारस्वत नगर-निवासियो की पथप्रदर्शिका बनकर मानसरोवर पहुँचती है। वह सामूहिक आनन्द का साधन बनती है। उत्थान-पतन से भरा मनु अन्त मे एक आदर्श रूप मे प्रस्तुत होता है। वह सार्वभौमिकता, विश्वबन्धुत्व का सन्देश देता है।

'कामायनी' के चरित्र अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण हैं तथा जीवन के आनन्द

में सहायक हैं। 'कामायनी' के चरित्र-चित्रण की प्रणाली कवि की अपनी है। प्राचीन ग्रन्थों में प्रायः सम्पूर्ण चरित्रों का विभाजन दो वर्गों में कर दिया जाता है। असुर वर्ग देवताओं को अत्यधिक कष्ट देता है। अन्त में देवताओं की विजय होती है। देवत्व की इस विजय तथा दानवत्व के पराभव से आनन्द, आदर्श, सत्य की प्रतिष्ठा हो जाती है। रामायण, महाभारत में देवासुर-संग्राम के मूल में यही भावना निहित है। मिल्टन के 'पैराडाइज़ लॉस्ट' में भी यही प्रवृत्ति मिलती है। 'कामायनी' में देव-दानव संघर्ष अन्तर्मुखी हो गया है। वह मनु के मन में निरन्तर चलता रहता है। उसमें समन्वय स्थापित होने पर आनन्द का सृजन होता है। वाह्य रूप में जब मनु और सारस्वत प्रदेश की प्रजा में संघर्ष होता है तब अवश्य ही वह प्राचीन देवासुर संग्राम का एक आभास देता है, क्योंकि उसका नेतृत्व पुराण-प्रसिद्ध किलात-आकुलि असुर कर रहे थे। प्रसाद ने 'कामायनी' के चरित्रांकन में एक समन्वय दृष्टि रक्खी है। आदर्श-यथार्थ के मिलन द्वारा वे जीवनानन्द को ले आते हैं। वर्णन के स्थान पर उन्होंने व्यंजना का ग्रहण किया। पात्रों की विशेपताओं का बखान अधिक नहीं होता। कार्य स्वयं उद्‌घाटन करते चले जाते हैं। अनेक स्थलों पर कवि ने केवल संकेत से काम लिया है। नीचे गिरकर भी मनु की सदा ऊँचे उठने की भावना उनकी महानता की परिचायक है। इड़ा का पश्चात्ताप, क्षमा याचना में उसका शील निहित है। चरित्रों के मार्मिक अंश का ग्रहण अधिक किया गया है। 'कामायनी' का चरित्र-चित्रण नवीन परम्परा पर निर्मित है। प्राचीन सामग्री का पालन करते हुए भी वह जीवंत और आधुनिक है। इसमें कवि की अपनी नियोजना है।

रस की स्थिति

काव्य का लक्ष्य आनन्द है। भारतीय विचारकों ने इसमें 'ब्रह्मानन्द सहोदर' की कल्पना की। रस काव्य की आत्मा है और रसनिष्पत्ति उसका मूल्यांकन करती है। 'रसायन' की भूमिका के अनुसार, "रस अलौकिक चमत्कारकारी उस आनन्द विशेष का बोधक है जिसकी अनुभूति सहृदय के हृदय को द्रुत, मन को तन्मय, हृदय व्यापारों को एकतान, नेत्रों को जलाप्लुत, शरीर को पुलकित और वचन रचना को गद्गद रखने की क्षमता रखती है। यही आनन्द काव्य का उपादेय है और इसी की जागृति वाङ्मय के अन्य प्रकारों से विलक्षण काव्य नामक पदार्थ की प्राणप्रतिष्ठा करती है।"[5] रस अथवा काव्यगत आनन्द का साधारणीकरण तथा सामाजीकरण होता है। रसनिष्पत्ति के लिए विभाव, अनुभाव, स्थायी भाव, संचारी भाव आदि अंगों का पुष्ट होना अनिवार्य है। विभाव के अन्तर्गत आलम्बन, आश्रय, उद्दीपन, अनुभाव आदि का समावेश होता है। भाव पक्ष स्थायी, संचारी को लेकर चलता है। भारतीय रसदृष्टि काव्यगत उपादानों को साथ लेकर चलती है। प्रसाद ने काव्य के रस और दर्शन के आनन्द को एक-दूसरे के समीप प्रस्तुत किया। काव्य को 'आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति' तथा

'श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा' कहकर वे भारतीय दर्शन और साहित्य का समन्वय रस में मानते हैं। यह साहित्यिक रस दार्शनिक आनन्दवाद से अनुप्राणित है। काव्य का अखंड व्यापार रस, आनन्द दोनों का सृजन करता है। पाश्चात्य विचारधारा की भावना और सौन्दर्य भारतीय अनुभूति से अधिक भिन्न नहीं, दोनो ही मत अन्त में आनन्द की स्थिति में पहुँचते हैं। सत्य, शिव, सुन्दर के समन्वय को ही सर्वोत्तम साहित्य स्वीकार करनेवाले रवीन्द्र की धारणा है कि "सत्य के आनन्द और अमृत रूप को देखकर उसी आनन्द को अभिव्यक्त करना ही काव्य साहित्य का लक्ष्य है। जब सत्य को एकमात्र आँखों से देखते हैं, वृत्ति द्वारा प्राप्त करते हैं, तब हम उसे साहित्य में अभिव्यक्त नहीं कर सकते, परन्तु जब हम उसे हृदय के द्वारा प्राप्त कर लेते हैं तभी हम उसे साहित्य में अभिव्यक्त कर सकते है।"[6] रस विधान एवं आनन्द सृजन महान् काव्य के निर्णायक हैं। जीवनमूल्यों के आधार पर निर्मित काव्य जब अपने व्यापकत्व में प्रस्तुत होता है तब उसे महान् काव्य की संज्ञा दी जाती है। सच्ची अनुभूति, उसका व्यापक प्रसार, सशक्त अभिव्यंजना, स्वस्थ जीवन-दर्शन, कलात्मक अभिव्यक्ति श्रेष्ठ काव्य के उपादान है। मानवीय भावनाओं से उसका आरम्भ होता है और अन्त में मानव की परितृप्ति, विकास ही उसका लक्ष्य रहता है।

'कामायनी' का रस-संचार, आनन्द-सृजन केवल विभाव-अनुभाव के साधारण समन्वय पर आधारित नहीं है। लक्षणग्रन्थों के आधार पर उसका निर्माण नहीं हुआ। जीवन के व्यापक धरातल को लेकर समस्याओं का समाहार करते हुए 'कामायनी' कलात्मक रूप में सम्मुख आती है। उसका भाव निरूपण, वस्तुवर्णन, चरित्र चित्रण रस-निष्पत्ति में सहायक हुआ है। इसी के अन्तर्गत रसो का विधान स्वाभाविक रीति से प्रस्तुत हो सका। केवल गणना के लिए ही रस कामायनी में नही प्रयुक्त हुए, वे सहज रीति से आते गये। आरम्भ के 'चिन्ता' सर्ग मे करुणा का स्वर दिखाई देता है। देव-सृष्टि के विनाश की याद करते हुए मनु शोकाकुल एकाकी बैठे है। वैभव का अन्त हो गया, केवल जलराशि फैली हुई है। मनु का शोक, दुःख, कष्ट, करुणा का संचार कर देने के लिए पर्याप्त हैं। मनु भविष्य की चिन्ता से उद्विग्न हो उठता है। स्थायी भाव शोक, विस्मृति, निराशा आदि संचारियों को लेकर करुणा का सृजन करता है। करुणा के काव्य का आरम्भ वाल्मीकि के 'मा निषाद' के समीप प्रस्तुत किया जा सकता है। आरम्भ की यह करुणा पर्याप्त समय तक कथानक के साथ चलती दिखाई देती है। श्रद्धा का परित्याग कर, इडा को पाने के पूर्व तक मनु का हृदय एक विचित्र ग्लानि और पश्चात्ताप से भरा रहता है। उनकी इस दशा पर इड़ा को दया आती है। वियोग की अवस्था में श्रद्धा करुणा की मूर्ति बन जाती है। करुणा का अन्त आनन्द के आरम्भ के साथ होता है। भवभूति के इस प्रमुख रस की क्षीण रेखा कामायनी में अन्तःसलिला-सी बनकर आई है।

शृंगार के अन्तर्गत प्रेम, रति, सौन्दर्य आदि भाव आते हैं। श्रद्धा के प्रवेश के

गाथ सयोग शृंगार का आरम्भ होता है। वह मनु के जीवन में तरलता सरसता ला देती है। नित्य-यौवना कामायनी पुरुष के जीवन में मधुमास भरती है और काम के प्रवेश के साथ शृंगार की भावना प्रबल होती है। कोकिल, कलिका, प्रसून, सुरभि उद्दीपन बनकर आते है। मनु-श्रद्धा का मिलन सभोग शृगार की सीमा तक जाता है। प्रकृति का मादक रूप उद्दीपन का कार्य करता है ! रागरंजित चन्द्रिका, शिशिर की रजनी, झुरमुट की छाया आदि। काँपती-सी विधु-किरण मधु बरसाती है। पवन मधु भार से पुलकित मथर गति से जा रहा है। मनु के प्राण अधीर हो उठते हैं। मधुर मिलन के साथ पुलक, स्पर्श, लज्जा आदि अनुभाव प्रस्तुत हुए है। 'कर्म' सर्ग मे भी शृंगार की रेखाएँ दिखाई देती हैं, किन्तु स्वयं नायिका की करुणा के कारण उसका पूर्ण आवेग नही आने पाता। यही स्थिति मनु-इडा मिलन के अवसर पर होती है। लज्जा का भाव-निरूपण शृगार रस का सकेत करता है। सयोग के साथ विप्रलम्भ शृगार भी कामायनी मे प्रस्तुत हुआ है। श्रद्धा के मन मे एक तीव्र उन्माद और मन को मथनेवाली पीडा थी। मनु के भाग जाने के साथ वियोग का आरम्भ होता है। मनु केवल एक क्षण के लिए पश्चात्ताप करके रह जाते है, किन्तु श्रद्धा के लिए वियोग की घड़ियाँ दु:सह हो उठती हैं। विरहिणी के जीवन मे एक घड़ी भी विश्राम नही। 'कामायनी' मे श्रद्धा के रूप को सन्ध्या की उदासी के वातावरण में प्रस्तुत किया गया :

> कामायनी-कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरन्द रहा
> एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमे है रंग कहाँ !
> वह प्रभात का हीनकला शशि, किरन कहाँ चाँदनी रही
> वह सन्ध्या थी, रवि शशि तारा ये सब कोई नही जहाँ।

वियोग के क्षणों में कामायनी विजन की मौन वेदना, जगती की अस्पष्ट उपेक्षा, साकार कसक, विरह नदी बनकर रह जाती है। प्रकृति का धूमिल, उदास वातावरण वियोग का साथ देता है। स्वप्न मे आनेवाले भाव स्मृति, अवसाद, अभिलाषा वियोग को और भी बढा देते हैं। इसी अवसर पर बालक मानव की किलकारी मनु की याद दिला देती है। मनु को पाकर जब कामायनी उन्हें पुनः खो देती है, तब वियोग की साधारण-सी रेखाएँ उठकर रह जाती हैं। वियोग-वर्णन में प्रसाद ने सचारी भावो के द्वारा अभिव्यक्ति की, उद्दीपन का अवलम्ब अधिक नहीं लिया। केवल विप्रलम्भ के लिए रीतिकालीन बारहमासा अथवा षड्ऋतु वर्णन को नहीं अपनाया गया। कालिदास के कुमारसम्भव में अपनी व्यथा खोलती हुई पार्वती कुछ-कुछ श्रद्धा की भाँति प्रतीत होती हैं। पार्वती कहती हैं : "जल का प्रवाह बन्धन तोडकर कमलिनी को वहीं पर छोड़कर निकल जाता है। तुम भी, प्राणों को तुम्हें ही समर्पित कर देनेवाली, मुझ अभागिनी से सम्बन्ध तोडकर न जाने कहाँ अनायास ही रुष्ट होकर चल दिये।"

'कामायनी' मे अन्य रस अगी रस को सहयोग प्रदान करते है। निर्वेद भाव से शान्त रस की उत्पत्ति होती है। प्राचीन सस्कृत काव्य मे अन्तिम रूपरेखा निर्वेद भाव से अनुप्राणित प्रतीत होती है। नाटको के उल्लासपूर्ण आनन्द और उसके शान्त रस मे अधिक अन्तर नही रह जाता। वाल्मीकि के राम अन्त मे सरयू मे विलीन हो जाते है। महाभारत मे भी पाण्डव हिमालय मे खो जाते है। कालिदास के रघुवश के अन्त मे भी राजा सुदर्शन वृद्धावस्था मे अपने तेजस्वी पुत्र अग्निवर्ण को राजा बनाकर स्वय नैमिषारण्य मे निवास करने लगते हैं। सुशिक्षित जनता के लिए रचे जानेवाले श्रव्य काव्यो के अन्त मे जीवन की दार्शनिक परिणति के रूप मे शान्त रस की व्यवस्था प्राप्त होती है। सामान्य व्यक्तियो के आनन्द का नाटक सुखान्त को लेकर चला। चतुर्वर्ग प्राप्ति की दृष्टि से भी अन्तिम रूप मोक्ष है। 'कामायनी' के मनु मे निर्वेद की भावना श्रद्धा के आ जाने पर जाग्रत होती है, किन्तु वह केवल एक भाव बनकर रह जाती है; यदि रस-दशा को प्राप्त होती तो मनु का पलायन सम्भव न था, कथानक की गति न बढती। निर्वेद का परिपाक दर्शन, रहस्य आदि मे आरम्भ हो जाता है। अन्त मे आनन्द की स्थिति मे वह घनीभूत होता है। कैलास पर्वत की नीरवता मे शान्ति का सृजन होता है तथा सम्पूर्ण सारस्वत नगर-निवासी तृप्ति का अनुभव करते हैं। 'कामायनी' के शान्त रस और आनन्द का एक सुन्दर समन्वय काव्य के अन्त मे प्रस्तुत हुआ, जहाँ दोनो मे अधिक अन्तर नही रह जाता। काव्य और नाटक दोनो के उद्देश्य एक साथ मिल जाते है। देव-दानव सघर्ष के रूपक का अनुसरण न होने के कारण 'कामायनी' मे वीर, भयानक, रौद्र, वीभत्स आदि रसो का अधिक समावेश न हो सका। 'स्वप्न' तथा 'सघर्ष' मे प्रखर भावो का अकन हुआ है। कथानक को गतिमान करने तथा परिणाम-निरूपण का उद्देश्य इसमे निहित है। 'चिन्ता' के प्रलय-वर्णन मे भयानकता का आभास मिलता है। ऑधियॉ, बिजलियॉ तथा दूर-दूर तक प्रसरित जलराशि इस ओर सकेत करती है। 'कर्म' के हिसात्मक कार्यो मे वीभत्सता है और स्वय श्रद्धा को इससे जुगुप्सा होती है। दारुण दृश्य, रुधिर के छींटे भयानकता भरते है। रौद्र रूप मे स्वय रुद्र ताण्डव नृत्य कर उठते है, समस्त सृष्टि कॉप जाती है। रणक्षेत्र मे भी प्रखर भाव दृष्टिगोचर होते हैं। सर्वत्र भयानकता-ही-भयानकता छायी रहती है। युद्ध के अवसर पर मनु की वीरता का भी साधारण आभास प्राप्त होता है। अद्भुत रस कुतूहल और जिज्ञासा के भावो मे ही निहित रह गया। इच्छा, ज्ञान, कर्म का रहस्यमय लोक अद्भुत रस का आभास-सा देता है। हास्य को 'कामायनी' की गम्भीर मर्यादा सम्भवतः स्थान न दे सकी। वात्सल्य बालक मानव के स्वाभाविक अकन मे प्राप्त हो जाता है। उसकी किलकारी इसका आभास देती है। मनु-श्रद्धा दोनो का ममत्व, वात्सल्य उस पर रीझते है। इस प्रकार 'कामायनी' मे अन्य रस करुण, शृगार के सहायक रूप मे प्रतीत होते है। प्रसाद ने प्राणवान आलम्बन, सजीव चित्रण, उचित विस्तार के द्वारा रसो का

सामाजीकरण भी किया। वे साधारणीकरण की स्थिति तक जाकर, सामूहिक रसोद्रेग में सहायक होते हैं।

रस के साथ अलंकार काव्य में सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं। छायावादी काव्य के प्रसंग में अलंकारों की चर्चा प्रायः नहीं होती। 'कामायनी' का कवि आनन्दवादी है और वह रस को काव्य का प्राण स्वीकार करता है। 'कामायनी' में सहज रीति से अलंकारों का समावेश हुआ है। अप्रस्तुत योजना के अन्तर्गत सुन्दर उपमान प्राप्त होते हैं। भाव-निरूपण के लिए सजीव उपमान, प्रतीक और रूपक का ग्रहण किया गया। इस प्रकार भाव स्वयं मूर्तिमान हो सके। उपमा अलंकार में मूर्त-अमूर्त सभी के उदाहरण प्राप्त होते हैं। श्रद्धा का रूप-वर्णन सूक्ष्म अमूर्त उपमानों से सम्पन्न है :

रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आधार

'कामायनी' के अलंकार रस के सहयोगी बनकर आये हैं और रस-निष्पत्ति में सहायक होते हैं, उनका समावेश काव्य के वाह्य सम्वर्द्धन के लिए नहीं किया गया। अलंकार से विभिन्न प्रकार के प्रयोजन भी सिद्ध होते हैं। शाब्दिक चमत्कार बुद्धि को और भावगत चमत्कार हृदय को प्रभावित करते हैं। प्रसाद में अनुभूति की अधिकता के कारण भावगत अलंकारों की प्रधानता है। 'कामायनी' में अर्थालंकारों का अभाव नहीं है और साम्य से वैषम्य पक्ष का अधिक प्रयोग हुआ है। उपमा-उत्प्रेक्षा का बाहुल्य दिखाई देता है। उपमाओं में कवि की मौलिक उद्भावनाओं को देखा जा सकता है। लज्जा वर्णन में नवीन उपमाएँ मिलती हैं। 'इड़ा' सर्ग के मनोरम सांग-रूपकों में नयी उत्प्रेक्षाएँ हैं :

यह उजड़ा सूना नगर प्रान्त
जिसमें सुख-दुख की परिभाषा विध्वस्त शिल्प-सी हो नितान्त
निज विकृत वक्र रेखाओं से, प्राणी का भाग्य बना अशान्त।

उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक के द्वारा 'कामायनी' में सुन्दर चित्रों की योजना की गयी। सौन्दर्य-वर्णन के अतिरिक्त वस्तु-निरूपण में भी कवि ने इनका अवलम्ब ग्रहण किया। चिन्ता आदि भावों का अंकन प्रसाद की नवीन योजना द्वारा ही सम्भव हो सका। नूतन कल्पना की ओर प्रवृत्ति होने के कारण असम्भावित चित्र अधिक आ गये हैं, किन्तु इसी प्रयास में कवि स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाता दिखाई देता है। 'कामायनी' के आलंकारिक चित्रों में कालिदास की-सी आभिजात्य भावना है। प्रसाद दृश्यों में भी हृदय तत्व की खोज कर लेते हैं और इनके अलंकार परिश्रमसाध्य न होकर, सहज हैं। शाब्दिक अलंकार 'कामायनी' में अपेक्षाकृत कम मिलते हैं।

कहीं-कहीं नाद-सौन्दर्य में अनुप्रासों को खोजा जा सकता है पर वह बलात्कृत नादोत्पत्ति नही है, उसका स्वरूप स्वाभाविक है। तुलसी के 'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि' की भाँति ही 'कामायनी' में अनुप्रास आया है :

कंकण क्वणित रणित नूपुर थे
हिलते थे छाती पर हार।

इसी प्रकार 'है भीड़ लग रही दर्शन की' के दर्शन शब्द मे श्लेष भी मिल जाता है। शब्द-सौन्दर्य की अपेक्षा भाव-प्रकाशन और अर्थ-अभिव्यंजना की ओर उन्मुख रहने के कारण कामायनी में अलंकार रस के सहायक होकर आये हैं। कहीं-कहीं इसी कारण दो अलंकारों का मिश्रण भी हो गया। 'नीरव निशीथ में लतिका-सी तुम कौन आ रही हो बढ़ती' मे रूपक और उत्प्रेक्षा का अद्भुत मिश्रण है। कामायनी में शास्त्रीय अलंकारो को ठूँस-ठूँसकर रखने का प्रयत्न नहीं किया गया। अलंकार भाव, अनुभूति और रस के सहकारी होकर आ गये है। कामायनी के प्रिय अलकार उत्प्रेक्षा और रूपक हैं जिनके द्वारा काव्य में मार्मिकता आई है।

भाषा-शिल्प

'कामायनी' की भाषा उसे काव्य के सर्वोत्कृष्ट विन्दु तक ले जाती है। भावना उसी माध्यम से व्यक्त होती है। कामायनी में भावों के अनुसार भाषा का स्वरूप प्राप्त होता है। शृंगार और करुणा से भरा काव्य प्रांजल, सरस भाषा को लेकर चला है। प्रसाद का शब्द-चयन उनके प्रौढ़ शिल्प का परिचायक है। भाव का अकन करने के लिए वे अनुकूल शब्दों को चुनते है। भावों के वहन, उनकी अभिव्यजना में भाषा सफल होती है। 'चिन्ता' के शोक की अभिव्यक्ति अन्धकार, कालिमा, उल्का, भीषण रव, गर्जन आदि से हो जाती है। भयानक परिस्थिति के चित्र खुरदुरे शब्दां द्वारा कवि ने प्रस्तुत किये है। संघर्ष, कर्म आदि के अवसर पर प्रखर शब्दों का आधिक उपयोग हुआ। तुमुल रणनाद, ज्वाला, तीक्ष्ण जनसंहार, उत्पात आदि अनेक शब्द स्थिति की भीषणता का आभास देते हैं। काम, लज्जा के सरस वर्णन में 'कामायनी' की भाषा प्रसादवान दिखाई देती है। काम, लज्जा का सूक्ष्म अंकन कवि के भाषा-कौशल के कारण सरस रूप में प्रस्तुत हुआ। वासना का आभास सांकेतिक शब्दों द्वारा किया गया। भाषा, भाव 'कामायनी' में एक-दूसरे के पूरक बनकर आये हैं। भाषा भावों का आवरण नहीं बन जाती और न वह उनके पीछे ही रह जाती है। अपने सहज माधुर्य-प्रसाद गुण से भरकर वह भावों को ले चलती है। 'कामायनी' की शब्दशक्ति में लक्षणा, व्यंजना का ग्रहण अधिक है। भारतीय साहित्यशास्त्र में ध्वनि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आनन्दवर्द्धनाचार्य ने शब्द-अर्थ का समन्वय प्रस्तुत करते हुए ध्वनि की प्रतिष्ठा की। स्वयं प्रसाद ध्वनि के अन्तर्गत रस और अलंकार का

अन्तर्भाव स्वीकार करते हैं।[7] 'कामायनी' में अलंकार, वस्तु, भाव, रस आदि ध्वनियों के उदाहरण सहज प्राप्त हो जाते हैं।

अलंकार ध्वनि :

इस ग्रह कक्षा की हलचल री तरल गरल की लघु लहरी
जरा अमर जीवन की और न कुछ सुननेवाली बहरी।

वस्तु ध्वनि :

आँसू से भींगे अंचल पर मन का सब कुछ रखना होगा
तुमको अपनी स्मित रेखा से यह सन्धि-पत्र लिखना होगा।

रस ध्वनि :

अब न कपोलों पर छाया-सी पडती मुख की सुरभित भाप
भुज मूलों से शिथिल वसन की व्यस्त न होती है अब माप।

भाषा की व्यंजना-शक्ति तथा ध्वन्यात्मकता के साथ उसमें चित्रमयता तथा मूर्तिमयता का भी समावेश अनिवार्य है। विद्वान कविता और चित्र-कला में भी साम्य मानते हैं। साधारण शब्दों द्वारा जिन भावों को प्रस्तुत करना सम्भव नहीं, उन्हें चित्र से प्रकट किया जाता है। सफल कवि सुन्दर शब्द-शिल्पी भी होता है और शब्दों के द्वारा चित्र बना लेता है; किसी भाव अथवा वस्तु को मूर्तिमान करता है। भावों की साकारता भाषा की चित्रमयता पर निर्भर है। 'कामायनी' में बिम्बों-चित्रों की प्रधानता है; समस्त मनोवृत्तियों को साकार रूप मे चित्रित किया गया है। चिन्ता, काम सभी सजीव, मूर्तिमान हो उठे हैं। जड़ता में चेतनता का आरोप कर कवि ने उनका मानवीकरण भी कर लिया। सम्पूर्ण चित्र भाव को केन्द्रित रूप में प्रस्तुत करता है। कामायनी की मनोवृत्तियाँ भाव-चित्र बनकर आयी है। भाषा की सजीव चित्रमयता उन्हें प्रतिष्ठित करने में सफल हुई। लज्जा का सूक्ष्म भाव इसी कारण चित्रित हो सका :

कोमल किसलय के अंचल मे
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती-सी।
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद निखरता ज्यों
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों।

वैसे ही माया में लिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए
माधव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए।

काम का भी मानवीकरण कर प्रसाद ने सजीव रूप खींचा है। वास्तव में प्रसाद की भाषा की चित्रमयता अत्यन्त शक्तिसम्पन्न है। मनोवांछित चित्र वे अपनी तूलिका से प्रस्तुत कर सकते हैं। हिन्दी का यह शब्द-शिल्पी इस दृष्टि से विश्व के विशिष्ट कवियों के समकक्ष है। भाव के साथ वस्तु और रूप के भी सजीव चित्र कामायनी में मिल जाते हैं। समस्त भाव-वर्णन वस्तु-रूप मे रेखांकित हो उठता है। पात्रों के सौन्दर्यांकन में भी बिम्ब-चित्र-शैली का सहारा लिया गया। 'कामायनी' जीवन के विविध सुन्दर बिम्बों से सज्जित है, जो उसका काव्य-वैभव है। कालिदास यदि उपमा में सर्वोपरि हैं, तो प्रसाद बिम्ब-विधान, प्रतीक योजना और चित्रांकन मे। 'कामायनी' की भाषा में लयात्मकता है और उसमें गीत तत्व की प्रधानता है। भाषा का माधुर्य संगीत, लय तत्व से मिलकर और भी बढ़ जाता है।

सरस-मधुर शब्दो से संगीतमयता लाने के साथ ही प्रसाद ने छन्दक्रम से भी सहायता ली। शृगार, रूपमाला, सार आदि पिंगलशास्त्र के छन्दो का प्रयोग करने के अतिरिक्त कवि ने सोलह तथा चौदह मात्राओं के विराम से बननेवाला तीस मात्रा का ताटंक छन्द भी लिया है। 'चिन्ता', 'आशा', 'स्वप्न', 'निर्वेद' आदि मे इसका प्रयोग हुआ। श्रद्धा के प्रत्येक चरण मे सोलह मात्रा का शृंगार छन्द है। क्रम मे ऽ। के स्थान पर।ऽ भी मिल जाता है। 'काम', 'लज्जा' सर्ग का छन्द सोलह मात्राओ का पदापादकुलक है जिसके अन्त मे ऽ है। वासना मे प्रसिद्ध छन्द रूपमाला अथवा मदन है। चौदह और दस के विराम से चौवीस मात्राएँ तथा अन्त में ऽ। का समावेश इसमे होता है। 'कर्म' मे सार छन्द है। 'संघर्ष' में ग्यारह-तेरह के विराम की चौबीस मात्राओ का रोला प्रयुक्त हुआ। 'इड़ा' में गीतों का समावेश है। 'रहस्य', 'ईर्ष्या' और 'दर्शन' के छन्द में मौलिक प्रयोग हैं; दो छन्दों को समन्वित कर दिया गया। 'आनन्द' में 'आँसू' का ही प्रिय छन्द आया है। प्रत्येक सर्ग मे एक ही छन्द प्रायः प्राप्त होता है, किन्तु भाव-प्रवाह के लिए कवि ने उसमें परिवर्तन भी किये। 'निर्वेद' में श्रद्धा का गीत अन्य से भिन्न है। भाषा की दृष्टि से कामायनी गीतात्मकता, लाक्षणिकता, चित्रमयता, माधुर्य से सम्पन्न है जो काव्य की सौन्दर्य-वृद्धि में सहायक होते हैं। संस्कृत शब्दों के होते हुए भी भाषा अपने माधुर्य को बनाये रखती है।

प्रतीकों-बिम्बों के सहारे भाव-प्रकाशन की प्रणाली किसी दार्शनिक प्रतिपादन में भी अपनायी जाती है। कवि किसी दर्शन अथवा सिद्धान्त को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करता है। धार्मिक तथा उपदेशक कवि इन्हीं के द्वारा सत्य का निरूपण करते हैं। कबीर ने आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध की व्याख्या बहुरिया-दुलहा तथा अन्य

प्रतीकों द्वारा प्रस्तुत की। प्रतीक की भाँति बिम्ब, रूपक, समास, अन्योक्ति आदि की शैली भी काव्य के रूप पर एक प्रकार का आवरण डाल देते हैं। डिक्सन अन्योक्ति को महाकाव्य के अनुरूप नहीं मानता।[8] काव्य-वैभव अपने नैसर्गिक स्वरूप में प्रस्तुत नहीं हो पाता। भावों पर आरोपित बौद्धिकता उसके रस-संचार को मन्थर कर देती है। कविता का सुन्दर रूप स्वाभाविक शैली में ही देखने को मिलता है। रिचर्ड्स के अनुसार महान् कवि अपने काव्य को सहज और स्वाभाविक शैली के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।[9] कालिदास के रघुवंश की महान् कल्पना, मेघदूत की घनीभूत भावना काव्य को उच्चतम भावभूमि पर ले जाती है। कामायनी महान् काव्य की भाँति भावभूमि की प्रसाद शैली से निर्मित है। काव्य अपनी सरसता को लेकर प्रवाहित होता है; दर्शन-चिन्तन अन्तःसलिला की भाँति उसी के साथ चलते हैं। 'कामायनी' का शिल्प किसी परम्परागत पद्धति का अनुसरण नहीं करता। प्रसाद ने अपनी उदात्त कल्पना, प्रांजल अभिव्यक्ति से उसकी योजना का निर्वाह किया। काव्य में गीतिमयता का ग्रहण 'कामायनी' में अधिक मिलता है। गीत और लय तत्व का उसमें समावेश है। माधुर्य, प्रसाद गुण-सम्पन्न भाषा भावों की अभिव्यक्ति करती है। उसमें नाटकीय शैली का भी पर्याप्त अवलम्ब ग्रहण किया गया। मनु-श्रद्धा के मन में उठनेवाली भावनाएँ और विचार मूर्तिमान होकर संवाद रूप में प्रस्तुत हुए। इसके अतिरिक्त पात्रों के पारस्परिक कथोपकथन कथानक को गति देते हैं। श्रव्यकाव्य होकर भी 'कामायनी' की नाटकीयता उसके सौन्दर्य-संवर्द्धन में सहायक हुई। महान् कलाकारों की-सी स्वच्छन्दता कामायनी में दिखाई देती है। कवि की कल्पना, कारयित्री प्रतिभा अपनी सहज स्वतन्त्र गति से चलती है। कथा-वस्तु से लेकर भावाभिव्यक्ति तक प्रसाद की 'कामायनी' अपने इस काव्याधिकार का प्रयोग करती है। उसमें कवि के व्यक्तित्व की छाया है। मनु का स्वाभाविक रूप, श्रद्धा की उदात्त कल्पना, काम, कर्म आदि की व्यावहारिक परिभाषा कवि की स्वतन्त्र सर्जनात्मक कल्पना का परिणाम है। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में सुन्दर उपमानों का बाहुल्य दिखाई देता है। भाव, भाषा, शैली में 'कामायनी' एक मौलिकता से अनुप्राणित है। उसकी काव्यात्मक शैली में छायावाद की अधिकांश प्रवृत्तियों को कवि ने एक महान् कलाकार की भाँति संगृहीत कर दिया। उसे छायावाद की प्रतिनिधि कृति कहा जा सकता है।

महाकाव्य/महान् काव्य

महाकाव्य विशेष काव्य-रूप तथा शैली का बोधक है। पश्चिम में महाकाव्य का स्वरूप सर्वप्रथम संकलनात्मक प्रणाली पर आरम्भ हुआ। परम्परा से बिखरी हुई सामग्री का उपयोग रचनाकार महाकाव्य में कर लेता था। यूनान में होमर के इलियड और ऑडिसी महाकाव्यों में राष्ट्रीय जीवन को एक सूत्र में बाँधा गया। दो जातियों और संस्कृतियों के संघर्ष को उसमें प्रधानता मिली। वीरगाथा युग से दोनों महाकाव्य अनुप्राणित हैं।

ट्राजन युद्ध की परम्परागत कथा का प्रयोग होमर ने किया। इलियड से ऑडिसी में परिवर्तन दिखाई देते हैं। प्रथम दुखान्त नाटक के अधिक समीप है, तो द्वितीय वर्णनात्मक उपन्यास की भाँति है। इलियड, ऑडिसी के रूप में महाकाव्य का प्राचीनतम वैभव सुरक्षित है। आगे आनेवाली महाकाव्य-परम्परा को उसने प्रभावित किया। यूनान की भाँति लैटिन में भी महाकाव्य राष्ट्रीय गीत के रूप में स्वीकृत हुआ। वर्जिल का महाकाव्य 'इनीड' सुन्दर महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया। दान्ते अपनी 'डिवाइन कामेडी' में इसी को अपना गुरु स्वीकार करता है। कामेडी की विशद-योजना, वर्णन-विदग्धता सराहनीय है। यमपुरी, वैतरणी और स्वर्ग के अन्तर्गत वस्तुओं का वर्णन तथा कार्य-परिणाम दिखाया गया। मनुष्यात्मा की स्वर्ग-यात्रा उसका उद्देश्य है। सभ्यता के विकास के साथ महाकाव्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता गया। होमर के संकलनात्मक तथा जातीय महाकाव्यों के स्थान पर वर्जिल का 'इनीड' आगे आनेवाले कवियों का आदर्श बना। अंग्रेजी में 'ब्यूबुल्फ' वीर-युग से प्रभावित महाकाव्य प्राप्त होता है। जर्मनी में 'नेवुलनगेनलीड', स्कैन्डीनेविया में 'वाल्संगा सागा', स्पेन में 'सिड' आदि महाकाव्य वीरयुग से प्रभावित हैं।

यूरोप के इतिहास में सभ्यता के केन्द्रों में परिवर्तन देखा जाता है। यूनान-रोम से होती हुई संस्कृति बर्तानिया पहुँची। वहाँ के केल्ट्स ने रोमन-सभ्यता लगभग अंगीकार कर ली। कुछ समय तक आयरलैंड में एक ही कथावस्तु को लेकर अनेक कहानियाँ चलती रहीं। अंग्रेजी में 'ब्यूबुल्फ' की वीरता के स्थान पर एक परिवर्तित धार्मिक दृष्टिकोण कैडमन की रचनाओं में प्राप्त हुआ और 'जैनेसिस', 'डेनियल' आदि रचनाओं में धार्मिक प्रवृत्तियाँ कार्य करती हैं। देवदूतों का पतन भी उसमें वर्णित हुआ। जर्मनों के प्रवेश के साथ ही ब्रिटेन पर फ्रांस का भी प्रभाव पडा। रोमांस की प्रवृत्तियों का समावेश काव्य में होने लगा। वर्णनात्मक प्रणाली का स्थान भाव-प्रदर्शन को प्राप्त हुआ। नारी-प्रेमकाव्य नवीन विषय के रूप मे गृहीत होने लगा। धर्म, वीरता के साथ नारी को भी स्थान मिला।[10] सम्राट् आर्थर के व्यक्तित्व ने कवियों को अनुप्राणित किया। फ्रांस की रचनाएँ अंग्रेजी मे अनूदित होकर आयीं। सभ्यता के विकास के साथ साहित्य की सीमाएँ व्यापक होती गयीं। यूनानी-लैटिन प्राचीन महाकाव्यों के अनुवाद प्रकाशित हुए। विद्वानों को होमर की 'ऑडिसी' में भी रोमांस की प्रवृत्तियाँ दिखाई दीं। यूनानी महाकाव्य के वैभव ने कवियों को नवीन प्रेरणा दी। 'इनीड' और 'डिवाइन कामेडी' का अलौकिक तत्व रहस्यमय उद्भावनाओं में भी सहायक हुआ।

अंग्रेजी की महाकाव्य-परम्परा एक ओर होमर, वर्जिल, दान्ते तथा रोमांस से प्रभावित हुई, तो साथ ही उसने नवीन जीवन-दर्शन को भी स्थान दिया। चौदहवीं शताब्दी में कवि-पिता चासर ने साहित्य में नवीन उपकरणों के साथ प्रवेश किया।

'कैन्टरबरी टेल्स' महाकाव्य की नवीन प्रवृत्तियों का परिचायक है। मध्ययुगीन वातावरण और परिस्थिति का अंकन करते हुए कवि ने उसमें कलात्मक सौष्ठव को प्रतिष्ठित किया। चरित्रों मे उसने युग की नयी चेतना निहित की। भाषा की दृष्टि से उसने अंग्रेजी को सम्पन्न बनाया। यूनान, इटली और फ्रांस के प्रभावों के होते हुए भी चासर ने अंग्रेजी काव्य को प्रथम बार मौलिकता से सम्पन्न किया और उसका 'कैन्टरबरी टेल्स' स्वतन्त्र पद्धति पर निर्मित हुआ। इसके पश्चात् स्पेन्सर सोलहवी शताब्दी के प्रमुख कवियों मे आता है। उसकी अपूर्ण कृति 'फ्येरी क्वीन' महाकाव्य की रूपरेखा के अधिक समीप है। इतालवी कवि ऐरिआस्टो, टैसो से भी उसने प्रेरणा ली। रोमाण्टिक काव्य के रूप में 'फ्येरी क्वीन' कला की अपेक्षा भाव-विचार का प्रतिपादन अधिक करती है। कवि उसके द्वारा एक उदात्त भावना का प्रसार चाहता था। स्पेन्सर ने 'भूमिका' मे ही अपने लक्ष्य का सकेत किया है। उसकी संश्लिष्ट योजना मे पात्र ऐतिहासिक तथा आध्यात्मिक अर्थ से समन्वित हैं। सम्पूर्ण रूपक-विधान के मूल मे विचार-प्रकाशन की भावना है।[11]

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य मे मिल्टन का 'पैराडाइज़ लॉस्ट' महाकाव्य का एक उदात्त स्वरूप सम्मुख प्रस्तुत करता है। यूनान की प्राचीन परम्परा से यह महाकाव्य किसी सीमा तक प्रभावित है। वर्जिल की 'अलौकिक शक्ति' को मिल्टन ने भी ग्रहण किया। उसके प्रमुख पुरुष-नारी पात्र शक्ति तथा सौन्दर्य मे अंकित हुए। आदम-ईव मे उसने मानवीय भावनाओ को चित्रित करने का प्रयत्न किया। एक 'सर्वशक्तिमान' उन दोनों का पथ-प्रदर्शन करता है। शैतान बीच मे व्यवधान प्रस्तुत करता है। 'पैराडाइज लॉस्ट' क्लासिक परम्परा की अन्तिम कृतियों में है। इसके पूर्व शेक्सपियर ने अपने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा मानवतावाद से सम्पूर्ण साहित्य को प्रभावित किया था। महाकाव्य की परम्परा पर उसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा। जर्मनी मे गेटे के 'फ़ाउस्ट' ने नाटक के द्वारा एक नवीन आदर्श प्रस्तुत किया। 'पैराडाइज़ लॉस्ट' के पश्चात् महाकाव्यों का एक अधिक स्वतन्त्र, भावात्मक स्वरूप अंग्रेजी साहित्य मे आया। उसमे वर्णन की अपेक्षा भाव-प्रकाशन का अधिक आग्रह था। व्यापकत्व की अपेक्षा घनीभूत विचारणा पर जोर दिया गया। महाकाव्य की रूपरेखा के समीप होने वाली इन प्रबन्ध-कविताओ मे जीवन के तत्व अधिक मात्रा में आते गये। कीट्स की 'एन्डिमियन', शेली की 'प्रोमेथियस अनबाउड', कॉलरिज़ की 'द ऐनशिएन्ट मैरिनर' आदि कविताएँ महाकाव्य के समीप आकर प्रस्तुत हुई।

पश्चिम में काव्यशास्त्र के प्रमुख विचारक अरस्तू ने दुखान्त नाटक तथा महाकाव्य में एक साम्य स्थापित किया। उसने होमर को अपना आदर्श बनाया। उसके अनुसार महाकाव्य में क्रिया-व्यापार की एकता आवश्यक है। उसमे आदि, मध्य और अन्त की अपेक्षा है। महाकाव्य की महानता के विषय में अरस्तू का विचार है कि कवि को स्वयं अधिक न बोलना चाहिए। उसमें अलौकिक तत्व का समावेश भी

सम्भावित रूप में किया जाय। किसी महान् सत्य का उद्घाटन महाकाव्य का विषय हो सकता है। अपने काव्यशास्त्र के अन्त में दुखान्त नाटक और महाकाव्य का समन्वय करते हुए उसने दोनों को काव्य का सर्वोत्कृष्ट रूप निर्धारित किया। दोनों अनुकरण पर आश्रित हैं। दुखान्त नाटक का क्षेत्र जनसामान्य के मनोरंजन की दृष्टि से अधिक विस्तीर्ण है। महाकाव्य का आनन्द केवल सुशिक्षित वर्ग ही उठा सकता है। यदि महाकाव्य अधिक परिष्कृत सृष्टि है, तो दुखान्त नाटक में महाकाव्य के तत्व विद्यमान रहते हैं। अरस्तू महाकाव्य को महान्, उदात्त, व्यापक व्यापार मानता है जिसमें गाम्भीर्य, वर्णनात्मकता, सरस सजीव शैली, एक छन्द, सम्पूर्ण कार्य, आदि, मध्य, अन्त, गौरवान्वित चरित्र, सम्भाव्य कथा तथा जीवन की व्यापक अभिव्यंजना हो। अरस्तू के पश्चात् लांजाइनस रमणीयता के निकट आकर रह गया। लैटिन में सिसरो ने अलंकार पर ध्यान दिया। होरेस ने कार्य को महत्त्व प्रदान किया। स्वयं कवि दान्ते अभिव्यक्ति का समर्थक था। आगे आनेवाले काव्यशास्त्र-विचारकों ने महाकाव्य पर विशेष दृष्टिपात नहीं किया। क्रोचे, हीगेल, कॉलरिज़, स्पेन्सर, शेली, टॉलस्टाय आदि काव्य के आन्तरिक स्वरूप पर अधिक विचार करते रहे।

आधुनिक युग में अंग्रेजी के प्रसिद्ध विचारक एबरक्राम्बी ने महाकाव्य की विवेचना प्रस्तुत की। उसके अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु बिखरी हुई होती है जिसका प्रत्येक अंश सुन्दर होता है। महाकाव्य इनका संग्रह कुशलता से करता है। होमर की ट्राय-घटनाएँ इसका प्रमाण हैं। महाकाव्य युग की सामाजिक स्थिति की अवहेलना नहीं कर सकता। 'महाकाव्य के रचयिता के लिए शक्तिशाली किन्तु सन्तुलित, नियन्त्रित कल्पना, रचना-शक्ति, वस्तुओ के महत्त्व की अन्तर्दृष्टि का होना अपेक्षित है। शब्दों पर उसका अधिकार होना चाहिए। एबरक्राम्बी की धारणा है कि प्रत्येक युग में महाकाव्य की धारा लगभग समान ही रही, यद्यपि उसमे विकास होता गया। जीवन के सार्वभौमिक चिरन्तन सत्य का ग्रहण महाकाव्य की प्रमुख विशेषता है। महाकाव्य का रचयिता किसी भी विषय को लेकर उसमें जीवन की समस्याओं को प्रतिपादित कर लेता है। उसने महान् नाटक तथा महाकाव्य के उद्देश्य मं अधिक अन्तर नहीं माना। दोनों जीवन के विस्तृत रगमंच पर अपना निर्माण करते है। नाटक की घनीभूत भावना तथा महाकाव्य का व्यापकत्व एक ही लक्ष्य तक जाते हैं। साहित्यिक और प्रामाणिक दो विभाजन भी उसने किये। संसार के महान् महाकाव्य अपने समय की चेतना से सम्बद्ध हाते हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति, समस्या का विश्लेषण उनमें रहता है।[12] एबरक्राम्बी के मत से विषय की वास्तविकता, कथा की एकता, अनुभूति का केन्द्रीकरण, व्यापक दृष्टि, उदात्त चरित्र, परिष्कृत शैली, सार्वभौमिक उद्देश्य महाकाव्य के प्रधान गुण होते हैं। डब्ल्यू. एम. डिक्सन ने महाकाव्यों का स्वरूप सर्वत्र प्रायः एक समान माना। मानवीय भावनाओं की एकरूपता के कारण संसार के विशिष्ट महाकाव्य वर्णनात्मक, प्रौढ़ होते हैं। उनमें महान् कार्य, उदात्त चरित्र,

सुन्दर शैली होती है।[13] पश्चिम में महाकाव्य के रचयिता और महाकवि को एक-दूसरे के समीप प्रस्तुत किया गया। माना गया कि सच्चा महाकाव्य महान् काव्य का परिचायक होता है।

वेदों को भारतीय ज्ञान के उत्स रूप में स्वीकार किया जाता है। महाकाव्य का आभास भी वेद-पुराण आदि के वर्णनात्मक, संवादपूर्ण, सरस आख्यानों में प्राप्त होता है। विशेषतया पुराणों में सृष्टि का विनाश-निर्माण, मनु का कथानक आदि महाकाव्य की रूपरेखा के अधिक समीप हैं। महाकाव्य का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप 'रामायण' और 'महाभारत' में प्रस्तुत हुआ। आदिकवि वाल्मीकि की करुणधारा का समापन निर्वेद-शान्ति में होता है। देवासुर संग्राम के रूप में राम-रावण का युद्ध प्रस्तुत किया गया। जीवन में दैवी-आसुरी वृत्तियों का यह द्वन्द्व निरन्तर चलता रहता है। कवि अन्त में दैवी प्रवृत्तियों की विजय घोषित करता है। अन्ततः सत्य, करुणा, धर्म, न्याय जीत जाते हैं; रामराज्य की स्थापना होती है और इहलोक में अपना कर्त्तव्य कर राम परलोक को प्रस्थान करते हैं। सात सर्गों की कथा लगभग चौबीस हजार श्लोकों में सुसम्बद्ध रूप में प्रस्तुत हुई। रामायण एक ऋषि के जीवन-मन्थन की अभिव्यक्ति है। इसी के पश्चात् 'महाभारत' अधिक व्यावहारिक रूप का प्रतिपादन करता है। भौतिक समस्याएँ प्रबल हो उठती हैं; भाई-भाई संघर्ष करते हैं। कथा का रूप ऐतिहासिक अधिक हो गया। आरम्भ में ही पात्रो का परिचय प्राप्त हो जाता है। अठारह पर्व अनेक अध्यायों में विभाजित हैं। अपने विशाल आकार में महाभारत ने सम्पूर्ण इतिहास को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया। वर्णनात्मक शैली के साथ 'स्वर्गारोहण पर्व' के द्वारा महाकाव्य की समाप्ति मुक्ति-स्थापना के अनुरूप हुई है।

लौकिक सस्कृत में अश्वघोष का बुद्धचरित आता है। कालिदास में महाकाव्य का कलात्मक विकास अपनी सर्वोत्कृष्टता को पहुँच गया। पूर्व कवियों का-सा जीवन के प्रति केवल दार्शनिक अथवा धार्मिक दृष्टिकोण उनमें न था। शृंगार-प्रेम से भरा काव्य सौन्दर्योन्मुख है और जीवन के आदर्श की अपेक्षा सौन्दर्यवादी कालिदास आनन्द का अधिक निरूपण करते हैं। 'रघुवंश' की कथायोजना; 'मेघदूत' की आन्तरिक अभिव्यंजना, 'कुमारसम्भव' के देवत्व का मानवीय प्रतिपादन सम्पूर्ण कला-कौशल में प्रस्तुत हुए हैं। यदि वाल्मीकि में काव्य के आदर्श का चरमोत्कर्ष था, तो महाभारत में कथायोजना का, तथा कालिदास में कला का। देश का परिवर्तित नागरिक जीवन, कला के इसी रूप को अंगीकार कर रहा था। भारवि का 'किरातार्जुनीय', माघ का 'शिशुपाल वध', श्रीहर्ष का 'नैषधीयचरित' आदि अनेक काव्य लौकिक संस्कृत की नवीन रूपरेखा के समीप हैं। कालिदास की परम्परा ने आगे आनेवाले कवियों को प्रभावित किया। श्रीकृष्णमाचार्य ने अनेक महाकाव्यों की सूची प्रस्तुत की है। क्रमशः देश में धार्मिक पुनरुत्थान के साथ महाकाव्यों का निर्माण चरित्र-प्रतिपादन के लिए

होने लगा। जैन कवियों ने इसमें प्रमुख योग दिया। इसी के समानान्तर ऐतिहासिक महाकाव्यों की धारा चलती रही। इस प्रकार आदिमहाकाव्य के अनन्तर ही महाकाव्य की रूपरेखा में पर्याप्त परिवर्तन होते रहे। देवासुरसंग्राम, अलौकिकता, वर्णनात्मकता, विशाल कलेवर के स्थान पर चरित्र-निरूपण, कलात्मक सौष्ठव, सौन्दर्याभिव्यंजना को प्रमुखता मिली।

संस्कृत काव्यशास्त्र में महाकाव्य प्रबन्ध-श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। पर्याप्त काल तक संस्कृत में नाटक की दृष्टि से अधिक विचार किया गया। भामह ने काव्य के पाँच भेदों में 'सर्गबन्ध' को महाकाव्य कहा। उसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चतुर्वर्ग प्राप्ति का विधान होता है। नाटक की समस्त संधियाँ भी उसमें रहती हैं। महान् चरित्र, अलंकार, रस आदि उसके कलेवर को सौन्दर्य देते हैं। वर्णन में आक्रमण, युद्ध-प्रकृति, राजदरबार आदि आते हैं। लोकस्वभाव को लेकर महाकाव्य नायक की विजय भी प्रदर्शित करता है।[14] भामह की महाकाव्य-परिभाषा कुछ समय तक प्रचलित रही। स्वयं छठी शताब्दी में दंडी ने अपने 'काव्यादर्श' में अधिक परिवर्तन नहीं किये। सर्गबन्धता, चतुर्वर्ग प्राप्ति, चतुर उदात्त नायक, नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय का प्रकृति वर्णन, उसने भी स्वीकार किया। उसने काव्य के आरम्भ में आशीर्वाद, देवनमस्कार, कथावस्तु-सूचक पदो का समावेश किया। पर्याप्त आकार, अलंकार, रस, भाव के साथ ही दंडी ने 'लोकरंजन' महाकाव्य का प्रधान गुण बताते हुए उसे कल्पनान्तरस्थायी कहा।[15]

रुद्रट का 'काव्यालंकार' (16/7), हेमचन्द्र का 'काव्यानुशासन' तथा 'अग्निपुराण', 'सरस्वती कण्ठाभरण' आदि में लगभग इन्हीं लक्षणों की पुनरावृत्ति प्राप्त होती है। पन्द्रहवीं शताब्दी में आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में महाकाव्य पर विस्तार से विचार किया। उनके अनुसार सर्गबन्ध महाकाव्य में नायक कोई देवता, उच्चकुलीन क्षत्रिय, धीरोदात्त गुणसम्पन्न हो। वंश का कुलीन राजा हो तो नायक अधिक भी हो सकते हैं। शृंगार, वीर अथवा शान्त का अंगी रस होकर आना अनिवार्य है, अन्य रस सहायक होकर आयें। उसमें नाटक की संधियो का भी विधान रहे। कथानक ऐतिहासिक हो अथवा सज्जन का चरित्र हो। चतुर्वर्ग फल उसका लक्ष्य हो। आरम्भ में नमस्कार, ईश्वर-प्रार्थना, आशीर्वाद तथा कथावस्तु का निर्देश भी हो जाय। कहीं खलनिन्दा तथा साधु का गुण-कीर्तन भी किया जा सकता है। एक वृत्ति में एक ही पद्य का प्रयोग उचित है। न अत्यन्त अल्प, न अति दीर्घ, कम-से-कम आठ सर्ग रहें, जिनके अन्त में ही छन्द का परिवर्तन किया जाय। वहीं पर आगामी कथा तथा भावी सर्ग की सूचना दे देनी चाहिए। सन्ध्या, सूर्य, इन्दु, रजनी, प्रदोष, अन्धकार, दिवस, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, शैल, वन, सागर, संयोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, पुर, यज्ञ, रण, प्रयाण, विवाह, मंत्रणा, पुत्रजन्म आदि का वर्णन सांगोपांग हो। अन्त में महाकाव्य का नामकरण कवि, कथानक, नायक अथवा किसी अन्य पात्र के नाम

पर रहे, किन्तु सर्ग का नामकरण वर्णित वस्तु के आधार पर ही हो।[16] इस प्रकार महाकाव्य के प्रमुख लक्षणों के विषय मे अधिकांश लक्षणकार एकमत हैं। संस्कृत काव्यशास्त्रियो के आधार पर सर्गबद्धता, उदात्त नायक, प्रसिद्ध कथा, रस-निष्पत्ति, सरस शैली, महान् उद्देश्य, सजीव वर्णन तथा अलकार आदि को महाकाव्य का लक्षण स्वीकार किया जा सकता है।

हिन्दी महाकाव्य परम्परा का प्रथम स्वरूप 'पृथ्वीराजरासो' मे प्राप्त होता है। विश्व महाकाव्य के प्राचीनतम रूप की भाँति वह भी सकलनात्मक है। 'रासो' की सम्पूर्ण काव्य-परम्परा मे 'पृथ्वीराजरासो' प्रबन्धात्मकता के अधिक समीप है। सम्पूर्ण कथा प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुष पृथ्वीराज को केन्द्र मानकर चलती है। नायक अपने प्रतिद्वन्द्वी की हत्या भी कर देता है। कवि इतिहास और काव्य का निर्वाह साथ ही करना चाहता है। उसके विशाल कलेवर मे वर्णनो का बाहुल्य है। छन्दो के अनेक रूप उसमे मिलते है। आरम्भ मे वन्दनाएँ भी हुई। भाषा मे सम्मिलित रूप है। वीरकाव्य की परम्परा का पालन करते हुए चन्दबरदाई ने पृथ्वीराजरासो मे पृथ्वीराज का गुणगान ही अधिक किया। उनका प्रतिपाद्य विषय महिमा-वर्णन अधिक है, काव्य कम। इसीलिए उसे प्रबन्धकाव्य कहा गया। इसके पश्चात जायसी के 'पद्मावत' मे काव्य के अधिक तत्वो का समावेश हुआ। सूफी मसनवी पद्धति पर लिखे गये इस प्रबन्ध मे चरित्र चित्रण के साथ सिद्धान्त-निरूपण भी कवि का लक्ष्य रहा है। वह सूफियो के दर्शन से पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित था। कवि ने प्रचलित प्रेमाख्यान को काव्य का विषय बनाया। प्राचीन प्रणाली पर प्रासाद, उद्यान, सागर, युद्ध, सयोग, वियोग, बारहमासा आदि का समावेश हुआ। प्रकृति मे आध्यात्मिक सकेत भी मिलते हैं। कथा को मोड देकर उसके शरीर की वृद्धि की गयी। वर्णन की दृष्टि से कवि का निरीक्षण सूक्ष्म दिखाई देता है। भारतीय और फारसी शैली के समन्वय रूप मे 'पद्मावत' आया। भारतीय परम्परा का अनुसरण करते हुए जायसी ने सूफियों की प्रेम-पद्धति का निरूपण किया। नायक रत्नसेन तथा नायिका पद्मावती प्रमुख रूप मे आते हैं। नागमती, अलाउद्दीन, हीरामन सुग्गा आदि उन्ही के चरित्र-विकास मे सहायक होते हैं। प्रतीको का प्रयोग कवि की विशेषता है। प्रबन्धकाव्य में घटना को जायसी ने अलौकिक रूप प्रदान किया। कथानक के मुख्य पात्र आत्मा-परमात्मा आदि के प्रतीक रूप भी बनते है। 'पद्मावत' हिन्दी साहित्य की प्रबन्ध-काव्य परम्परा के अधिक समीप होकर आया और उसके लोक उपादान विशेष उल्लेखनीय हैं।

मध्यकाल मे 'रामचरितमानस' के रूप में हिन्दी को महाकाव्य का आदर्श रूप प्राप्त हुआ। प्रत्येक दृष्टि से वह महाकवि का प्रतिनिधि है। कवि का समस्त आदर्श, मर्यादा, आत्मसमर्पण उसमें प्राप्त होते हैं। कवि ने वाल्मीकि से अधिक प्रेरणा ग्रहण की। राम के 'लोक-मंगलकारी' चरित्र का उन्होंने अकन किया और उन्हे 'मर्यादा

पुरुषोत्तम' रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। कथा की योजना सुसम्बद्ध रीति से हुई है। काव्य के आरम्भ मे सस्कृत-छन्द प्रयुक्त किया गया और देवी, देवता, संत, गुरु, ब्राह्मण आदि विभूतियों की वन्दना है। 'मानस' जीवन की व्यापक और उच्च भावभूमि को लेकर प्रस्तुत हुआ। सस्कृत से अधिक प्रभावित होने के कारण भाषा की मंजुलता उसमें आ गयी। अवधी की सम्पूर्ण सरसता उसमे विद्यमान है। अधिकांशतया दोहा-चौपाई का प्रयोग करते हुए भी सोरठा, सवैया आदि भी बीच मे आये हैं। शैली की दृष्टि से सुन्दर उपमाओ, स्वाभाविक अलकारो की उसमे योजना है। चरित्र-निरूपण और रसनिष्पत्ति तो मानस का प्राण है। जीवन की अनेक परिस्थितियो मे उठनेवाली मानवीय भावनाओ को तुलसी ने चित्रित किया। राम का आदर्श, भरत का भ्रातृत्व, सीता का सतीत्व, लक्ष्मण का त्याग सभी उसमें सन्निहित हुए। सस्कृत का देवासुर सग्राम भी अपनी छाया लेकर आया। तुलसी ने स्वय इसे विचित्र प्रबन्ध कहा : "सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबन्ध बिचित्र बनाई।" महान् आदर्श, सार्वभौमिक सत्य, सुन्दर अभिव्यजना, उदात्त चरित्र को लकर मानस ने राम के आलम्बन से भक्ति का नवीन आदर्श प्रयुक्त कर दिया। हिन्दी महाकाव्य का उत्कृष्ट रूप उससे सम्मुख आया।

रीतिकालीन युग मे केशव की 'रामचन्द्रिका' अपने अलकारो को लेकर आयी। अपने आचार्यत्व का प्रकाशन उन्होने काव्य मे किया। काव्यशास्त्र की परम्परा और लक्षण का अनुसरण करने का प्रयत्न उसमे देखा जा सकता है। राम के प्राचीन आख्यान को आधार बनाकर भी उन्होने राजनीतिक पुट दिया। उनतालीस प्रकाश छन्द और अलकार की विदग्धता से परिपूर्ण हैं। रीतिकाल मे राजाश्रय मे पल्लवित होनेवाली काव्यधारा जीवन के विस्तृत रगमच पर निर्मित महाकाव्य की ओर अधिक ध्यान न दे सकी। उसके पश्चात् सम्पूर्ण साहित्य में एक क्षणिक अवरोध आया।

पर आधुनिक हिन्दी काव्य ने भाव, भाषा, शैली सभी दिशाओ मे एक परिवर्तन देखा। बदलती हुई सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियो ने साहित्य को प्रभावित किया। 'प्रियप्रवास' के रूप में आधुनिक महाकाव्य सम्मुख आया। नवीन युग की मानवीय भावनाएँ उसमे लक्षित हुई। हरिऔध ने कृष्ण-राधा के अधिक लौकिक रूप का चित्रण किया। यशोदा की पुत्र-विह्वलता, कृष्ण की लोकरजक भावना, राधा का त्याग अपने युग की सामाजिक स्थिति से प्रभावित है। सस्कृत की कोमलकान्त पदावली को काव्य मे अपनाया गया। कथावस्तु के वियोग के समीप घूमते रहने पर भी काव्य का क्षेत्र किंचित व्यापक हो सका। प्रियप्रवास मे खडी बोली की प्रबन्ध काव्य-परम्परा की आरम्भिक रेखाएँ मिलती हैं। मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' आधुनिक युग के समीप है। राम के प्रख्यात नायकत्व के स्थान पर काव्य की उपेक्षिता उर्मिला का चित्राकन अधिक हुआ। नवम् सर्ग मे तो उर्मिला ही उर्मिला दिखाई देती

है। परिवर्तित परिस्थिति 'साकेत' में अधिक स्पष्ट होने लगती है। पात्रों को सामान्य रूप में प्रस्तुत कर 'साकेत' अहिंसा आदि का समावेश भी कर लेता है। रामकाव्य की प्रचलित परम्परा से गुप्तजी की कल्पना नव-उद्भावना की दृष्टि से भिन्न है। एक भावपूर्ण आदर्शवादिता का आभास समस्त काव्य के मूल में दिखाई पड़ता है, जो कवि के द्विवेदीयुगीन व्यक्तित्व का परिचायक है। विषय के अतिरिक्त शैली में भी साकेत किंचित गीतात्मकता लिये हुए है। संस्कृत की समासबहुला भाषा उसमें अधिक नहीं आने पायी। परम्परापालन के रूप में सर्ग का आरम्भ रामकाव्य के आदिकवि वाल्मीकि, भवभूति, तुलसी आदि की वन्दना से होता है। इसी भाँति ऋतु-वर्णन, प्रकृति-निरूपण का भी उसमें समावेश है। युगचेतना से प्रभावित 'साकेत' हिन्दी का नया महाकाव्य हैं, जिसमें आधुनिक युग का आभास प्राप्त होता है। द्विवेदी युग में कुछ अल्पख्यात अन्य प्रबन्ध भी लिखे गये, पर उनमें अधिक व्यापक दृष्टि न थी।

हिन्दी में पर्याप्त समय तक संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों का अनुकरण हुआ। रामचरितमानस, रामचन्द्रिका आदि काव्य किसी-न-किसी रूप मे सस्कृत लक्षणों से प्रभावित है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्य परम्परा पर स्वतन्त्र रीति से अधिक विचार नहीं किया गया। तुलसी को आदर्श प्रबन्धकार रूप में चित्रित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जीवन के नाना व्यापारों की अभिव्यक्ति को उनकी महानता माना। उन्होंने जायसी के पद्मावत को महाकाव्य रूप में स्वीकार कर जीवन के पूर्ण रहस्य को ही उसकी कसौटी स्वीकार किया।[17] शुक्लजी की धारणा बहुत कुछ प्राचीन प्रबन्धों पर निर्भर है, इसी कारण वे 'कामायनी' मे कोई 'समन्वित प्रभाव' नहीं पाते। तुलसी का आदर्श उनके सम्मुख था और जीवन की संश्लिष्ट परिस्थितियों को वे न ले सके। श्यामसुन्दरदास विषयप्रधान अथवा विषयात्मक कविता के अन्तर्गत महाकाव्य को रखते हैं। उनके अनुसार उसकी रचना 'आत्मा के किसी उदात्त आशय, सभ्यता या संस्कृति के किसी युगप्रवर्तक संघर्ष अथवा समाज की किसी उद्वेगजनक स्थिति को लेकर होती है। रामायण, महाभारत, रामचरितमानस आदि की कोटि के सच्चे महाकाव्य शताब्दियों में दो एक लिखे जाते है।'[18] यह परिभाषा पश्चिम की उस धारणा के भी अनुकूल है जब वीरयुग में बिखरी हुई सामग्री को एकत्र कर महाकाव्य की रचना की जाती थी। आधुनिक युग में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'साकेत' की आलोचना करते समय प्रबन्धात्मकता अथवा सर्गबद्धता, गम्भीर शैली तथा वर्णित विषय की व्यापकता और महत्त्व को महाकाव्य के प्रमुख उपादान स्वीकार किया। उनकी धारणा है कि इन्हीं के अन्तर्गत अन्य तत्व भी समाविष्ट हो जाते हैं। उन्होंने महाकाव्य में जीवन के अनेक स्वरूपों की स्थिति, चरित्र के विभिन्न आदर्श, विविध वस्तु-चित्रण तथा प्रौढ़ शैली को अनिवार्य विषय माना। उनकी धारणा नवीन जीवन-दर्शन, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा परिवर्तित परिस्थितियों के अधिक अनुरूप

है। वे आधुनिकतम प्रवृत्तियों को लेकर महाकाव्य की व्याख्या करते हैं।[19] आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने महाकाव्य को 'सर्वांगीण प्रभावान्विति' से युक्त बताया और सानुबन्ध कथा, वस्तुवर्णन, भावव्यंजना, संवाद को उसके प्रमुख तत्व रूप में स्वीकार किया। प्राचीन प्रणाली को स्वीकार करते हुए भी वे अक्षरशः अनुकरण को आवश्यक नहीं मानते। उन्होंने आधुनिक प्रबन्धकाव्य—साकेत, कामायनी आदि को 'एकार्थकाव्य' के अन्तर्गत रक्खा, जिसमें जीवनवृत्त का अत्यधिक विस्तार नहीं है।[20] उनकी शास्त्रीय व्याख्या पें प्रतिबन्ध अधिक हैं और साधारण प्रतिभा का कलाकार महाकाव्य के निर्माण में सफल नहीं हो सकता। वे उसकी नितान्त उच्च गरिमा के पोषक हैं। महाकाव्य के विषय में रवीन्द्र ने अपनी कविता 'क्षणिका' में लिखा है: 'मेरे मन में नव महाकाव्य रचना की इच्छा थी। अनायास ही तुम्हारे कंकण किंकिणि से टकराकर कल्पना सहग्र गीतों में फूट पड़ी। इस दुर्घटना से महाकाव्य कण-कण होकर तुम्हारे चरणों मे बिखर पड़ा है। महाकाव्य-रचना की इच्छा मन में ही रह गयी!'

महाकाव्य की परम्परा में क्रमशः परिवर्तन होते गये। होमर के वीरयुग की वर्णनात्मक प्रणाली से आधुनिक आन्तरिक भाव-प्रकाशन तक महाकाव्य अनेक स्वरूप ग्रहण कर चुका है। समाज की बदलती हुई परिस्थितियो ने उस पर प्रभाव डाला। वास्तविक रूप में महाकाव्य एक उदात्त और गम्भीर काव्यरूप की संज्ञा है। सच्चे और सुन्दर महाकाव्य की रचना कोई महाकवि ही कर सकता है, किन्तु केवल किसी भी महाकाव्य की रचना के सहारे महाकवि हो जाना सम्भव नहीं। महाकाव्य की प्रमुख आवश्यकता एक विशाल रंगमच है। कथा के रूप में किसी अनिवार्य समस्या का प्रतिपादन अपेक्षित है। आवश्यक नहीं कि वह घटना पौराणिक अथवा ऐतिहासिक ही हो, किन्तु उसका सम्बन्ध जीवन के व्यापकत्व से होना अनिवार्य है। चरित्र-सृष्टि भी जीवन के विस्तृत दृष्टिकोण को लेकर होनी चाहिए और पात्रों में मानवता का स्वर भी हो। उनमें कवि को प्राण-प्रतिष्ठा करनी पड़ेगी। आदर्श और उदात्त दोनों रूपों में इसका अंकन हो सकता है। कथा तथा चरित्र-समन्वय में स्वाभाविकता अपेक्षित है, जिससे सामाजीकरण सहज ही हो सके। शैली की प्रौढ़ता के अभाव में महाकाव्य की अभिव्यंजना सुन्दर नहीं हो सकती। महान् कल्पना, व्यापक दृष्टिकोण के साथ मार्मिक अभिव्यंजना, सक्षम प्रकाशन भी आवश्यक हैं। महाकाव्य का लक्ष्य जीवन की समस्या का साक्षात्कार तथा आनन्द-सृजन ही हो सकता है। महान् साहित्य के उच्चादर्शों से महाकाव्य की रूपरेखा निर्मित होती है। संसार के महाकाव्यों का संकलन करते हुए संकलनकार ने कहा है—'महाकाव्य में सुख-दुख, संयोग वियोग, गीति तत्व और कथातत्व आदि श्रेष्ठ काव्य के समस्त गुणों का हृदयहारी चित्रण, स्वाभाविक जीवन के मनोरम चित्र तथा आन्तरिक द्वन्द्व हो जिसमें प्रकृति-समन्वय उस कुशलता से किया गया हो कि कृति सदा के लिए अमर हो जाए।'[21]

कामायनी का काव्यत्व

'कामायनी' हिन्दी महाकाव्य का नवीनतम स्वरूप है। प्रसाद ने उसमें बिखरी हुई कथा को एकसूत्र में बाँधा और प्राप्त सामग्री का उपयोग किया। कथानक के रूप में 'कामायनी' पूर्ण जीवन को लेकर चलती है। मनु मानवता के प्रतीक बनकर आये हैं, श्रद्धा नारीत्व का प्रतिनिधित्व करती है। प्राचीन आख्यान किसी देश-जाति का चित्र प्रस्तुत करते थे। 'कामायनी' देश, काल और जाति की सीमा लाँघ गयी। वह मानव और उसकी मानवता को अपना विषय बनाती है, यद्यपि उसके प्रमुख रंगमंच हिमालय और सारस्वत प्रदेश हैं। इस कथानक को कवि ने कल्पना द्वारा आधुनिक रूप प्रदान किया। इतिहास पुराण में बिखरी हुई कथावस्तु कल्पना से नवीन समस्याओं का ग्रहण करती है। कामायनी का रंगमंच अनेक घटनाओ का समन्वय नहीं है, उसमें कवि केन्द्रीकरण की ओर उन्मुख है। 'रघुवंश' की-सी वंश-परम्परा उसमे नहीं मिलती, किन्तु मानव के शाश्वत उपादानों को दृढ़ता से पकड़ा गया है। 'कामायनी' की कथावस्तु में जीवन की वह सघनता निहित है जिसका प्रतिपादन काव्य मे किया गया। प्रसाद ने कथा के उस अंश को ग्रहण किया जो उद्देश्यपूर्ति में सहायक हो। चरित्र-सृष्टि के रूप में कामायनी अन्य प्राचीन महाकाव्यों की भाँति किसी ऐसे प्रसिद्ध पात्र को ग्रहण नहीं करती जो वीर हो, वह मनु के रूप में मानव को ही ले लेती है। मनु जीवन के स्वाभाविक उत्थान-पतन में बँधा मनुष्य है जो अपने लक्ष्य तक जाने के लिए व्यग्र है। प्रसाद ने युगो से चलनेवाले देवासुर संग्राम तथा अलौकिक तत्त्व को नहीं ग्रहण किया। देवासुर का वाह्य रूप मनु में आन्तरिक स्वरूप धारण करता है। मनु की आसुरी वृत्तियों पर दैवी वृत्तियो की विजय नहीं होती; दोनो में समन्वय स्थापित हो जाता है। "महाकाव्य का रचयिता मानव के हेतु ही अपने सगीत का प्रकाशन करता है, वह देवताओं के लिए नहीं होता।"[2] कामायनी का आदि-अन्त मानवता से आबद्ध है। मानवता उसका रगमंच है, मानव उसका पात्र और मानवी भावनाओ का ही उसमें निरूपण है। श्रद्धा नारी की सुकुमारता, सहृदयता को लेकर प्रस्तुत हुई। पात्रों के चरित्र-चित्रण द्वारा कवि मानव की स्वाभाविक मनोवृत्तियों का अंकन करता है, केवल व्यक्तिगत गुणों से अलकृत नहीं करता। 'कामायनी' के पात्र अपना व्यक्तित्व कवि के उद्देश्य में विलीन करते दिखाई देते हैं। इससे महाकाव्य के पात्रों में एक समानता आ जाती है: वे सार्वभौम हो जाते हैं। यही नहीं, मानवता के परिवर्तित रूपों में भी वे चिरन्तन बने रहते हैं। 'कामायनी' के पात्रों की मानसिक अभिव्यक्ति, आन्तरिक प्रकाशन उसे सघनता प्रदान करते हैं।

प्राचीन काल में वस्तु-वर्णन महाकाव्य का आवश्यक अंग था। वर्णनात्मक-शैली पर महाकाव्य चलते थे। प्रसाद ने वाह्य वस्तु-वर्णन को अन्तर्मुखी कर दिया। मानवीय भावों के प्रकाशन में उन्होंने अधिक शक्ति लगाई। सुख-दुख, आशा-निराशा के अतिरिक्त मन में उठनेवाली वृत्तियों का प्रकाशन हुआ। 'कामायनी' अपने मनोवैज्ञानिक

निरूपण के कारण अधिक भावात्मक तथा अन्तर्मुखी हो गयी, उसका वाह्य पक्ष अपेक्षाकृत कम वर्णित हुआ। वाह्य संघर्ष का केवल सांकेतिक रूप में कवि ने निर्देश कर दिया किन्तु आन्तरिक प्रकाशन में सुन्दर व्याख्या की। मानवीय मनोभाव अधिक मुखर हो उठे हैं। जीवन की भौतिक समस्याएँ भी आभासित हैं, पर उनकी विस्तृत विवेचना न हो सकी। अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों के कारण 'कामायनी' की शैली वर्णनात्मक नहीं है। भावाभिव्यंजना का सहज माध्यम गीतिकाव्य है। 'कामायनी' में गीतितत्त्व प्रमुखता पाता है। वर्णन-प्रधान महाकाव्य में इसका अभाव होता है। प्रसाद ने अपने भावों के अनुरूप ही इस शैली को अपनाया। गीतात्मक शैली द्वारा महाकाव्य का निर्माण कवि का मौलिक प्रयास है। वर्णनात्मकता की दृष्टि से अपर्याप्त होकर भी 'कामायनी' कलात्मक सौन्दर्य में प्रौढ़ रचना है। अरस्तू काव्यशास्त्र में महाकाव्य के जिस परिष्कृत रूप की चर्चा करता है, वह इसमें प्राप्त है। सूक्ष्म आन्तरिक भावो को वहन करने के लिए प्रांजल, चित्रमय बिम्ब-भाषा की आवश्यकता होती है। 'कामायनी' का शब्द-चयन अपनी कुशलता मे प्रस्तुत हुआ। सौन्दर्यांकन के समय वह सजीव हो जाती है, बिम्ब-प्रतीको को ले आती है। उसमें शिथिलता नहीं दिखाई देती, जो महाकाव्य की मर्यादा के प्रतिकूल हो। किन्तु वह अलंकरण से भरी हुई भी नही है कि भाव-प्रकाशन मे व्यवधान प्रस्तुत करे। भारतीय साहित्यशास्त्र महाकाव्य मे कतिपय नाटकीय तत्त्वो के समावेश की आवश्यकता भी स्वीकार करता है। विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' मे नाटकीय सन्धियों की चर्चा की है। 'कामायनी' में कथा-विकास की दृष्टि से मनु की मुमूर्ष अवस्था काव्य का अन्त हो सकती थी; ऐसी दशा में वह दुखान्त होती। प्रसाद ने दार्शनिक प्रतिपादन तथा आनन्द-निरूपण के लिए अन्तिम सर्गों की उद्‌भावना की। श्रद्धा का महत्त्व भी बढ़ जाता है। 'कामायनी' की यह कल्पना 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के अधिक समीप है। कालिदास दुख का चरम विकास दिखाकर अन्त मे मिलन से नाटक की परिसमाप्ति करते है। कामायनी मे नाटक की संवाद शैली का पर्याप्त समावेश है। महाकाव्य मे सत्य का आग्रह अधिक होता है। प्राचीन महाकाव्यो मे इसी कारण इतिहास अथवा पुराण की किसी प्रसिद्ध घटना को काव्य का विषय बनाया जाता था। पूर्वपरिचित कथानक के प्रति एक पूर्वानुराग भी बना रहता है। 'कामायनी' की ऐतिहासिक-पौराणिक कथा वेद, पुराण, ब्राह्मण आदि ग्रन्थों मे बिखरी हुई मिलती है और कवि ने उसका नया संयोजन किया है। उसे आधुनिक रूप प्रदान किया है।

महाकाव्य की परम्परा प्रमाणित करती है कि इस माध्यम से कवि अपने समस्त चिन्तन-अनुभव का प्रकाशन चाहता है। छोटे-छोटे गीत-खंडों में एक भावोच्छ्‌वास गूँजता रहता है। खंडकाव्य जीवन के किसी अंश का चित्रण करता है, किन्तु महाकाव्य की व्यापक सीमा में समग्र जीवन को लिया जा सकता है। जीवन की प्रहेलिका का उत्तर साधारण हिन्दी पाठक तुलसी के 'मानस' में खोजता रहा है। महाकाव्य की

यह सामाजिक उपादेयता उसके विस्तृत प्रचार में सहायक होती है, यह जन जन का काव्य हो जाता है। महाकाव्य का अन्य रूप कलात्मक दृष्टि से अधिक परिष्कृत महाकवि निर्मित करते है। वाल्मीकि, कालिदास अथवा प्रसाद की कला इसी प्रकार की है कि सामान्य धरातल पर उसका प्रचार सम्भव नही। योरप में दान्ते की 'डिवाइन कामेडी' की विलक्षण कथाओ का आनन्द सामान्य जनता भी उठा लेती है, किन्तु मिल्टन सुशिक्षित वर्ग का कवि है। महाकाव्य के अधिक कलात्मक रूप का निमाण युग के अनुकूल होता है। प्रसार की दृष्टि से महाकाव्य के इन दो स्वरूपो मे अन्तर हो सकता है, किन्तु दडी का कथन है कि सभी महाकाव्य के रचयिता लोकरंजन करते हुए कल्पान्तर स्थायी होते है। कला क्षेत्र में 'कामायनी' वाल्मीकि, कालिदास की परम्परा के अधिक निकट है।

भावाभिव्यंजना के आधार पर योरप में महाकाव्य के समीप आनेवाले अनेक काव्यो की रचना हुई। संस्कृत के 'शिशुपालवध' आदि छोटे वातावरण में निर्मित होने वाले ऐतिहासिक प्रबन्धो की भाँति इनका रूप न था। इनमे कवि की कल्पना का स्वच्छन्द प्रवाह अधिक प्राप्त होता है। शेली के 'प्रोमिथियस अनबाउन्ड' का नायक प्रामथियस नैतिक, बौद्धिक उच्चता का प्रतीक है। कवि ने मानवीय भावनाओ के प्रकाशन का प्रयास किया है। प्रामथियस स्वयं ससार में सुख शान्ति के राज्य की स्थापना की कामना करता है। वह पृथ्वी से अनुनय करता है : 'मेरी कामना है कि किसी भी जीवित वस्तु को कष्ट न हो।' महान उद्देश्य के होते हुए भी उसमे घटना, पात्र का व्यापक प्रसार नही प्राप्त होता। वास्तव में 'प्रेमोथियस अनबाउन्ड' मे मनुष्य नही, निसर्ग प्रकृति का अमर स्वरूप अप्सराएँ, किन्नरियाँ तथा आत्माएँ है, किन्तु सभी मानवीय इच्छा के सेवक है। पृथ्वी, सागर, चन्द्रमा, काल आदि का भी निर्माण कवि ने किया। सुख आनन्द का प्रतिपादन करते हुए काव्य छोटी सीमा में कार्य करता है। सुन्दर उपमाएँ, सरस अभिव्यंजना के होते हुए भी वह विस्तृत विवेचना में असमर्थ है। उसमे महाकाव्य का केवल उद्देश्य मात्र है, सम्पूर्ण स्वरूप नही। रिवाल्ट आफ इस्लाम, एन्डिमियन, द एनशियेन्ट मेरिनर आदि महाकाव्य का आभास भर देकर रह जाते है, निराला की प्रबन्ध कविताओ की तरह। उनमे कलात्मक सौष्ठव, महान् आदर्श अवश्य है किन्तु जीवन के विविध रूपो का चित्रण नही मिलता। 'कामायनी' अपने कलात्मक सौष्ठव में इन स्वच्छन्द प्रबन्धो के निकट होकर भी व्यापार-भूमि के कारण महाकाव्य के निकट है।

महाकाव्य का उद्देश्य आदर्श तथा सुख शान्ति की स्थापना होता है। चरित्रो का अंकन आदर्श-स्थापन तथा कथानक का विन्यास उद्देश्य प्रतिपादन में सहायता करता है। महाकवि अपनी रचना के द्वारा समाज को कुछ देना चाहता है। उसके मूल मे जीवन दर्शन की भावना निहित रहती है। महाकाव्य के रचयिता के सम्मुख एक निश्चित कार्य रहता है। वह अपनी प्रतिभा में युग की परिस्थितियो का समावेश

कर लेता है। 'कामायनी' अत्यन्त प्राचीन कथानक में भी युग की समस्याओं का समाधान करती है। अतिरिक्त बौद्धिकता, भौतिकवाद का दुष्परिणाम दिखाकर कवि ने समन्वय से समरसता का प्रतिपादन किया। गांधी-युग की यह कृति सत्य अहिंसा को भी न भूल सकी। मनु संघर्षों के मध्य जीता हुआ आधुनिक मानव ही है। सारस्वत प्रदेश नगर का वैभवशाली वर्णन है, जिसमें विज्ञानवादी भौतिक प्रगति हो रही है। भावात्मक प्रकाशन के कारण युग की परिस्थिति पर विस्तारपूर्वक विवेचना करने का अवसर कवि को न मिल सका, किन्तु उसने अपने युग की चेतना को उसमें स्थान दिया। महाकवि युग-काल का स्वर न भूल सका; किसी-न किसी रूप में उसने संकेत किया। यदि इलियड में यूनानी सभ्यता का सम्पूर्ण चित्र मिल जाता है, तो कामायनी भी आधुनिक युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है। समय के साथ चलनेवाली यह कृति कतिपय समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करती है। व्यापक दृष्टिकोण के साथ महाकाव्य के आदर्श में भी महानता होती है। समस्त क्रिया व्यापार के द्वारा अन्त में किसी उद्देश्य की प्रतिष्ठा कवि का प्रयोजन रहता है। प्राचीन देवासुर संग्राम में देवताओं की विजय तथा दानवों की पराजय भावना थी। अन्त में साधुता जीत जाती थी और अलौकिक शक्तियाँ भी समय समय पर उसकी सहायता करती थीं। इसी कारण प्रायः दुखान्त महाकाव्यों की रचना नहीं की जाती थी। सुख, शान्ति और आनन्द का प्रतिपादन ही उसका लक्ष्य है। समस्त योजना इसी के लिए की जाती है। अपने महान् उद्देश्य के कारण महाकाव्य का रचयिता एक दुर्लभ कलाकार होता है।"[3]

'कामायनी' का कवि जीवन के मूल और अन्तिम उद्देश्य आनन्द की प्रतिष्ठा करता है। सम्पूर्ण संघर्ष के पश्चात् मानवता का प्रतीक मनु जीवन में समरसता स्थापित कर आनन्द प्राप्त कर लेता है। यह श्रद्धाजन्य आनन्दवाद ही प्रसाद के महाकाव्य का लक्ष्य है। संसार के समस्त ज्ञान-विज्ञान जीवन को सुखी सम्पन्न बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। साहित्य का भी वही ललित प्रयोजन है। 'कामायनी' का आनन्दवाद मोक्ष अथवा विराग की भांति नहीं है। वह कर्म, काम में प्राप्त जीवन के उपभोग का आनन्द है। जीवन से भागकर मनु कहाँ सुखी रहता है? मानव जीवन की सुन्दर अभिव्यक्ति 'कामायनी' में हुई है। काव्य-वैभव, चिन्तन पक्ष की प्रौढ़ता, स्वस्थ जीवन दर्शन, मानवीय भावनाओं का विश्लेषण कामायनी को महाकाव्य का रूप देने के लिए पर्याप्त है। युग की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार महाकाव्य की रूपरेखा भी नवीन रूप धारण करती रही है। वीरयुग का शौर्य निरूपण दान्ते में आकर धार्मिक स्वरूप पा गया। सभ्यता के विकास के साथ वर्णनात्मकता के स्थान पर कलात्मकता को प्राधान्य मिला। कालिदास के महाकाव्यों का काव्य-सौन्दर्य अपने समय से अनुप्राणित है। आज की संघर्षकालीन परिस्थिति में जीवन की समस्याओं का समावेश आवश्यक हो गया। 'कामायनी' प्रसाद के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है। उसमें कलाकार

अपनी समग्र साधना को लेकर प्रस्तुत हुआ। वह उनके जीवन मंथन का परिणाम है। लक्षणग्रन्थों का अनुसरण न करती हुई भी कामायनी अपने [illegible] दर्शन काव्य सौष्ठव मानवीय व्यापार के आधार पर महाकाव्य का पद प्राप्त करती है। कामायनी के द्वितीय संस्करण में (आंसू की भांति) प्रसाद ने यत्र तत्र किञ्चित परिवर्तन भी किये थे यह कवि की सतत जागरूकता का परिचायक है। कामायनी प्रसाद की सर्वोत्तम कृति के रूप में हिन्दी में आयी और एक निधि बनकर रहेगी। छायावाद युग का वह सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करती है।

संदर्भ

1 [illegible] 45
2 [illegible] 54
3 [illegible] 33
4 [illegible] 104
5 [illegible]
6 [illegible] 54
7 [illegible] 14
8 [illegible] 312
9 [illegible]
10 [illegible]
11 [illegible] 25
12 [illegible] 85
13 [illegible] 24
14 [illegible]
15 [illegible]
16 [illegible] 24
17 [illegible] 84
18 [illegible] 115
19 [illegible]
20 [illegible]
21 [illegible] भूमिका
22 [illegible]
23 [illegible] 41

प्रमाद-काव्य की मूल चेतना

प्रमाद का माहित्य एक मास्कृतिक चेतना मे अनुप्राणित है। वे युग, दश, ममाज और मानव की जिन ममम्याओ को उठाते है, उनका ममाधान भी प्रम्तुत करना चाहते है। इमम मन्दह नही कि विषय की विस्तृत विवचना के लिए उन्होन उपन्याम, नाटक, कहानी, निवन्ध आदि मे गद्य क माध्यम से विचार किया, किन्तु काव्य म भी उमका आभाम प्राप्त होता है। प्रमाद की मामाजिक विचारधारा का अधिक स्पष्ट रूप 'ककाल' और 'तितली' मे दिखाई दता है। ममाज का नग्न रूप उन्होने इन उपन्यामो म अकित किया और धार्मिक आडम्बर, मामाजिक विषमता आदि को मामने रखा। नाटको म प्रमादजी का दृष्टिकोण एतिहासिक तथा मास्कृतिक अधिक है। इतिहाम म व राष्ट्र की सोयी हुई चेतना का जाग्रत लाना चाहत है। उनका विश्वाम है कि इतिहाम का पुनर्जागरण राष्ट्रीय उत्थान क लिए आवश्यक है। दश की परम्परा, सभ्यता और सस्कृति उम नवजीवन प्रदान करते ह। प्रमाद न मास्कृतिक पुनरुत्थान का प्रयत्न किया। व्यक्तिवादी रूप म भी वे वेदना, करुणा तथा प्रम दर्शन की अभिव्यक्ति करते है। क्रमश एक उच्च भावभूमि पर जाते हुए प्रमाद आत्मवाद, आनन्दवाद को अपनाते है। 'कामायनी' का कवि अपनी विचारधारा का आध्यात्मिक कलवर प्रदान करता है, यद्यपि उमका व्यावहारिक पक्ष मवल है। इम प्रकार काव्य मे प्रमाद की विचारधारा कई दिशाओ मे प्रवाहित प्रतीत होती है।

इतिहास और सस्कृति

प्रमाद का जन्म ऐमे ममय मे हुआ था, जब कि पाश्चात्य सभ्यता देश पर अपना प्रभाव डाल रही थी। उन्होने राष्ट्र के इतिहास से उज्ज्वल दृष्टान्त लेकर उन्नत परम्परा मम्मुख रखी। नाटको और कहानियो की पृष्टभूमि ऐतिहासिक है। इतिहाम के भग्नावशेषो मे उन्होने कथावस्तु ग्रहण की और उसके माध्यम मे देश-गौरव स्थापित किया। भरत, कुरुक्षेत्र, महाराणा का महत्त्व, अशोक की चिन्ता, प्रलय की छाया आदि की प्रेरणा भारतीय इतिहाम है। दर्शन, अध्यात्म आदि का ग्रहण भी उमसे किया

गया। मूलत प्रमाद गास्कृतिक दृष्टि रखते है आर व इतिहास क अन्वषण म प्रयत्नशील हुए। उन्हान एक बिखरी हुई मामग्री का उपयोग किया। नाटका म भारतीय वैभव के अकन के अतिरिक्त 'कामायनी' की पृष्ठभूमि भी हिमालय है। प्रथम मानव का जन्म यही हुआ था। कवि मातृगुप्त कहता है

> हिमालय के आँगन मे उम, प्रथम किरणो का द उपहार
> उषा ने हँस अभिनन्दन किया, और पहनाया हीरक हार।
>
> *　　*　　*
>
> किमी का हमन छीना नही, प्रकृति का रहा पालना यही
> हमारी जन्मभूमि थी यही, कही मे आय थ हम नही।
>
> —स्कन्दगुप्त, पृ 162

प्रमादजी का विश्वास है कि भारत ही आर्य जाति की जननी है। मूल आर्य मप्तसिन्धु म निवास करत थ। यही म व पूर्व ओर पश्चिम की दिशाओ मे अग्रसर हुए तथा अपन मतो का प्रचार भी करत गय। मदानीरा स आग बढ़कर पूर्व म जानवाला दल आत्मवादी था। पश्चिम क आर्य क दो विभागो का प्रतिनिधित्व क्रमश इन्द्र और वरुण न किया। आर्यो के आरम्भिक स्वरूप पर विचार करत हुए प्रमादजी न लिखा है कि—'आत्मा म आनन्द भोग का भारतीय आर्यो न अधिक स्वागत किया।"[1] आर्यो क पूर्वज मनु का निरूपण करन म भी कवि न इतिहास का ध्यान रखा। आधुनिक परिस्थितियो म निर्मित आदिपुरुष का चरित्र उम आर्य की भाँति है जो जीवन म मघर्ष करता हुआ आगे बढ़ता है। इतिहास क प्रति प्रमाद का मोह एमा है कि विदेशी बालिका कार्नेलिया भी 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' का गान गाती है। उम इम देश की भूमि म प्यार हो जाता है। आदिपुरुष मनु को हिमालय के उत्तुग शिखर पर प्रतिष्ठित कर कवि न मानमरोवर मे सभ्यता का विकास दिखलाया है।

इतिहास क माथ भारतीय मभ्यता मस्कृति व प्रति भी कवि का अनुराग है। वास्तव म ये मब एक दूसरे क इतना ममीप है कि उनम एक विभाजन रखा खींच दना कठिन है। इम दृष्टि मे प्रमाद म इनका ममन्वित स्वरूप देखा जा मकता है। भारतीय इतिहास को प्रकाश म लाने के माथ कवि ने प्राचीन सस्कृति सभ्यता का भी नयी व्याख्या देने का प्रयत्न किया। एक मास्कृतिक पुनरुत्थान की रेखाएँ उनके साहित्य मे सबसे अधिक बलवती है। देश के इतिहास, सस्कृति के प्रति उन्हे जो राग था, उसकी अभिव्यजना के लिए उन्होने कई अवलम्ब ग्रहण किये। कथावस्तु के अतिरिक्त उन्होने आदर्श पात्रो की नियोजना की। बाबा रामनाथ, दाण्ड्यायन, चाणक्य आदि पात्र सस्कृति क प्रतीक बनकर आये है। महाराणा के आदर्श पराक्रम, चाणक्य की अदम्य नीति के सम्मुख सभी नतमस्तक

होते है। धर्म की अपेक्षा उन्होंने दर्शन का ग्रहण अधिक किया और बौद्धों की करुणा, शैवागम का प्रत्यभिज्ञादर्शन भी उनके काव्य में दिखाई देते हैं। प्रसादजी देश की वास्तविक सांस्कृतिक प्रतिष्ठा में प्रयत्नशील प्रतीत होते हैं। वे भारतीय आत्मवाद तथा सार्वभौमिकता के पक्षधर है। कामायनी में मानव संस्कृति की विजय घोषित की गयी है।

दार्शनिक प्रवृत्तियाँ

प्रसाद की दार्शनिक प्रवृत्तियाँ क्रमशः विकसित होती गयी। उन्होंने समस्याओं के मूल में जाकर उन पर विचार किया। अपने गहन अध्ययन, चिन्तन मनन से वे जिन निष्कर्षों पर पहुँचे थे उन्हें काव्य में व्यक्त किया। मनुष्य और जीवन को एक सम्पूर्ण ईकाई के रूप में उन्होंने स्वीकार किया। आरम्भ में प्रसाद को उपनिषद् दर्शन ने अधिक प्रभावित किया। 'चित्राधार' में प्राप्त होनेवाली भावनाओं में दर्शन के प्रति कवि की जिज्ञासा प्रतीत होती है। प्रकृति के विभिन्न क्रिया व्यापारों के पीछे कौन सी शक्ति कार्य करती है ? मनु ने प्रलय के अनन्तर इसी आकुलता में अनेक प्रश्न किये थे। जीवन-जगत, प्रकृति-पुरुष के प्रति इस जिज्ञासा का उत्तर दर्शन में प्राप्त होता है। समस्त जगत और प्रकृति चिरन्तन शक्ति की छाया है। अणु अणु में उसकी सत्ता व्याप्त है। श्रद्धा कहती है . "नित्य का स्वरूप यह नित्य जगत", संसार विश्वात्मा की अभिव्यक्ति है। वह उसके महान् व्यक्तित्व का प्रकाशन है। जीवन के कण कण में आनन्द खोजकर उसी में अपने अस्तित्व को विलीन कर देना ही श्रेयस्कर है। उपनिषदों में अद्वैत भावना का प्रतिपादन किया गया है। प्रसाद भी भेद भाव की भर्त्सना करते है। 'प्रेमपथिक' में दोनों प्रणयी जब एक दूसरे में अपनी सत्ता विलीन कर देते है तो विरह का दुख भी नहीं प्रतीत होता है। 'अहं' और 'इदं' का समन्वय आनन्द का सृजन करता है। जब तक मनु अपने व्यक्तिवाद को लेकर इधर उधर भटकता है, उसे परितोष नही होता। अन्त में अद्वैत भावना में वह आनन्द प्राप्त करता है :

> अपना ही अणु अणु कण कण
> द्वयता ही तो विस्मृति है।
>
> —कामायनी, आनन्द सर्ग

उपनिषदों की अद्वैत भावना की भाँति प्रसाद ने शैवागम से समरसता को भी ग्रहण किया। जीवन में समन्वय की नितान्त आवश्यकता है। विरोधी शक्तियाँ आपस में संघर्ष करती हुई अपनी शक्ति नष्ट करती है। इनको एक ही दिशा में नियोजित करने से जीवन सुखी हो सकता है। प्रसाद ने अपने साहित्य में इसी समन्वय-दृष्टि अथवा समरसता की भावना से काम लिया। श्रद्धा इच्छा-क्रिया-ज्ञान में समन्वय

स्थापित करती है और तब आनन्द की उत्पत्ति होती है। 'कामायनी' के अलग अलग चित्रण मे तीनो लोक अपूर्ण प्रतीत होते है, किन्तु समन्वित होने पर उनका रूप मगलकारी हो जाता है। समरसता के व्यावहारिक पक्ष से कवि ने जीवन की अधिकाश समस्याओ को सुलझाया। आनन्द की कल्पना प्रसाद का शैवागम म प्राप्त हुई। समग्र सृष्टि मे व्याप्त शिवतत्त्व को ग्रहण कर लेने पर प्रत्येक प्राणी आत्मरत प्रतीत होने लगता है। विश्व शिव का ही प्रसाद है और उसी के ताण्डव नर्तन म सम्पूर्ण स्वाप, ताप भस्म हो जाते है :

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो।
इच्छा, ज्ञान, क्रिया मिल लय थ।

—कामायनी, रहस्य सर्ग

व्यष्टि का समष्टि मे पर्यवसान तथा व्यक्तित्व का अधिकाधिक प्रसार शैवदर्शन का व्यावहारिक रूप है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की पारदर्शिनी पूर्णता मनुष्य को भ्रम मे डाल देती है। मानव शिव की कृपा म ही इनसे मुक्ति प्राप्त कर सकता है। प्रसाद का समरसता शक्ति भावना तथा आनन्दवाद की प्रेरणा शैवागम स प्राप्त हुई और उन्होने काव्य म उसे व्यक्त किया। 'इरावती' मे उनका कथन है कि 'अवमान को आर्यजाति मे हटाने के लिए आनन्दवाद की प्रतिष्ठा करनी होगी।'[2] 'लहर' मे बौद्ध दर्शन स सम्बन्धित कई कविताएँ है। 'अजातशत्रु' मे भी गौतम बुद्ध का चरित्र आया है। बौद्धो के करुणा दर्शन स प्रसाद विशेष प्रभावित प्रतीत होते है। बौद्ध दर्शन म प्राणिमात्र पर दया का सदेश है। 'आँसू' मे करुणा दर्शन एक स्वतन्त्र चिन्तन पर अवलम्बित है, किन्तु उसमे बौद्धो की करुणा का प्रभाव भी हो सकता है। 'अजातशत्रु' की वासवी कहती है

मानव हृदय भूमि करुणा से सींचकर
बोधन-विवेक बीज अकुरित कीजिए।

—अजातशत्रु, पृ 91

'करुणालय' म जिस करुणा की भावना के बीज निहित है उसका पूर्ण विकास 'अजातशत्रु' मे हुआ। 'अशोक की चिन्ता' कविता का मूल स्वर भी बौद्धदर्शन से प्रभावित है। कोमल भावनाओ का अपने चिन्तन मे स्थान देने के कारण प्रसाद ने करुणा को विशेष महत्त्व दिया। प्रसाद क काव्य मे किसी धार्मिक सिद्धान्त का प्रतिपादन अथवा प्रचार नही है। उन्होने किसी साम्प्रदायिक वातावरण का कार्य नही किया। विभिन्न दर्शनो से अपने चिन्तन पक्ष को प्रौढ करते हुए वे क्रमशः आगे बढे। उनका अध्यात्मवादी दृष्टिकोण भी स्वच्छ और सजग है तथा उसमे पलायनवादिता नही दिखाई देती। प्रसाद जीवन को एक सग्राम के रूप मे स्वीकार करते है। किन्तु

चिन्तनशील कवि इस भौतिक परिधि से आगे बढता दिखाई देता है। जीवन को सम्पूर्ण इकाई के रूप में स्वीकार करना ही उचित है। श्रद्धा इसी 'भूमा' की चर्चा करते हुए मनु से कहती है :

यही सुख दुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।

—कामायनी, श्रद्धा सर्ग

आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध पर विचार करते हुए प्रसाद ने उसके व्यावहारिक पक्ष का ग्रहण अधिक किया। वे वैराग्य अथवा निवृत्ति के पक्षपाती नही है, वरन् जीवन मे कर्म को प्रधानता देते है। कर्म की परिभाषा करते हुए प्रसादजी ने 'निष्काम कर्म' को प्रतिष्ठित नही किया। वे कर्म के व्यापक प्रसार पर जोर देते है, जिसके अन्तर्गत समस्त मानवता आ जाती है। वे प्रवृत्तिमार्गी है। काम की व्यापक परिभाषा के मूल मे भी उनका यही उद्देश्य है। उन्होने वैदिक काल के उदात्त काम को पुनः प्रतिष्ठित किया।

प्रेम-कल्पना

प्रसाद को मूलतः प्रेम-सौन्दर्य का कवि कहा जाता है। आदि से अन्त तक उनके साहित्य मे प्रेम का स्वर सक्रिय रहता है। प्रेम का उदात्त रूप कवि ने ग्रहण किया, इस कारण वह साधारण स्वच्छन्दतावादी कवियों से एक पृथक भाव-भूमि पर पहुँचता है। प्रसाद का प्रेम अशरीरी, अतीन्द्रिय और निर्मल है। 'आँसू' मे अपनी व्यक्तिगत भावनाओ का प्रकाशन करते हुए भी वे किसी ऐसे धरातल पर नही आ जाते जहाँ प्रणय केवल दो व्यक्तियो के मध्य उलझकर रह जाता है। प्रेम के प्रति व्यापक दृष्टिकोण कवि को सतत गतिमान करता है। अपनी प्रेम-कल्पना को प्रसाद ने दर्शन के योग से प्राजल बनाया। 'प्रेम-पथिक' में प्रेम का आदर्श रूप प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है :

किन्तु न परिमित करो प्रेम
सौहार्द विश्वव्यापी कर दो।

—प्रेम पथिक, पृ. 24

व्यक्ति से व्यक्ति के प्रेम को केवल एक शारीरिक आकर्षण के आधार पर कवि ने चित्रित नहीं किया। प्रेम तो दो हृदयों का मधुर मिलन है जिसमे एक-दूसरे का व्यक्तित्व अपनी पृथक सत्ता खो देता है। प्रेम के साथ प्रसाद सौन्दर्य को भी 'चेतना का उज्ज्वल वरदान' मानते है। प्रेम के प्रति इस उदात्त कल्पना के सहारे प्रणयी जीवन की उच्चतम भावभूमि तक जाता है। व्यक्ति से आरम्भ होकर यह प्रेम-भावना मानव तक प्रसरित होती है। प्रेम साधारण प्रणय की भाँति नहीं है, जो केवल दो प्राणियों

क बीच की वस्तु बन जाता है, उसका क्षेत्र व्यापक है। मनु को प्रेम करनेवाली श्रद्धा सम्पूर्ण मानवता के कल्याण की कामना करती है। प्रसाद ने अपनी प्रेम कल्पना में मनोविज्ञान और दर्शन से भी सहायता ली और उसे आदर्श रूप में अंकित किया।

नारी-पुरुष की समस्या चिरन्तन है। आधुनिक युग में उसका स्वरूप और भी जटिल हो गया। प्रसाद पुरुष को किंचित कठोर और नारी को कोमल भावनाओं की प्रतिमूर्ति-सी मान लेते हैं। नारी-रूप का अंकन करने में उनका दृष्टिकोण एक आदर्शवादी का रहा है। नारी को उन्होंने एक उच्च स्थान दिया। श्रद्धा, देवसेना आदि नारियों का चरित्र महान् है और वे अपने प्रत्येक रूप में आकर्षण का केन्द्र बनती हैं। मनु का समस्त पौरुष श्रद्धा के चरणों पर नत शिर-सा दिखाई देता है। नारी को श्रद्धा के रूप में स्वीकार करनेवाले प्रसाद कहते हैं :

> नारी माया ममता का बल
> वह शक्तिमयी छाया शीतल।
>
> —कामायनी, दर्शन सर्ग

नारी-पुरुष के सम्बन्धों को दृढ़तर बनाने के लिए प्रसाद विश्वास की आवश्यकता का अनुभव करते हैं। इन दोनों का मिलन ही जीवन की पूर्णता है। पुरुष का हृदय नारी के अभाव में मरुप्रदेश है और नारी भी पुरुष के बिना विटपविहीन बेलि की भाँति है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। नारी का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप 'माता' का है, जिसमें उसका प्रेम विस्तृत हो जाता है। नारी-पुरुष की समस्या को एक चिरन्तन प्रश्न के रूप में प्रसादजी ने स्वीकार किया और उसका उत्तर दिया।

राष्ट्रीयता और मानवीयता

भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रति अनुराग के मूल में प्रसादजी की राष्ट्रीय भावना कार्य करती है। वे एक ऐसे युग में उत्पन्न हुए थे जब कि देश दासता के बन्धनों से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहा था। अन्य रचनाकारों की भाँति उन्होंने भी इसमें सहयोग दिया। उनकी भावना साधारण राष्ट्रीयतावादी कवि से किंचित भिन्न है। प्रसाद का दृष्टिकोण सांस्कृतिक अधिक है। वे किसी क्रांतिकारी कवि की भाँति उद्बोधन-गीत नहीं गाने लगते, किन्तु क्रमशः एक ऐसी परिस्थिति की योजना करते हैं, जिसमें राष्ट्र की संस्कृति और परम्परा का चित्र हो। 'स्कन्दगुप्त' में मातृगुप्त ने जो राष्ट्रगीत गाया है उसमें कवि ने देश के एक दीर्घ इतिहास को लिपिबद्ध किया है। नाटकों में राष्ट्रीय भावना अवश्य अधिक प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत हुई, किन्तु काव्य में वह सांस्कृतिक संकेत देती है, रवीन्द्र की तरह।

प्रसाद की विचारधारा के पीछे उनका मानवीय स्वर है। जीवन के शाश्वत उपादानों को लेकर उन्होंने काव्य का निर्माण किया। समाज और युग परिवर्तित हो

जाते है, किन्तु मानवीय भावनाओ के कुछ पक्ष बराबर जीवित रहते है। सुख-दुख, प्रेम घृणा, जीवन मरण आदि प्रश्न बने ही रहते है। जो रचनाकार जितना अधिक महान् होता है, वह जीवन की उतनी ही विस्तृत समस्याओ पर विचार करता है। प्रसाद मानव को सर्वोपरि स्वीकार करते है। मनु मानवता का प्रतीक है और उसकी आन्तरिक भावनाएँ व्यक्तिगत न होकर समाजगत है। वे मानव मन का प्रतिनिधित्व करती है और उसमे जीवन की गहनता है। श्रद्धा के द्वारा कवि ने मनु को जो जाग्रत सन्देश सुनाया, वह मानवता के लिए है :

यह नीड मनोहर कृतियो का
यह विश्व कर्म रगस्थल है
है परम्परा लग रही यहाँ
ठहरा जिसमे जितना बल है।

प्रसाद जो सन्देश देते है, वह सम्पूर्ण मानवता के लिए होता है। 'कामायनी' मे उनका मानववाद अपने प्राजल रूप मे आया है जहाँ मानवता के लिए अनेक मगलमय सन्देश मिलते है। 'इडा' और 'सघर्ष' सर्गो मे आधुनिक वैज्ञानिकता, भौतिकवाद, विषमता आदि का चित्रण कवि ने किया है। वह इससे मुक्ति पाने का उपाय भी प्रस्तुत करता है और समरसता का मार्ग दिखाता है। श्रद्धा मनु को समझाती है कि दूसरो को हँसते देखकर सदा प्रसन्न रहो। सब कुछ अपने मे भरकर मनुष्य व्यक्तित्व का विकास नही कर सकता। वसुधा मे करुणा का प्रसार ही वास्तविक सुख सन्तोष है। इस दृष्टि से प्रसाद किचित प्रगतिशील है। मार्क्सवादी आलोचक जार्ज थाम्पसन ने आधुनिक कविता की आलोचना करते हुए लिखा है कि वह अत्यधिक व्यक्तिवादी हो गयी है और उसने जीवन के स्रोत से अपना सम्पर्क ही खो दिया है।[3] महान कवियो की भाँति प्रसाद का काव्य जीवन से अनुप्राणित है और जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति उसका उद्देश्य है।

प्रसाद काव्य की चेतना अपने युग, समाज और इतिहास से प्रभावित है। प्रसाद एक जागरूक कवि है और परिस्थिति की अवहेलना नही करते। बिखरी हुई सामग्री को एक सूत्र मे बाँधने का प्रयास करते हुए उन्हे देखा जा सकता है। विश्व के महान कृतिकारो के समीप उनके सम्पूर्ण कृतित्व को रखने से प्रतीत होता है कि प्रसाद की प्रवृत्तियाँ श्रेष्ठ निर्माता की-सी है और उनमें मानव-मूल्य है। उनके साहित्य मे समाज, देश, मानव, दर्शन आदि विषयो पर विचार बिखरे हुए है, जिनसे उनकी चिन्तन-प्रतिभा का आभास मिलता है। 'उनका कृतित्व प्रमाणित करता है कि जिन रचनाकारो मे खुद का अपना रचना-ससार बना लेने का धैर्य होता है, वे स्वच्छन्दतावाद की सीमाओ के बावजूद स्वय को स्थापित कर लेते है और उन्हे नकारना सम्भव नहीं होता।"[4]

कवि और काव्य का मूल्याकन इस आधार पर होता है कि युग तथा साहित्य

को उसकी देन क्या है। कवि ने अपनी रचना से किन उदात्त भावनाओं को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। जो रचनाकार जीवन के अधिकाधिक पक्षों का अंकन करता है उसे एक व्यापक दृष्टि रखनी पड़ती है। महान् कवि एक विस्तृत भूमि पर कार्य करते है। वे जीवन का कोना कोना झाकते है और उनकी कल्पना जड चेतन, पशु-पक्षी सभी को अपनी सीमा मे ले आती है। अपनी प्रतिभा के सहारे वे व्यापक भावना का प्रकाशन सफलतापूर्वक करते हैं। उनकी शैली अपने लक्ष्य का प्रतिपादन कुशलता से कर लेती है। कवि और अन्य साधारण लेखक के विषय-प्रकाशन मे अन्तर होता है। कवि एक सांकेतिक कलाकार है, वह निर्देश कर देता है, अधिक व्याख्या का उसे अवसर नही। इसीलिए 'काव्य-प्रकाश' ध्वनि काव्य को उत्तम कहता है। कवि को भावना और भाषा मे चित्र का निर्माण करना पड़ता है। अनुभूति का सत्य, भावना की सफल अभिव्यक्ति, युग चेतना का ग्रहण और स्वस्थ दर्शन कवि की महानता के परिचायक है।

प्रसाद का काव्य निर्माण एक क्रमिक विकास के रूप मे हुआ। वे स्वच्छन्दतावादी कलाकारो की भाँति न थे जो अपने प्रथम विद्रोही स्वर मे ही साहित्य की प्रचलित परम्परा को प्रकम्पित कर देते है। प्रसादजी क्रियाशील रचनाकार है। उन्होंने क्रमशः अपने लक्ष्य तक जाने का प्रयास किया और उनका प्रत्येक चरण एक नये विकास का सूचक है। उन्होंने अपनी प्रतिभा को उत्तरोत्तर विकसित किया और समस्त अध्ययन सामग्री का उपयोग करते गये। 'चित्राधार' का कवि रीतिकालीन परम्परा से प्रभावित है। रसाल, चन्द्रोदय, शारदीय शोभा आदि विषय प्राचीन ही है। आख्यानक कविताओ की विषय सामग्री भी कालिदास आदि से प्राप्त की गयी है। प्रसाद इस अवसर पर किसी आदर्श की खोज करते दिखाई देते है। साथ ही उनकी अभिरुचि नवीन वस्तुओं की ओर भी है। विसर्जन, कल्पना सुख, नीरव प्रेम आदि कविताएँ उनकी नयी दिशा की सूचक है। आरम्भ मे ही प्रसाद को, अनुभूति को अधिक दृढता से ग्रहण करते देखा जा सकता है। वे जिस आधार भूमि पर खड़े है उसका क्षेत्र सीमित नही है और कवि मे जिज्ञासा की भावना उसे आगे ले जाती है। कवि जगत के रहस्य को जानने के लिए आकुल है। आख्यान-कविताओ मे वस्तु-वर्णन की अपेक्षा भावना की ओर अधिक ध्यान दिया गया। प्रसाद के आरम्भिक चरण मे उनके व्यक्तित्व का पूर्ण परिचय नही प्राप्त होता किन्तु उसमे विकास की रेखाएँ अवश्य निहित है।

'कानन कुसुम' का कवि भाव, भाषा, छन्द की दृष्टि से अधिक स्वतन्त्र होने की चेष्टा मे है। भूमिका के अनुसार 'इसमे रंगीन और सादे, सुगन्धवाले और निर्गन्ध, मकरन्द से भरे हुए, पराग मे लिपटे हुए सभी तरह के कुसुम है।' इसमे कवि ने कई प्रकार के प्रयोग किये जिन्हे आगे चलकर उसने विकसित किया। नमस्कार, करुणाकुंज, मर्मकथा, हृदयवेदना, सौन्दर्य, एकान्त, रमणी हृदय आदि ऐसे विषय है

जिन्हें छायावाद की प्रमुख वस्तु कहा जा सकता है। किन्तु निशीथ नदी, जलविहारिणी आदि में प्राचीनता का प्रभाव है। 'कानन-कुसुम' का कवि अपने व्यक्तित्व के निर्माण मे प्रयत्नशील है। भावनाओं में आन्तरिक अनुभूति का प्रवेश हो रहा है और व्यक्तिगत अंश भी उसमें दिखाई देने लगता है। कवि का 'मानस-युद्ध' व्यक्त हो उठा है और वह उसकी भावुकता को और भी उद्दीप्त कर देता है। रमणी-हृदय की विवेचना के साथ प्रेम की उदात्त परिभाषा भी प्राप्त होती है। प्रकृति और मानवीय भावनाओ के तादात्म्य का आरभ इसी अवसर पर हुआ और अन्त में कवि की यह कल्पना एक जीवन-दर्शन में प्रस्तुत हुई। प्रकृति के कण-कण मे किसी अज्ञात प्रियतम का आभास दार्शनिक प्रवृत्तियों का समावेश कराता है :

> निस्तब्धता संसार की उस पूर्ग से है मिल रही–
> पर जड प्रकृति सब जीव में सब ओर ही अर्नामिल रही।
>
> –कानन कुसुम, 'एकान्त में'

'कानन कुसुम' की आख्यानक कविताओ की प्रेरणा यद्यपि प्रसादजी को प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त हुई तथापि उसमें उन्होंने अपनी मौलिक भावनाओ को प्रकाशित किया। 'चित्रकूट' में उन्हे अधिक सफलता प्राप्त हुई। भाषा का सुन्दर चयन और नवीन कल्पना उसमे दिखाई देते है। 'प्राची में कुमुदिनीनाथ का उदय रत्नाकर के सुधा-कलश अथवा मन में धीरे-धीरे उठनेवाली नयी आशा की भाँति है।' चित्र-निर्माण की कुशलता भी इस कविता मे प्राप्त होती है। राम के अक में सोती हुई जानकी का दृश्य है :

> नील गगन सम राम, अहा अक में चन्द्रमुख
> अनुपम शोभाधाम, आभूषण थे तारका।

'कानन-कुसुम' में सवैया, कवित्त के स्थान पर नवीन छन्दों को अपनाया गया। इस प्रकार कवि नव-निर्माण मे प्रयत्नशील दिखाई देता है। प्रसादजी आरम्भ मे ही आख्यानक कविताओं की ओर उन्मुख प्रतीत होते है। प्रेम-पथिक, महाराणा का महत्त्व, करुणालय आदि मे उन्होंने कई प्रयोग किये। कवि का लक्ष्य साधारण आख्यानक काव्यों की भाँति किसी कथा का वर्णन नहीं है, किन्तु इनके द्वारा उसने अपनी शैली का परिष्कार किया। कथा भावों को गति देने का कार्य भी करती है। इन आख्यानक कविताओं में कवि को भाव-प्रकाशन में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। प्रेम-पथिक' में प्रेम के विराट और भव्य रूप का अंकन किया गया। कवि का यह प्रेम-दर्शन क्रमशः गतिमान होता जाता है। करुणालय में करुणा की भावना को महत्व प्राप्त हुआ। यही करुणा क्रमशः व्यापक होती जाती है और बौद्ध दर्शन से मिलकर उदार विचारधारा की नियोजना करती है। 'महाराणा का महत्त्व' में एक स्वाभिमानी

का चरित्र-चित्रण किया गया है और कवि का दृष्टिकाण इस अवसर पर आदर्शवादी है। अतुकान्त छन्दो मे लिखी गयी य आख्यानक कविताएँ कवि क लिए एक प्रयोगशाला और पृष्ठभूमि का कार्य करती है, जिसमे आगे चलकर वह 'कामायनी' के निर्माण मे मफल हो सका। इनमे प्रबन्धकार का कथा-अश यद्यपि गोण हे, किन्तु भाव-प्रकाशन मे किसी महत्तर कृति की मूचना मिल जाती है।

प्रमाद के काव्य-विकास मे 'आँसू' का विशेष महत्त्व है। हिन्दी के वियोग-काव्यो की परम्परा का एक नया रूप उसके द्वारा प्रस्तुत हुआ। गीतिकाव्य का वैभव उसमे प्राप्त होता है। कवि पूरी मार्मिकता से अपनी आन्तरिक पीड़ा का प्रकाशन करते हुए देखा जाता है। किन्तु इस वेदना का अन्त एक साधारण प्रेमी की आत्माभिव्यक्ति मे नही हो जाता। अपन नवीन कलेवर मे 'आँसू' वेदना-दर्शन के द्वारा एक सार्वभौमिक सन्देश देता है। कवि के व्यक्तित्व का यह विकास उसके सुनिश्चित भविष्य का सूचक है। व्यक्तिवादी ढग स आरम्भ होनेवाली वेदनानुभूति मानवता तक जाती है। प्रसाद को अपनी वैयक्तिक अनुभूतिया मे युद्ध करते हुए देखा जा सकता है और अन्त मे उन्होंने इस पर विजय प्राप्त की। अपने कला-पक्ष मे 'आँसू' की भावधारा मे मर्म का स्पर्श कर लन की क्षमता है, जो उसे एक श्रेष्ठ वियोग-काव्य की श्रेणी मे ले आती है। सजीव उपमाओ के द्वारा नारी का रूप-वर्णन सशक्त कल्पना का परिणाम है। उसमे जीवन का ताप है; किन्तु सृजनशील कलाकार इसके ऊपर अपने जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा करता है। 'करुणा कलित हृदय की विकल रागिनी' अन्त मे अपने आँसू 'विश्व सदन' म बरसा देना चाहती है। एक महान् कवि की भाँति उन्होने अपने वैयक्तिक पक्ष का उन्नयन किया।

प्रसाद की गीत सृष्टि का आरम्भिक स्वरूप किंचित शिथिल और मन्थर है। 'झरना' का कवि अपनी दुर्बलताओं का नही छिपा पाता। भावना के क्षेत्र मे वैयक्तिक पक्ष अधिक हे और उसका पूर्ण उदात्तीकरण वह नही कर पाता। कही-कही भावो का प्रकाशन अत्यन्त साधारण रूप म आ जाता है। 'किसी पर मरना, यही तो दुख है' आदि पक्तियो मे उर्दू शैली की छाया भी प्रतीत होती है। 'झरना' मे अनुभूति का सत्य हे ओर इसी कारण कवि को एक ऐसी दृढ़ भूमि प्राप्त हो जाती है, जिसके सहारे वह आगे बढ़ सकता है। 'विषाद' मे वह कहता है :

> निर्झर कौन बहुत बल खाकर
> बिलखाता ठुकराया फिरता ?
> खोज रहा है स्थान धरा म
> अपने ही चरणो मे गिरता।
>
> —झरना, पृ. 27

गीतो की दृष्टि से 'लहर' प्रौढ रचना है। 'लहर' मे 'आँसू' की-सी मनोरम कल्पना

तथा प्रौढ़ अभिव्यक्ति दिखाई देती है। काव्य और दर्शन अब अलग-अलग नहीं रह जाते और न कवि किसी विचार को भावना पर आरोपित कर उसे बोझिल ही करता है। काव्य और दर्शन का समन्वय 'लहर' के गीतों की विशेषता है। जीवन के अनेक अनुभवों को अपने अध्ययन के साथ कवि प्रस्तुत करता है। अब भी उसके हृदय में स्मृतियाँ हैं किन्तु प्रेमी उनमें उलझकर नहीं रह जाता, वरन् जीवन-पथ पर अग्रसर होता है। अपनी आत्मकथा के विषय में कहते हुए भी वह संयत है और व्यर्थ ही अतीत की भूलभुलइयों में नहीं पड़ता। अपनी आन्तरिक भावना से इस विशाल विश्व की माप करते हुए कवि एक ऐसी भावभूमि पर पहुँचा प्रतीत होता है जहाँ समस्त वसुन्धरा ही उसका क्षेत्र बन जाती है। आख्यानक कविताओं में निहित विचारधारा एक चिन्तनशील कवि का ही कार्य हो सकती है। 'अशोक की चिन्ता' में बौद्ध दर्शन की छाया है, किन्तु करुणा को अधिक महत्त्व दिया गया। 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' उसका मूल स्वर है। 'प्रलय की छाया' प्रसाद की सर्वोत्तम कविताओं में है। नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उसके भावों में पल-पल परिवर्तित रूप को लेकर अत्यन्त सजीव है। कवि एक चित्रकार की भाँति दिखाई देता है, जो भाषा के माध्यम से मनोभावना का अंकन करना चाहता है। कवि ने कमला में 'पराजित सौन्दर्य की रानी' की प्राण प्रतिष्ठा कर दी। सम्पूर्ण चित्र तूलिका के वर्णों से रंजित है। आरम्भ से अन्त तक कवि एक मादक वातावरण जीवित रखता है और उसी के भीतर से सौन्दर्य और नारी-जीवन की विडम्बना झाँकती है। क्षण-क्षण में परिवर्तित चचला सुन्दरी के मनोभावो को सजग कलाकार ने अंकित किया है। 'लहर' का गीतकार अधिकांश रूपो में सफल है। 'बीती विभावरी जाग री', 'मेरी आँखों की पुतली में तू बनकर प्राण समा जा रे', 'ले चल वहाँ भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे' आदि गीत हिन्दी के प्रतिनिधि गीतों के रूप मे रक्खे जा सकते हैं।

नाटककार के रूप में प्रसाद का व्यक्तित्व विशिष्ट है, किन्तु इस अवसर पर वे कवि-हृदय की ही अभिव्यक्ति करते हैं। भावुक पात्रो की योजना के अतिरिक्त गीतों में भी भावनामयता का प्राधान्य है। गीत पात्रों की मनोदशा का परिचय देते है, यद्यपि कथानक के क्रमिक विकास मे उनका अधिक सम्बन्ध नहीं रहता। इनमें विभिन्न प्रकार की भावनाओं का समावेश हुआ, किन्तु अधिकांश प्रणय गीत हैं और उनका उद्देश्य पात्रों के अन्तरतम का प्रकाशन है। 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' आदि कतिपय राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित गीतों के अतिरिक्त अन्य गीतों में व्यक्तिगत अनुभूतियाँ ही प्राप्त होती हैं। देवसेना, मालविका के साथ मातृगुप्त आदि को भी गीतों मे प्रेम है और वे भाव-विभोर होकर गाते है। शैली की दृष्टि से इन गीतों में संगीतमयता है और इन्हें शास्त्रीय स्वर-लिपि में बाँधा जा सकता है। नाटकों मे प्रसाद ने गीतिकाव्य के कई प्रयोग किये और कई गीतों को उनकी प्रतिनिधि रचनाओं के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है। 'हे लाज भरे सौन्दर्य बता दो', 'आह वेदना

मिनी विदाई' आदि गीत कवि की सुन्दर सृष्टि है। नाटकों में प्रयोगों के कारण प्रसाद 'कामायनी' को भी गीति-तत्त्व से भर सके। उनके गीतों में इतनी शक्ति है कि वे केवल भावोच्छ्वास बनकर नहीं रह जाते, उनमें चिन्तन का भी समावेश हो जाता है।

'कामायनी' प्रसाद के सम्पूर्ण व्यक्तित्व से निर्मित है। उसमें कवि की कला का चरमोत्कर्ष है और वह समग्र जीवन-चिन्तन से अनुप्राणित है। इस महाकाव्य की दार्शनिक रेखाएँ आरम्भ से ही प्राप्त होती हैं और कवि ने इन्हीं को विकसित किया। 'चित्राधार' में शिव के प्रति भक्ति-भावना का परिचय प्राप्त होता है। 'प्रेम पथिक' में भी 'शिव समष्टि' की चर्चा है। कुलगत शैव भावना को क्रमशः प्रसाद ने एक जीवन दर्शन में परिणत किया। 'कामायनी' में इच्छा, ज्ञान, क्रिया का समन्वय प्रत्यभिज्ञा दर्शन से प्रेरित है। समरसता तथा आनन्द की कल्पना कवि को यहीं से प्राप्त हुई और उसने उन्हें अधिकाधिक व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया। 'कामायनी' का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण 'कामना' नाटक में भी दिखाई देता है। पात्र एक विशेष मनोविकार का प्रतिनिधित्व करते हैं और अन्त में आनन्द की प्रतिष्ठा होती है। मानवीय भावनाओं के प्रति प्रसाद प्रारम्भ से ही सजग रहे और उन्होंने भावना का अंकन करने में सफलता प्राप्त की। 'कामायनी' का कवि मानव मन की व्याख्या करता है और अन्त में उसमें आनन्द की प्रतिष्ठा कराता है। उसमें कृतिकार का एक समन्वयवादी दृष्टिकोण रहा है और हृदय-बुद्धि, नारी-पुरुष आदि का मिलाना चाहता है। समरसता अथवा समन्वय से आनन्द का सृजन होता है। इस आनन्द को मानवता के कल्याण में नियोजित करना रचनाकार का मुख्य उद्देश्य है। प्रसाद एक मानववादी के रूप में 'कामायनी' में आते हैं जो जीवन को सर्वांग सम्पूर्ण तथा मानवता को सुखी बनाने में प्रयत्नशील है। समरसता समस्याओं का उत्तर देती है। व्यक्तिगत अनुभूतियों से ऊपर उठकर 'कामायनी' के कवि ने विचार किया। जीवन की प्रहेलिका पर उन्होंने अपना मन्तव्य दिया। भावना क्षेत्र में कामायनीकार व्यापक दृष्टिकोण लेकर प्रस्तुत हुआ। कला की दृष्टि से 'कामायनी' का कवि प्रौढ़ है। उसकी भाषा और कल्पना भावना को वहन कर ले जाती है। वह एक सजग कलाकार की भाँति विश्वास के साथ आगे बढ़ता है। काव्य बिम्ब के प्रति प्रसादजी की रुचि आरम्भ से ही थी 'कामायनी' में उसका विशद रूप है। मनु, श्रद्धा, इड़ा के चित्र प्रस्तुत करने में रूप, गुण, भाव का अंकन कवि कर देता है। प्रकृति और मन की विभिन्न अवस्था को चित्रित करने में भी वह कुशल है। काव्य और चिन्तन के संयोग से निर्मित 'कामायनी' प्रसाद के महान् कृतित्व का प्रतिनिधित्व करती है।

प्रसाद निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर रहे। आरम्भ की वैयक्तिक चेष्टाओं का क्रमशः उन्होंने उदात्तीकरण किया और अन्त में उनका अधिक निर्वैयक्तिक पक्ष सम्मुख आया। महान् कलाकार की भाँति उन्होंने अपनी व्यक्तिगत भावनाओं पर विजय प्राप्त

की और उनका स्वर जगत से एकाकार हुआ। अपनी विकासशील प्रवृत्तियो के कारण प्रमाद सम्पूर्ण सामग्री का उपयोग करते गये। प्रारम्भ मे उनमे भावना का आवेग अधिक था; धीरे-धीरे चिन्तन-मनन के द्वारा बौद्धिकता आई। गेटे के विषय मे भी हेनरी थॉमस ने लिखा है : "वीमर मे आकर उसके यौवन का ताप कम हो गया। अब वह ऐसा विद्रोही न रहा जो ससार को नष्ट कर देना चाहता हो। वह एक दार्शनिक हो गया, जो उसे समझने का प्रयत्न कर रहा है।" 'सारोज आफ वर्थर' से लेकर 'फाउस्ट' तक उसके जीवन की एक महान् साधना छिपी हुई है। प्रसाद के आरम्भिक और अन्तिम चरण के मध्य अनेक प्रयोग होते है जिनके द्वारा वे 'कामायनी' की महानता तक आ सके। भावना की दृष्टि से उनका क्षेत्र अधिकाधिक विस्तीर्ण होता गया और कला क्रमशः प्रौढ होती गयी।

प्रसाद ने अपने जीवनानुभव तथा अध्ययन को काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया। कल्पना और अनुभूति के योग से उन्होंने जिन आदर्शो का निर्माण किया उनमे जीवन दर्शन को सन्निहित करने का प्रयत्न है। नारी का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप श्रद्धा है। मनु उत्थान पतन मे भरा प्राणी है जिसकी आकाक्षा ऊपर उठने की रहती है। प्रसाद ने 'ऑसू' में व्यक्तिगत प्रेम-भावना को एक व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया और उनकी कल्पना ससार की करुणा को भी अपनाती गयी। 'लहर' के 'बौद्ध दर्शन' से प्रभावित गीतो मे उसका अधिक स्पष्ट स्वरूप सम्मुख आता है। प्रसाद के जीवन दर्शन की पृष्ठभूमि सास्कृतिक अवश्य है किन्तु वह युग की चेतना का साथ लेकर चलती है। समरसता, आनन्दवाद, श्रद्धामय नारी आदि का नवीन रूप उन्होंने प्रस्तुत किया। प्रसाद कोरे भावोच्छ्वास अथवा भावुकता पर जीवित रहनेवाले कवि नहीं है। उनका काव्य जीवन से प्रेरणा लेकर उसी के लिए कार्य करता है। जीवन का उन्होंने दृढता के साथ अपनी भावना से समन्वित किया और कतिपय समस्याओ पर अपना मन्तव्य देते गये। जीवन के प्रति उनकी गहरी आस्था है और वे उसका उपभोग आवश्यक समझते है। प्रसाद का जीवन-दर्शन मानवता के कल्याण मे नियोजित होता है।

प्रसाद का काव्य अपने युग की चेतना से प्रभावित है। आधुनिक समय की बौद्धिकता, भौतिकवाद तथा विज्ञानवाद के अतिवाद से त्रस्त मानवता के लिए उन्होने 'कामायनी' मे श्रद्धाजन्य विश्वास और सहृदयता को सम्मुख रखा। 'इडा' सर्ग मे काम के मुख मे कवि ने ससार की विषमता का वर्णन कराया है। सारस्वत प्रदेश विश्व का प्रतीक-सा बन जाता है। गाधी-युग के प्रसाद सत्य, अहिसा के साथ व्यावहारिक समरसता और आनन्दवाद को भी उपस्थित करते है। आधुनिक युग का सघर्ष केवल दो राष्ट्रो अथवा शक्तियो के मध्य नही है। कवि ने इस समस्या के मूल मे जाकर विचार किया। वास्तव मे मानव की प्रवृत्तियाँ ही आपस मे सघर्ष कर रही है। उसके मन मस्तिष्क मे निरन्तर युद्ध चल रहा है (इडा सर्ग)। नारी-पुरुष, आदर्श यथार्थ, मन-मस्तिष्क मे समन्वय स्थापित करके प्रसाद ने आनन्द को प्रतिष्ठित किया।

भौतिकवाद मे पनी हुई सारस्वत प्रदेश की प्रजा ने स्वय अपने नियामक मनु के विरुद्ध विद्रोह किया था। अन्त में श्रद्धा द्वारा स्थिति मे सुधार होता है। श्रद्धा वह कल्याणकारिणी शक्ति है जिसमे कवि ने आधुनिक युग की अधिकाश समस्याओ का उत्तर दिया। राजनीति मे होनेवाला राजा-प्रजा का सघर्ष भी कामायनी में होता है। इस अवसर पर दोनो में समन्वय पर प्रसाद ने अधिक जोर दिया। युग की चेतना को ज्यो-ज्यो वे पहचानते गये उनका स्वर अधिक बौद्धिक होता गया और उन्होंने अपने मानवीय दृष्टिकोण को सामने रखा। प्रसाद इतिहास को पृष्ठभूमि मे रखकर आगे बढ़ते है। देश की सस्कृति और परम्परा के आधार पर वे नव-निर्माण मे सलग्न होते है। नाटको को उन्होने इस ऐतिहासिक-सास्कृतिक अभिव्यक्ति का प्रमुख विषय बनाया। प्रसादजी अपने साहित्य के द्वारा एक ओर यदि युग की चेतना को प्रस्तुत करना चाहते है तो साथ ही वे एक सास्कृतिक पुनरुत्थान की भी कामना करते है।

प्रसाद-काव्य का अवलोकन करने पर अनेक बिखरे हुए सूत्र प्राप्त होते हैं जिनमे कवि की विचारधारा सन्निहित है। करुणा के महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने 'करुणालय' की रचना की। करुणा-दर्शन की मूल प्रेरणा कवि को बौद्ध-दर्शन से प्राप्त हुई। ससार के प्रत्येक प्राणी पर करुणा करने का सन्देश वे देते है। देश का स्वाभाविक गर्व होते हुए भी प्रसाद मे सहिष्णुता की व्यापक भावना है जो उन्हे मानवीयता के विस्तृत धरातल पर प्रतिष्ठित करती है। 'चन्द्रगुप्त' की कार्नेलिया 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' का गान गाती है। 'स्कन्दगुप्त' का मातृगुप्त आर्यजाति के गौरव का गान करता है। देश के प्रति कवि का अनुराग है किन्तु वह सम्पूर्ण मानव जाति की कल्पना एक कुटुम्ब के रूप में करता है। जगत-जीवन के विषय मे कवि ने सन्देश दिये है जिनके मूल में एक दार्शनिक कवि का चिन्तन बोलता है।

व्यापक भावना के साथ प्रसाद मे कलात्मक परिपक्वता है। वे प्रबन्धकार तथा गीतकार दोनो रूपो मे सम्मुख आते है। आख्यानक कविताओ मे प्रबन्धकाव्य के प्रति उनकी अभिरुचि दिखाई देती है, किन्तु 'कामायनी' मे आकर उनकी सम्पूर्ण प्रतिभा मुखर हुई। गीतो म प्रणय, देश प्रेम, दर्शन आदि की भावनाओ को उन्होंने सन्निहित किया। भावना-प्रकाशन मे विविध प्रकार के छन्दो का उन्होन प्रयोग किया और इसके लिए उन्हे स्वतन्त्र योजना भी करनी पडी। अतुकान्त कविताओ में उन्होंने सफलतापूर्वक कार्य किया। प्रसाद का शब्द-भाण्डार प्रचुर है और सस्कृत के तत्सम शब्द भी उसमे मिलते है। उनकी भाषा एक क्लासिक कलाकार की-सी है जिसमे शब्दो का चरमोत्कर्ष प्राप्त होता है। भाषा के द्वारा कवि ने भावनाओ का परिष्कार किया और वह समस्त अकन सफलतापूर्वक कर गया। उपमा तथा बिम्ब-प्रतीक-योजना मे प्रसाद की मौलिक उद्भावनाएँ है। अपनी कल्पना के द्वारा उन्होने नूतन चित्र निर्मित किए और मनोविकारो को भी वे अपनी लेखनी से चित्रित कर सके। प्रसाद प्रायः सकेत से काम लेते है, उन्हे अधिक व्याख्या करने की आवश्यकता नही पडती और

न वे बहुत विस्तार में ही जाते हैं। वे किसी वस्तु के अन्तराल में प्रवेश कर उसके मूल तत्त्व को जानने का प्रयत्न करते हैं। भावना पर जोर देने के कारण वे अलंकरण का अधिक आग्रह नहीं करते। यद्यपि उनकी अभिव्यंजना को सरल नहीं कहा जा सकता, किन्तु उसमे कवि का दृष्टिकोण भावाभिव्यंजक है। उनमें लक्षणा का प्राधान्य है। सास्कृतिक धरातल पर कार्य करने के कारण प्रसाद का साहित्य सामान्य पाठक के लिए किंचित कठिन प्रतीत होता है, किन्तु विश्व के महान् कवि होमर, दान्ते, मिल्टन, गेटे, कालिदास के विषय में भी यही कहा जा सकता है।

प्रसाद का व्यक्तित्व बहुमुखी है। कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध आदि क्षेत्रों में उन्होंने कार्य किया। अल्प आयु में ही उन्होंने अनेक रचनाएँ प्रस्तुत कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। इसमे सन्देह नहीं कि सम्पूर्ण साहित्य में उनका कवि रूप प्रधानता प्राप्त करता है। नाटको के भावुक पात्र, अनेक गीत, स्वगत भाषण सभी में भावनावान कवि के दर्शन होते हैं। ऐतिहासिक पात्रो को उन्होंने कल्पना के द्वारा नवजीवन प्रदान किया और वे प्राचीन होकर भी इस युग के प्रतीत होते हैं। मातृगुप्त, देवसेना आदि चरित्रों की कल्पना प्रसाद के कवि-हृदय द्वारा ही सम्भव थी। कहानियो में भी कल्पना का अंश अधिक है और उन्हे गीतात्मक कहानियाँ कहना अधिक उपयुक्त होगा। यथार्थ को प्रस्तुत करने में भी प्रसाद अपने आदर्श का ध्यान रखते है। 'तितली' तथा 'कंकाल' उपन्यासो मे उन्होने समाज की वर्ण-व्यवस्था, धर्म, राजनीति, ग्राम आदि सामयिक समस्याओ पर विचार किया। अधूरा उपन्यास 'इरावती' अपने इस अपूर्ण स्वरूप मे भी साहित्य का गौरव है और उसका आरम्भ ही अत्यन्त काव्यात्मक है, "उसकी आँखे आशाविहीन सन्ध्या और उल्लासविहीन उषा की तरह काली और रतनारी थीं..." प्रसाद का बहुमुखी व्यक्तित्व एक चिन्तक और कवि के योग से निर्मित है। प्रसाद के सम्पूर्ण कृतित्व पर एक विहंगम दृष्टि डालने के पश्चात उन्हे विश्व के शीर्ष कवियो के निकट स्थान देना पड़ता है। प्रसाद का साहित्य एक सांस्कृतिक सीमा के अन्तर्गत आता है और उसके प्रसार की भी एक सीमा स्वीकार करनी पडती है, किन्तु उसकी मूल चेतना का क्षेत्र व्यापक है। प्रसाद अपने कृतित्व में महान् हैं और श्रेष्ठ रचनाकारों का-सा उनका व्यक्तित्व है।

संदर्भ

1. काव्य और कला..., पृ 22
2. इरावती, पृ. 2
3. थॉम्पसन . मार्क्सिज़्म एंड पोयट्री, पृ. 58
4. प्रेमशंकर · हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ. 203

कामायनी : आज के संदर्भ में

मुझ जैसे व्यक्ति के लिए जो विद्यार्थीकाल से ही कामायनी का जिज्ञासु पाठक रहा है और जिसने बीस-बाईस वर्ष की अवस्था में उसके विषय में अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की थीं, कामायनी पर नये सिरे से विचार करना एक प्रकार से आत्मपरीक्षा का क्षण है। हर गतिशील वस्तु विकास की प्रक्रिया से गुजरती है और ऐसी स्थिति में यदि कामायनी आचार्य शुक्ल, आचार्य वाजपेयी और नगेन्द्र से होकर अनेकानेक शोधप्रबन्धों से गुजरती हुई मुक्तिबोध, इन्द्रनाथ मदान, नामवरसिंह, रमेश कुन्तल मेघ और रामस्वरूप चतुर्वेदी तक को ललकारती रही है तो यह उसकी गत्यात्मकता का एक प्रमाण है।

आधुनिक परिवेश में, नयी कविता के युग में बैठकर, कामायनी पर एक दृष्टि दौड़ाने के पूर्व हमें संक्षेप में समीक्षा के उस इतिवृत्त को भी देख जाना चाहिए जो इस काव्य के इर्द-गिर्द उठता-गिरता रहा है। कामायनी का लेखन बीसवीं शती के द्वितीय शतक के उत्तरार्ध में कभी आरम्भ हुआ होगा, क्योंकि सम्पूर्ण चिन्ता सर्ग 'सुधा', अक्तूबर 1928 में प्रकाशित हुआ। 1935 मे इसका लेखन कार्य समाप्त हुआ और लगभग उसी समय इसका प्रकाशन। कामायनी को अपने आरम्भिक क्षणों में आचार्य शुक्ल जैसे प्रतिष्ठित आलोचक की सम्पूर्ण ममता नहीं मिली। साहित्य के इतिहास में कामायनी के कथानक ने कई पृष्ठ ले लिए हैं, जहाँ समीक्षक की वचनबद्धता नही मिलती। आचार्य शुक्ल मानते हैं कि यह काव्य बड़ी विशद कल्पनाओं और मार्मिक उक्तियो से पूर्ण है पर वे इड़ा की तुलना में श्रद्धा का पक्ष लेने से इन्कार कर देते हैं। वे कामायनी में मधुचर्या का अतिरेक और रहस्य की प्रवृत्ति को मानवता की पूर्णतया सुव्यवस्थित योजना में बाधक मानते हैं (हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ. 604)। कामायनी पर उनका सबसे बड़ा आक्षेप है कि इस विशद काव्य में कोई अन्तर्योजना तथा कोई समन्वित प्रभाव नहीं है। आचार्य शुक्ल छायावाद से जिस आक्रामक मुद्रा में मिले थे और तुलसी को सर्वोपरि स्वीकारने के बाद आधुनिक रूमानी काव्य से संवाद स्थापित करने में उन्हें जो कठिनाई मालूम हुई थी, उसे देखते हुए कामायनी के संबंध में उनका विवेचन एक प्रकार से मध्यमार्ग की तलाश अथवा

समझौते की कोशिश है। आचार्य शुक्ल जैसा समीक्षक यकायक अपने कदम पीछे नहीं हटा सकता था, पर कामायनी के जीवन-दर्शन से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए भी उन्होंने सभावनाओ के द्वार खोलनेवाली कृति का गौरव दिया, यह साधारण प्रशंसापत्र नहीं है।

कामायनी को एक अन्तराल का लाभ भी मिला और उस पर होनेवाले आक्रमण काफी 'फ़्यूज़' हो गये क्योकि हर समर्थ रचना पाठकों को सीधे सम्बोधित कर सकने की सामर्थ्य भी रखती है। जैसा कि छायावाद-संबंधी काव्य-विवेचन से स्पष्ट है, आचार्य शुक्ल को पहली गम्भीर चुनौती उनके शिष्य आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने दी। इस बीच प्रसाद की और भी विवेचनाएँ देखने में आईं पर इन प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करनेवाले आलोचक कामायनी से इतना अभिभूत थे कि उनकी बात प्रभाववादी आलोचना का संस्करण बनकर रह गई। आचार्य वाजपेयी ने कामायनी को छायावाद युग की स्थापना के रूप मे प्रतिष्ठित करना चाहा इसलिए स्वभाव से आधुनिकता के समर्थक और जड़ शास्त्रीय नियमों के विरोधी होते हुए भी उन्होने उसे केवल महत् काव्य ही नहीं प्रमाणित किया; वरन् वे उसे महाकाव्य घोषित करने के लिए काव्यशास्त्र का भी सहारा अनजाने मे ले बैठे। शायद वे शास्त्रियों को उन्हीं के अखाड़े में पछाड़ना चाहते थे, अन्यथा आचार्य वाजपेयी का मुख्य प्रद्येय कामायनी को एक महत् काव्य के रूप में व्याख्यायित करना और उसके जीवन-दर्शन तथा काव्य-सौन्दर्य को सही परिप्रेक्ष्य में देखना-समझना है। 'जयशंकर प्रसाद' नामक उनकी पुस्तक यों तो प्रसाद-संबंधी उनके समीक्षा-निबन्धों का संकलन है और अनेक स्थलो पर उसमें कामायनी का उल्लेख हुआ है; पर भूमिका अंश, प्रौढ़तर प्रयोग और कामायनी-विवेचन के निबन्ध इस दिशा में विशेष रूप से विचारणीय हैं। कामायनी की व्याख्या में आचार्य वाजपेयी सर्वप्रथम उसके मानवीय जीवनदर्शन का महत्त्व प्रतिपादित करते हैं, क्योंकि वे उसमे 'साहित्यिक प्रगतिशीलता' देखते हैं। वे यह भी मानते हैं कि यदि प्रसादजी में रहस्यवाद है भी, तो वह और उनकी आध्यात्मिक अनुभूति मानव-जीवन व्यापार की नींव पर खड़ी है (जयशंकर प्रसाद : भूमिका : पृ.. 5)। मानवीयता की छानबीन करते हुए आचार्य वाजपेयी ने कामायनी को जीवन के गहरे और बहुमुखी घात-प्रतिघातों और विस्तृत जीवनदशाओ में पद-पद पर आनेवाले उद्वेलनों को चित्रित करनेवाला, उन्हें सँभालनेवाला और कला में उन सबको सजीव करनेवाला काव्य माना है। उन्होंने प्रसादजी की शैली, वस्तु संघटन, कथा-निर्माण आदि की भी उत्कृष्टता प्रमाणित की है। आचार्य वाजपेयी ने कामायनी को भीतर-बाहर दोनों ओर से पकड़ने की चेष्टा की। बाहरी पकड़ के लिए शास्त्र तक का सहारा लिया और काव्य की भीतरी पकड़ तो उनकी मूल प्रवृत्ति ही है जिसके परिणाम से वे श्रेष्ठ स्वच्छन्दतावादी समीक्षक स्वीकारे जाते हैं। कामायनी को उसके आरम्भ काल से ही सर्वांग में समझने और उसे स्थापित करने में आचार्यजी ने

ऐतिहासिक कार्य किया।

डा नगेन्द्र के समीक्षाग्रन्थ 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ' मे कामायनी से सम्बद्ध पाँच निबन्ध सकलित हैं। कामायनी को परखने के लिए डा नगेन्द्र ने दो मुख्य अस्त्रों का उपयोग किया : काव्यशास्त्र और मनोविज्ञान। कामायनी का महाकाव्यत्व विवेचित करते हुए वे भारतीय साहित्यशास्त्र और पाश्चात्य विचारक एबरक्राम्बी दोनों का आश्रय लेते हैं। वे उसे 'मानव चेतना का महाकाव्य' कहकर सम्बोधित करना चाहते हैं (कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ : पृ 23) और लाजाइनस के ढग पर उसके उदात्त तत्त्व की विशेष सराहना करते है। कामायनी के अगीरस का प्रश्न काव्यशास्त्रीय है और समीक्षक की रसवादी दृष्टि का परिचायक। अन्यथा आज यह प्रश्न गौण माना जाता है कि काव्य का मुख्य रस क्या है। कामायनी म रूपक तत्त्व का सधान करत हुए, डा नगेन्द्र ने मनोविज्ञान, विशेषतया फ्रायड के असामान्य मनोविज्ञान का सहारा लिया और उसने भारतीय दर्शन का भी प्रवेश कराना चाहा जिसकी पूर्ण प्रतिष्ठा उनके निबन्ध 'कामायनी की दार्शनिक पृष्ठभूमि' मे हुआ है। इस प्रकार डा नगेन्द्र न कामायनी के कुछ पक्षो को उद्घाटित करने की सफल चेष्टा की है।

छायावाद की विवेचना क क्रम मे अनेक समीक्षकों ने कामायनी पर टिप्पणियाँ की और प्रसाद काव्य का अनुशीलन करनेवालो न तो इसका विस्तृत विवेचन भी किया। इनम विश्वविद्यालयो द्वारा प्रस्तुत होनेवाले शोधग्रन्थो की एक लम्बी सूची है। इसमे सन्देह नही कि इन प्रयत्नो से कामायनी के विवेचन कलेवर मे वृद्धि हुई और उसका समझने की दिशा म प्रगति हुई। पर आज भी कामायनी क बारे मे अतिम शब्द कह देने का दावा कोई समीक्षक नही कर सकता। अब भी वह चुनौती बनकर हमारे सामने है, जो उसकी शक्ति का प्रमाण है। जब प्रस्तुत पक्तियो का लेखक प्रसाद क काव्य मे गुजर रहा था, तब प्रसादजी पर कोई शोधग्रन्थ उपलब्ध नही था और सभवत: शोध की दिशा मे वह प्रथम प्रयत्न था। मैन उस समय कामायनी को 'प्रसाद का काव्य' म तीन अध्याय दिये थे कामायनी का कथा चक्र जो मूलत: शोधपरक है। कामायनी के चिन्तन पर विचार व्यक्त करते हुए उसे मनोविज्ञान, दर्शन, समाजशास्त्र की दृष्टि मे देखा गया है। अन्त मे काव्य ससार क अन्तर्गत काव्य रूप मे उसकी परीक्षा है। आचार्य वाजपयी की छाया मे निर्मित इस शोधप्रबन्ध मे मैन कामायनी को उसके सर्वाग म समझना चाहा और कोशिश की कि उसे भीतर-बाहर से पहचान सकूँ।

कामायनी के पुनर्मूल्याकन की शुरूआत मुक्तिबोध ने की जब उन्होने 1945-46 के 'हस' मे कामायनी पर नयी दृष्टि डालन का यत्न किया। 'कामायनी : एक पुनर्विचार' का पुस्तकाकार प्रकाशन 1961 मे हुआ जिसमे प्रथमत: और अतत के अतिरिक्त तेरह अध्याय है। मुक्तिबोध कामायनी को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखते

है और इसे मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के आधार पर प्रस्तुत व्यावहारिक समीक्षा कहा जा सकता है। उनके दो समीक्षाग्रन्थो 'नयी कविता का आत्म-सघर्ष' तथा 'नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' के अतिरिक्त 'एक साहित्यिक की डायरी' मे भी मुक्तिबोध की समाजशास्त्रीय चेतना सक्रिय दिखाई देती है। इतिहास की भौतिकवादी दृष्टि के साथ-साथ मनोविज्ञान को लेकर चलने का प्रयत्न मुक्तिबोध मे देखा जा सकता है और आगे चलकर रमेश कुन्तल मेघ ने मिथक और स्वप्न की कामायनी की मनस्मौन्दर्य सामाजिक भूमिका बताकर इसी पथ को प्रशस्त किया। मुक्तिबोध कामायनी को एक 'फैटेसी' मानते हैं अर्थात् उसमे केवल कल्पना-भूमि है, यथार्थ नही। वे मनु के चरित्र को प्रसाद से एकाकार करने का हठ करते है। पर कोई भी कवि इस सीमा तक खुद को पात्र के रूप मे घटित नही कर देता कि दोनो मे पार्थक्य ही न रहे। तब तो काव्य का उन्नयन पक्ष ही समाप्त हो जायेगा। प्रसाद के जीवन-सूत्रो के सहारे मनु का चरित्र खालने की कोशिश मनोविश्लेषण के साथ भी ज्यादती है। पर मुक्तिबोध जब श्रद्धा और इडा मे बुद्धिवादी इडा का पक्ष लेते है तब उनके यथार्थवादी जीवनाग्रह स्पष्ट हो जाते है। यहाँ वे आचार्य शुक्ल के निकट है। इसमे सन्देह नही कि कामायनी के पुनर्मूल्याकन म मुक्तिबोध काफी गहराई तक गए हैं और उन्होने इस काव्य के इर्द-गिर्द बननेवाले प्रशसा-व्यूह को छिन्न भिन्न करके उसके समाजशास्त्रीय मूल्याकन की दिशा मे एक साहसपूर्ण कदम उठाया। मुक्तिबोध का यथार्थवादी रुख उनकी रहस्यवादिता मे रुष्ट है और वे इसे पलायनवृत्ति मानत है और इसीलिए श्रद्धावाद का विरोध करते है। पर मेरा विचार है कि कामायनी मे प्रसादजी अनास्था को आधुनिक युग का एक अभिशाप मानते है और श्रद्धा अथवा आस्था के द्वारा वे एक जटिल प्रश्न का उत्तर पाना चाहते है। यहाँ उनका आशय अन्ध श्रद्धा अथवा मध्यकालीन धार्मिक भक्तिभावना से नही है, यह जरूर है कि उनका रुख आदर्शवादी है, रूमानी है।

कामायनी स समाजशास्त्रीय अध्ययन की जो शुरूआत मुक्तिबाध ने की, उसमे नामवर सिह, रमेश कुन्तल मघ आदि ने योग दिया। कामायनी का ही नही, किसी भी कृति का समाजशास्त्रीय विवेचन एक उपादेय अध्ययन बन सकता है, बशर्ते किसी शास्त्र का उस पर अतिरिक्त आरोपित न कर दिया जाय। मुक्तिबोध की समीक्षा कई स्थलो पर बहुत नकारात्मक हो गई है, इसमे लाभ उठाकर कुन्तल मेघ ने समाजशास्त्र और मनोविज्ञान की दुहरी पगडडियो पर साथ-साथ चलने की कोशिश की और मिथकीय अध्ययन किया। उनका कार्य काफी अकादमिक भी है और वे कई दृष्टियो से कामायनी को देखना-परखना चाहते हैं। काव्य रूप मे इसे महान मानते हुए भी वे शिकायत करते है कि इसमे इतिहास को विकृत कर दिया गया है और मिथक एक स्वप्नजगत अथवा कल्पना-भूमि मे पर्यवसित हो जाते है। जाहिर है कि समीक्षक एक प्रतिबद्ध सामाजिकता की माँग कामायनी से करता है जो रूमानी कवि के लिए

सम्भव न थी। नामवर सिंह और कुन्तल मेघ मुक्तिबोध की तुलना में कामायनी के प्रति अधिक सहिष्णु है। इन सभी की इस शिकायत मे समानता है कि प्रसाद आधुनिक सघर्ष से बचकर निकल गए है। मै समझता हूँ कि कामायनी के एक अधिक तटस्थ समाजशास्त्रीय विवेचन की गुजायश अब भी बनी हुई है।

कामायनी के पुनर्मूल्याकन की कडी में दो नाम मुख्य रूप स और लेकर, उस पर नये सिरे से कुछ कहना चाहूँगा। वे दो प्रयत्न है . इन्द्रनाथ मदान और रामस्वरूप चतुर्वेदी। डा. मदान कामायनी को एक असफल कृति कहते है। वे एक ओर तो यह मानते है कि कामायनी के आमुख मे कवि ने जो कुछ कह दिया था, उसे प्रमाण मानकर चलने के कारण समीक्षा मे कई पूर्वाग्रह उभरे है, दूसरी ओर वे स्वय सबसे पहले 'आमुख' की दस महत्त्वपूर्ण बातो को लेकर चर्चा आरम्भ करते हैं। वे मनु के व्यक्तित्व के विकास से बहुत सतुष्ट नही प्रतीत होत और उसकी भावुकता पर एतराज करते हैं। डा. मदान का आरोप है कि कामायनी को कवि सँभाल नही पाया है, उसमे एक लडखडाहट है जिसके कारण सृजन प्रक्रिया अनेक स्थलो पर अवरुद्ध हुई है। उन्होने एक महत्त्वपूर्ण सकेत किया है कि कामायनी की अब तक की समीक्षाओं में समीक्षको ने खुद को आरोपित भी करना चाहा है जिससे उसकी ठीक पहचान नही हो सकी। वे आन्तरिक सरचना के अभाव म इसे एक असफल कृति घोषित करते है यद्यपि व उस असाधारणत्व भी देते है, जा उसके महत्त्व की सहज स्वीकृति है। रामस्वरूप चतुर्वेदी कामायनी के पुनर्मूल्याकन को एक अनिवार्य प्रक्रिया मानत है। डा चतुर्वेदी का आग्रह है कि किसी कृति को खण्ड-खण्ड करक देखने की तरकीब ठीक नही होती ओर उसे उसकी समग्रता मे पकडना चाहिए। व कामायनी को सश्लिष्ट काव्य विधान का काव्य मानते है ओर उसे महाकाव्य क रूप म परीक्षित करना आवश्यक नही समझते (कामायनी का पुनर्मूल्याकन . पृ 19)। वे उसक अर्थवाद, बिम्बविधान, सास्कृतिक सकट, जीवन-बोध और भाषा-सरचना आदि पर विचार करते है ओर कामायनी के प्रति हमारी समझ को बढाते है।

आज जब हम नयी कविता के दोर के बीच कामायनी स साक्षात करना चाहते है तो बदले हुए परिवेश मे उससे पूर्ण सहानुभूति प्रकट करना कठिन हो जाता है। कामायनी छायावाद युग की कृति है जिसमे हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की दो प्रमुख मुद्राएँ देखी जा सकती है, सास्कृतिक और रूमानी। यह स्वीकारते हुए भी कि छायावाद मध्यवर्गीय मनोवृत्ति के उदय का काल है, हम मानना होगा कि उन्नीसवी शताब्दी के नवजागरण से उस जोडना अधिक उचित है। इस सास्कृतिक नवजागरण मे सामाजिक सुधार की भावना केवल उसका वाह्य पक्ष है जो राष्ट्रीयता में भी गहरे ढग मे जुडी है। पर इस सास्कृतिक अभियान का अधिक सूक्ष्म स्वरूप भी है जब भारतीय मनीषा ने अपने इतिहास, धर्म, सस्कृति, साहित्य, कला को नए ढग स पहिचानने की कोशिश की। कामायनी मे कवि की यह सास्कृतिक दृष्टि निराला के

समान विद्रोही न होकर किसी मीमा तक परम्परा के पुनर्मूल्याकन पर आधारित है। प्रसाद एक नितान्त प्राचीन कथानक उठाते हैं, जिमके पात्र मनु, श्रद्धा, इडा का उल्लेख ऋग्वेद तक मं प्राप्त होता है। मनु मे वैदिक ऋषि के साथ-माथ मनुस्मृतिकार का रूप भी समाया है। विशेषतया जब वे सारस्वत प्रदेश का नियमन करना चाहते है। इसी प्रकार कामायनी की कथा पुराणो तथा शतपथ ब्राह्मण का भी सहारा लेती है। पर कामायनीकार के सामने बगबर यह प्रश्न था कि इम प्राचीन कथा का आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे कैसे प्रम्तुत किया जाय। इसके लिए उन्होने सर्वप्रथम मानवीय आधार पर कार्य करना आरम्भ किया और प्राचीन काव्यो की उम प्रचलित परम्परा का निषेध किया जिसमे समस्त चरित्रो को पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ, देव दानव के आधार पर विभक्त कर दिया जाता था और मघर्ष के अन्त मे देव-पक्ष विजयी माना जाता था। यहाँ तक कि वर्ग-सघर्ष को लेकर चलनवाली समाजवादी कृतियो मे भी इमी परम्परा का निर्वाह दूमरे ढग स किया जाता है, जिसमे सर्वहारा की विजय घोषित करने की अनिवार्यता है।

कामायनी देव दानव मघर्प का साकेतिक चित्रग तो करती है पर दोनो को अपूर्ण मस्कृति मानती है। आरम्भ मे देवताओ की विलासी सस्कृति का चित्रग यद्यपि पुराणो मे वर्णित देव-मस्कृति का भी महारा लेता है पर प्रमाद उसके भयावह परिगाम की अपनी व्याग्या करते है। जो लोग आक्षेप करते है कि यह मामन्तवादी चित्रण है, उन्हे जान लेना चाहिए कि स्थिति की भयावहता दिखाने के लिग यह आवश्यक है। कामायनी मे देव विलाम के चित्रग के अतिरिक्त शृगारी पक्ष उभारे गए है और चिन्ता मर्ग म सुरभित अचल स जीवन क मधुमय निश्वाम चलने का वर्णन है तथा अभिसार तक के चित्र है

अब न कपोलो पर छाया सी
पडती मुख की सुरभित भाप
भुजमूलो मे शिथिल वमन की
व्यस्त न हाती है अब माप।

कामायनी देवताओ को 'विकल वामना का प्रतिनिधि' कहती है और यहाँ हम प्रमाद को, प्रलय को उमके पोराणिक अर्थ से हटाकर उमे एक नयी व्याख्या देने का प्रयत्न करते देख सकते है। प्रलय नियति अथवा प्रारब्ध मात्र नही था। देव-मम्कृति का विलाम उम मीमा तक पहुँच गया था जहाँ उसका विनाश एक अनिवार्य परिणति है। कामायनीकार मानता है कि देव-सस्कृति अपने ही विलास-भार और अहकार मे ममाप्त हो गई जैमे बडी मछलियाँ छोटी मछलियो को सजातीय होते हुए भी निगल जाती है : 'भक्षक या रक्षक जो ममझो केवल अपने मीन हुए।'

कामायनी देव-सस्कृति के विलाम का विस्तृत चित्रण करके उसका पराभव

दिखाने में एक नाटकीय स्थिति उत्पन्न करना चाहती है। अजर-अमर तथा स्वयं को चिरन्तन युवा माननेवाली देव-संस्कृति कामधेनु, कल्पवृक्ष, उर्वशी, रम्भा आदि के जगत में स्वयं को परिपूर्ण मानती थी और प्रसादजी की व्याख्या में उसकी अहंवादी प्रवृत्ति का यही मूल कारण था। मनु प्रलय के अनन्तर मानव-संस्कृति का पिता बनकर भी अपने अहं से मुक्त नहीं हो पाता, वह उसके अवचेतन पर छाया है और बराबर उसका पीछा करता है। देव-संस्कृति का विलास और अहंकार दोनों मनु को कई बार भटकाते हैं। वह किलात-आकुलि के साथ हिंसा, आखेट और सोमपान में प्रवाहित होता है। 'ईर्ष्या' सर्ग में गर्भवती श्रद्धा पर भी वह वासनाभरी दृष्टि डालता है। इतना ही नहीं, इसी सर्ग में उसे अपने भावी शिशु से ईर्ष्या होती है। वह इसे 'द्वैत, द्विविधा अथवा प्रेम बाँटने का प्रकार' मानता है और 'पंचभूत की रचना में एक तत्व बनकर' रमण करना चाहता है। 'मन की परवशता को महादुख' कहता हुआ वह अपने ही अहंकार में बंदी है और गर्भवती श्रद्धा को छोड़कर चला जाता है।

मनु के अहं-परिचालित व्यक्तित्व की मनोवैज्ञानिक व्याख्या सरलता से की जा सकती है जो एक ओर उसके पुराने देवत्व संस्कार के कारण है, दूसरी ओर प्रसाद उसके माध्यम से आधुनिक मानव को भी बिम्बित करना चाहते हैं। देवत्व-दानवत्व को कामायनी में दो संस्कृतियों और जीवन-दृष्टियों के रूप में चित्रित किया गया है। प्रसाद दोनों को अपूर्ण संस्कृति मानते हैं और मेरा विचार है कि इडा सर्ग में इसके संघर्ष का चित्रण इस आशय से भी किया गया है कि सारस्वत प्रदेश में जो नयी सभ्यता पनपे, वह इतिहास से शिक्षा लेती हुई इन दोनों अतिवादों से मुक्त रहे। प्रसाद ने देव-दानव की अपूर्णता के विषय में संक्षिप्त, पर सार्थक पंक्तियाँ लिखी हैं :

> था एक पूजता देह दान
> दूसरा अपूर्ण अहता में अपने को समझ रहा प्रवीण
> दोनों का हठ था दुर्निवार, दोनों ही थे विश्वासहीन।

यदि दानव-संस्कृति शरीर को अन्तिम सत्य मानकर 'प्राणों की पूजा' में लगी हुई थी तो देवता खुद को 'स्वयंसम्पूर्ण' समझकर उच्छृंखल हो गये थे। देव-संस्कृति की अपूर्णता दिखाकर उसकी नयी व्याख्या करना कामायनी की एक मौलिक और साहसपूर्ण उद्भावना है जो उसे आधुनिकता देती है। प्रसाद की यह मानवीय दृष्टि आदर्शवादी है, रूमानी है, पर अबौद्धिक और नैतिकतावादी नहीं। इसे न जाननेवाले समीक्षकों से कई भूलें हो जाया करती हैं। कामायनी की दृष्टि यथार्थवादी नहीं है, इसका सबूत यह कि जब प्रसाद सारस्वत प्रदेश के माध्यम से नयी औद्योगिक सभ्यता का चित्रण करना चाहते हैं तब उसके विस्तार में कम जाते हैं। वे बुद्धिवाद और भौतिकवाद को उसकी मूल प्रवृत्ति बताते हैं। हमें स्वीकार करना होगा कि आधुनिक

सभ्यता की जटिलताओ मे प्रवेश करने मे कामायनी को सफलता नही मिली और वह साकेतिक दृश्य मात्र प्रस्तुत कर सकी है। काम का शाप आधुनिक मानव के जटिल परिवेश को पूरी तरह उजागर नही कर पाता और केवल कुछ इशारे-भर कर जाता है। इसी प्रकार 'स्वप्न' सर्ग मे श्रद्धा सारस्वत प्रदेश का जो जीवन देखती है वह भी वस्तुपरक नही है। इसी सर्ग के अन्त मे और आगामी 'सघर्ष' सर्ग मे मनु और उसकी प्रजा का सघर्ष हल्के हाथो हुआ है, इसमे शक नही। कहने का तात्पर्य यह कि देव-दानव के स्थान पर मानव को प्रतिष्ठित करने का साहसिक यत्न तो कामायनी मे है, पर आधुनिक मानव को उसके सश्लिष्ट व्यक्तित्व मे प्रस्तुत कर सकने मे अधिक यथार्थवादी दृष्टि अपेक्षित थी, जो कवि की रूमानी दृष्टि के कारण सभव नही।

समाजशास्त्र, विशेषतया समाजवादी यथार्थवाद के आग्रही समीक्षक कामायनी मे प्रसाद के पक्षपातपूर्ण रवैये पर आपत्ति करते हुए कहते है कि श्रद्धा को अतिरिक्त महत्त्व मिला है। काव्य का नामकरण कामायनी के आधार पर होने से श्रद्धा नायिका है और वह महत्त्वपूर्ण स्थान पर है। पर इस सबध मे यह ध्यान देने योग्य है कि श्रद्धा स्वय के जीवन दर्शन की पूर्णता का दावा नही करती और अपने पुत्र मानव को इडा के पास इसलिए छोड जाती है कि उसका एक सतुलित समन्वित व्यक्तित्व निर्मित हो सके। 'दर्शन' सर्ग मे वह मानव से कहती है, 'यह तर्कमयी तू श्रद्धामय। जाहिर है कि प्रसाद एक समन्वित जीवन दृष्टि का आग्रह करते है जिसे वे 'समरसता' द्वारा व्यक्त करना चाहते है। यह अलग बात है कि इस प्रकार का समन्वय कितना सार्थक है पर जिस समय कामायनी रची गयी थी वह भारतीय राजनीति की एक प्रभावशाली धारा के रूप मे मौजूद था, इससे इन्कार नही किया जा सकता।

वास्तविक स्थिति यह है कि कामायनी यद्यपि कथा को लेकर रचा गया काव्य है पर कथा कहना उसका मुख्य आशय नही है। उसके लम्बे लम्बे एकालाप स्वय इसका प्रमाण है। 'सघर्ष' सर्ग के बाद अन्तिम चार सर्गो मे तो कथा का ऐसा ठहराव आ गया है कि यदि मनु के आध्यात्मीकरण की जरूरत न होती तो काव्य मे उनके विना भी काम चल सकता था। कामायनी इतिहास के प्रमाणीकरण को लेकर नही चलती, इसलिए उसका इतिहासबोध सबल नही हो पाया। अनेक ऐसे अवसर थे जब एक सामाजिक स्थिति से दूसरी सामाजिक स्थिति मे प्रवेश करते समय कामायनी इतिहास के कोण उभार सकती थी, जैसे कि कुछ कहानियो मे मामूली कोशिश भी हुई है। पर प्रसाद के मूल व्यक्तित्व की कठिनाई यह कि वे प्रायः चीजो को रूमानी नजरिये से देखने के अभ्यस्त है इसलिए 'आकाशदीप' और 'पुरस्कार' जैसी कहानियो मे प्रेम-द्वन्द्व बाजी मार ले जाता है तथा इतिहास पिछड जाता है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक तक मे कार्नेलिया यवन-भारत सस्कृतियो के सघर्ष को पूरा उभरने नही देती जबकि उसके लिए अवसर था। अधूरा उपन्यास 'इरावती' दृश्य को स्वच्छन्दतावादी दृष्टि

से प्रस्तुत करते हुए आरम्भ होता है जबकि कथानक सांस्कृतिक संघर्ष का है। यह इतिहास के प्रति रूमानी दृष्टि के कारण है, जिसने यथार्थ को पीछे छोड़ दिया है और अनेक स्थलों पर उसका स्थान एक मनोरम कल्पना और आदर्शवाद को मिल गया है। कामायनी के अन्तिम चार सर्ग काव्य की दृष्टि से उत्कर्षपूर्ण नहीं कहे जा सकते, पर प्रश्न है कि तब उनकी रचना क्यों हुई ? प्रत्यभिज्ञा दर्शन को शास्त्रीय पद्धति से प्रस्तुत करना अथवा दार्शनिक मुद्राएँ दिखाना मात्र उनका अभीष्ट नहीं था। ऐसा होता तो काव्य वक्तव्य बहुल हो जाता है। 'त्रिपुरारहस्य' में इच्छा, ज्ञान, कर्म का त्रिकोण प्रसाद की समन्वयवादिनी दृष्टि के निकट था, इसलिए उन्होंने इसका प्रतीकात्मक उपयोग किया। वे श्रद्धा को तत्व रूप में ढालकर उसे आध्यात्मिक गुरु जैसा बनाना चाहते हैं। और अत में मनु का भी रूपान्तरण करना चाहते हैं कि वह कुछ-कुछ ऋषित्व पा जाय। अन्तिम अशों म आध्यात्मीकरण के कई प्रसंग हैं जिन पर आपत्ति तक की जा सकती है क्योकि वे आधुनिक स्थिति में बहुत प्रासंगिक नहीं प्रतीत होते। 'दर्शन' सर्ग मे नटराज का नृत्य प्राचीन महाकाव्यों अथवा महानाटकों के दैवी तत्व (सुपरनेचुरल) की तरह दिखाई देता है पर कामायनी में इसका मूल प्रयोजन आध्यात्मिक रग भरना है। कामायनी की यह आध्यात्मिकता प्रसाद की आदर्शवादिता से सम्बद्ध है, वह मध्ययुगीन रहस्यवाद का सम्करण नही है और जीवन-सापेक्ष है। यही कामायनी के मानवीय पक्ष की शक्ति है और सीमा भी। यहाँ मूल्य-चिन्ताएँ हैं, पर रूमानी ढंग से।

कामायनी के विन्यास मे प्रसाद की वैयक्तिक अनुभूतियाँ भी सक्रिय रही हैं, यद्यपि उन्हें खोज लेना आसान नहीं है। वे निराला के समान निर्वैयक्तिक व्यक्तित्व के कवि नही है। उनकी निजी अनुभूतियाँ कहानियों को रूमानी बनाती है और नाटकों म गीतों और प्रेमिकाओं का योजना होती है। प्रायः कह दिया जाता है कि प्रसाद के नाटको की नारी-सृष्टि तथा प्रेम-सबंधी अन्तर्द्वन्द्व पाश्चात्य चरित्र-चित्रण के समान हैं, पर वास्तव में यह प्रसाद के मूल रूमानी व्यक्तित्व के कारण है। कामायनी इसीलिए कथाप्रधान और वर्णनात्मक नही हो पाती। कार्नेलिया 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' भारत-वन्दना गीत गाते-गाते अन्त मे 'हेम कुम्भ ले उषा सवेरे, भरती ढुलकाती सुख मेरे / मदिर ऊँघते रहते जब जगकर रजनी भर तारा' की रूमानी पंक्तियों से गीत का समापन करती है। कामायनी का 'लज्जा' सर्ग कुछ समीक्षकों को कथा-विन्यास की दृष्टि से असंगत प्रतीत होता है क्योंकि इससे कथा-क्रम में कोई अन्तर नहीं आता। एक प्रकार से वह कथा-विहीन सर्ग है। पर मात्र काव्य और वह भी गीतात्मकता की दृष्टि से यह कामायनी का सर्वोत्कृष्ट प्रसंग है। इसका कारण यही है कि यहाँ प्रसाद को अपनी स्वच्छन्दतावादी वृत्तियों के प्रकाशन की पूरी छूट थी और इसलिए वे अपनी सर्वोत्कृष्ट उड़ान पर पहुँच गए। इतना ही नहीं, सर्ग के अन्त मे वही आदर्शवादी समन्वयमार्गी रुख अपनाकर मनु-श्रद्धा मे एकतरफा-जैसा समझौता करा

दिया गया है। श्रद्धा हो अथवा इड़ा, प्रसाद की रूमानी मुद्राएँ सक्रिय रहती है पर आदर्शवादिता को किसी हद तक साथ लेकर। मनु के रूमानी, स्वच्छन्दतावादी व्यक्तित्व का आध्यात्मीकरण प्रसाद को इसीलिए करना पड़ा, ताकि वह नायक होने योग्य बन सके और प्रसादजी का भी आदर्शवादी रुख सुरक्षित रह सके। यदि मनोवैज्ञानिक स्तर पर सोचा जाय तो प्रसाद काव्य-संयोजन अथवा चरित्र-सृष्टि के अवसर पर भी 'कामायनी' में इतना तटस्थ नही हो पाए हैं कि उन्हे पूर्णतया आत्ममुक्त कहा जा सके। इसी कारण कामायनी मे एक गीतात्मकता आदि से अन्त तक काव्य पर आच्छादित रहती है। ऐसा लगता है कि कामायनी में 'आँसू' की पिया कवि का पीछा कर रही है, और अवचेतन पर उसका प्रभाव है। गीतात्मकता के सबब से कामायनी के कुछ अंश खण्ड-खण्ड रूप में बहुत उत्कर्षपूर्ण प्रतीत होते है। वहाँ कवि अपनी सम्पूर्ण सर्जनात्मकता के साथ आया है, पर जब काव्य के समन्वित प्रभाव की स्थिति आती है तब कामायनी के बड़े से बडे प्रशसक को स्वीकारना पडता है कि काव्य-सघटन मे शिथिलता है। इसीलिए उसे महाकाव्य प्रमाणित करने की चेष्टा जबरन नही की जानी चाहिए, क्योंकि आधुनिक युग मे महाकाव्य महान् काव्य का पर्याय नही रह गया है। 'कामायनी' की महत्ता की तलाश ही पर्याप्त है और वह बडप्पन तो उसमें है ही।

कामायनी का रचनाकार उस वैविध्य का दावा नही कर सकता जो सबोधन प्रायः निराला के लिए प्रयुक्त किया जाता है। पत का काव्य भी दिशाएँ बदलता रहा है। इस दृष्टि से प्रसाद और महादेवी एकरस कवि भी कहे जा सकते है, जिनके अनुभूति-जगत और भाषा में एक ही स्तर का निर्वाह प्रायः हुआ है। कामायनी का वैशिष्ट्य यदि प्रसाद के सम्पूर्ण व्यक्तित्व से सम्बद्ध करके देखा जाय तो सभव है उसके लिए एक नये समीक्षानिकष की आवश्यकता पडे, पर इससे उस कृति के साथ अधिक न्याय हो सकेगा। सच्चाई तो यह है कि कामायनी एक प्रकार से प्रसाद के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के प्रतिफल की चेष्टा है; यह बात दूसरी है कि उनके एकीकरण मे कही कोई कमी रह गई हो। हर महत्त्वपूर्ण कृति जिसमे रचनाकार अपने समग्र व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देना चाहता है और यदि सयोगवश वह व्यक्तित्व सश्लिष्ट अथवा विराट हुआ तो कृति बार-बार हमे ललकारती है, एक चुनौती बनकर हमारे सामने आती है। इसीलिए कामायनी कथा-प्रसंगो मे जब अपना सम्पूर्ण अर्थ उजागर नही कर पाती, तब उसे केवल शिथिल अभिव्यक्ति कहकर छोड देने से काम नही चलेगा। यह रचनाकार का भीतरी उलझाव भी है जिसे व्यक्त करने के लिए वह बार-बार दुहरे-तिहरे बिम्बों का सहारा लेता है, फिर भी गाँठ पूरी नहीं खुल पाती। कामायनी एक प्रकार से छायावाद युग का समापनग्रन्थ और निराला की आख्यान रचनाओ के अतिरिक्त छायावाद का एकमात्र महत्त्वपूर्ण कथाकाव्य है। सन् '35 मे कामायनी को अन्तिम रूप देकर जब प्रसादजी प्रेमचन्द के निधन के कुछ ही समय

बाद चल बसे, उमी के आस-पास स्वयं छायावादी काव्य का जगत बदलने लगा था। पत युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या के दौर में थे (1936-1940) और निराला अपनी इकलौती बेटी सरोज को खो देने के बाद आक्रोशभरी मुद्रा में आ गए थे। 1938 में प्रकाशित द्वितीय अनामिका में 'सरोज स्मृति' जैसा शोकगीत है जिसमें करुणा के साथ निराला ने सामाजिक विद्रोह को भी अभिव्यक्ति दी है। सन् '37 में ही 'तोड़ती पत्थर' जैसी सामाजिक यथार्थ की कविता रची गई जिससे प्रगतिवाद को शक्ति मिली। इस प्रकार '35-36 के आस-पास हिन्दी का स्वच्छन्दतावादी काव्य भी रूमानी परिवेश से हटकर यथार्थ की नयी भूमिका में प्रवेश करने लगा था। कहा नहीं जा सकता कि यदि इस दौरान प्रसाद जैसे एकरस कवि जीवित होते तो वे इस नयी धारा से कहाँ तक अप्रभावित रहते। पर जब हम कामायनी को छायावाद का समापन काव्य कहते हैं तो हमारा आशय यही है कि इसके बाद उसकी रूमानी वृत्तियों ने नयी दिशाएँ ग्रहण कीं। इसी कारण कामायनी काव्य की सीमाओं का जिक्र करते हुए हमें यह समझ भी होनी चाहिए कि हम जान लें कि वे प्रकारान्तर से छायावाद की भी सीमाएँ हैं। इनमें से कुछ को तोड़कर आगे जाने की चेष्टा उन्होंने की, मसलन कथा-काव्यों की दिशा में नए प्रयोग अथवा 'प्रलय की छाया' जैसे दीर्घ प्रगीतों की सृष्टि। पर कामायनी स्वच्छन्दतावादी काव्य की सारी चौहद्दी नहीं तोड़ पाती, यही उसकी सीमा है। रचना में अतिक्रमण सरल भी नहीं होता।

कामायनी का अनुभव-क्षेत्र सीमित है, इसमे सन्देह नहीं, पर यह बात तो प्रसाद के सम्पूर्ण काव्य के लिए कही जा सकती है। अनुभव की जो विविधता और विस्तार महाकाव्यो के लिए अनिवार्य स्वीकारे गए हैं उसकी पूँजी कामायनी के पास नहीं है, पर प्रसाद एक तल्लीन कवि हैं इसलिए वे विस्तार की क्षतिपूर्ति गहनता से करना चाहते है। इस क्रम में वे अनुभव-विस्तार की जगह अपनी अनुभूति को गहराकर काम निकालना चाहते हैं। कुछ तो अभिव्यक्ति की छायावादी सीमाओं के कारण तथा कुछ प्रसाद की अनुभूति की संश्लिष्टता और गहराई के कारण 'कामायनी में दुरूहता की शिकायत की जाती है क्योंकि उसमें अर्थ ऊपर रखे हुए नहीं है। वहाँ कई प्रसंगों में अनुभूति-क्षण और वह भी सश्लिष्ट अनुभूति-क्षण हैं जिसे प्रसाद ने प्रतीक-बिम्बों मे बाँधना चाहा है। 'काम' सर्ग में मनु एक जिज्ञासु की तरह नीले आकाश को देखता है और उस रहस्य-भरे आवरण को चीरना चाहता है। यह समस्त प्रसंग आसानी से पाठक की पकड़ में नहीं आता, पर इसीलिए उस पर आक्षेप कर देना, कामायनी के साथ ज़्यादती होगी। कहीं-कहीं तो ऐसी स्थिति आई है कि प्रसाद में कई अनुभूति-खण्ड एक-दूसरे में समा गए हैं और वे उन्हें अलग-अलग नहीं करना चाहते क्योंकि इससे उसकी संश्लिष्टता का क्षरण होता है। ऐसे अवसर भी जल्दी पकड़े नहीं जा सकते और हमें ठहरने को बाध्य करते हैं। पर यह स्वीकारना होगा कि अनेक स्थलो पर कामायनी इन्द्रजाल-सा रच देती है और हम उसमें प्रवाहित होते

हैं। ऐसे ही अवसरों के लिए कॉडवेल ने 'हिप्नाटिज़्म' की बात स्वच्छन्दतावाद के प्रसंग में कही है। कामायनी की भाषा स्वच्छन्दतावादी काव्य को उसके शीर्ष पर ले जाने का प्रमाण है, यह भी विचारणीय है। कम शब्दों में बहुतेरी बातें कहने अथवा एक बड़े दृश्य को बाँधने की कोशिश में कामायनी की भाषा प्रसाद की सहायता करती है। पर वे जब अमूर्त का मूर्तीकरण करना चाहते हैं, तब भी उनकी रागात्मकता अमूर्तता से बँधी रहती है और व्यक्तित्व के इस द्वन्द्व के कारण चित्र पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाते। श्रद्धा का रूप-वर्णन इसका एक उदाहरण है जहाँ कवि प्रायः अमूर्त विधान का सहारा लेता है। ऐसे अवसरों पर अनुभूति के साथ कवि का अध्ययन भी सम्मिलित दिखाई देता है और वह कल्पना का अधिकाधिक सहारा लेता है :

उषा की पहली लेखा कांत
    माधुरी से भीगी भर मोद
मदभरी जैसे उठे सलज्ज
    भोर की तारक द्युति की गोद।
कुसुम कानन अंचल में मद
    पवन प्रेरित सौरभ साकार
रचित परमाणु पराग शरीर
    खड़ा हो ले मधु का आधार।

कामायनी कालजयी कृतियों में है और इसमें सन्देह नहीं कि हर युग में उसके कुछ पाठक अवश्य होंगे। उसे रामचरितमानस जैसे जनकाव्य के रूप में देखना भूल है क्योंकि इस प्रतियोगिता मे तो कालिदास भी भाग नहीं लेना चाहेगे। युग के बदलते सामाजिक परिवेश और उसके परिणामस्वरूप जनमनेवाले आस्वाद और समीक्षा-प्रतिमानों के आधार पर कामायनी बराबर नये विवेचन की माँग करती रहेगी। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद, छायावाद के समापन काव्य के रूप में तो वह स्मरणीय रहेगी ही, पर उसमें कवि ने आधुनिक मूल्यों को पाने की सराहनीय चेष्टा भी की है और उसकी अपनी उपलब्धियाँ तथा सीमाएँ है। अपनी नयी पुस्तक 'हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य' में मैंने इसकी विस्तृत चर्चा की है।

प्रसाद की कृतियाँ

कविता

चित्राधार
करुणालय
कानन-कुसुम
प्रेम-पथिक
महाराणा का महत्त्व
आँसू
झरना
लहर
कामायनी
प्राणमाटन
प्रसाद-संगीत

नाटक

राज्यश्री
विशाख
अजातशत्रु
जनमेजय का नाग-यज्ञ
कामना
स्कन्दगुप्त
एक घूँट
चन्द्रगुप्त
ध्रुवस्वामिनी
कल्याणी परिणय
अभिनय चन्द्रगुप्त
अग्निमित्र

कहानी

छाया
प्रतिध्वनि
आकाशदीप
आँधी
इन्द्रजाल
देवरथ

उपन्यास

कंकाल
तितली
इरावती

अन्य

काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध